में हमेशा बाधा पहुँचाई गई। (३) आपको उन्नति के मार्ग में अग्रसर होने के उचित अवसर की उपेक्षा की गई।

इन सब बातों के उत्तर में केवल यही कहना यथेष्ट होगा कि अन्तिम बात के सम्बन्ध में आपके मत से मेरा मत बिलकुल नहीं मिलता। दूसरी बात के सम्बन्ध में मेरा कहना यह है कि आपको किसी दिन किसी काम में मेरे द्वारा बाधा न पहुँची होगी। पहली बात के सम्बन्ध में इतना ही कहना यथेष्ट है कि यह केवल मत-भेद मात्र है। खास कर आप जिस बँगला की शिक्षा देने के काम में नियुक्त हैं उसमें यह प्रश्न उतना प्रयोजनीय नहीं है।

एकान्त विश्वासपात्र

फ्रेड जे हालिडे।

दशम पत्र।

सोमवार, २० वीं सितम्बर।

माननीय डब्लू गार्डन यंग शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर महाशय की सेवा में।

प्रिय महाशय,

बहुत सोचने के बाद मैं देखता हूँ कि अपने इस्तीफे में किसी तरह का परिवर्त्तन करना, न्याय की दृष्टि से, मेरे लिए असम्भव है। पत्र के उत्तर में विलम्ब होने के लिए क्षमा चाहता हूँ।

आपका—

(ह०) ईश्वरचन्द्र शर्म्मा।

विद्यासागर ।

(जीवनचरित)

श्रीचण्डीचरण वन्द्योपाध्याय-प्रणीत ।

"The man to whom I have appealed has the genius and wisdom of an ancient sage, the energy of an Englishman and the heart of a Bengali Mother

MICHAEL M S DUTT

— o —

अनुवादकर्त्ता

रूपनारायण पाण्डेय ।

—•—

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

प्रथम बार] १९१६ [मूल्य २)

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the
Indian Press, Allahabad

भूमिका ।


स समय बँगला का साहित्य सुशोभित और सौन्दर्य से विभूषित होकर नेत्रो की तृप्ति और मन के आनन्द को वढा रहा है। जिन सज्जनो ने सेवक के रूप से बँगला-साहित्य की वर्त्तमान शोभा और सौन्दर्य की सूचना की थी उन मातृभाषाभक्त महानुभावो के अगुआ लोगो में विद्यासागर महाशय का बहुत ऊँचा स्थान है। बहुत दिनो तक कठिन कठोर परिश्रम करने पर पुरुषोत्तम विद्यासागर का यह जीवन-चरित लिखा गया है। वगदेशीय और विदेशीय पाठको के करकमलो में यह पुस्तक समर्पित करने के समय बहुत कुछ मुझे कहना था। किन्तु उन सब बातो का उल्लेख न करके केवल बहुत ही आवश्यक कुछ बाते यहाँ पर कहूँगा।

भारतवर्ष के वीरो की कथा ने पृथ्वी की छाती पर जिस अविनाशी कीर्त्ति-मन्दिर की स्थापना की है उस मे अमर-पुरुष ईश्वरचन्द्र ने मानव-सुहृद् के रूप से अवला-बान्धव के रूप से ऊँचे आसन पर बैठ कर सब दिशाओ को प्रकाशित किया है। मेरा पहला वक्तव्य यही है कि ऐसे गुणी महापुरुष का जीवनचरित लिखना, बडे सौभाग्य की बात होने पर भी—बडे पुण्या का फल होने पर भी—मुझ ऐसे साधारण पुरुष के लिए उस सौभाग्य का अभ्युदय—उस पुण्य का सभोग—बहुत ही असमजस है। विद्यासागर सरीखे महापुरुष को अच्छी तरह पहचानना और उपयुक्त रूप से उन की गुणावली का वर्णन

करना मुझ एस पुरुष के लिए सर्वथा असम्भव है। जुगनू कभी आकाशमण्डल के नक्षत्रों के गौरव का अनुभव नहीं कर सकता—गाय के पैर से बन गये गढ़े में भरा हुआ जल कभी अनन्त सागर की लहरी-लीला की कल्पना नहीं कर सकता, वैसे ही क्षुद्र मनुष्य भी अपने क्षुद्र हृदय मे विश्वव्यापी प्रेमप्रवाह को धारण नहीं कर सकता। ऐसा करने मे उसका सब प्रयास विफल होना ही सर्वथा सभव है।

विद्यासागर महाशय पण्डितमण्डली के शिरोभूषण थे, दुर्भाग्यवश उनके इस जीवनचरित का लेखक उनकी तुलना मे महामूर्ख है। वह सहृदय लोकवत्सल महापुरुष थे, उन की जीवनी का लेखक छोटी तबीयत का, छोटे विचारों का आदमी है। इस जगह पर अनेक लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि ऐसी असदृश अवस्था मे बौने होकर चन्द्रमा को छूने की चेष्टा क्यों करते हो? इस के उत्तर में मुझे केवल एक बात कहनी है। सैकडो घटनाओं के द्वारा मुझे इस बात का परिचय मिला है कि विद्यासागर महाशय मुझ पर अत्यन्त स्नेह रखते थे। इसी कारण मैं भी मरणकाल तक भक्तिभाव से उन की पूजा करने को अपना कर्तव्य समझता हूँ। यह जीवनचरित उसी पूजा का प्रथम आयोजन है। मुझे उनकी सुपवित्र जीवन-कथा के वर्णन का यही अधिकार है। उनके अन्तिम जीवन मे बहुत दिनों तक मैं उनके पास रह चुका हूँ। उनके पवित्र सग से मेरा बडा उपकार हुआ है। किन्तु मैं अभागा उपकृत के कृतज्ञ-भाव को अन्य किसी प्रकार से प्रकट करने मे असमर्थ हूँ, क्योंकि सासारिक सम्पत्ति मेरे पास नहीं है। अन्य कोई महानुभव पुरुष उनका जीवनचरित लिखने के लिए अग्रसर होता तो मैं अपनी बडे यत्न से सुरक्षित जीवन-चरित की सामग्री उसी को सौंप कर कृतार्थ होता। किन्तु देश के दुर्भाग्य के कारण मुझ सरीखे छोटी समझ और छोटे विचार वाले मनुष्य को

यह सुकठिन कर्त्तव्य-भार ग्रहण करना पड़ा। ऐसी अवस्था मे—ऐसे दुरूह कार्य को जब मैंने केवल अपने हृदय के उत्साह पर ही उठा लिया है—पग पग पर त्रुटियाँ रह जाने की सपूर्ण सभावना है। ग्रन्थकार की इस दीनता को स्मरण रख कर, महापुरुष के गुण-गौरव का आदर होने से ही मैं अपने पाठको और मित्रो का चिरकृतज्ञ रहूँगा।

विद्यासागर महाशय बगाल के एक साधारण गाँव में, एक गरीब घराने में जन्म लेकर, अँगरेजो के अधिकार मे जितना भारत है उसमे गणनीय और पूजनीय समझे गये। उनके परलोकवास से जो स्थान शून्य हो गया है उसकी पूर्त्ति की कोई सभावना नही है। एक ही जीवन मे समानरूप से राजसेवा, प्रतिष्ठित बन्धुओ की सेवा और दरिद्र-सेवा को स्थान मिलना एक दुर्लभ बात है। किन्तु उन्होने अपने जीवन मे इसे भी सभव और सहज कर दिखाया है। ऐसी अदृष्टपूर्व घटना विद्यासागर के अन्तकाल मे ही देखी गई है कि देश के छोटे-बडे, धनी-दरिद्र सब समानभाव से हार्दिक वेदना प्रकट करें। किन्तु सन्ताप की बात यही है कि हम लोग उनकी उपयुक्त मर्यादा की रक्षा नही कर सके। इसमे भी सन्देह है कि कभी ऐसा कर सकेंगे। मैं विद्यासागर का चिरकृतज्ञ हूँ। उस कृतज्ञता का ऋण एक जन्म क्या, अनेक जन्म मे चुकाया नही जा सकता। उसी न चुकाये जा सकने वाले ऋण को स्वीकार करने की इच्छा से ही इस सुबृहत् ग्रन्थ को लिखने के काम मे हाथ लगाया गया है। उस ऋण को स्वीकार करने मे मैं वङ्ग देश के और भी अनेक महात्माओ का ऋणी हो गया हूँ।

इस ग्रन्थ को लिखने के काम मे यदि मैं किसी भी अश मे कृतकार्य हुआ हूँ तो उसमे मेरी कुछ प्रशसा नहीं है। मेरे भक्तिभाजन, वयोवृद्ध हितैषियो ने, मेरे हमजोली के मित्रो ने और अन्य बहुत से परिचित अपरिचित स्वदेशवासियो ने मेरी बडी सहायता की है और

इसलिए वे ही यथार्थ प्रशसा के पात्र हैं। वे लोग यदि स्नेहपूर्ण उत्साह से और अन्यान्य प्रकार से सहायता न करते तो मुझ ऐसा अयोग्य पुरुष ऐसा वडा काम करने को अग्रसर होने का साहस न कर सकता। इस लवे-चौडे ग्रन्थ को लिखने मे मैं अनेक प्रकार से जिन जिन सज्जनो का ऋणी हुआ हूँ उनके नामो का उल्लेख करना इस स्थल पर असभव है। इस कारण सव सहायक सज्जनो से हाथ जोड कर इस त्रुटि के लिए क्षमा प्रार्थना करके मैं यहाँ पर कुछ लोगों का उल्लेख करूँगा।

जव मैंने यह काम करने का विचार माननीय जज श्रीयुत गुरुदास वनर्जी के आगे प्रकट किया तव उन्होंने जो कुछ उपदेश किया और जैसे सहानुभूति-पूर्ण उत्साह के वाक्य कहे, उनसे मेरा वडा उपकार हुआ। आपकी सलाह और सहायता प्राप्त करने मे यदि मैं कृतकार्य न होता तो अवश्य ही इस ग्रन्थ को प्रकाशित करना मेरे लिए असभव होता। इस कारण मैं उक्त महोदय का सदा ऋणी रहूँगा।

यह जीवनी यदि किसी अश में वगीय साहित्य-सेवको और पाठको के आदर की चीज हो तो उसके लिए विशेप भाव से प्रशसा के योग्य हैं विद्यासागरजी के पुत्र श्रीयुत नारायणचन्द्र विद्यारत्न। उन्होंने जैसे आग्रह और नम्रता के साथ अपने स्वर्गीय पिता के जीवनचरित की सामग्री आदि देकर मेरी सहायता की है उसके विस्तृत उल्लेख की कोई आवश्यकता नहीं। क्योंकि पुस्तक पढते पढते पाठको को उसके अनेकानेक प्रमाण देख पडेंगे। इस कारण उनका भी मैं चिर-ऋणी हूँ। उसके उपरान्त विद्यासागर के मित्र श्रीयुत राजनारायण वसु ने भी वहुत सी सामग्री दी है। उनका भी मैं सदा कृतज्ञ रहूँगा। विद्यासागर महाशय के जेठे नाती 'साहित्य'—सपादक मेरे परमस्नेह-

पात्र श्रीयुत सुरेशचन्द्र समाजपति ने ग्रन्थ के आरंभ से अन्त पर्यन्त सलाह देकर, पारिवारिक जीवन की बहुत सी बातें बता कर, तरह तरह से सहायता पहुँचा कर मुझे अनुगृहीत बनाया है।

जिन बातों के बिना इस ग्रंथ का प्रकाशन और प्रचार नहीं हो सकता था, उनके एक अंश का तो वर्णन हो चुका। अब दूसरे अंश का उल्लेख करके मैं इस वक्तव्य को समाप्त करूँगा। संस्कृत-प्रेस डिपोजिटरी के प्रधान कर्मचारी मेरे सहोदर-तुल्य बन्धु श्रीयुत अविनाशचन्द्र मुकर्जी महाशय की सहायता और सहानुभूति के बिना इस पुस्तक का छपना सर्वथा असंभव था। अविनाश बाबू ने पुस्तक के प्रूफ देख कर मुझे और भी ऋणी बना लिया है। इस पुस्तक में जो लीथो-चित्र हैं उन्हें गवर्नमेंट आर्टस्कूल के प्रधान शिक्षक श्रीयुत बाबू अन्नदाप्रसाद बागची ने अंकित किया है। उन्होंने भी इस कार्य में अनेक कष्ट उठा कर मुझे अनुगृहीत किया है। पुस्तक और चित्रों में खर्च अधिक देख कर मैं बड़े ही असमंजस में पड़ गया था। निम्नलिखित सज्जनों ने सहायता करके उससे मुझे उबारा है —

श्रीमती महारानी स्वर्णमयी सी आई।
श्रीयुत माननीय गुरुदास बन्द्योपाध्याय।
श्रीयुत सर रमेशचन्द्र मित्र।
श्रीयुत राजा प्रमथभूषणदेवराय (नलडांगा)।
श्रीयुत दुर्गामोहनदास।
श्रीयुत राय यतीन्द्रनाथ चौधरी (टाकी)।
श्रीयुत भूपेन्द्रनाथ वसु एम ए, बी एल।
श्रीयुत राजकृष्ण बन्द्योपाध्याय।
श्रीयुत डाक्टर यदुनाथ मुखोपाध्याय।

तुम्हारी देखने की शक्ति को क्षीण कर दिया है उसे साधना से हटा डालो, दिव्य दृष्टि पा कर देखोगे कि यह वही देश है जिसके पवित्र सामगान से आकाश गूँज उठता था। तत्त्वदर्शी ब्रह्मपरायण महर्षिगण विचर कर इस भूमि को चिरकाल से पवित्र बनाते आते हैं। उस स्वर्णयुग को सैकड़ों हजारों वर्षों ने हमसे कोसों दूर हटा दिया है, तथापि हम देखते हैं कि मनुष्य की स्मरण-शक्ति उस शोभन दृश्य को, उस पवित्र चित्र को, उस सुमिष्ट कल्पना को यत्न के साथ अपने में बनाये रखने और भक्ति के साथ स्मरण करने का निरन्तर प्रयास कर रही है। यह वही पुण्यभूमि है जिसके तपोवनों में महायोगी शुकदेव, नारद, वसिष्ठ, विश्वामित्र, वाल्मीकि, व्यास आदि महाबल-सम्पन्न महात्मागण विचरते थे। इसी के राजसिंहासन पर राजर्षि जनक, प्रजावत्सल रामचन्द्र, सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र और राजा युधिष्ठिर आदि प्रातःस्मरणीय राजा लोग बैठ गये हैं। यही पवित्र भूमि सत्यधर्मपरायण विचित्र-बलशाली महानुभव भीष्म, अर्जुन, कर्ण आदि वीर पुरुषों और उनके बाद अपेक्षाकृत आधुनिक भारत के सपूत पृथ्वीराज, प्रतापसिंह, राजसिंह, रणजीतसिंह, शिवाजी और उनकी सन्तानों के रुधिर से सिंची है, पवित्र हुई है, धन्य हुई है। इसी देश में राजकुमार शाक्यसिंह ने सांसारिक सुख की असारता देख कर सार-तत्त्व की खोज में अपना जीवन लगा दिया था। यही पुण्यभूमि उनके मानव-प्रेम-प्रचार का पुनीत तीर्थ है। शङ्कर भगवान् के सुविशाल कीर्त्ति-स्तम्भ-स्वरूप वेदान्त-भाष्य आदि ग्रन्थ इस भारत की महिमा की पराकाष्ठा हैं। कविकुल-सम्राट् महामति कालिदास जिस महा-सभा के राजकवि और प्रधान रत्न थे वह महाराज विक्रमा-दित्य का कीर्त्ति-मन्दिर इसी भारत में था। यह सब कीर्त्ति-गाथा अनन्त काल तक भारत के गौरव की घोषणा करेगी।

उत्तुङ्ग पर्वत-माला, जिसके घने जङ्गल, जिसके शान्तिनिलय तपोवन, जिसके निस्तब्ध नीरव गिरिगह्वर, जिसके सूनसान मैदान, जिसके प्राणप्रद सुमिष्ट-सलिल, पूर्ण नद, नदी और झीले सदा बहारदार—शोभा-शाली—बनी रह कर लोगो के नयन और मन को शीतल बनाती हैं। यह वही देश है, जिसकी खाने अनन्त काल से अनन्त रत्न देती हुई ससार के लोगो की सुख-समृद्धि की वृद्धि करती आती हैं। यह वही देश है, जिसका समुद्र-तट चिरकाल से अतिथि-अभ्यागतो के पदार्पण और विदेशी सौदागरो के कोलाहल से परिपूर्ण बना रहा है। इसी शोभा-सौन्दर्य-निलय रत्न-पूर्ण भारत मे छओ ऋतुओ का विकास है, अन्यत्र नही। इसीसे यहाँ लोगो को विशेष प्रीति और सुख प्राप्त होता है। किन्तु केवल प्राकृतिक शोभा और सौन्दर्य की खान होने से ही इस श्यामला सुजला सुफला पृथ्वी का इतना आदर नही हो सकता था। जगली फूल के समान वह शोभा निराले मे छिपी ही रहती। इस सुख-सौन्दर्य-पूर्ण चिरशोभामयी भूमि की इतनी प्रसिद्धि और प्रशसा का प्रधान कारण इसके अनेक वीर बालक हैं, जिन्होंने इस भारत माता की गोद मे जन्म लेकर पुण्य-कृत्यो से निज नाम को अमर बना दिया है। सम्पूर्ण सम्पत्तियो के आधाररूप इस कल्पवृक्ष के आश्रय मे रह कर, पाठकगण, आप क्या चाहते हैं? आप जो चाहेगे वही मिलेगा। ऐसा कौन अमूल्य फल है जो इस कल्पतरु की शाखाओ मे नहीं फला? ऐसी कौन दुर्लभ वस्तु आप चाहते हैं जो इस सुमहान् "अक्षय-वट" की सुशीतल छाया मे बैठ कर नहीं पा सकते?

तुम्हारी स्मरण-शक्ति अगर एक दम नष्ट न हो गई हो तो समय-स्रोत का सारा कूडा हटा डालो, तुम्हे उसी गौरवानुभव-पूर्ण पुरातन कीर्ति-कहानी की गुनगुनाहट इस समय भी सुनाई पडेगी। बहुत दिनो से तुम्हारी आँखो के ऊपर जिस 'काल' की धूल ने जमा होकर

तुम्हारी देखने की शक्ति को क्षीण कर दिया है उसे साधना से हटा डालो. दिव्य दृष्टि पा कर देखोगे कि यह वही देश है जिसके पवित्र सामगान से आकाश गूँज उठता था। तत्त्वदर्शी ब्रह्मपरायण महर्षिगण विचर कर इस भूमि को चिरकाल से पवित्र बनाते आते हैं। उस स्वर्णयुग को सैकडो हजारो वर्षो ने हमसे कोसो दूर हटा दिया है, तथापि हम देखते हैं कि मनुष्य की स्मरण-शक्ति उस शोभन दृश्य को, उस पवित्र चित्र को, उस सुमिष्ट कल्पना को यत्न के साथ अपने मे बनाये रखने और भक्ति के साथ स्मरण करने का निरन्तर प्रयास कर रही है। यह वही पुण्यभूमि है जिसके तपोवनो मे महायोगी शुकदेव, नारद, वसिष्ठ, विश्वामित्र, वाल्मीकि, व्यास आदि महाबल-सम्पन्न महात्मागण विचरते थे। इसी के राजसिहासन पर राजर्षि जनक, प्रजावत्सल रामचन्द्र, सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र और राजा युधिष्ठिर आदि प्रात स्मरणीय राजा लोग बैठ गये हैं। यही पवित्र भूमि सत्यधर्मपरायण विचित्र-बलशाली महानुभव भीष्म, अर्जुन, कर्ण आदि वीर पुरुषो और उनके बाद अपेक्षाकृत आधुनिक भारत के सपूत पृथ्वीराज, प्रतापसिह, राजसिह, रणजीतसिह, शिवाजी और उनकी सन्तानो के रुधिर से सिँची है, पवित्र हुई है, धन्य हुई है। इसी देश मे राजकुमार शाक्यसिह ने सासारिक सुख की असारता देख कर सार-तत्त्व की खोज में अपना जीवन लगा दिया था। यही पुण्यभूमि उनके मानव-प्रेम-प्रचार का पुनीत तीर्थ है। शङ्कर भगवान् के सुविशाल कीर्त्ति-स्तम्भ-स्वरूप वेदान्त-भाष्य आदि ग्रन्थ इस भारत की महिमा की पराकाष्ठा हैं। कविकुल-सम्राट् महामति कालिदास जिस महा-सभा के राजकवि और प्रधान रत्न थे वह महाराज विक्रमा-दित्य का कीर्त्ति-मन्दिर इसी भारत मे था। यह सब कीर्त्ति-गाथा अनन्त काल तक भारत के गौरव की घोषणा करेगी।

धर्मनीति, समाज-तत्त्व और जन-हितकर अनुष्ठान आदि के उच्चतम सोपान पर चढ कर अन्त को जब धर्महीनता और सामाजिक अवनति के प्रबल 'भवर' मे पड कर आर्यजाति डूब गई, जब आर्यो का देश पराये हाथ मे चला गया, जब उन्होंने अपने घर मे दूसरो के धन से पलना सीख लिया, तब भी, उस निराशा के घने अन्धकार में, उन मृतप्राय नर-नारियो मे, नानक, गुरु गोविन्दसिह, दादू, कबीर, श्रीचैतन्य, नित्यानन्द सूरदास, तुलसीदास आदि धर्मात्मा ईश्वरभक्त साधुओ का यहां अभ्युदय हुआ है।

उसके उपरान्त मृत्यु के कराल मुख मे पडे हुए, विस्मृति के अथाह पानी में मग्नप्राय भारत के अन्धकारपूर्ण पश्चिम प्रान्त मे स्वामी रामतीर्थ, स्वामी दयानन्द और पूर्वप्रान्त मे परमहस रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द, राजा राममोहनराय आदि का अभ्युदय भी विधाता के विधान की विचित्रता का एक मनोहर दृश्य है। जब इन लोगो की भारी पुकार से भारत-सन्तानो की गहरी नींद खुली—बहुत दिनो की चुप्पी का अन्त हुआ, उन लोगो के जड-प्राय हाथ-पैरो मे चेतना का सञ्चार हुआ, बहुत दिनों के घने अन्धकार के अन्त मे जब नव्य भारत के भावी शुभ दिन के प्रथम उष काल की झलक दिखाई दी, भारत के पूर्व-प्रान्त मे जब मेघमाला के घने आवरण को भेद कर सुप्रभात का आगमन हुआ, तब मनुष्य-लोक में ऋषिगण ने और स्वर्ग मे देवतो ने जय-जयकार के साथ भारत-सन्तानो को आशीर्वाद दिये। जब आशा के प्रथम प्रकाश में वङ्ग-जननी का मुख-मण्डल विषाद-पूर्ण दिखाई पड रहा था—जिस समय अज्ञता, आलस्य, जडता, सकीर्णता आदि घुन लग कर वग-समाज की जीवनी-शक्ति को क्षीण कर रहे थे—जिन दिनो भागीरथी के दोनो किनारो पर जलती हुई चिता मे जीती हुई औरते भस्म हो जाती

थीं और उन असहाय हिन्दू-विधवाओं के आर्त्तनाद से आकाश गूँज उठता था, जड और जीव दोनों ही मिल कर इस नारीहत्या के काम में लगे हुए थे*—जिस समय कोमलकली ऐसे असहाय बच्चे समुद्र को अर्पण कर दिये जाते थे और उनके शोक-सन्तप्त मा-बाप सूना हृदय लिये सूने घर में लौट आकर आँधी में गिरे हुए पेड की तरह धराशायी होकर हाहाकार से आकाशमण्डल को गुँजा देते थे†—जब सुशिक्षा और सुशासन के अभाव से अमीर गरीबों का गला दबाते थे, एक आदमी दूसरे का सर्वस्व हजम करने की निरन्तर चेष्टा करता था—जब असहाय अबला स्त्रियों के पक्ष का समर्थन करने के लिए और गरीब प्रजा की स्वार्थरक्षा और सुखवृद्धि के लिए दृढव्रत धर्मात्मा राममोहनराय ने इँगलेड की यात्रा की थी—जब भारत की आशा का बालसूर्य क्रमशः पश्चिम-आकाश में ढल रहा था—जब बङ्गाल का सूर्य अटलांटिक महासागर के गम्भीर गर्भ में सदा के लिए डूब गया था—तब कौन जानता था कि और एक वीर बालक जन्म-भूमि की भलाई के लिए अवतार लेगा? उस समय कौन जानता था कि संस्कृत-कालेज की निम्नतम श्रेणी का दस वर्ष का बालक (ईश्वरचन्द्र) महात्मा राममोहनराय के पदाङ्क का अनुसरण करेगा? कौन जानता था कि राममोहन ने जिस समाज-संस्कार-कार्य की सूचना करके असमय में आत्मीय स्वजनों से दूर विदेश में शरीर-त्याग किया उस सत् अनुष्ठान का सूक्ष्म सूत्र वह बालक ईश्वरचन्द्र के हाथ में दे गये हैं? कौन जानता था कि हुगली के दक्षिण

---

* पति के ऊपर हिन्दू स्त्री के गहरे प्रेम से ही सहमरण की चाल चली थी। वैसे सहमरण को कभी किसी देश में कोई भी कानून के द्वारा नहीं रोक सकता।

† केवल बंग देश में ही कहीं कहीं यह चाल थी।

धर्मनीति, समाज-तत्त्व और जन-हितकर अनुष्ठान आदि
तम सोपान पर चढ कर अन्त को जब धर्महीनता और
अवनति के प्रबल भवर' मे पड कर आर्यजाति डूब गई,
का देश पराये हाथ में चला गया, जब उन्होंने अपने घर में
धन से पलना सीख लिया, तब भी, इस निराशा के घने अन
उन मृतप्राय नर-नारियों में, नानक, गुरु गोविन्दसिंह, दादू
श्रीचैतन्य, नित्यानन्द सूरदास, तुलसीदास आदि धर्मात्मा
साधुओं का यहां अभ्युदय हुआ है।

इसके उपरान्त मृत्यु के कराल मुख में पड़े हुए, विस्मृति
पानी में मग्नप्राय भारत के अन्धकारपूर्ण पश्चिम प्रान्त
रामवीर्य स्वामी दयानन्द और पूर्वप्रान्त में परमहंस
स्वामी विवेकानन्द, राजा राममोहनराय आदि का अभ्
विधाता के विधान की विचित्रता का एक मनोहर दृश्य
इन लोगों की भारी पुकार से भारत-सन्तानों की गहरी नींद
बहुत दिनों की चुप्पी का अन्त हुआ, इन लोगों के जड़-प्र
पैरों में चेतना का सञ्चार हुआ, बहुत दिनों के घने अन
अन्त में जब नव्य भारत के भावी शुभ दिन के प्रथम उष
झलक दिखाई दी, भारत के पूर्व-प्रान्त में जब मेघमाला के
रण को भेद कर सुप्रभात का आगमन हुआ, तब मनुष्य
ऋषिगण ने और स्वर्ग में देवता ने जय-जयकार के साथ
सन्तानों को आशीर्वाद दिये। जब आशा के प्रथम प्रकाश
जननी का मुख-मण्डल विषाद-पूर्ण दिखाई पड रहा था—जि
अज्ञता, आलस्य, जडता, सकीर्णता आदि घुन लग कर बंग-स
जीवनी-शक्ति को क्षीण कर रहे थे—जिन दिनों भागीरथी
किनारों पर जलती हुई चिता में जीती हुई औरतें भस्म

थीं और उन असहाय हिन्दू-विधवाओं के आर्त्तनाद से आकाश गूँज उठता था, जड और जीव दोनों ही मिल कर इस नारीहत्या के काम में लगे हुए थे*—जिस समय कोमलकली ऐसे असहाय बच्चे समुद्र को अर्पण कर दिये जाते थे और उनके शोक-सन्तप्त मा-बाप सूना हृदय लिये सूने घर में लौट आकर आंधी में गिरे हुए पेड की तरह धराशायी होकर हाहाकार से आकाशमण्डल को गुँजा देते थे†—जब सुशिक्षा और सुशासन के अभाव से अमीर गरीबों का गला दबाते थे, एक आदमी दूसरे का सर्वस्व हजम करने की निरन्तर चेष्टा करता था—जब असहाय अबला स्त्रियों के पक्ष का समर्थन करने के लिए और गरीब प्रजा की स्वार्थरक्षा और सुखवृद्धि के लिए दृढव्रत धर्मात्मा राममोहनराय ने इँगलेंड की यात्रा की थी—जब भारत की आशा का बालसूर्य क्रमश पश्चिम-आकाश में ढल रहा था—जब बङ्गाल का सूर्य अटलांटिक महासागर के गम्भीर गर्भ में सदा के लिए डूब गया था—तब कौन जानता था कि और एक वीर बालक जन्मभूमि की भलाई के लिए अवतार लेगा ? उस समय कौन जानता था कि संस्कृत-कालेज की निम्नतम श्रेणी का दस वर्ष का बालक (ईश्वरचन्द्र) महात्मा राममोहनराय के पदाङ्क का अनुसरण करेगा ? कौन जानता था कि राममोहन ने जिस समाज-संस्कार-कार्य की सूचना करके असमय में आत्मीय स्वजनों से दूर विदेश में शरीरत्याग किया उस सत् अनुष्ठान का सूक्ष्म सूत्र वह बालक ईश्वरचन्द्र के हाथ में दे गये हैं ? कौन जानता था कि हुगली के दक्षिण

---

* पति के ऊपर हिन्दू स्त्री के गहरे प्रेम से ही सहमरण की चाल चली थी। वैसे सहमरण को कभी किसी देश में कोई भी कानून के द्वारा नहीं रोक सकता।

† केवल बंग देश में ही कहीं कहीं यह चाल थी।

सीमान्त मे स्थित छोटा सा गांव राधानगर, मेदिनीपुर के उत्तर-प्रान्तस्थ वीरसिंह गांव के साथ, बगाल के सामाजिक इतिहास में एक ही सूत्र मे ग्रथित होगा ? पर विधाता की इच्छा को कौन जान सकता है ? दिव्य-ज्ञान-सम्पन्न साधु जन ही विधाता के अगुलि-सकेत को समझ सकते हैं। और की क्या मजाल कि उस गूढ़ अभिप्राय के कठिन पर्दे को खोल सके।

बगाल के सुदिन के सुप्रभात मे ईश्वरचन्द्र ने जन्म लिया था। उनका जन्म समाज-विप्लव, समाज-सस्कार और सामाजिक परिवर्त्तन के समय मे हुआ था। वह जिस समय वीरसिंह गांव की झोपडी मे माता की गोद में बचपन बिता रहे थे उस समय कलकत्ते में राजा राममोहनराय, डेविड हेयर, दीवान रामकमल सेन और सर राजा राधाकान्त देव बहादुर उनके भावी कर्मक्षेत्र को तैयार कर रहे थे। बालक ईश्वरचन्द्र जिस समय देहात के मैदान में खेल कूद कर समय बिताते और अत्यन्त अधिक उद्दण्ड-स्वभाव के कारण परोसियो को तरह तरह के क्लेश पहुँचाने मे आनन्द का अनुभव करते थे उस समय किसने सोचा था कि गँवईगांव का पर्णकुटीरवासी यह दरिद्र ब्राह्मण-सन्तान अपने अध्यवसाय और सहिष्णुता के कारण पौरुष और प्रतिभा के पराक्रम से बग-समाज को हिला देगा ? कौन जानता था कि बचपन की उस पत्थर सी निष्ठुरता के भीतर आर्त्त और विपत्तिग्रस्त लोगो के लिए अमृत-शीतल स्नेह छिपा हुआ है।

विद्यासागर का चरित्र विचित्र घटनाओ से परिपूर्ण है। और, वे घटनायें इतना चित्त को मुग्ध करने वाली और उपदेश-पूर्ण हैं कि उनकी आलोचना से क्षुद्र हृदय और क्षुद्र ज्ञानवाली लोक-मण्डली का विशेष कल्याण होने की सम्भावना है। गरीब के घर में

जगत्प्रसिद्ध महापण्डित तेजस्वी और सर्वगुण-सम्पन्न सुसन्तान का जन्म लेना पाश्चात्य देशो मे आश्चर्य की बात नहीं है। किन्तु आधुनिक भारत मे ऐसी घटना एक प्रकार से अद्भुत ही मानी जायगी। दु:ख-दारिद्र्य के कडे कोडो की मार खाते हुए, एकाहार और अनाहार से दिन बिताकर, अन्त को समाज के अगुआ का सम्मानित पद प्राप्त करना, इस आलसी और उद्यमविहीन देश में अप्राप्य नहीं तो दुर्लभ अवश्य है। किन्तु परलोक-गत महात्मा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की जीवनी इसी लिए अधिक उपादेय है कि वे ऐसे ही एक महापुरुष थे जो अनेक बाधा-विघ्नो और असुविधाओ की पर्वा न करके कर्त्तव्य के मार्ग मे अग्रसर हुआ करते हैं।

विद्यासागर महाशय एक बहुत गरीब मा-बाप के घर पैदा होकर स्वय सर्वगुण-सम्पन्न पुरुष-रत्न कैसे बन सके ? क्या किसी ने कभी ध्यान देकर विचार किया है कि दरिद्र-कुमार ईश्वरचन्द्र विद्यासागर दयासागर क्यो और कैसे बन गये ? क्या किसी ने पुखानुपुख-रूप से अनुसन्धान करके देखा है कि महामना महापुरुष विद्यासागर का महान् चरित्र किस सामग्री से सगठित हुआ था ? बुद्धिमान् और सोच समझ सकने वाले लोग देखेंगे कि विद्यासागर की प्रकृति को सुकोमल और सुन्दर बनाने का काम उनके चिरपूजनीय दृढव्रत और उदार-हृदय पिता ठाकुरदास और माता के ही हाथो सुसम्पन्न हुआ है। पुण्यवती और सहृदया उनकी माता भगवती देवी को ही विशेषरूप से प्रशसा प्राप्त हो सकती है। उस दयामयी पतिव्रता के कोमल हृदय की बूँद बूँद दया इकट्ठी होने से यह रत्नपूर्ण विद्यासागर हमारे समाज को प्राप्त हुआ था। उस हिन्दूललना ने बडे ही यत्न से ईश्वरचन्द्र को पाला पोसा था। इसीसे आज उस सुपुत्र का

यश दूर दूर तक सुनाई पड़ता है। विद्यासागर की पवित्र कीर्त्ति-गाथा सारे भारत में एक-स्वर से गाई जाती है। जिन पारिवारिक घटना-परम्पराओं से विद्यासागर का जीवन सगठित हुआ था उन्हीं का उल्लेख, सबसे पहले, सक्षेप मे, किया जाता है।

द्वितीय अध्याय ।

पूर्वपुरुष और जन्म-विवरण ।



७४२ शकाब्द (हिजरी सन् १२२७ और अँगरेजी सन् १८२०) की आश्विन-कृष्णा द्वादशी मङ्गलवार को दोपहर के समय मेदिनीपुर जिले के अन्तर्गत वीर-सिंह गाँव के एक गरीब ब्राह्मण-घराने में ईश्वरचन्द्र का जन्म हुआ था। यह अपने मा-बाप के पहले लड़के थे। जिस घराने में ईश्वरचन्द्र का जन्म हुआ वह गरीब अवश्य था, लेकिन उसमें निष्ठावान् और कर्त्तव्य-निरत लोगों की कमी न थी। जिन आचारों और आचरणों को देखने से सुशिक्षा प्राप्त कर लड़की-लड़के अपने भावी जीवन को उत्तम बना सकते हैं उनकी ईश्वरचन्द्र के घर में कमी न थी।

जो महा-पुरुष आगे चलकर विशेषरूप से प्रतिपत्ति प्राप्त करने में अपनी विद्या, बुद्धि और शक्ति-सामर्थ्य लगाकर अपने और असंख्य लोगों के सुख और समृद्धि की वृद्धि कर सकते हैं उन्हें पृथ्वी के लोग सहज ही अपने से अलग कर देते हैं। और, यदि वे अन्य दस आदमियों की तरह न्याय-अन्याय के विचार से शून्य होकर चिरा-गत पद्धति का अनुसरण न करके स्वयं अपनी राह खोज लेते हैं और अन्य दस आदमियों को भी उस मार्ग में चलाने या चलने

में सहायता पहुँचाते हैं उन्हे लोग दैव-बल-सम्पन्न महापुरुष समझते हैं और कहते हैं कि यह व्यक्ति भगवान् की विशेष कृपा प्राप्त करके सिद्ध-पुरुष हो गया हैं। ऐसे मनुष्यो का जन्म-वृत्तान्त साधारणत कुछ कुछ असाधारण और अश्रुतपूर्व घटनाओ से पूर्ण बतलाया जाता है और किसी किसी पुरुष के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली वे अलौकिक आख्यायिकायें सत्य ही होती हैं, उन्हे झूठ समझने का कोई कारण नहीं देख पडता।

विद्यासागर महाशय के जन्म-वृत्तान्त में भी इस प्रकार की कुछ विचित्र बातें सुनने को मिलेगी। जब विद्यासागर माता के गर्भ मे थे उस समय उनकी माता पागल थीं। अनेक प्रकार की दवाये होने पर भी उनका यह रोग आराम नहीं हो सका। किन्तु विद्यासागर महाशय के जन्म लेते ही वह आरोग्य हो गई। उनका ज्ञान और भाव सब पूर्ववत् होगया। उनको अचानक पूर्वावस्था मे देख कर सभी को बडा आश्चर्य हुआ। कहा जाता है कि उदयगज-निवासी ज्योतिषी भवानन्द शिरोमणि भट्टाचार्य महाशय ने आसन्न-प्रसवा बधू की जन्म-कुण्डली देख कर बतला दिया था कि उन्हें किसी प्रकार की रोग-बाधा नहीं है। उनका शरीर स्वस्थ है। ईश्वर का कृपापात्र कोई महापुरुष उनके गर्भ मे आया है। उसी के तीव्र तेज से वह इतनी अधीर हो पडी हैं। इस विशेष शक्तिशाली बालक के पैदा होते ही उनका चित्त स्वस्थ हो जायगा। जब भट्टाचार्य महाशय का कहना सच निकला तो उस बालक के महापुरुष होने के सम्बन्ध मे भी लोगो की धारणा बद्धमूल हो गई। बालक ईश्वरचन्द्र को महापुरुष समझने का कारण एक और भी था। ईश्वरचन्द्र के बाबा धर्म-परायण योगी थे। उनका नाम था रामजय तर्कभूषण। उन्होंने तीर्थ-यात्रा करने के समय एक दिन स्वप्न देखा कि उनके वंश में एक

शक्तिशाली अद्भुतकर्म्मा महापुरुष जन्म लेगा। वह बालक आगे चलकर अपने वंश की प्रतिष्ठा बढ़ावेगा। उसके कामों से देश को गौरव प्राप्त होगा। वह दया का साक्षात् अवतार होगा। स्वप्न में उनको यह भी आज्ञा मिली कि तुम अपने देश को लौट जाओ, अपने परिवार की खबर लो और उक्त बालक के जन्म की प्रतीक्षा करो। स्वप्न के अनुसार रामजय तर्कभूषण देश को लौट आये और स्वप्न की सफलता की अपेक्षा करने लगे। इस जगह पर और भी एक बात लिख देना आवश्यक है। शिशु के जमीन पर आते ही सिद्ध पुरुष तर्कभूषणजी ने उसके जीभ के नीचे महावर से कुछ लिखकर कहा था कि यह बालक सयाना होने पर सबको परास्त करेगा, यह अपनी प्रतिज्ञा के पराक्रम से हलचल डाल देगा। इसकी दया देख कर सब लोग मुग्ध होंगे। मैं ही इसका दीक्षागुरु होता हूँ। इस बालक का और कोई गुरु न होगा। आज मेरा स्वप्न सफल हुआ, मेरा वंश पवित्र हो गया।

ईश्वरचन्द्र जब पैदा हुए उस समय उनके पिता ठाकुरदास वन्द्योपाध्याय घर में नहीं थे। निकट के एक स्थान में मंगल और शनिवार को—हफ़्ते में दो बार—बाजार लगता था। मंगलवार को भोजन करके वह बाजार गये थे। रामजय तर्कभूषण पुत्र को पुत्र-जन्म का शुभ समाचार सुनाने के लिए उधर ही जा रहे थे। रास्ते में ही पिता और पुत्र से भेंट हो गई। तर्कभूषणजी ने पुत्र से कहा—"एक बछड़ा पैदा हुआ है।" इसी समय घर में एक गऊ भी ब्याने वाली थी। ईश्वरचन्द्र के पिता घर आते ही सबसे पहले बछड़ा देखने के लिए गऊ की ओर चले। तब उनके पिता ने हँसते हँसते कहा—"उधर नहीं, इधर आओ, मैं तुम्हें बछड़ा दिखाऊँ"। यह कहकर वह पुत्र को 'सौर' के पास ले गये और बोले—"मैंने इस बालक को बछड़ा

इस लिए कहा कि यह बछडे की ही तरह मनमौजी होगा। जो चाहेगा, उसे करके ही छोडेगा। किसी को भी नहीं डरेगा। यह बालक च्यणजन्मा महापुरुषो की श्रेणी मे होगा। इसका कोई प्रतिद्वन्द्वी न होगा। यह परम-दयालु होगा । इसकी कीर्ति चारो ओर फैल जायगी। इसके जन्म से मेरे वश की प्रतिष्ठा बढेगी। इसीसे मैंने इसका नाम रक्खा है ईश्वरचन्द्र।" विद्यासागर महाशय का यही एक नाम रक्खा गया। दूसरे नाम से वे नहीं पुकारे गये।

विद्यासागर महाशय की जन्मभूमि है वीरसिह गांव। वीरसिह गांव के वन, उपवन, अन्न के खेत, जलाशय और अन्यान्य सामान्य से भी सामान्य प्राकृतिक शोभा आदि के साथ ईश्वरचन्द्र के बाल्य-काल की पवित्र स्मृति का सम्बन्ध है। वीरसिह मे ही वह बचपन मे खेले कूदे, और लडे झगडे। उन्होने आमोद-प्रमोद किये और ऊधम भी मचाया। वीरसिह उन्हे बहुत ही प्रिय था। किन्तु विद्यासागरजी के पूर्व-पुरुष इस गाव के रहने वाले न थे। हुगली जिले के अन्तर्गत जहानाबाद के उत्तर-पूर्व कोण मे तीन कोस के फासले पर बनमालीपुर नाम का एक गांव है। उसीमे ईश्वरचन्द्र के बाबा तर्कभूषणजी रहते थे। वहां से वह वीरसिह क्यों चले आये, सो नीचे लिखा जाता है।

वनमालीपुर में रहने के समय, विद्यासागर महाशय के परबाबा भुवनेश्वर विद्यालङ्कार महाशय के न रहने पर, उनके पांचों पुत्र (बडे नृसिहराम, मँझले गङ्गाधर, तीसरे रामजय, चौथे पञ्चानन, पांचवे रामचरण) एक ही मे रहते थे। किन्तु बडे और मँझले दोना भाई गृहस्थी का सब कर्त्तृत्व अपने हाथ मे लेकर मामूली मामूली बातो में ऐसा लडते झगडते और अपने तीसरे भाई—विद्यासागर के बाबा—का इतना अपमान करते और इतना कष्ट देते थे कि वह कुछ समय तक तो निर्वाह करते रहे और फिर अन्त को दो पुत्र और चार कन्याओ

के साथ अपनी धर्म-पत्नी दुर्गा देवी को घर में छोडकर विना कहे सुने चल दिये।

वीरसिंह गांव मे उमापति तर्क-सिद्धान्त नाम के एक प्रसिद्ध पण्डित रहते थे। राढ देश मे वे अद्वितीय वैयाकरण प्रसिद्ध थे। कहा जाता है कि मेदिनीपुर के प्रसिद्ध धनी चन्द्रशेखर घोष की माता के श्राद्ध मे जो अध्यापक पण्डित निमन्त्रण पाकर जमा हुए थे उनमें नवद्वीप के उस समय के प्रधान नैयायिक पण्डित शङ्कर तर्क-वागीश भी उपस्थित थे। उन्होंने उमापति तर्क-सिद्धान्त की असाधारण व्याकरण-पटुता देख कर प्रसन्न होकर सबके सामने उनकी बडी बडाई की। इससे उनकी प्रतिष्ठा और आदर बहुत बढ गया था। रामजय तर्कभूषण घर छोडकर जाते समय जिस अपनी पत्नी दुर्गा देवी को बाल-बच्चो सहित वनमालीपुर मे रख गये थे वह इन्हीं उमापति तर्क-सिद्धान्त की तीसरी कन्या थी। तर्कभूषण महाशय के देशत्याग के उपरान्त दुर्गा देवी कुछ समय तक तो कष्ट सहती हुई सुसराल मे ही रहीं और फिर उसके बाद जब कष्ट न सहा गया तब वीरसिंह मे अपने पिता के घर जाकर रहने लगीं। दुर्गा देवी के दो पुत्र थे। बडे का नाम ठाकुरदास और छोटे का नाम कालिदास था। उनके चार लडकियाँ भी थीं। बडी का नाम मङ्गला, मँझली का कमला, तीसरी का गोविन्दमणि और छोटी का अन्नपूर्णा था। इन सबमें बडे विद्यासागर के पिता ठाकुरदास थे।

दुर्गा देवी लडके-लडकियो सहित पिता के घर मे रहने लगीं। उनके पिता उमापति तर्कसिद्धान्त महाशय बडे आदर और यत्न से नाती और नतिनियो का लालन-पालन करने लगे। थोडे दिनो तक तो दुर्गादेवी को यहाँ कोई कष्ट नहीं मिला और उससे उन्हें यह आशा हुई कि मैं यहाँ सुख से समय विता सकूँगी। किन्तु कुछ ही

दिनो मे उनकी यह आशा निराशा के अन्धकार मे लीन हो गई। एक तो उनके पतिदेव लापता थे, दूसरे कई एक दुधमुहे बचो के भरण-पोषण और देख-रेख का भार उनके ऊपर था। दुर्गादेवी के माता-पिता बहुत ही बूढे थे। गृहस्थी का कर्तृत्व दुर्गादेवी के भाई और भौजाई के हाथ मे था। भाई और भौजाई एक अनिश्चित समय के लिए इन सात जीवो के भरण-पोषण का भार अपने ऊपर लेना नहीं चाहते थे। इसी कारण वे सदा साधारण साधारण बातो पर लडाई झगडा और गाली-गलौज किया करते थे। समय समय पर बहुत दु खित होने पर दुर्गादेवी अपने वृद्ध माता-पिता से जाकर कहती थीं। लेकिन उससे कुछ फल नहीं होता था। कारण, बूढे मा-बाप की कुछ चलती न थी। अन्त को पिता की आज्ञा से पिता के घर के पास ही दुर्गादेवी ने एक छोटी सी झोपडी बनवा ली और उसी मे पुत्र-कन्यासहित रह कर बडे कष्ट से दिन बिताने लगीं।

जिस समय का यह वर्णन है उस समय निरुपाय भद्र-परिवारो की असहाय स्त्रियाँ तकुए और चर्खे मे सूत कात कर, दूसरो के द्वारा उसे बाजार मे बेच कर, अत्यन्त दीनभाव से अपना गुजारा करती थीं। दुर्गादेवी ने भी यही रास्ता पकडा। लेकिन केवल उतनी ही आमदनी से काम नहीं चलता था। इसलिए उमापति तर्कसिद्धान्त भी बीच बीच मे कुछ कुछ सहायता करते थे। इसी तरह कष्ट से कुछ काल बीता। इसी समय बडे लडके ठाकुरदास से माता का असह्य कष्ट नहीं देखा गया और उन्होंने धनोपार्जन के विचार से लडकपन मे ही घर छोड कर कलकत्ते की यात्रा कर दी। माता की आज्ञा लेकर ठाकुरदास जब कलकत्ते आये तब उनकी अवस्था केवल पन्द्रह वर्ष की थी।

उसी समय उनके निकट सम्बन्धी जगन्मोहन न्यायालङ्कार, सुविधा और सुयोग की कृपा से, कलकत्ते मे एक प्रतिष्ठित आदमी समझे जाते थे। वे सहृदय थे और उनका जमाना भी अच्छा था। वे जी खोल कर गरीबों को अन्नदान करते थे। ठाकुरदास के जाने पर उन्होने बडे आदर से इन्हे अपने घर मे स्थान दिया। ठाकुरदास ने वनमालीपुर मे और उसके बाद वीरसिंह मे थोडा बहुत व्याकरण पढा था। अब ठाकुरदास ने न्यायालङ्कार महाशय की पाठशाला मे संस्कृत पढने का निश्चय कर लिया और न्यायालङ्कार महाशय भी इस पर राजी हो गये। किन्तु जब ठाकुरदास ने देखा कि संस्कृत पढने मे बहुत समय लगता है और शीघ्र धनोपार्जन की कोई आशा नहीं होती तब उन्होने अपना विचार बदल दिया। एक ओर विद्या प्राप्त करने की प्रबल आकाक्षा थी और दूसरी ओर असहाय माता और भाई-बहनो का अन्नकष्ट मिटाने की प्रबल उत्तेजना थी। अन्त को ठाकुरदास ने यही निश्चय किया कि थोडे दिनो मे कोई अर्थकरी विद्या सीख कर माता का दु ख दूर करना चाहिए।

उस समय साधारण अँगरेजी जानने से सौदागर अँगरेजो के आफिसो मे सहज ही नौकरी मिल जाती थी। सब ने ठाकुरदास को अँगरेजी पढने की ही सलाह दी। किन्तु आज कल की तरह उस समय अँगरेजी पढने का सामान या सुभीता नही था। पढने की पुस्तके और पढाने वाले आदमी भी न थे। उस समय आज कल की तरह महल्ले महल्ले और गाँव गाँव मे स्कूल भी नहीं थे। साहबो के आगे मन का भाव व्यक्त करने के समय अँगरेजी पढे हिन्दुस्तानी लोग दो तीन विशेष्य-पद या दो तीन क्रियापद एक जगह मिला कर मन का भाव व्यक्त करते थे। साहब लोग किसी तरह मतलब समझ लेते थे। बहुत लोग तो मन का भाव व्यक्त करते समय कुछ अँगरेजी

और कुछ हिन्दी के साथ इशारों से काम लेते थे। कोई आदमी अगर अच्छे अँगरेजीदाँ होने का प्रशंसापत्र पाता था तो उसकी योग्यता हजार दो हजार अँगरेजी के शब्द कण्ठस्थ कर लेने की ही होती थी। इतनी ही योग्यता में उस समय की अँगरेजी-शिक्षा समाप्त हो जाती थी। ठाकुरदास ने इसी तरह की अँगरेजी-शिक्षा के लिए तैयारी की। न्यायालङ्कार महाशय के एक मित्र काम चलाने भर की अँगरेजी जानते थे, वही न्यायालङ्कारजी के अनुरोध से ठाकुरदास को अँगरेजी सिखलाने लगे। वे भद्रपुरुष दिन भर अपने काम से घर के बाहर रहते और दिन भर के बाद शाम को अवकाश मिलने पर ठाकुरदास को पढ़ाते थे।

ठाकुरदास उन्हीं भद्रपुरुष के घर जाकर बहुत रात तक परिश्रम करके अँगरेजी सीखने लगे। कुछ दिन बीतने पर एक दिन सन्ध्या के समय उन भद्रपुरुष ने ठाकुरदास का चेहरा सूखा और उदास देख कर उनसे पूछा कि "ठाकुरदास, तुम रोगियों की तरह दिन दिन दुबले क्यों होते जाते हो?" ठाकुरदास कुछ भी उत्तर न दे सके, चुपचाप आँसू बहाने लगे। उन सहृदय सज्जन के बहुत कुछ कहने सुनने पर ठाकुरदास ने कहा—"महाशय, जब से अँगरेजी पढ़ने लगा हूँ तब से एक ही बार भोजन करता हूँ। न्यायालङ्कार महाशय के यहाँ सन्ध्या के बाद ही सब लोग भोजन कर लेते हैं। मैं जब पढ़ कर घर जाता हूँ तब सब लोग भोजन करके सो जाते हैं। लाचार रात को मैं वैसे ही सो रहता हूँ। इसी से मैं दुबला होता जाता हूँ"। उक्त शिक्षक महाशय के एक दयालु सम्बन्धी भी वहाँ पर उपस्थित थे। उन्होंने इस विद्या-प्रेमी बालक के क्लेश की बात सुन कर अत्यन्त दुःखित होकर कहा—"देखो ठाकुरदास, तुम्हारा वहाँ रहना ठीक नहीं है। अगर तुम अपने हाथ बना कर खा सको तो

मैं तुमको अपने यहां रख सकता हूँ"। ठाकुरदास इस प्रस्ताव पर चट राजी हो गये। ठाकुरदास दूसरे ही दिन उन भद्रपुरुष के घर चले गये और दोनों वक्त भोजन करने का ठिकाना हो जाने से कुछ निश्चिन्त होकर लिखने पढ़ने लगे। किन्तु ठाकुरदास को आश्रय देने वाले वे भद्रपुरुष जैसे सदाशय और सज्जन थे वैसे धनी नहीं थे। उनकी भी आर्थिक अवस्था अच्छी न होने के कारण कभी कभी ठाकुरदास को निराहार ही रह जाना पड़ता था। किन्तु उनके स्नेह, ममता और मीठी बातों के आगे ठाकुरदास उस कष्ट को कुछ नहीं समझते थे। ये भद्रपुरुष दलाली का काम करते थे। दलाली की आय का कुछ ठीक नहीं होता। एकाएक उनकी आमदनी इतनी कम हो गई कि निर्वाह होना कठिन हो गया। वह सामान्य धनो-पार्जन के लिए दिन भर बाजार घूमते थे। फिर भी सन्ध्या के समय कभी कुछ लेकर और कभी खाली हाथ घर आते थे। जिस दिन कुछ लाते थे उस दिन दोनों आदमी दिन भर के बाद रात को भोजन करते थे और जिस दिन कुछ नहीं मिलता था उस दिन निराहार रह जाते थे। सच है, जहां जाय भूखा वहां पड़े सूखा। ठाकुरदास के पास एक छोटी सी पीतल की थाली और एक लोटा था। एक दिन इन्होंने सोचा कि इन दोनों बर्तनों को बेच डालना चाहिए। जो इनके दाम मिलेंगे उनसे जिस दिन कुछ खाने को नहीं मिलेगा उस दिन कुछ चबेना चबा कर ही गुजर करूँगा। यह सोच कर ठाकुरदास ठठेरे के यहां उन दोनों बर्तनों को लेकर गये। सभी ठठेरों ने इनके हाथ से बर्तन लेना मंजूर नहीं किया। उन्होंने कहा—"हम अनजान आदमी के हाथ से पुराने बर्तन नहीं ले सकते। क्या जाने ये बर्तन कैसे हों"। जब किसी दूकानदार ने बर्तन नहीं खरीदे तब ठाकुरदास लाचार

होकर अपने डेरे पर लौट आये। उस दिन भी कुछ भोजन नहीं हुआ।

और एक दिन दोपहर को भूक के मारे बालक ठाकुरदास से रहा नहीं गया। किस तरह भूक की ज्वाला मिटे, इसी चिन्ता से व्याकुल होकर ठाकुरदास घर के बाहर निकल कर घूमने लगे। घूमते घूमते वे बडे बाजार से ठनठनिया तक चले गये। पर खाने का कुछ ठीक नहीं लगा। भूक के मारे ठाकुरदास को चक्कर सा आ गया। इसी समय वे एक दूकान के सामने आकर खडे हो गये। उस दूकान पर एक अधेड विधवा स्त्री लैया बेच रही थी। उस विधवा ने ठाकुरदास को यों खडे देख कर पूछा—"भैया, खडे क्यों हो?" ठाकुरदास ने पीने के लिए थोडा सा पानी माँगा। उस विधवा ने ठाकुरदास को आदर और स्नेह के साथ बिठलाया और पानी ले आई। ब्राह्मण के लडके को केवल जल देना उचित न समझ कर उसने थोडी सी लैया भी दी। ठाकुरदास ने जिस ढँग से लैया चबाई उसे देख कर वह विधवा समझ गई कि आज इस बालक ने कुछ भी भोजन नहीं किया। तब उस स्त्री ने कहा—"भैया, आज जान पडता है, तुमने कुछ भी भोजन नहीं किया"। ठाकुरदास ने कहा—"मैया, आज मैंने अभी तक कुछ भी नहीं खाया"। तब उस स्त्री ने पास की अहीर की दूकान से थोडा सा दही लाकर दिया। भोजन के उपरान्त ठाकुरदास के मुख से उनका सारा हाल सुन कर उस दयामयी स्त्री ने विशेष आग्रह करके कहा कि "जिस दिन तुम्हारे भोजन का सुभीता न हो उस दिन तुम मेरे यहाँ आकर भोजन कर जाना"। इस विधवा ने केवल अनुरोध ही नहीं किया बल्कि बालक ठाकुरदास से इस बात की प्रतिज्ञा भी करा ली। इस सम्बन्ध में विद्यासागर महाशय ने निज-रचित असम्पूर्ण बाल्य-चरित्र में एक जगह पर लिखा है कि "पिताजी

के मुख से इस हृदयविदारक घटना का हाल सुन कर मेरे हृदय में दुःसह दुःख की आग सी जल उठी। स्त्री-जाति के ऊपर मुझे बड़ी ही भक्ति हो आई। इस दूकान का मालिक अगर कोई मर्द होता तो वह भूखे बालक ठाकुरदास पर कभी ऐसी दया नहीं दिखा सकता। जिस दिन ठाकुरदास को भोजन नहीं मिलता था उस दिन वह इसी दया-मयी विधवा की दूकान पर आकर भोजन कर जाते थे"। जिसके जीवित रहने की आवश्यकता होती है, जिसके द्वारा संसार का कल्याण होनेवाला होता है उसकी विधाता ऐसे दुःख और कष्ट में भी रक्षा करते हैं। जो व्यक्ति ऐसे दुःख-दारिद्र्य में पड़ कर भी सत्पथ में चलने की चेष्टा करता है उसे विधाता सब सुखों का अधिकारी बना कर अपनी महिमा प्रकट करते हैं। यह विधाता का ही विधान है कि ठाकुरदास विद्यासागर ऐसा सुपुत्र पाकर संसार में अमर हो गये।

इस प्रकार के असीम कष्ट में जब ठाकुरदास के दिन बीतने लगे तब वे अक्सर अपने आश्रयदाता से कहने लगे कि कोई सुयोग हो तो आप मुझे कहीं नौकर रखा दीजिए। मैं धर्म को साक्षी करके कहता हूँ कि जी-तोड़ परिश्रम करके अपने मालिक का काम करूँगा। जान जाने पर भी कभी मुझसे अधर्म न होगा। मेरे लिए आपको कभी कोई बात सुननी नहीं पड़ेगी। जिस समय ठाकुरदास आर्त्तभाव से ये सब बातें कहते थे उस समय आँसुओं से उनका वक्षःस्थल भीग जाता था। उनका यह कातरभाव देख कर आश्रयदाता को विशेष दया हो आई। उन्होंने ठाकुरदास को दो रुपये महीने की एक नौकरी खोज कर दिला दी। दो रुपये महीने की नौकरी पाने से ठाकुरदास को असीम आनन्द हुआ। वे पहले की तरह उन्हीं आश्रयदाता के घर में रह कर अनेकानेक कष्ट उठा कर गुजर करते हुए दो रुपये महीने की सहायता अपनी माता को देने

लगे। ठाकुरदास बुद्धिमान्, दृढचित्त और कार्य-कुशल आदमी थे। जहां जब उन्होने नौकरी की वहां उनका मालिक उनके काम और चाल-चलन से खुश ही रहा।

मैंने स्वय विद्यासागर महाशय के मुख से सुना है कि जब उनके पिताजी को दो रुपये महीने की नौकरी मिली थी उस समय घर मे आनन्दोत्सव मनाया गया था। दो रुपये महीने की नौकरी होने की खबर पा कर घर के सब लोग मारे खुशी के फूले नहीं समाते थे। दो तीन वर्ष मे ही ठाकुरदास अपने परिश्रमी होने के कारण दो रुपये की जगह पाँच रुपये का महीना पाने लगे। अब उनकी माता और भाई-बहनो का अन्नकष्ट और भी कम हो जाने के कारण वे और भी अधिक मन लगाकर काम करने लगे।

उस समय दो रुपये महीने का नौकरी पर खुशी मनाना कुछ आश्चर्य नहीं। उस समय आठ दस आने के एक मन चावल मिलते थे। एक रुपये का एक मन दूध मिलता था। साग-सब्जी तरकारी खरीदना नहीं पडता था। गरीब आदमियो को रुपया देखने को नहीं मिलता था और उसकी उन्हे कुछ विशेप आवश्यकता भी न थी। बिना रुपये के ही उनका गुजर होता था। भारत का अभाग्य और हमारी बदनसीबी कि ऐसे सुख के दिन सदा के लिए हमसे विदा हो गये।

इसी समय विद्यासागर महाशय के पिता रामजय तर्कभूषण घर लौट आये। वे पहले बनमालिपुर मे आये। वहां स्त्री और पुत्र-कन्याओ को न देख कर वीरसिंह गाँव मे पहुँचे। यहां आकर पहले उन्होने किसी को अपना परिचय नहीं दिया। छिपे तौर से भेस बदले हुए वे अपने परिवार की अवस्था देखने लगे। सबसे पहले उनकी छोटी कन्या अन्नपूर्णा ने अपने पिता को पहचाना और "बप्पा बप्पा"

कह कर चिल्लाने लगी। अब घर के सब लोगो ने उनको पहचान लिया। उन्होंने भी अपना परिचय दिया और घर में गये। कई दिन वीरसिंह में रह कर उन्होने स्त्री-पुत्र-कन्या-सहित वनमालीपुर जाने का विचार किया। किन्तु स्त्री से अपने भाइयो के कुव्यवहार की बात सुन कर उन्हें बड़ा दुःख हुआ और अपना विचार बदल कर उन्होंने वीरसिंह में ही रहना निश्चित कर लिया। इस तरह वनमालीपुर से वीरसिंह मे विद्यासागर के पूर्व-पुरुष का निवास हुआ।

तर्कभूषण महाशय ने कई दिन घर मे रह कर ठाकुरदास को देखने के लिए कलकत्ते की यात्रा की। ठाकुरदास के आश्रयदाता के मुख से ठाकुरदास के कष्ट-सहिष्णुता और न्यायपरता आदि गुणो की प्रशसा सुन कर उन्हे बड़ा आनन्द हुआ। बड़े बाजार में भागवत-चरणसिंह नामक एक धनी आदमी रहते थे। इनसे और ठाकुरदास के पिता से अच्छी तरह जान-पहचान थी। सिंह महाशय अत्यन्त दयालु और धार्मिक पुरुष थे। तर्कभूषणजी के मुख से उनके देश-त्याग और अनेक देश घूमने तथा अनेक तीर्थ कर आने का वृत्तान्त सुन कर वे बहुत ही खुश हुए। उन्होंने ठाकुरदास को अपने यहाँ रखने के लिए तर्कभूषणजी से बहुत कुछ अनुरोध किया। पिता की आज्ञा से ठाकुरदास सिंहजी के यहाँ रहने लगे। यहाँ दोनो वक्त पेट भर कर भोजन मिलने लगा। यहीं से विद्यासागर महाशय के पिता के सुख और सुविधा का सूत्रपात समझना चाहिए। सिंह महाशय के यहाँ केवल भोजन का ही सुभीता नहीं हुआ, उनकी सिफारिश से ठाकुरदास को आठ रुपये महीने की एक नौकरी भी मिल गई। ठाकुरदास का वेतन बढ़ने की खबर पाकर उनकी माता दुर्गादेवी को असीम आनन्द हुआ।

इस समय ठाकुरदास की अवस्था तेईस चौबीस वर्ष की होगी। तर्कभूषण महाशय ने पुत्र का ब्याह करना चाहा। गोघाटनिवासी

रामकान्त तर्कवागीश की तीसरी कन्या भगवती देवी के साथ उनका व्याह हो गया । साक्षात् अन्नपूर्णा भगवती देवी के गर्भ से ही विद्यासागरजी का जन्म हुआ । भगवती देवी के पिता तर्कवागीश महाशय एक सात्त्विक प्रकृति के आदमी थे । धर्मचिन्ता, धर्म की आलोचना और साधन-भजन में ही वे सदा लगे रहते थे । धनोपार्जन के कामों में मन लगाना और ससार-सुख भोग करना तुच्छ समझ कर वे कभी इधर ध्यान ही नहीं देते थे । वे बहुत दिनो तक शवसाधना करते करते अन्त को पागल हो गये । तब उनकी स्त्री गङ्गा देवी लक्ष्मी और भगवती नाम की दोनो कन्याओ को साथ लेकर पागल स्वामी सहित पिता के घर जाकर रहने लगीं । भगवती देवी लडकपन से ही मामा के घर रहीं और पलीं । भगवती के मामा एक आदर्श हिन्दू-गृहस्थ थे । भगवती देवी का चरित्र भी वैसा ही था । भगवती के नाना पञ्चानन विद्यावागीश महाशय के न रहने पर उनके बडे पुत्र राधामोहन विद्याभूषण महाशय ने अन्यान्य भाइयो और बहनो के भरण-पोषण का भार अपने ऊपर लेकर अपने सुपुत्र होने का परिचय दिया । यह परिवार इस बात का आदर्श माना जा सकता है कि हिन्दुओ का भरापुरा परिवार किस तरह एक ही मे सुख से रह सकता है । विद्यासागरजी ने निजरचित छोटे से जीवनचरित के शेष अश मे लिखा है कि—"साधारणत देखा जाता है कि हिन्दुओ के यहाँ एकान्नवर्त्ती परिवारो मे बहुत दिन तक हेल-मेल नहीं रहता । जो उस परिवार का सिर-धरा होता है उसके बाल-बच्चे जैसे सुख से रहते हैं वैसा सुख अन्य भाइयो के बाल-बच्चों को नसीब नहीं होता । इस कारण थोडे ही दिनो में भाई भाई में मनमुटाव हो जाता है । अन्त को एक दूसरे का मुख देखना भी नहीं चाहता और वे जुदे हो जाते हैं। किन्तु यहाँ वह बात न थी । सौजन्य और मनुष्यत्व में चारो भाई

समान थे । इस कारण कभी किसी से किसी की कहासुनी नहीं हुई। अपने परिवार की कौन कहे, बहनो और बहनो के लडके-लडकियो तक से वे दूसरा वर्ताव नहीं रखते थे। उनकी बहनो की लडकियाँ लडकी-लडको सहित मामा के घर जाकर जैसे सुख और आदर से रहती थीं वैसा सुख और आदर अपने बाप के भी घर लडकियो को नहीं मिलता।

"इस घर मे अतिथि-सेवा और अभ्यागत का आदर जैसे यत्न और श्रद्धा के साथ होता था वैसा अन्यत्र नहीं हो सकता। बात यह थी कि इस तरफ इस परिवार की जैसी प्रतिपत्ति और प्रतिष्ठा थी वैसी और किसी की न थी। कभी किसी ने यह देखा या सुना नहीं कि भोजन के लिए जाकर कभी कोई आदमी राधामोहन विद्याभूषणजी के घर से विमुख लौटा हो। मैंने अपनी आँखो देखा है कि चाहे जिस अवस्था के और चाहे जितने आदमी हो, विद्याभूषणजी के घर पर जाने से सभी का आदर-सत्कार हुआ है, अतिथिसेवा मे कुछ भी त्रुटि नहीं हुई।

"विद्याभूषण महाशय जब जीवित थे उस समय अपने गाँव मे और आस-पास के गावो मे इस मुखोपाध्याय-परिवार का असीम आधिपत्य था। इन सब गाँवो के आदमी विद्याभूषणजी की आज्ञा को शिरोधार्य समझते थे। विद्याभूषणजी इन गावो के लोगो के आपस के झगडो का निपटारा, उनको विपत्ति से छुडाना और सब तरह की सहायता पहुँचाना ही अपने जीवन का प्रधान उद्देश्य समझते थे। उनके पास बहुत सा धन आया, पर उन्होने न उस धन को जमा किया और न केवल अपने परिवार को सुख पहुँचाने मे लगाया। उन्होंने सारा धन अन्न बाँटने और लोगो को सहायता पहुँचाने मे ही खर्च किया। सच तो यह है कि प्रातःस्मरणीय विद्याभूषणजी के

समान निष्कपट, परोपकारी और क्षमताशाली पुरुष प्राय नहीं देख पडते।

"राधामोहन विद्याभूषण और उनके परिवार ने हम लोगो का जैसा उपकार किया है उसका बदला चुकाना सर्वथा असम्भव है। मुझे जब ज्ञान हो आया था तब की बात है कि मेरी माताजी जब मामा के घर जाती थीं तब पांच पांच छ छ महीने वहाँ रहती थीं और एक दिन के लिए भी हम लोगो के स्नेह, यत्न और आदर मे त्रुटि नहीं होती थी। भाजियो और उनके लडकी-लडको का इतना आदर और स्नेह सब जगह नहीं देखने को मिल सकता। बडी भाजी के मर जाने पर उनका एक वर्ष का बालक बीस वर्ष की अवस्था तक इस परिवार मे बडे स्नेह और आदर से पाला गया।"

आत्मीय स्वजनो की सेवा, असमर्थ जाति वालो का भरण-पोषण, मृत आत्मीय स्वजनो के अनाथ और निराश्रय लडकी-लडको का लालन-पालन ही इस पराधीन प्राणहीन बंग-समाज की परमसम्पत्ति और अमूल्य धन है। विद्यासागर महाशय की लेखनी से निकले हुए ऊपर के कई अवतरण वैसे ही आदर्श हिन्दू-गृह का सच्चा चित्र अङ्कित करने वाले हैं। ऐसा भी एक समय था जब लोग केवल अपने या अपने परिवार की सुखसमृद्धि-वृद्धि के लिए विषय-सम्पत्ति का सञ्चय और धनोपार्जन नहीं करते थे। उससे स्वजनो और अन्य दस आदमियो को सुख पहुँचाना ही वे अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। उस समय के लोग दस आदमियो का सुख बढा कर अपने को कृतार्थ मानते थे। इसका कारण यह था कि वे लोग अपने को सुखी बनाने के बदले अन्य दस आदमियो की सेवा करना ही अपना धर्म समझते थे। धर्म समझ कर धार्मिक लोग ऐसे सत्कार्य किया करते थे। इस समय वह धर्मबुद्धि बदल गई है। आज कल के लोग ऐसे धर्म-कर्मो

के बदले अपने को सुख पहुँचाना ही परम पुरुषार्थ समझते हैं। यही कारण है कि इस समय ऐसा आदर्श हिन्दू-परिवार और राधा-मोहन के समान सहृदय परोपकारी लोग बहुत कम देख पड़ते हैं।

उस समय एक ओर जैसे थोड़ी आमदनी में गुज़र होता था और थोड़े खर्च में लोगों का प्रतिपालन किया जा सकता था वैसे ही दूसरी ओर सम्पत्तिशाली लोगों को और उनके परिवार के आदमियों को आज कल की ऐसी सभ्यतासङ्गत प्रबल भोगवासना भी नहीं थी। उस समय के धनी लोगों के यहाँ भी आज कल के मध्यवित्त परिवारों की अपेक्षा अधिक ऐश-आराम का सामान या भड़कीले कपड़े और गहने नहीं रहते थे। अनेक स्त्रियाँ दो-चार चाँदी के गहने पाकर ही अपने को परम भाग्यशालिनी समझती थीं। उस समय के मर्द लोग जैसे दस आदमियों को रोटी देने में सुखी होते थे वैसे ही स्त्रियाँ भी सावित्री ऐसी पतिव्रता और सीता ऐसी पति के साथ कष्ट सहने वाली बन सकने में ही अपने को धन्य समझती थीं। उस समय की कुलकामिनियाँ थोड़े में ही सन्तुष्ट रहती थीं, इसी से बङ्गाल में घर घर सुख और शान्ति विराजमान थी। विपत्तिग्रस्त आत्मीय स्वजन लोग सम्पन्न आत्मीय के घर में आश्रय पाकर किसी प्रकार कुण्ठित नहीं होते थे। विद्यासागरजी अपनी माता के मामा के घर में हिन्दू-परिवार का ऐसा उच्च आदर्श देख कर भी एकान्नवर्त्ती परिवार की प्रथा के घोर विरोधी थे। वे कहते थे कि जहाँ पुरुष स्त्री के सम्पूर्ण अधीन हैं वहाँ भाई भाई में मेल रह ही नहीं सकता। ऐसी अवस्था में एकान्नवर्त्ती परिवार की प्रथा को सुरक्षित रखने की चेष्टा बिल्कुल वृथा है। जो लोग दूर हैं उन्हें एकत्र करके अशान्ति की आग में जलाना किसी तरह उचित नहीं। उसकी अपेक्षा, जो लोग एकत्र हैं उनमें किसी तरह का मनोमालिन्य पैदा होने के पहले ही उनका अलग

अलग हो जाना अच्छा है। ऐसा होने से सगा भाई सगे भाई का शत्रु न होगा। चिरकाल तक सद्भाव और शान्ति सुरक्षित रहेगी। सुखमय समय मे धन-लाभ होने से उसके द्वारा अपने सगे भाई, उसके लडकी-लडके और अन्यान्य स्वजनो का हित किया जा सकता है। किन्तु अशान्तिपूर्ण गृहस्थी मे लाख रुपये खर्च कर भी किसी की भलाई या उपकार नहीं किया जा सकता। इसी कारण विद्यासागरजी हमेशा इस प्रथा के विरोधी रहे।

विद्यासागर के बाबा रामजय तर्कभूषण बड़े तेजस्वी और स्वाधीनचेता पुरुष थे। वे किसी के आगे सिर झुकाना या किसी के किये अपमान को चुपचाप सह लेना जानते ही न थे। वे सदा अपनी इच्छा के अनुसार चलते रहे। उन्होंने कभी किसी का बेजा दबाव नहीं माना। ऐसी नीच वृत्ति से मरने को वे अच्छा समझते थे। परन्तु इसके साथ ही वह निष्कपट और दयालु थे। छोटे बड़े सब से समान स्नेह से मिलते और बातचीत करते थे। जो लोग कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं उनसे उन्हे हार्दिक घृणा थी। वे बड़े ही मुँहफट थे। किसी के खुश या नाराज होने की पर्वा न करके वे अपनी राय जाहिर कर देते थे। वे अच्छे आचरण वाले नीचो को उच्च और बुरे आचरण वाले उच्चों को नीच मानते थे। क्रोध की बात पर उन्हे क्रोध भी आ जाता था। पर क्रोध मे कभी किसी का कुछ अनिष्ट उन्होने नहीं किया।

उनके शरीर मे बल भी बहुत था। एक बार मेदिनीपुर जाने के रास्ते मे एक भालू ने इन पर चोट की। उसकी चोट से जख्मी होकर भी उन्होंने उसे मार डाला और वैसे ही खून से तर मेदिनीपुर पहुँचे। वहां कुछ दिन मांदे पड़े रहे। फिर आरोग्य होकर घर आये। उस समय प्राय सभी जगह चोरो और डाकुओ का भय रहता था।

बहुत से लोग अकेले घर से निकल कर राह में डाकुओं के हाथों मारे जाते थे। इस कारण सब लोग रामजय को मना किया करते थे कि अकेले कहीं जाया न करें। लेकिन वे किसी का कहना न मानते थे। एक लोहे की छड हाथ में लेकर अकेले ही सर्वत्र आया जाया करते थे। वे जैसे बली थे वैसे ही साहसी भी थे। वे एक बार भोजन करते थे, मांस नहीं खाते थे। वे एक निष्ठावान् कर्मकाण्डी निरीह ब्राह्मण थे। इसी से सब लोग ऋषियों और योगियों के समान उनका आदर और भक्ति करते थे। जब वे वनमालीपुर से छिप कर चल दिये थे तब उस यात्रा में, आठ वर्ष तक, द्वारका, ज्वालामुखी, बदरिकाश्रम और अन्यान्य तीर्थों में घूमते रहे। अन्त को स्वप्न देख कर घर आये और मरते दम तक पारिवारिक सुख भोगते हुए घर में ही रहे।

जिन घटनाओं के समावेश से या जिन कारणों के मौजूद रहने से मानवजीवन की सच्ची स्फूर्त्ति होती है, जिन अवस्थाओं के भीतर पडने से या जिन सीखने लायक दृष्टान्तों के सामने रहने से मनुष्य आगे चल कर उन्नति के सोपान पर पैर रख सकता है वे कारण और दृष्टान्त ईश्वरचन्द्र को सहज ही प्राप्त थे। उन्होंने अपने पिता और पितामह से दृढता, न्यायपरायणता, अध्यवसाय, श्रमशीलता, आत्म-निर्भर और निर्भीकता आदि गुण प्राप्त किये थे। यह सच है कि उनके पिता और पितामह उन्हें कोई सांसारिक सम्पत्ति नहीं दे गये, किन्तु वे जो कुछ दे गये उसी ने ईश्वरचन्द्र को विद्यासागर और दयासागर बना दिया। विद्यासागर ने दयादाक्षिण्य, परदुःखकातरता और परोपकार का भाव अपनी माता की ननिहाल से पाया था। अपनी माता की ननिहाल में जिस दया का चित्र देख कर वह और उनकी माता मुग्ध थीं और वह स्वयं जिसका वर्णन कर गये हैं वहीं

उनके मनुष्यत्व पाने का मूलमन्त्र है। उसी मन्त्र से सिद्ध होकर वह दया के सागर बन सके। पिता और माता के वश के इन उभयविध भावो ने मिल कर उन्हें एक विचित्र पुरुष बना दिया था। एक ओर अन्याय के ऊपर घोर घृणा और दूसरी ओर दीनदुखियो पर पूर्ण दया, ये दोनो भाव उन्हे पिता और माता के घराने से ही मिले थे। पिता की ओर से पुरुष-भाव की तीक्ष्ण रेखा और माता की ओर से दुखियो का दुख मिटाने के लिए कोमलता की सुमिष्ट धारा ने परस्पर मिल कर विद्यासागर दयासागर का चित्र अङ्कित किया है। उनके जीवनचरित की सुदृढ नीव इसी कोमलतामय पौरुष-भूमि के ऊपर स्थापित है। जैसे सुकठिन पथरीले पहाड से मीठे जल की धारा निकल कर समतल खेतो को सींचती है—उपजाऊ बनाती है, वैसे ही विद्यासागर के पितृकुल की न्यायनिष्ठा और दृढता के पहाड पर उनके मातृकुल की देवदुर्लभ लोकसेवामयी मन्दाकिनी ने वह कर वग-समाज को जानदार और हरा भरा बनाया है। आप जितना ही विद्यासागर महाशय का चरित्र पढते चलेगे उतना ही उसमें आपको उनके पिता, पितामह और माता, और मामा के चरित्र का आभास देखने को मिलेगा।

तीसरा अध्याय ।

वचपन ।

जब से ईश्वरचन्द्र का जन्म हुआ तब से ठाकुरदास के परिवार को सब तरह के सुयोग और सुख प्राप्त होने लगे। इस कारण सब लोग बालक को स्नेह की दृष्टि से देखते थे। बहुत दुलारे होने के कारण ईश्वरचन्द्र की अदम्य प्रकृति और भी स्फूर्ति को प्राप्त हुई। इनके उत्पात से घर वालो और परोसियो के नाक मे दम होने लगा। यह देख कर बालक ईश्वरचन्द्र को गाँव की पाठशाला मे पढने के लिए बिठलाने की सलाह ठहरी। उस समय वीरसिंह गाँव मे कालीकान्त चट्टोपाध्याय नामक एक गुरुजी ने पाठशाला खोली थी। यह गुरुजी स्नेह-पूर्वक बालको को लिखाते पढाते थे और विशेष गुण यह था कि थोडे समय मे अधिक शिक्षा देते थे। इस कारण गाँव के अनेक गुरुओ मे इन्हीं की प्रतिष्ठा और प्रतिपत्ति अधिक थी। शिक्षक-शिरोमणि पण्डितवर विद्यासागरजी ने लिखा है कि "वास्तव मे पूज्यपाद कालीकान्त चट्टोपाध्याय महाशय गुरुओ के आदर्श थे।" बालको को अपने पुत्र की तरह स्नेह की दृष्टि से देख कर थोडे समय मे बहुत शिक्षा दे सकना ही सच्चे शिक्षक का लक्षण है। कालीकान्तजी मे यह विलक्षण शक्ति यथेष्ट थी और इसी कारण विद्यासागर ऐसे शिष्य ने उनकी

ऐसी प्रशसा की । पांच वर्ष की अवस्था में ईश्वरचन्द्र इस पाठशाला मे पढने बैठे थे ।

पाठशाला मे एक वर्ष पढने के वाद ईश्वरचन्द्र वीमार हो गये । पहले कुछ दिन वुखार आया, फिर पेट की वीमारी हुई, उसके वाद ताप-तिल्ली हो गई । इस रोग मे वे वहुत ही जीर्णशीर्ण हो चले । वीमारी इतनी वढी कि ईश्वरचन्द्र के वचने की आशा जाती रही । छ महीने तक वीमार रहने के वाद जव आरोग्य होने की कोई सम्भावना नहीं रही तव राधामोहन विद्याभूपणजी ईश्वरचन्द्र को उनकी माता सहित अपने घर ले गये । उनके गाँव के पास कोटारी गाँव मे वहुत से विज्ञ वैद्यराज रहते थे । रामगोपाल नामक एक वृद्ध अनुभवी वैद्य की चिकित्सा से छ महीने मे ईश्वरचन्द्र विलकुल आरोग्य हो गये । उसके वाद पढने के लिए फिर वीरसिंह मे आये । विद्यासागर ने लिखा है कि इस वीमारी की हालत मे वहाँ उनकी वहुत ही सेवा हुई ।

आरोग्य होने के वाद विद्यासागर फिर आठ वर्ष की अवस्था तक कालीकान्त की पाठशाला मे ही विद्याभ्यास करते रहे । इनकी मेधाशक्ति, तीक्ष्ण-वुद्धि और पढने मे परिश्रम देख कर इनके गुरु इन पर वडा स्नेह रखते थे । ईश्वरचन्द्र अपने गुरु के प्रिय विद्यार्थी थे । गुरुजी सवसे वढ कर इनका आदर करते थे । इन तीन वर्षों मे ईश्वरचन्द्र ने पाठशाला की शिक्षा एक प्रकार से समाप्त कर दी ।

इस आठ वर्ष की अवस्था तक ईश्वरचन्द्र की वाल-सुलभ चपलता कुछ भी कम नहीं हुई । किसी के द्वार पर झाडे फिर आना या पेशाव कर आना तो उनके वायें हाथ का खेल था । जिसके द्वार पर ईश्वरचन्द्र ऐसा उपद्रव कर आते थे उसके घर की वहुएँ वालक की इस प्रकार की दुष्टता से खीझकर अगर पकडने या मारने चलती थीं

तो घर की बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ ईश्वरचन्द्र के महापुरुष होने की बात, जिसे उन्होंने भवानन्द ज्योतिषी के मुख से सुना था, कहकर उन्हे बरजती थीं। विद्यासागरजी के मुख से मैंने सुना है कि वे बचपन मे बड़े ही उपद्रवी थे। लोग कपड़े धोकर फैलाते थे तो वह किसी तरह उन्हे अशुद्ध कर डालते थे। धान के खेत के पास चलते चलते कुछ कच्चे धान उखाड़ लेते और उसमे से कुछ खाकर सब इधर उधर फेंक देते थे। एक बार जौ की बाली उनके गले मे अटक गई थी, जिससे वह बिलकुल मृतप्राय हो गये थे। उनकी दादी ने उँगली डाल कर गले से बाली निकाली तब जान बची। इसी तरह और भी अनेक बार उपद्रव करने मे उन्हे अनेक कष्ट उठाने पड़े थे।

बहुत उपद्रवी होने पर भी लिखने-पढ़ने मे ईश्वरचन्द्र खूब मन लगाते थे। गुरुजी जो कुछ सिखलाते थे उसे बड़े ही आग्रह से थोड़े ही समय में वे सीख लेते थे। गुरुजी अक्सर तीसरे पहर और लड़को को विदा करके केवल ईश्वरचन्द्र को अपने पास रखते थे और बहुत सी बातें जबानी कण्ठस्थ कराते थे। अधिक रात हो जाती थी तो वे आप ईश्वरचन्द्र को गोद मे लेकर उनकी दादी के पास पहुँचा जाते थे। इसी समय गुरुजी ने एक दिन ईश्वरचन्द्र के पिता से कहा— "यहाँ की पाठशाला मे जो कुछ पढ़ाया जाता है सो सब ईश्वर ने पढ़ लिया। यह बहुत अच्छे अक्षर लिखता है। इसको कलकत्ते ले जाकर अँगरेजी की शिक्षा दिलाना अच्छा होगा। यह बालक जैसा मेधावी है, इसकी स्मृति-शक्ति जैसी प्रबल है उससे कहा जा सकता है कि यह जो कुछ सीखेगा उसीमे यथेष्ट पारदर्शी होगा।"

इसके कुछ दिन बाद ईश्वरचन्द्र के बाबा रामजय तर्कभूषण का स्वर्गवास हो गया। छियत्तर वर्ष की अवस्था मे अतीसार रोग से उनकी मृत्यु हुई। इसी अवसर पर ठाकुरदास को घर आना पड़ा।

पिता का कृत्य समाप्त करके ठाकुरदास कलकत्ते आये और अपने साथ ही ईश्वरचन्द्र को लेते आये। इनको साथ लाने का मुख्य उद्देश्य यह था कि पास रख कर अच्छी तरह लिखावें-पढावे। कलकत्ते आते समय इनके साथ गुरु कालीकान्त भी थे।

बालक ईश्वरचन्द्र ने वीरसिंह से कलकत्ते आते समय एक घटना द्वारा इस बात का परिचय दिया कि वह किसी समय तीक्ष्ण-बुद्धि-सम्पन्न और पण्डितशिरोमणि होगे। सियाखाला के निकट सालिखा की पक्की सडक पर पहुँच कर ईश्वरचन्द्र ने देखा कि सिल ऐसे एक एक पत्थर सडक मे कुछ कुछ फासले पर गडे हुए हैं। कौतूहलवश होकर बालक ने पिता से इसका मतलब पूछा। ठाकुरदास ने पुत्र की बात पर हँस कर कहा—"ये सिले नही हैं। इनको माइल-स्टोन कहते हैं"। तब ईश्वरचन्द्र ने कहा—"पिताजी, माइल-स्टोन किसे कहते हैं"? तब पिताजी ने पुत्र से कहा—"यह अँगरेजी का शब्द है। आधे कोस का एक मील होता है और स्टोन कहते हैं पत्थर को। मील मील के फासले पर इसी तरह का एक एक पत्थर गडा हुआ है। कलकत्ते से एक मील के फासले पर जो पत्थर है उसमे एक का अक खुदा हुआ है और इस पत्थर मे उन्नीस का अङ्क खुदा हुआ है। इसका मतलब यह हुआ कि कलकत्ता यहा से उन्नीस मील अर्थात् ९½ कोस है"। यह कह कर उन्होने बालक ईश्वरचन्द्र को वह पत्थर अच्छी तरह दिखला दिया। ईश्वरचन्द्र ने अकगणना के अनुसार अच्छी तरह देख कर पिता से कहा—"तो क्या यह अँगरेजी का एक और यह नौ है?" पिता ने कहा—"हाँ।" तब बालक ने मन ही मन यह सकल्प किया कि यहाँ से कलकत्ते तक पहुँचते पहुँचते अँगरेजी के अक पहचान लूँगा। उन्नीस से दस तक पहुँच कर ईश्वरचन्द्र ने पिता से कहा—"पिताजी, मैंने अँगरेजी के अक सीख लिये"। तब पिता ने परीक्षा

के तौर पर क्रमश नव, आठ और सात के अंक पूछे। ईश्वरचन्द्र इस परीक्षा में पास हो गये। मगर फिर भी ठाकुरदास को सन्देह ही बना रहा। उन्होंने सोचा कि नव के आगे आठ और आठ के आगे सात होते ही हैं। इसलिए अंकों को बिना पहचाने भी चालाक आदमी इस परीक्षा में पास हो सकता है। यह सन्देह दूर करने के अभिप्राय से ठाकुरदास ने छः का अंक न दिखा कर पाँच के अंक पर आ कर पुत्र से पूछा कि "तुम्हारे हिसाब से यह कै का अंक है" ? ईश्वरचन्द्र ने कहा—"पिताजी, यह तो छः का अंक होना चाहिए, लेकिन भूल से पाँच का अंक लिख दिया गया है"। ठाकुरदास ने पुलकित होकर पुत्र से कहा—"तुमने अँगरेजी के अंक सीख लिये। मैंने जानबूझ कर छः का पत्थर तुमको नहीं दिखलाया था"। बालक की ऐसी धारणा-शक्ति और बुद्धि-कौशल देख कर गुरु कालीकान्त बहुत ही सन्तुष्ट हुए और ईश्वरचन्द्र की ठोडी पकड़ कर आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा—"शाबास बेटा शाबास !" इसके बाद उन्होंने ठाकुरदास से कहा—"ईश्वर के लिखने-पढने का अच्छा प्रबन्ध करना। अगर यह बालक जीता-जागता रहेगा तो निस्सन्देह एक उद्भट विद्वान् और बुद्धिमान् होगा"। बालक ईश्वरचन्द्र पिता और गुरु के आनन्द को देख कर मन ही मन बहुत ही प्रसन्न हुए।

दूसरे दिन सवेरे (कलकत्ते में) ठाकुरदास जगद्दुर्लभ बाबू के कुछ अँगरेजी के "बिल" ठीक कर रहे थे। ईश्वरचन्द्र ने दम भर पास बैठ कर उस काम को देखा। उसके बाद अत्यन्त उतावली और उत्साह के साथ पिता की ओर देख कर उन्होने कहा—"पिताजी यह काम तो मैं भी कर सकता हूँ"। तब जगद्दुर्लभ बाबू ने विस्मित होकर पूछा—"ईश्वर, तुम क्या अँगरेजी जानते हो ?" ईश्वरचन्द्र ने पहले दिन की माइल-स्टोन वाली घटना का उल्लेख करके कहा—"मैं अँग-

रेजी के अङ्क सीख चुका हूँ। इसलिए विल मिला कर ठीक करने का काम आसानी से कर सकता हूँ"। तव जगद्दुर्लभ बाबू और ठाकुरदास ने कौतूहलवश होकर कई एक विल मिलाने के लिए ईश्वरचन्द्र को दिये। बालक ईश्वरचन्द्र इस परीक्षा मे भी पास हो गये। यह देख कर सबको बड़ा आनन्द हुआ। सब लोग इस बात पर जोर देने लगे कि ईश्वरचन्द्र के लिखने-पढने का विशेष प्रवन्ध होना चाहिए। ठाकुरदास ने कहा—"मैं ईश्वर को हिन्दूकालेज मे भर्ती कराना चाहता हूँ"। इस पर किसी किसी ने कहा—"आपकी आमदनी तो केवल दस रुपये महीना है। ऐसी अवस्था मे हिन्दूकालेज मे आप इसे कैसे पढा सकते हैं?" इस पर ठाकुरदास ने दृढ-प्रतिज्ञा-व्यञ्जक स्वर से कहा—"ईश्वर की पढाई मे पांच रुपये महीना खर्च करूँगा और पांच रुपये घर को भेजूँगा"।

इच्छा रहने पर भी धन न होने के कारण ठाकुरदास स्वय उच्च शिक्षा नहीं प्राप्त कर सके और इसके लिए उन्हे जन्म भर खेद रहा। ऐसी अवस्था मे अनेक कष्ट सह कर भी ईश्वरचन्द्र को अच्छी शिक्षा दिलाने का सकल्प करना उनके लिए स्वाभाविक ही था। ठाकुरदास ने ईश्वरचन्द्र को शिक्षा दिलाने में कुछ भी कसर नहीं रक्खी। बँगला सन् १२३५ के कार्त्तिक मास के अन्त मे ईश्वरचन्द्र पिता के साथ कलकत्ते आकर सिंह महाशय के घर मे रहने लगे। भागवतचरणसिंह इस समय मर चुके थे। उनके पुत्र जगद्दुर्लभसिंह घर के मालिक थे। उनकी अवस्था इस समय केवल पचीस वर्ष की थी। वे ठाकुरदास को चाचा कहते थे। इसी के अनुसार ईश्वरचन्द्र उन्हे दादा और उनकी बहनो को बडी दीदी और छोटी दीदी कहते थे।

बालक ईश्वरचन्द्र माता और दादी को छोड कर आये थे, इससे कभी कभी वे बहुत उद्विग्न हो उठते थे। किन्तु इस सिंह परिवार के

स्नेह और आदर के आगे उनको वह कष्ट और खेद भूल जाता था। विद्यासागर ने निज रचित जीवनचरित में एक जगह लिखा है कि "इस परिवार में जब तक मैं रहा तब तक एक दिन मुझे यह खयाल नहीं हुआ कि मैं किसी गैर के घर में हूँ। सभी मुझ पर स्नेह रखते थे। किन्तु छोटी दीदी राईमणि के अद्भुत स्नेह और सेवा को मैं कभी नहीं भूल सकता। उनके एकमात्र पुत्र गोपालचन्द्र घोष की और मेरी अवस्था बराबर ही होगी। पुत्र पर साधारणत माता का जितना स्नेह होता है उससे कहीं अधिक स्नेह गोपालचन्द्र पर उनकी माता का था। किन्तु मेरा यह हार्दिक दृढ विश्वास है कि वे पुत्र को जितना चाहती थीं उतना ही मुझे भी चाहती थीं। तात्पर्य यह कि स्नेह, दया, सौजन्य, निष्कपटता, सद्बुद्धि आदि सद्गुणों में राईमणि के बराबर स्त्री आज तक मैंने नहीं देखी। इस दयामयी स्त्री की सौम्य मूर्त्ति देवीमूर्त्ति की तरह मेरे हृदय-मन्दिर में सदा विराजमान रहेगी। प्रसग आ पडने पर इस स्त्री-रत्न की चर्चा चलने पर उनके अप्रतिम गुणों का वर्णन करते करते मेरी आँखों से आँसू बहने लगते हैं। बहुत लोग कहते हैं कि मैं स्त्री-जाति का पक्षपाती हूँ। मैं भी उनके इस कथन से सहमत हूँ। जिस व्यक्ति ने राईमणि की उस दया और स्नेह को देखा है और स्वय उस दया और स्नेह से लाभ उठाया है वह अगर स्त्री-जाति का पक्षपाती न हो तो मेरी समझ में उसके समान कृतघ्न और नीच इस पृथ्वी-मण्डल भर पर न होगा। मैं अपनी दादी को बहुत प्यारा और हिला हुआ था। कलकत्ते आने पर कुछ दिनों तक तो मैं उनके लिए बहुत ही व्यग्र रहा। कभी कभी उनकी याद आ जाने पर रोने लगता था। किन्तु दयामयी राईमणि के स्नेह और आदर से मेरा यह कष्ट बहुत कुछ कम हो गया था।"

स्त्री-जाति का सम्मान करना और उनके कल्याण के लिए मन-वाणी-काया से लगे रहना महात्माओ का एक विशेष लक्षण है। धर्मात्मा ख्रीष्ट पतिता स्त्रियो पर दया करते थे और उन्हे अपने साथ रहने देते थे। इसके लिए अनेक लोग उनकी निन्दा भी करते थे, पर वे उससे कभी कुण्ठित नहीं होते थे। सदा स्नेह-पूर्वक उनकी भलाई ही सोचा करते थे। धर्मवीर महम्मद ने मुसल्मानो मे बहु-विवाह की प्रथा के बहुल प्रचार को रोकने के लिए यथेष्ट चेष्टा की और इस प्रकार स्त्री-जाति के पक्ष का समर्थन कर गये हैं। महात्मा मनु अपने धर्म-शास्त्र मे स्त्री-जाति के प्रति विशेष आदर दिखा कर कुलाङ्गनाओ के पक्ष का समर्थन कर गये हैं। वे कहते हैं—

यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

जहाँ स्त्रियो का आदर, सम्मान और पूजन होता है वहाँ देवता रमते हैं। ऐसी शास्त्र-पूजित स्त्री-जाति के पक्ष-समर्थन मे महात्मा राममोहन ने अपना जीवन ही अर्पण कर दिया। उनके जीवन-चरित मे एक जगह पर लिखा है कि "वह उस बन्धु-विहीन (तिब्बत) देश में कभी कभी बिल्कुल बेख़ौफ होकर इस भयानक कुसंस्कार का प्रतिवाद करते थे। उस देश के मर्द इस धर्म-विरुद्ध कार्य के लिए उन पर अत्यन्त क्रोध करते और उन्हे दण्ड देने के लिए अग्रसर होते थे। किन्तु वे दयामयी स्त्रियो के विशेष स्नेह-पात्र थे। वे ही इन सब विपत्तियो से उनकी रक्षा करती थी। राजा राममोहनराय सदा से स्त्री-जाति के पक्षपाती थे। अपनी प्रकाशित पुस्तको मे, बन्धु-बान्धवो के निकट, स्वदेश या विदेश में सर्वत्र उन्होने नारी-जाति की महिमा गाई है। तिब्बत की स्त्रियो के सद्व्यवहार ने उनके तरुण-हृदय मे यह नारी-भक्ति का बीज बो दिया था। ❀ ❀ उन्होने स्वयं कहा था कि

तिब्बत की स्त्रियो के सस्नेह व्यवहार के कारण स्त्री-जाति के प्रति सदा उनकी श्रद्धा और कृतज्ञता बनी रहेगी।"

विद्यासागर भी बचपन में विदेश मे राईमणि सी स्त्री के मातृ-स्नेह का आश्रय पाकर स्त्री-जाति के चिरसुहृद् बन गये थे। उनके जीवन की आगे की घटनाओ की आलोचना करने से देख पडता है कि स्त्री-जाति का विशेप कल्याण करने के लिए ही उन्होंने जन्म लिया था। उन्होने जीवन का अधिकाश समय, आमदनी का अधिकाश धन और विद्या, बुद्धि और शास्त्र की आलोचना का सारा फल स्त्रियो के कल्याण मे लगा दिया है। बगाल के सामाजिक इतिहास मे इन अबलाबान्धव महात्मा का नाम सोने के अक्षरो से लिखा रहेगा।

ईश्वरचन्द्र को कलकत्ते लाने के साथ ही साथ ठाकुरदास की दो रुपये महीने की तरक्की हो गई। पहले आठ पाते थे, अब दस पाने लगे। जिस घर मे यह रहते थे उसके पास ही शिवचरण मल्लिक नामक एक धनी सुनार रहते थे। उनकी सदर बैठक मे एक पाठशाला थी। उसीमे महल्ले के लडके पढते लिखते थे। ईश्वरचन्द्र उसी पाठशाला मे बिठलाये गये। अगहन से माघ तक ईश्वरचन्द्र ने उस पाठशाला मे पढा। यहाँ पढाने वाले गुरु का नाम स्वरूपचन्द्रदास था। वे भी पढाने के काम मे बडे निपुण थे। वीरसिंह में और उसके बाद कलकत्ते मे तीन महीने पाठशाला मे पढ कर ईश्वरचन्द्र ने पाठशाला की पढाई समाप्त कर दी। इसके बाद ईश्वरचन्द्र को कहाँ पढाना चाहिए, इस पर विचार हो ही रहा था कि फागुन में ईश्वरचन्द्र के खूनी बवासीर उभर आया। उससे उन्हे बडा कष्ट होने लगा। इसी महल्ले के चिकित्सक दुर्गादास की चिकित्सा होने लगी। किन्तु रोग शान्त नहीं हुआ, बल्कि उलटा बढने लगा। कलकत्ते मे आरोग्य होने

की कम सम्भावना देख कर ठाकुरदास ने घर को खबर भेजी। ईश्वरचन्द्र की बीमारी की खबर पाते ही उनकी दादी ऐसी व्याकुल हुईं कि दम भर की भी देर न करके फौरन् कलकत्ते को चल पड़ीं। वे यथासमय कलकत्ते में आकर कई दिन रहीं और फिर बालक को साथ लेकर वीरसिंह चली आईं। देहात में आने से जल-वायु और स्थान बदल गया, माता और दादी के पास रहने को मिला, लड़कपन के साथी मिल गये। इन सब कारणों से एक ही सप्ताह में ईश्वरचन्द्र आरोग्य हो गये। शची नाम की एक ब्राह्मण-कन्या ने अपने खर्च से वीरसिंह के उत्तर भाग में एक भारी तालाब खुदवाया था। उस तालाब को लोग "शचीबामूनी" कहते थे। इसी शचीबामूनी के किनारे गाँव के लड़के खेलते थे। घर में रहने के समय ईश्वरचन्द्र साथी लड़कों के साथ वहीं खेलने जाया करते थे। उनके देहाती साथियों में दो एक बलशाली और लम्बे-चौड़े हाथ-पैर के थे। इन सबमें गदाधर पाल का नाम ही विशेष-रूप से उल्लेख-योग्य है। ईश्वरचन्द्र के सिवा और कोई साथी उसे परास्त नहीं कर सकता था। खेलते समय ईश्वरचन्द्र जब उसे पछाड़ते थे तब सब लड़के प्रसन्न होकर तालियाँ बजाते थे।

ठाकुरदास जेठ में फिर पुत्र को कलकत्ते ले आये। पहली बार जब कलकत्ते आये थे तो ईश्वरचन्द्र के लिए एक नौकर भी साथ लाये थे। कुछ दूर चलने पर जब ईश्वरचन्द्र थक जाते थे तब वह नौकर उन्हें कंधे पर ले चलता था। अबकी बार आते समय ठाकुरदास ने पुत्र से पूछा कि "देखो, अगर चल न सको तो एक आदमी साथ ले चलें।" ईश्वरचन्द्र ने लड़कपन के उत्साह में आकर कह दिया— "आदमी साथ लेने की कोई जरूरत नहीं है। मैं चला चलूँगा।" ईश्वरचन्द्र की बात पर विश्वास करके अबकी ठाकुरदास ने कोई आदमी

साथ नहीं लिया। पिता पुत्र दोनों कलकत्ते चले। माता की ननिहाल पातुल गांव तक (छ कोस का रास्ता) ईश्वरचन्द्र मजे में चले गये। उस दिन वहीं विश्राम हुआ।

सवेरे पातुल से चल कर तारकेश्वर के निकट रामनगर में पहुंच कर विश्राम करना था। आधे रास्ते में पहुँच कर पिता और पुत्र ने कुछ जलपान किया। वहां से चलने के समय ईश्वरचन्द्र ने पिता से कहा—"पिताजी, अब आगे मैं चल नहीं सकता। यह देखिए, मेरे पैर फूल गये हैं।" ठाकुरदास समझाने फुसलाने और डांटने पर भी बालक को आगे चला न सके। तरबूज ले देने का लोभ दिखाया, उससे भी कुछ फल न हुआ। डराने के लिए आप कुछ दूर अकेले ही आगे चले गये, पर इससे भी कुछ नहीं हुआ। लाचार लौट कर उन्होंने ईश्वरचन्द्र को कंधे पर चढाया और चले। कुछ दूर चलने पर वे भी थक गये। ठाकुरदास वैसे बली आदमी नहीं थे। थोडी देर में बोझा लेकर चलने की शक्ति नही रही। पर चलना जरूर था। कभी कंधे पर और कभी गोद में लेकर चलते थे। बीच बीच मे विश्राम भी करते जाते थे। इस तरह बडे कष्ट से सध्या के बाद मंजिल पर जाकर पहुँचे। ठाकुरदास पुत्र-सहित रामनगर मे बहन के यहां एक दिन रहे और दूसरे दिन फिर कलकत्ते को रवाना हुए। बैद्यवाटी से नाव पर सवार होकर कलकत्ते पहुँचे।

अबकी बार कलकत्ते आकर ठाकुरदास पुत्र को पढाने-लिखाने की नई व्यवस्था करने के लिए उत्सुक हो पडे। सब ईश्वरचन्द्र को अँगरेजी स्कूल मे भर्ती करा देने की सलाह देने लगे। किन्तु ठाकुरदास की इच्छा और ही कुछ थी। इस वंश के सभी पूर्व-पुरुष संस्कृत के प्रसिद्ध अध्यापक होते आये थे। गरीबी के कारण वे स्वय इस सम्मान के सुख से वञ्चित थे। इसीसे पुत्र को वे संस्कृत की शिक्षा

देना चाहते थे। उन्होंने अपने मन मे यह विचार कर रक्खा था कि ईश्वरचन्द्र को सस्कृत पढा कर घर मे एक पाठशाला खोल देंगे। उसमें गाँव के और आसपास के लडके सस्कृत-शिक्षा प्राप्त करेंगे। यही कारण था कि इष्ट-मित्रों की कोई सलाह उन्हे पसद न आती थी। उस समय ईश्वरचन्द्र की माता के मामा राधामोहन विद्याभूषण के चाचा के लडके मधुसूदन वाचस्पतिजी कलकत्ते के सस्कृत-कालेज मे पढ रहे थे। उन्हीं के उत्साह देने और सलाह से ठाकुरदास ने पुत्र को सस्कृत-कालेज मे भर्ती करा दिया।

चौथा अध्याय ।

विद्यालय में विद्यासागर ।



न् १८२६ की पहली जून को, नव वर्ष की अवस्था में, ईश्वरचन्द्र का नाम संस्कृत कालेज में लिखा दिया गया। ईश्वरचन्द्र कालेज में जाकर व्याकरण की तीसरी श्रेणी में पढ़ने लगे। इसके पहले उन्होंने कुछ भी संस्कृत नहीं पढ़ी थी। किन्तु वे भर्ती होने के दिन से ही अपनी श्रेणी में सब से श्रेष्ठ बालक समझे जाने लगे। हाली शहर के निकट-वर्ती कुमारहट्ट नामक गांव के रहने वाले गङ्गाधर तर्कवागीश तीसरी श्रेणी में पढ़ाते थे। वे विशेष रूप से आग्रह के साथ बालकों को शिक्षा देते थे। अपने काम में वे बड़े ही निपुण थे। छात्रों को पुत्र की तरह स्नेह से पढ़ाने के कारण उनकी खूब प्रसिद्धि थी। तर्कवागीश महाशय ईश्वरचन्द्र की स्मरणशक्ति, अध्यवसाय और विद्या पढ़ने का अनुराग देख कर इन पर विशेष दृष्टि रखते थे। इनको वे बहुत चाहते भी थे। कालेज में भर्ती होने के ७ महीने बाद जो परीक्षा होती है उसमें पास होकर ईश्वरचन्द्र ने पांच रुपये महीने की वृत्ति पाई। मधुसूदन वाचस्पति भी सदा ईश्वरचन्द्र को अपनी देखरेख में रखते थे। इनके पिता नित्य नव बजे बड़ेबाजार के डेरे से ईश्वरचन्द्र को साथ लेकर पटलडांगा में कालेज के भीतर तक पहुँचा जाते थे और चार बजे वहां आकर उन्हें अपने

साथ ले जाते थे। विद्यालय मे उनकी देखरेख करने वाले आदमी थे और उनके पिता खुद पहुँचा जाते और ले आते थे, इस कारण कच्ची उम्र में ईश्वरचन्द्र बुरी सगति मे नहीं पडे। अनेक कोमलमति, सरल-चित्त, और बुद्धिमान् बालक बुरे सग मे पड कर अक्सर बिगड जाते हैं और आगे चल कर सुशिक्षा और सच्चरित्र से हीन होने के कारण अपना और अपने वश का नाश कर डालते हैं। खास कर ठाकुरदास ऐसे धर्मशील, कर्त्तव्यपरायण और पुत्रवत्सल पिताओं के न होने से ही इस समय के भारतसन्तान दुर्नीति, दुराचार और कुशिक्षा के घृणित मार्ग मे चल कर अपने परिवारों का और उसके साथ ही सारे देश का अमङ्गल कर रहे हैं। ठाकुरदास ऐसे श्रमशील, कष्ट सहने वाले, न्यायनिष्ठ और सन्तानवत्सल पिताओं की सख्या बढाने की ओर सब से पहले हमारा ध्यान होना चाहिए।

क्रमश ठाकुरदास ने जब समझ लिया कि ईश्वरचन्द्र अकेले जा आ सकते हैं, समझदार हो गये हैं, तब उन्होंने उनको अकेले जाने आने के लिए स्वतन्त्र कर दिया। जब से ईश्वरचन्द्र कालेज मे पढने लगे तब से उन्होंने यह नियम कर लिया था कि घर आकर पिता के सामने अपने पाठ को दुहराते थे। जरा भी भूल होती थी तो पीछा नहीं छूटता था। जितना जो कुछ पढते थे वह सब अविकल सुनाना पडता था। ठाकुरदास इस तरह पाठ सुनते थे कि उसे देख कर ईश्वरचन्द्र को दृढ विश्वास हो गया था कि पिताजी व्याकरण में तर्कवागीश महाशय से कम पण्डित नहीं हैं। बात यह थी कि पुत्र का पाठ सुनते सुनते ठाकुरदास को भी व्याकरण मे विशेष व्युत्पत्ति हो गई थी। ईश्वरचन्द्र की जितनी अवस्था थी उसके देखते वे पढने मे अधिक परिश्रम करते थे। उस परिश्रम मे अगर कुछ कमी होती थी तो पिता कडा दण्ड देते थे। सारे दिन की मेहनत से थक कर कभी कभी ईश्वर-

चन्द्र पढते पढते सो जाते थे। रात को नौकरी से लौट कर ठाकुरदास अगर देखते थे कि दीपक जल रहा है और ईश्वरचन्द्र सो रहे हैं तो बहुत डाटते और ठोकते भी थे। किसी किसी दिन इतना मारते थे कि घर की स्त्रियां—खास कर राईमणि—आकर बचाती थीं। ईश्वरचन्द्र ऐसी मार के खौफ से, नींद से बचने के लिए, कभी कभी आंखों में दीपक का तेल डाल लेते थे। इस तरह रात को जाग कर पाठ याद करना पडता था। इतने पर भी छुट्टी नहीं थी। पिछले पहर रात को जगा कर ठाकुरदास बहुत सी जानने योग्य बाते बताते और अनेक श्लोक कण्ठस्थ कराते थे। ईश्वरचन्द्र ने इस तरह दो तीन सौ श्लोक याद कर लिये थे। उधर कालेज के शिक्षक तर्कवागीश भी बालक की विचित्र धारणाशक्ति और समझदारी पर सन्तुष्ट थे, इस लिए वह भी ईश्वरचन्द्र को तरह तरह के सस्कृत-श्लोक याद कराते और साथ ही उनका अन्वय और अर्थ भी बतला देते थे। ईश्वरचन्द्र ने तीन वर्ष तक इस व्याकरण की श्रेणी मे पढा। दो साल परीक्षा मे सब से श्रेष्ठ रहे। एक बार अच्छी तरह मेहनत करके परीक्षा देने पर भी उत्कृष्ट श्रेणी मे पास न होने के कारण इनका उत्साह टूट गया। कालेज से श्रद्धा हट जाने के कारण ईश्वरचन्द्र ने घर जाने का सकल्प कर लिया। ईश्वरचन्द्र का स्वभाव था कि जब जिस बात की जिद उन्हे होती थी तब वे उसे पूरा करके ही छोडते थे। ईश्वरचन्द्र ने जिद के मारे कालेज छोड कर देश मे सार्वभौम की पाठशाला मे सस्कृत पढने का विचार कर लिया। सहज में कोई उन्हे उनकी दृढ प्रतिज्ञा से विचलित नहीं कर सकता था। अन्त को तर्कवागीशजी के स्नेह और वाचस्पति के अनुरोध से ईश्वरचन्द्र ने पिता की इच्छा के अनुसार कालेज मे पढना स्वीकार कर लिया। उस बार परीक्षा का फल खराब होने का कारण यह बतलाया जाता है कि उस साल एक

साहब परीक्षक थे । ईश्वरचन्द्र बचपन में कुछ हकला कर बोलते थे । इसी दोष से शायद साहब प्रश्नो के उत्तरो को अच्छी तरह समझ न सके होंगे । इसी से उस बार ईश्वरचन्द्र का पहला नम्बर नहीं आया था । ईश्वरचन्द्र शुरू से ही कालेज के सर्वश्रेष्ठ छात्र होने की, प्राणपण से, चेष्टा करते आये थे । यह वे कभी सह नहीं सकते थे कि कोई बालक श्रमशीलता, दृढता या बुद्धिमत्ता में उन्हे परास्त कर दे । जहाँ पराजय की सम्भावना अधिक होती थी वहाँ ईश्वरचन्द्र जयलाभ के लिए उत्तेजित होकर उससे कई गुना अधिक आयोजन करते थे । ईश्वरचन्द्र ने क्या बचपन मे, क्या पढते समय, क्या कर्मक्षेत्र में और क्या अन्य किसी विशेष घटना के अवसर पर कभी किसी के पीछे रहना पसन्द नहीं किया । वे सदा समान भाव से अपनी स्वतन्त्रता और प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण बनाये रखने की चेष्टा प्राणपण से करते रहे । उनकी वह चेष्टा सब जगह सफल भी हुई । यह भी उनकी स्वतन्त्रता और प्रतिभा की पराकाष्ठा कही जा सकती है । कभी किसी ने ईश्वरचन्द्र को किसी के अनुग्रह का भिखारी न देखा होगा । स्वावलम्ब के गुण से ही ईश्वरचन्द्र की सर्वत्र जय हुई है । यह उनका गुण पढने की अवस्था में ही पुष्ट हो चुका था ।

ससार में और दस आदमियो के अनुग्रहपात्र न होकर, औरो की सहायता न लेकर, जीवनमार्ग में अग्रसर होना बडा ही कठिन काम है । खास कर जिसे पेट भर खाने का ठिकाना न हो उस गरीब बालक का ऐसा स्वावलम्ब और भी विचित्र जान पडता है । आगे चल कर बहुत से बन्धु-बान्धव और इष्ट-मित्र हो गये थे, किन्तु जीवन-सग्राम मे वे अकेले ही प्रवृत्त हुए थे । उन्होने आप ही कहा है कि मुझ ऐसे गरीब बहुत कम होते हैं । ईश्वरचन्द्र के पिता जिस तरह दु ख-कष्ट का सामना करके जीवन के मार्ग मे धीरे

धीरे आगे बढे, सो पहले ही कहा जा चुका है। ईश्वरचन्द्र को लडकपन में घोर कष्ट और पेट की ज्वाला का सामना करना पडा था। परिवार बहुत था, आमदनी कम थी। कभी अन्न जुरता था, और कभी नहीं जुरता था। जब अन्न जुरता था तब भी हमेशा पेट भर खाने को नहीं मिलता था। एसे क्लेश मे पड कर दिन रात परिश्रम करके जो बालक जीवनपथ मे अग्रसर होने के लिए प्राणपण से यत्न करता है उसे विधाता अवश्य ही उपयुक्त पुरस्कार देकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं। विद्यासागर आगे चल कर जो दयासागर के रूप मे दिखाई दिये सो उस असाध्य-साधन का पहला अङ्कुर विद्यालय मे साथियो की सेवा मे ही अङ्कुरित हो आया था। पिता गरीब थे, आप हमेशा पेट भर कर भोजन नहीं पाते थे, तथापि समय समय पर विद्यालय से जो वृत्ति पाते थे उसका भी कुछ हिस्सा अन्यान्य सहपाठियो की सहायता मे खर्च करते थे। अगर कोई सहपाठी बीमार होता था तो ईश्वरचन्द्र चट उसकी चिकित्सा का प्रबन्ध करते थे। आप अपने घर के चर्खे मे कते हुए मोटे सूत के कपडे पहन कर अन्य गरीब बालको की अपने पैसो से अपेक्षाकृत अच्छे कपडे खरीद देते थे। लडको की कौन कहे, सयानो और बुड्ढो मे भी ऐसा स्वार्थत्याग कम देखा जाता है। इस तरह ईश्वरचन्द्र लडकपन से ही अपने कष्ट को भूल कर दूसरो को सुखी बनाने की चेष्टा किया करते थे। एक ओर अनाहार और अनिद्रा का कष्ट था और दूसरी ओर घर में पिता के लिए ओर अपने लिए रोटी भी ईश्वरचन्द्र ही को बनानी पडती थी। इस पर भी अन्य दस आदमियो की खबर लेकर उनकी सेवा करते हुए परीक्षा मे प्रथम होना कैसी प्रखर प्रतिभा का काम था, सो पाठकगण आप ही समझ सकते हैं। सारे सभ्य जगत् के इतिहास को खोज डालिए, किन्तु ऐसे गरीब बालक के इस तरह

क्लेश और असुविधा मे इस तरह पर-सेवा और स्वार्थत्याग का व्रत पालते हुए अपनी उन्नति करने का ऐसा उत्कृष्ट दृष्टान्त बहुत कम देखने को मिलेगा।

साधारण लोगो के लिए जो प्रधान दोष होता है वही प्रतिभाशाली और क्षमताशाली पुरुष के लिए प्रधान गुण बन जाता है। साधारण लोग अगर अपनी विद्या-बुद्धि के ऊपर निर्भर करके चलते हैं, अपनी जिद के वशवर्त्ती होकर कार्य करते हैं, अन्य दस आदमियो के अनुरोध को नहीं मानते तो लोग उनकी निन्दा करते हैं। परन्तु ऐसे दस या सौ आदमियो की विद्या-बुद्धि और सूक्ष्म दृष्टि को एकत्र करने पर भी वह प्रतिभाशाली महात्माओ की विद्या-बुद्धि और सूक्ष्मदृष्टि के एक कण के भी बराबर नही होती। यही कारण है कि प्रतिभाशाली लोग अधिकतर अपनी समझ पर ही निर्भर रहना सीखते हैं। बचपन से ही ईश्वरचन्द्र मे यह स्वावलम्ब का भाव प्रबल था। उनकी जैसे यह प्रतिज्ञा थी कि किसी की सहायता लिये बिना ही मैं विद्यालय का सर्वश्रेष्ठ छात्र बनूँगा। सर्वोत्कृष्ट छात्र होने के लिए जितना परिश्रम करने अथवा कष्ट सहने की जरूरत होती है उसके लिए वे सर्वदा प्रस्तुत रहते थे। इस बारे मे वे कोई रुकावट नहीं मानते थे। कभी आधी रात तक और कभी रात भर जाग कर लिखते-पढते थे। ऐसा कठिन परिश्रम करने से अक्सर बीमार होकर कष्ट भोगते थे। मगर फिर भी लिखने-पढने की मेहनत कम नहीं करते थे। अधिक अवस्था मे जब ईश्वरचन्द्र सम्मान और सम्पत्ति के उच्चपद को प्राप्त हुए, जब उनका शरीर अस्वस्थ और निर्बल रहता था और इसी कारण वे समाज के नित्य-नैमित्तिक कामो से अधिक सम्बन्ध नहीं रखते थे, उस समय भी देखा गया है कि चाहे एक ही बार भोजन किया हो, चाहे भोजन किया ही न हो, अथवा रोगशय्या मे पड़े

हो, सब समय वे शास्त्रों का अध्ययन और अनुशीलन किया करते थे। कोई नई बात जानने के लिए, कोई नया तत्त्व पाने के लिए, कोई नई पुस्तक खरीदने के लिए वे सर्वदा प्रस्तुत रहते थे। कोई किसी बात में उनको परास्त कर दे, यह बात वे कभी नहीं सह सकते थे। ईश्वरचन्द्र ने यह आत्मोन्नति का चाव और आत्माभिमान का भाव लडकपन में विद्यालय में ही प्राप्त किया था। जीवन की अन्तिम घडी तक उन्होंने आत्मोन्नति की पराकाष्ठा दिखलाई है। सौभाग्यवश दर्शनों के लिए कई बार मैं विद्यासागरजी की सेवा मे उपस्थित हुआ हूँ। किन्तु कभी मैंने उन्हे कुर्सी पर पीठ लगाये बैठे नहीं देखा। वे सदा सीधे तन कर बैठते थे। भूखे-प्यासे होने पर भी उनकी बैठक से कुछ क्लान्ति नहीं प्रकट होती थी। जिस दिन उनकी मृत्यु हुई है उसके एक दिन पहले भी अपने आवश्यक कामों को खुद करने की चेष्टा उन्होंने की थी।

जिस आत्मनिर्भर या स्वावलम्ब के भाव ने यथासमय उनको उन्नति के उच्चतम सोपान पर चढाया उसी भाव ने बचपन में बाल-सुलभ चपलता के कारण अनेक क्लेश भी पहुँचाये। इस बारे की बहुत सी आमोद-जनक घटनाओं का उल्लेख किया जा सकता है। जिस दिन ठाकुरदास नहाने, कपडे सफा पहनने आदि किसी काम को कहते थे उस दिन वह काम करने की इच्छा रहने पर भी ईश्वरचन्द्र उस काम को कभी न करते थे। इसके लिए उन्हे मार भी खानी पडती थी। ठाकुरदास ने इसके लिए यह कौशल निकाला था कि जब जो काम कराना होता था उसके लिए मना कर देते थे। इस प्रकार उनका अभिप्राय सिद्ध हो जाता था। ईश्वरचन्द्र को बचपन में ही अपनी इच्छा के अनुसार काम करने का अभ्यास हो गया था। जीवन की अन्तिम घडी तक यह बात ईश्वरचन्द्र के स्वभाव में नहीं

गई। वह कभी कोई काम किसी के अधीन होकर नहीं करते थे। उनके जीवनचरित की हर एक घटना मे यही बात देख पडेगी।

ईश्वरचन्द्र जब व्याकरण पढ कर साहित्य की श्रेणी में भर्ती हुए उस समय वे ग्यारह वर्ष के थे। साहित्यश्रेणी मे भर्ती होने के साल ही ईश्वरचन्द्र का यज्ञोपवीत सस्कार हुआ। साहित्यश्रेणी के अध्यापक थे जयगोपाल तर्कालङ्कार। उन्होने ईश्वरचन्द्र की अवस्था कम कह कर उन्हे भर्ती करने में आपत्ति की। उनको शायद यह सन्देह हुआ कि इतनी कम अवस्था मे वालक सस्कृत-साहित्य को क्या समझेगा। ईश्वरचन्द्र घोर आत्माभिमानी थे। ईश्वरचन्द्र ने उनकी आपत्ति सुन कर कहा कि "आप साहित्य मे ही परीक्षा लेकर मुझे स्वीकार करेंगे तो अच्छा होगा, नही तो मुझे ही कालेज छोडना पडेगा"। तर्कालङ्कारजी ने ईश्वरचन्द्र से भट्टि-काव्य के कई एक श्लोको की व्याख्या करने के लिए कहा। ईश्वरचन्द्र ने उन श्लोकों का अन्वय लगा कर ऐसी सुन्दर व्याख्या की कि अध्यापक महाशय फडक उठे। साहित्य-श्रेणी के अन्य अधिक अवस्था के वालक भी उन श्लोको का वैसा अच्छा अन्वय और अर्थ नही कर सके। तर्कालङ्कारजी ने ईश्वरचन्द्र को पढाना सादर स्वीकार किया और पुत्र की तरह स्नेह से पढाने लगे। इस श्रेणी मे, अवस्था मे वडे, मदनमोहन तर्कालङ्कार, मुक्ताराम विद्यावागीश आदि छात्र ईश्वरचन्द्र के सहपाठी थे।

ईश्वरचन्द्र ने इस श्रेणी मे पहले साल रघुवश, कुमारसम्भव, और राघवपाण्डवीय आदि साहित्य-ग्रन्थो की परीक्षा अव्वल नम्बर मे पास की और पुरस्कार पाया। दूसरे साल माघ, किरात, मेघदूत, शाकुन्तल, उत्तरचरित, विक्रमोर्वशी, मुद्राराक्षस, कादम्बरी और दश-कुमारचरित आदि सब काव्यग्रन्थो को कण्ठस्थ कर अन्तिम परीक्षा

में प्रथम रहे। शिक्षक और छात्र सभी ईश्वरचन्द्र की परीक्षा का फल देख कर चकित हो गये।

उस समय आज कल की तरह रविवार को सस्कृत कालेज नही बन्द होता था। प्रतिपदा और अष्टमी को सस्कृत-चर्चा निषिद्ध थी। इस कारण प्रतिपदा और अष्टमी को अनध्याय रहता था। द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमा और पूर्णिमा को नया पाठ नहीं होता था। इन दिनो मे सस्कृत-गद्य-पद्य-रचना सीखने की व्यवस्था थी। किसी दिन सस्कृत से बँगला और बँगला से सस्कृत अनुवाद करना सिखलाया जाता था। ईश्वरचन्द्र इन सब बातो मे अव्वल रहते थे, इससे गुरुजी इन्हे पुत्र के समान स्नेह से पढाते और इनकी शुभकामना करते थे। ईश्वरचन्द्र की रचना और अनुवाद मे किसी तरह की वर्णाशुद्धि या व्याकरण की भूल नहीं होती थी। उनके लिखे अक्षर बहुत ही सुन्दर होते थे। वह जो कुछ पढते थे उसे खूब याद रखते थे। इस कारण कभी किसी विषय मे किसी से वह हारे या दबे नहीं। उनकी स्मरणशक्ति अत्यन्त तीक्ष्ण थी। लड़कपन से लेकर सारे जीवन की अधिकाश घटनाओ का पूरा पूरा वर्णन वह कर सकते थे।

उन्हे सस्कृत के काव्य-ग्रन्थ आदि से अन्त तक कण्ठ थे। अनेक सस्कृत-श्लोक उन्हे याद थे। वे सस्कृत-भाषा मे लोगो से बात-चीत करते थे। उस समय के पण्डित लोग उनकी इस असाधारण शक्ति को देख कर कहते थे—"ईश्वरचन्द्र श्रुतिधर है। यह बालक जियेगा तो अद्वितीय पुरुष होगा"।

इसी समय ठाकुरदास अपने मँझले लडके दीनबन्धु को सस्कृत कालेज मे भर्ती कराने की इच्छा से कलकत्ते लाये। कलकत्ते के डेरे मे धीरे धीरे परिवार की सख्या बढने लगी। और ईश्वरचन्द्र की

विद्या-शिक्षा की क्रमोन्नति के साथ साथ घर के कामकाज की मात्रा भी बढ़ने लगी। उन्हें रोज सवेरे-शाम रसोई बनानी पड़ती थी। डेरे पर कोई कहार या कहारी नहीं थी। सवेरे गंगा-स्नान करके आते समय बाजार से तरकारी वगैरह खरीद लाते थे। आकर मसाला आप ही बाँटते थे। तरकारी भी उन्हे ही साफ करनी और काटनी पड़ती थी। अकेले ही सब सामान करके रसोई बनानी पड़ती थी। चार-पाँच आदमियों का भोजन बना कर पहले उन्हें खिलाते और पीछे आप खाते थे। उसके बाद सब बर्तन धोते और चौका देते थे। फिर कालेज जाते थे। इसमें कोई सदेन्ह नहीं कि इस प्रकार कठोर ब्रह्मचर्य से ईश्वरचन्द्र ने लड़कपन बिताया था, इसीसे आगे चल कर वह निर्भय और शान्त-चित्त रह कर सब विपत्तियों का सामना कर सके। कभी किसी ने विपत्ति या रोग मे उन्हे अधीर होते नही देखा।

लड़कपन मे ईश्वरचन्द्र भोजन करते समय थाली के आस पास अन्न छिटकाने नही पाते थे। ठाकुरदास की इस बात पर विशेष दृष्टि रहती थी। बुढ़ापे तक विद्यासागर कभी थाली के बाहर अन्न गिरने नहीं देते थे और अगर कोई लड़का या सयाना अन्न फेंकता था तो उसे, फिर वैसा न होने देने के लिए, समझा देते थे। किसी का कभी निमन्त्रण करते थे तो पचासो तरह की सामग्री बनवाते और पास बैठ कर भोजन कराते थे। अगर कोई थाली मे कुछ डाल कर उठना चाहता था तो विद्यासागरजी अपने पूज्यपाद पिता का उल्लेख करके कहते थे कि "अगर थाली के पास एक चावल पड़ा रह जाता था तो वे मुझे मारते थे। और तुम इतनी सामग्री खराब करोगे? नहीं, यह किसी तरह नहीं हो सकता। तुम्हे सब खाना पड़ेगा"।

ईश्वरचन्द्र के मँझले भाई दीनबधु सस्कृत-कालेज में व्याकरण की दूसरी श्रेणी मे भर्ती हुए। वे ईश्वरचन्द्र के समान परिश्रमी न

होने पर भी अत्यन्त बुद्धिमान् थे। वे कुशाग्रबुद्धि बालक थे। जो एक बार सुन लेते थे वही उन्हें याद हो जाता था। ठाकुरदास रात को नव बजे नौकरी से घर आते थे। डेरे पर आकर अगर देखते थे कि दीपक जल रहा है और दोनो भाई सो रहे हैं तो बडी कडी मार मारते थे। बालको का रोना सुन कर सिह-परिवार के आदमी दौड आते थ और कभी कभी ठाकुरदास से बिगड कर कहते थे कि "अगर आप बालको को मार डालना चाहते हैं तो और कहीं जाकर रहिए। हमसे यह नहीं देखा जायगा"। इसी समय ईश्वरचन्द्र को सध्या आह्निक के मत्र भूल गये थे, किन्तु वे इस तरह सध्या के कृत्य कर दिखाते थे कि मानो सध्या कर रहे हैं। एक दिन ईश्वरचन्द्र के छोटे चाचा कालिदास को सन्देह हुआ और उन्होंने बालक ईश्वर-चन्द्र से कहा कि सब सध्या के विनियोग और मत्र सुनाओ। ईश्वरचन्द्र बडी मुश्किल में पडे। कलई खुल जाने पर पिता ने बहुत डाँटा-डपटा। उन्होंने कहा—"आज भोजन के पहले ही सध्या याद सुनानी पडेगी"। बालक की ऐसी अच्छी धारणाशक्ति थी कि उसने घण्टे भर में ही सारी सध्या याद करके सुना दी और फिर भोजन किया।

बहुत दिनो से ठाकुरदास की यह इच्छा थी कि ईश्वरचन्द्र की कालेज की पढाई समाप्त होने पर उन्हे वीरसिह ले जाकर पाठशाला खोलेंगे और उसमे गाँव के तथा अन्यान्य स्थानो के निराश्रय बालक आकर पढेंगे। इसी कामना को पूर्ण करने के इरादे से ठाकुरदास ने ईश्वरचन्द्र से कहा कि कालेज मे तुम जो वृत्ति पाते हो उसके रुपये से देश मे कुछ जमीन खरीद लो। उसी की आमदनी से दूर से आये हुए विद्यार्थियो को खाने और पहनने की सहायता दी जायगी। ईश्वरचन्द्र की वृत्ति के रुपये से कुछ जमीन खरीद भी ली गई। कुछ दिन जमीन खरीदने के बाद पिता ने पुत्र से कहा कि अब वृत्ति के

रुपये से कुछ उत्तम ग्रथ खरीदे। पिता की आज्ञा के अनुसार ईश्वरचन्द्र ने अनेक हस्तलिखित सस्कृत-ग्रथ भी खरीदे। आज तक विद्यासागर महाशय की लाइब्रेरी मे वे पुस्तके रक्खी हुई हैं। शिक्षा समाप्त होने पर गाँव मे पाठशाला खोलने की इच्छा पिता और पुत्र दोनो की थी।

ईश्वरचन्द्र ने इधर, थोडे ही दिनो मे, व्याकरण और साहित्य मे विशेष रूप से विज्ञता प्राप्त कर ली। इस बीच मे जब कभी ईश्वरचन्द्र बीरसिह जाते थे तब श्राद्ध आदि के अवसर पर निमन्त्रण आदि के लिए अगर किसी को श्लोक या छन्द बनवाने की जरूरत होती थी तो वे बना देते थे। एक बार बीरसिह-निवासी एक सम्पन्न गृहस्थ के यहाँ श्राद्ध था। उन्होने ईश्वरचन्द्र से निमन्त्रण के श्लोक बनवाये। आये हुए पण्डितगण उन श्लोको की रचना-परिपाटी, शब्दविन्यास और पदलालित्य देख कर ऐसे चकित हुए कि श्लोक बनानेवाले की खोज करने लगे। तब घर के मालिक ने बालक ईश्वरचन्द्र को दिखा दिया। बालक की ऐसी क्षमता देख कर पण्डित लोग और भी विस्मित हुए। कोई कोई ईश्वरचन्द्र से व्याकरण-विचार करने लगे तो उन्होने देखा कि वे सस्कृत मे वार्तालाप और विचार करने मे भी अद्वितीय हैं। यह देख कर सब पण्डितो ने विद्यासागर को आशीर्वाद दिये। इसी समय से बीरसिह और उसके निकटवर्ती अनेक स्थानो मे यह बात फैल गई कि ठाकुरदास के पुत्र ईश्वरचन्द्र एक असाधारण पण्डित हो गये हैं। कुछ दिनो मे इस देश मे कोई उनकी बराबरी करनेवाला पण्डित नहीं रहेगा। उस समय ईश्वरचन्द्र की इतनी प्रशसा होने का एक कारण यह भी था कि जैसे मातृभाषा के समान सस्कृत मे वे वार्तालाप और विचार कर सकते थे वैसे उस समय के वृद्ध पण्डित भी सस्कृत मे वार्तालाप या विचार नहीं कर सकते थे।

मेदिनीपुर, वर्दवान और हुगली जिले के अनेक स्थानो मे यह बात प्रचारित होते ही अनेक लोग ईश्वरचन्द्र के विवाह का प्रस्ताव लेकर आने लगे। अनेक स्थानो से व्याह की बातचीत आई, पर अन्त को क्षीरपाई-निवासी शत्रुघ्न भट्टाचार्य्य की कन्या के साथ ही व्याह की बात पक्की हुई। क्षीरपाई एक बडा गाव था। उस समय मेशीन का बना विदेशी कपडा इतना आता न था। इस तरफ के जुलाहे जो कपडा बनाते थे उसकी बिक्री की मण्डी क्षीरपाई गाँव ही था। पश्चिमोत्तर प्रान्त के रोजगारी भी क्षीरपाई आकर कपडे खरीदते थे। अन्यान्य स्थानो की बनी और और चीजें भी क्षीरपाई के गज मे बिकने के लिए आती थी। ऐसे सम्पन्न गाँव में शत्रुघ्न भट्टाचार्य्य का निवास था। उनके पास धन भी था और गाँव के लोग उनको मानते भी थे। उनकी कन्या दीनमयी गुण और रूप से सम्पन्न थी। इस सर्वाङ्ग-सुन्दरी कन्या के शरीर मे सब प्रकार के सुलक्षण मौजूद थे। भट्टाचार्य्यजी ने ठाकुरदास से कहा था कि "वन्द्योपाध्याय महाशय, आपके धन नहीं है, परन्तु आपका पुत्र बडा भारी विद्वान् है। केवल इसी कारण मैं अपनी प्राणप्यारी कन्या का हाथ आपके पुत्र को पकडाता हूँ"। ईश्वरचन्द्र की उस समय व्याह करने की बिलकुल इच्छा नहीं थी। उस समय इस प्रकार की शुभ कामनायें उनके हृदय में उठ रही थीं कि यावज्जीवन लिखे-पढेंगे, देश के लोगो की भलाई सोचे और करेंगे, दुखिया का दुःख दूर करेंगे और रोगियो की सेवा करेंगे। किन्तु पिता के खिन्न होने के खयाल से थोडी ही अवस्था में विवाह-बधन मे बँधना उन्होंने स्वीकार कर लिया। विवाह के समय ईश्वरचन्द्र चौदह वर्ष के और उनकी स्त्री आठ वर्ष की थी।

ईश्वरचन्द्र ने साहित्य-पाठ समाप्त कर पन्द्रह वर्ष की अवस्था में अलङ्कार की श्रेणी में अपना नाम लिखाया। उस श्रेणी के अध्यापक

प्रेमचन्द्र तर्कवागीश थे। व्याकरण, साहित्य और अलङ्कार में तर्क-वागीशजी की पूर्ण गति थी। उनके पास पढने वाले वालको को सस्कृत-भाषा में विशेष व्युत्पत्ति हो जाती थी। अलङ्कार-श्रेणी के छात्रो मे भी सब की अवस्था ईश्वरचन्द्र से अधिक थी, किन्तु परीक्षा मे ईश्वरचन्द्र ही बाजी मार ले जाते थे। बालक की इस विचित्र प्रतिभा पर गुरु और अन्यान्य सब लोग मुग्ध थे और सब उन्हे अद्भुतकर्मा असाधारण पुरुष समझते थे। विद्यासागर ने एक साल में साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश और रसगङ्गाधर आदि अलङ्कारग्रन्थ पढे और सालाना परीक्षा में प्रथम रहे। इस समय परीक्षा के लिए ईश्वरचन्द्र को कठिन परिश्रम करना पडता था और साथ ही डेरे पर के सब काम-काज का भार भी इन्हीं के सिर था। इस कारण परीक्षा देने के बाद वे बहुत बीमार हो गये। फिर खूनी बवासीर की शिकायत बढ गई। कलकत्ते मे अनेक प्रकार की दवाओ से बीमारी का जोर न घटने पर लाचार कुछ दिनो के लिए वीरसिंह जाना पडा। वहां भी पहले पीडा नहीं घटी। अन्त को एक ब्राह्मण ने मट्ठे के साथ पका हुआ जमीकन्द खिला कर रोग शान्त किया। रोग आराम होते ही ईश्वरचन्द्र फिर कलकत्ते चले आये और पहले की तरह कामकाज और पढने-लिखने मे परिश्रम करने लगे। इसी अवसर में एक दिन ईश्वरचन्द्र ने शाम को अपने भाई दीनबन्धु को बाजार भेजा। किन्तु ग्यारह बजे तक वे लौट कर न आये। यह देख कर ईश्वरचन्द्र को बडा भय और चिन्ता हुई। वे भाई के लिए जोर जोर रोने लगे। अन्त को और सब लोगो की सलाह के अनुसार बाजार में जाकर भाई की खोज करने लगे। वहां कुछ पता न लगने से उनको और भी चिन्ता हुई। ईश्वरचन्द्र घबराये हुए उस बाजार से बडे बाजार गये। वहां खोजते खोजते देखा कि दीनबन्धु एक

दीवार के सहारे सो रहे हैं। भाई को जगा कर डेरे पर लाये। ईश्वरचन्द्र लडकपन से ही भाई-बहनो को बहुत प्यार करते थे। ईश्वरचन्द्र को बचपन से ही प्रतिमा-पूजा पर वैसी श्रद्धा न थी। किन्तु निष्ठावान् हिन्दू जिस तरह भक्तिपूर्वक देवपूजा करते हैं उसी तरह वे मन ही मन अपने माता-पिता की पूजा करते थे। वे कहते थे कि ससार मे माता-पिता सजीव देवता हैं। माता-पिता की पूजा छोड कर या माता-पिता के प्रति उदासीन रह कर—उनके दु ख-कष्ट पर ध्यान न देकर—देवपूजा करने से धर्म नहीं होता। जिन्होंने स्वय दु ख-कष्ट सह कर हमारा लालन-पालन किया, जिन्होने स्नेह और ममता के साथ हमारी रक्षा की वे माता-पिता ही परम देवता हैं। उनको छोड कर अन्य देवता की पूजा करने से धर्म नही होता। वास्तव मे असल बात तो यह है कि विद्यासागर ऐसा माता-पिता का भक्त बालक इस समय मिलना कठिन है। वे जब किसी काम से वीरसिंह जाते थे तो सबसे पहले पूर्वगुरु कालीकान्त चट्टोपाध्याय के चरण छूने जाते थे। गुरु महाशय शिष्य की ऐसी भक्ति देख कर परम सन्तुष्ट होते और आशीर्वाद देते थे। देश के उच्च नीच सब लोग विद्यासागर के सप्रेम व्यवहार और सहानुभूतिभरी मीठी बातो से सन्तुष्ट होकर उनका गुणकीर्तन किया करते थे। वे जब घर में रहते थे तो छोटे लडकों से छोटे छोटे खेल खेलते थे, समान अवस्था वालो के साथ कुश्ती और लकडी के खेल खेलते थे और अपने से बडो के साथ विनीत व्यवहार करते थे। ऐसी अच्छी प्रकृति के युवक को सब का स्नेह की दृष्टि से देखना स्वाभाविक ही था। ईश्वरचन्द्र ताश, चौसर आदि खेल नहीं खेलते थे। उनके चरित्र में पाठकों को चञ्चल बालक की प्रकृति, उद्यमशील युवक का भाव और कर्तव्यपरायण तेजस्वी पुरुष के लक्षण देखने को मिलेंगे।

ठनठनिया के चौराहे के पास ही पूर्व ओर एक 'मेस' मे सस्कृत कालेज की परीक्षा पास किये हुए कई एक विद्यार्थी रहते थे। वे ईश्वरचन्द्र से वडा स्नेह रखते थे। इस कारण प्राय हर रोज विद्यालय से छुट्टी पाने के बाद वे इस मेस के छात्रो के पास टहलने आते थे। सध्या तक वहाँ रह कर साहित्यदर्पण देखते थे। एक दिन सुप्रसिद्ध दर्शनशास्त्र के पण्डित जयनारायण तर्कपञ्चानन महाशय ला-कमेटी की परीक्षा देकर जज-पण्डित का पद पाने की इच्छा से तारानाथ तर्क-वाचस्पति के साथ सलाह करने आये थे। उन्होंने वहाँ ईश्वरचन्द्र को साहित्यदर्पण का पाठ करते देख कर चकित होकर तर्क-वाचस्पतिजी से पूछा कि "इतनी थोडी अवस्था का वालक साहित्यदर्पण क्या समझेगा?" तर्क-वाचस्पतिजी ने इसके उत्तर मे कहा—"वालक कितना समझता है सो आप प्रश्न करके देख लीजिए"। वालक से प्रश्नोत्तर करके तर्कपञ्चाननजी को मालूम हुआ कि वालक एक असाधारण पण्डित है। देखने मे छोटा, पर ज्ञान में बडो से भी वडा है। तब प्रसन्न होकर तर्कपञ्चाननजी ने तर्क-वाचस्पतिजी से कहा कि "यह वालक किसी समय सारे बङ्गाल में एक अद्वितीय पण्डित समझा जायगा। इतनी थोडी उम्र में इतना वडा सस्कृत मे व्युत्पन्न पुरुष मैंने तो आज तक नहीं देखा"। यह सुन कर तर्कवाचस्पतिजी ने कहा—"हम इस वालक को कालेज का एक महामूल्य अलङ्कार समझते हैं"। तब से जयनारायण तर्कपञ्चानन जहाँ जाते थे वहाँ बालक ईश्वरचन्द्र की प्रतिभा की विशेष प्रशसा करते थे।

इस समय के नियमानुसार छात्रों को पहले अलङ्कार, न्याय और वेदान्त और फिर स्मृतिशास्त्र पढना पडता था। स्मृतिशास्त्र की परीक्षा मे पास होने पर जज-पण्डित का पद मिल सकता था।

ईश्वरचन्द्र ने इस नियम के विरुद्ध अलङ्कार की श्रेणी में पढते पढते कालेज के अध्यक्ष के निकट आवेदन करके स्मृतिशास्त्र पढने की अनुमति प्राप्त कर ली। विद्यालय के सब पाठ्य विषयों को समाप्त करने के बाद छात्र लोग ला-कमेटी की परीक्षा देने के लिए स्मृतिशास्त्र की श्रेणी में भर्ती होते थे और सभी छात्रों को दो तीन साल तक कठोर परिश्रम करके मनुसंहिता, मिताक्षरा, दायभाग आदि ग्रन्थ पढने पडते थे। उसके बाद परीक्षा देने पर कोई पास होता था और कोई विफल-मनोरथ होकर कालेज छोड देता था। किन्तु बालक ईश्वरचन्द्र ने सब काम छोड कर, दिन रात परिश्रम करके, छ महीने में ही इन सब कठिन और दुर्बोध्य ग्रन्थों को पढ लिया। ईश्वरचन्द्र ला-कमेटी की परीक्षा में भी विशेष प्रशंसा के साथ पास हुए। उन्होंने इस काम में एक ओर जैसे अपनी धारणाशक्ति और बुद्धिमत्ता का विचित्र परिचय दिया वैसे ही दूसरी ओर बङ्गाली विद्यार्थियों के आगे श्रमशीलता, एकाग्रता और विद्याशिक्षा में अनुराग दिखाने का एक उज्ज्वल आदर्श भी स्थापित कर दिया।

जिस समय ईश्वरचन्द्र ला-कमेटी की परीक्षा में प्रशंसा के साथ पास हुए उस समय उनकी मसें भीग रही थीं। छ महीने में स्मृतिशास्त्र भर पढ डालने की बात सुन कर सभी को बडा विस्मय हुआ। यह बात ऐसी अद्भुत समझी गई कि इस पर कोई सहज में विश्वास नहीं करता था। जब ईश्वरचन्द्र ने सार्टीफिकेट पाया तब सब का सन्देह दूर हुआ। ईश्वरचन्द्र के ला-कमेटी की परीक्षा में पास होने के कुछ दिन बाद ही त्रिपुरा-राज्य के जज-पण्डित का पद खाली हुआ। सत्रह वर्ष की अवस्था के बालक ईश्वरचन्द्र ने यह पद पाने के लिए अर्जी दी। इनकी अर्जी मंजूर हो गई। किन्तु पिता की सलाह न होने से ईश्वरचन्द्र वह नौकरी नहीं कर सके।

अन्यान्य परीक्षायें पास करके उन्नीस वर्ष की अवस्था मे ईश्वरचन्द्र ने वेदान्त की श्रेणी मे नाम लिखाया। इस श्रेणी के अध्यापक शम्भुचन्द्र वाचस्पति भी ईश्वरचन्द्र की प्रतिभा पर मुग्ध थे। जिन विषयो या स्थलो पर अध्यापक महाशय को कुछ सन्देह होता था या जहाँ का पाठ असंलग्न जान पडता था वहाँ पर अध्यापक महाशय ईश्वरचन्द्र से तर्कवितर्क करते थे और अक्सर इस प्रकार की आलोचना मे गुत्थी सुलझ जाने पर वाचस्पति महाशय सन्तुष्ट होकर कहते थे कि "तुम सचमुच ईश्वर हो"।

इस समय के नियमानुसार स्मृति, न्याय और वेदान्त की वार्षिक परीक्षा के अवसर पर संस्कृत मे गद्य और पद्य की रचना भी करनी पडती थी। सबसे अच्छे गद्य या पद्य लिखने के लिए अलग अलग सौ सौ रुपये का पुरस्कार भी नियत था। एक ही दिन दोनो परीक्षायें होती थीं। दस से एक बजे तक गद्य-रचना और एक से चार बजे तक पद्य-रचना का समय नियत था। उस साल परीक्षा देने वाले सब बालक आ गये थे, परीक्षा शुरू होने वाली ही थी, इसी समय अलङ्कारश्रेणी के अध्यापक प्रेमचन्द्र तर्कवागीश महाशय ईश्वरचन्द्र को अनुपस्थित देख कर उनकी खोज करने लगे। ईश्वरचन्द्र को अन्यत्र बैठे देख कर वह उन्हे वहाँ पकड लाये और अध्यक्ष मार्शेल साहब से कह कर उन्होंने ईश्वरचन्द्र को बलपूर्वक परीक्षा देने के लिए बिठलाया। ईश्वरचन्द्र ने अपने को इस परीक्षा के अयोग्य बता कर बहुत कुछ टालमटूल की, पर पीछा नहीं छूटा। गद्य में उन्हीं का लेख सर्वश्रेष्ठ समझा गया और पुरस्कार के सौ रुपये उन्होंने ही पाये। इसके बाद पद्यरचना की परीक्षा हुई। उसमे भी विद्यासागर ही प्रथम रहे और फिर सौ रुपये का पुरस्कार पाया।

इसके बाद ईश्वरचन्द्र ने वेदान्त की परीक्षा पास करके न्याय और दर्शनशास्त्र पढ़ना शुरू किया। इस श्रेणी में एक साल पढ़ने के बाद परीक्षा में प्रथम होने पर ईश्वरचन्द्र को सौ रुपये और मिले। इस बार की पद्यरचना में भी प्रथम होने से सौ रुपये का वह भी पुरस्कार ईश्वरचन्द्र ने पाया।

इसी समय ठाकुरदास ने मँझले लड़के दीनबन्धु का ब्याह किया। इस काम में खर्च अधिक होने से कुछ ऋण भी हो गया। वीरसिंह में घर पर खर्च कम करने से भी कुछ फल न देख पड़ा। तब वह कलकत्ते का खर्च कम करके बचे हुए धन से ऋण चुकाने की चेष्टा करने लगे। ईश्वरचन्द्र को परीक्षा में प्रथम होने से जो दो सौ रुपये पुरस्कार में मिले थे उनसे ऋण चुकाने में बड़ी भारी सहायता मिली।

ईश्वरचन्द्र में एक विशेषता यह बड़ी भारी थी कि वह अपने कष्ट को कुछ भी नहीं समझते थे। ऊपर जिस समय का हाल लिखा गया है उस समय सब परिवार को पेट काटना पड़ता था। अच्छा भोजन कोई नहीं करता था, क्योंकि ऋण चुकाना था। इस प्रकार आधे पेट रूखा सूखा खाकर घर का रसोई बनाना, बर्तन माजना आदि सब काम अकेले करके विद्यालय का पाठ अच्छी तरह याद करना ईश्वरचन्द्र ही ऐसे अध्यवसायी और कष्ट-सहिष्णु बालक का काम था। इस पर भी आश्चर्य की बात तो यह है कि दिन रात इस प्रकार का शारीरिक और मानसिक परिश्रम करने पर भी घड़ी भर के लिए भी कभी वह उदास नहीं हुए। उनका मुख-मण्डल सदा प्रसन्न रहता था। कभी किसी ने उन्हें इस कष्ट के लिए दुखी होते या काम करने के लिए अनिच्छा प्रकट करते नहीं देखा सुना। वे सर्वदा हँसते हुए सबसे बातचीत करते थे। उस साल दुर्गापूजा के अवसर पर गाँव जाकर भी ईश्वरचन्द्र ने प्रसन्नता का ही परिचय दिया। छोटे

भाइयो और परोसी बालको के साथ पहले की तरह खेलने लगे। गाँव के रोगियो और भूखो का दु ख दूर करने के लिए यथाशक्ति धन भी खर्च किया। परोसियो मे जो खाने-पीने से तग थे, जो लोग फटे कपडे पहने कष्ट से गुजर कर रहे थे उन्हे देख कर ईश्वरचन्द्र को ऐसी दया आई कि उन्होने केवल अँगोछा पहने रहकर अपने सब कपडे बाँट दिये। इसी एक उदाहरण से जान पडता है कि वह आप तो भारी से भारी कष्ट सह सकते थे, किन्तु दूसरे का कष्ट उनसे बिल्कुल नही देखा जाता था। इस सम्बन्ध मे और एक बात का उल्लेख करना यहा असङ्गत न होगा। जिस समय की बात लिखी जा रही है उस समय कलकत्ता-म्यूनिसिपलिटी की इतनी श्रीवृद्धि नही हुई थी। उस समय शहर के चारो ओर दुर्गन्ध का राज्य था। तालाबो और कुण्डो मे सडा गन्दा पानी भरा रहता था। एक एक तालाब और कुण्ड एक एक नरक के समान था। सडक के दोनो ओर खुली नालियाँ नरक-कुण्ड सी बहा करती थीं। फी सदी निन्नानवे गृहस्थो के घरो मे मल-मूत्र और कीडा से भरे बदबूदार नरक-कुण्ड के दर्शन होते थे। उस समय के कलकत्ते और इस समय के कलकत्ते के अन्तर को जिन्होने अपनी आँखो से नहीं देखा वे लाख वर्णन करने पर भी समझ नहीं सकते। ईश्वरचन्द्र के पिता जिस घर मे रहते थे उसमे भी एक ऐसा ही नरक-कुण्ड था। पाखाना, कुआ और उसके आस-पास की जगह ऐसी ही गन्दी बनी रहती थी। जिस छोटे से स्थान मे ईश्वरचन्द्र रसोई बनाते थे उसके पास ही नरक-कुण्ड था। विद्यासागर के मुख से ही मैंने सुना है कि वे जब भोजन करने बैठते थे तब उस गन्दे स्थान से सैकडो कीडे उनकी थाली की ओर चलते थे। उनसे बचने के लिए ईश्वरचन्द्र एक कल्सी जल अपने पास रख लेते थे। कीडो के पास पहुँचने पर वह थोडा सा पानी बहा देते थे,

पानी के साथ कीडे भी वह जाते थे। दुर्गन्ध का तो कहना ही क्या है। जिस बदबू से आदमी का मगज भिन्ना उठता है उसी बदबू के पास बैठ कर उन्हे रसोई बनाना और भोजन करना पडता था। जिस घर मे ईश्वरचन्द्र भोजन बनाते थे उसमें सूर्य की एक किरण भी नहीं प्रवेश करती थी। वहाँ हर समय घोर अन्धकार का अखण्ड राज्य रहता था। कभी कभी उन्हे दिन मे दीपक जला कर अपना काम करना पडता था।

देखने मे ईश्वरचन्द्र का रग गोरा न था। किन्तु उनमे न-जाने कैसी विचित्र मोहनी शक्ति थी कि जो एक बार उन्हे देखता था, एक बार उनके साथ बातचीत करता था, या एक दो दिन उनके साथ रहता था, वही उनसे स्नेह किये बिना नहीं रह सकता था। उस समय सस्कृत-कालेज मे जो लोग अध्यापक थे वे ईश्वरचन्द्र को पुत्र के समान मानते थे। गङ्गाधर तर्कवागीश, जयगोपाल तर्कालङ्कार, प्रेमचन्द्र तर्कवागीश, सुप्रसिद्ध रामचन्द्र विद्यावागीश, हरनाथ तर्कभूषण, शम्भुचन्द्र वाचस्पति, सुप्रसिद्ध जयनारायण तर्कपञ्चानन आदि अध्यापकगण ने एक स्वर से ईश्वरचन्द्र की श्रेष्ठता स्वीकार की है। इनके सिवा उनके समसामयिक और उनके पहले के छात्रगण उन्हे एक असाधारण शक्तिशाली छात्र समझ कर सम्मान दिखाते और उन पर श्रद्धा रखते थे। इसके सिवा जब कोई प्रतिष्ठित आदमी या कोई अध्यापक पण्डित विद्यासागर से परिचित होता था वही उनसे गाढी मित्रता कर लेता था। वेदान्त-श्रेणी मे पढने के समय अध्यापक शम्भुचन्द्र वाचस्पति महाशय अवस्था मे बहुत बडे होने पर भी ईश्वरचन्द्र के गुणो पर मुग्ध होकर स्नेहवश उनसे मित्र का ऐसा व्यवहार करते थे। वाचस्पति महाशय की अवस्था बहुत अधिक थी। वह ऐसे वृद्ध थे कि उन्हे नहाने, खाने और मल-मूत्र त्यागने के लिए जाने मे भी दूसरे की

सहायता की जरूरत पड़ती थी। स्नेह-वश योग्य विद्यार्थी ईश्वरचन्द्र अक्सर गुरु महाशय की सेवा करते थे। इसी लिए गुरुजी उन्हें पुत्र से बढ़कर प्यार करते थे। हर एक जरूरी काम में लायक़ लड़के से पिता जैसे सलाह लेता है उस तरह गुरुजी ईश्वरचन्द्र से सलाह लेते थे। ईश्वरचन्द्र से सलाह लिये बिना वे प्राय कोई काम नहीं करते थे। जिस समय विद्यार्थी और गुरु में स्नेह का ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो चुका था उसी समय वाचस्पति महाशय ने फिर विवाह करने की इच्छा प्रकट करके ईश्वरचन्द्र से कहा—"देखो, ससार में मेरे और कोई नहीं है। मुझे बड़ा कष्ट मिलता है। लोग कहते हैं कि फिर विवाह कर लेने से सब प्रकार का सुभीता हो जायगा। खासकर इस कार्य के उद्योगी कई बड़े आदमी हैं और उनके उद्योग से एक अच्छे स्वभाव की सयानी लड़की भी ठीक हो गई है। अब बेटा, तुम्हारी क्या राय है?" ईश्वरचन्द्र ने ध्यान देकर सब बातें सुनीं और सोचने लगे कि वृद्ध गुरु के इस बुद्धि-विकार को शान्त करने का क्या उपाय है। बहुत सोचने पर भी ईश्वरचन्द्र को गुरु के इस असगत निर्मम स्वार्थपूर्ण प्रस्ताव की प्रयोजनीयता न देख पड़ी। तब उन्होंने अपनी स्वाभाविक स्वाधीन प्रकृति के अनुरूप ही अपनी राय जाहिर की। ईश्वरचन्द्र ने कहा—"इस बुढ़ापे में फिर ब्याह करना कभी उचित नहीं। आपके अब और अधिक दिन जीने की कोई सभावना नहीं है। ब्याह करके क्या आप एक निरपराध बालिका को सदा के लिए दुखिया बनाना चाहते हैं? ब्याह कैसा, ब्याह का खयाल भी आपके लिए महापाप है।" जैसे साँप को देख कर प्राण बचाने के लिए कोई पीछे हट जाता है वैसे ही ईश्वरचन्द्र की इस उक्ति को सुन कर वाचस्पति महाशय का हाल हुआ। वाचस्पतिजी ने कहा—"लाटू बाबू से भी बढ कर तुम समझदार हो।"। ईश्वरचन्द्र चुप-

चाप खडे रहे। गुरुदेव ने फिर आगे बढ कर, शिष्य के दोनो हाथ पकड कर, अनेक अनुनय-विनय करते हुए वारम्वार अपने कष्ट का उल्लेख किया, पर विद्यासागर स्थिर शान्त-भाव से अपनी बात पर अटल बने रहे। इसके बाद ईश्वरचन्द्र ने खुद वाचस्पतिजी को बहुत कुछ समझाया, अनुराध किया। परन्तु वाचस्पतिजी ने नहीं माना। वाचस्पति महाशय परलोकगत रामदुलाल सरकार के वशधर छातू बाबू और लाटू बाबू के सभा-पण्डित थे। उक्त दोनो बाबू और नडाइल के प्रसिद्ध जमींदार बाबू रामरत्न राय इस बारे में प्रधान उद्योगी थे। इन्हीं के उद्योग से बारासात-निवासी एक गरीब ब्राह्मण की परमसुन्दरी बालिका के साथ वृद्ध वाचस्पतिजी का विवाह हो गया। ईश्वरचन्द्र को इस घटना से दारुण दु ख हुआ। ईश्वरचन्द्र को उसी दिन से वाचस्पतिजी पर कुछ खीझ भी पैदा हो गई थी, परन्तु गुरु-शिष्य का सम्बन्ध नहीं टूटा। एक दिन वाचस्पतिजी ने ईश्वरचन्द्र से कहा—"ईश्वर, तुम अपनी मा को देखने नहीं आये?" ईश्वरचन्द्र यह सुन कर रोने लगे। फिर एक दिन वाचस्पतिजी जबरदस्ती ईश्वरचन्द्र को अपने घर ले गये। जाते समय ईश्वरचन्द्र कालेज के चपरासी से दो रुपये माग कर लेते गये थे। दूर से गुरुवधू बालिका को प्रणाम करके उसके चरणो के पास दोनो रुपये रख कर ईश्वरचन्द्र बाहर निकल गये। उधर से वाचस्पतिजी आ रहे थे। वे फिर ईश्वरचन्द्र को हाथ पकड कर भीतर ले आये और दासी के द्वारा नववधू का घूँघट खुलवा कर उन्हें उनकी माता (गुरु स्त्री) के दर्शन कराये। बालिका को देख कर और उसके परिणाम को सोच कर ईश्वरचन्द्र की आँखो से आसुओ की झडी लग गई। उसके उपरान्त गुरुजी ने शिष्य से कुछ जलपान करने के लिए अनुरोध किया। किन्तु प्रतिज्ञा मे हिमवान् के समान अटल

ईश्वरचन्द्र किसी तरह जलपान करने के लिए राजी नहीं हुए। ईश्वरचन्द्र ने कहा—"इस घर मे मैं कभी जल ग्रहण नहीं कर सकता"। इसके कुछ दिनो बाद ही वालिका को जन्म भर के लिए दुखिया बना कर वृद्ध वाचस्पतिजी वैकुण्ठवास कर गये।

ईश्वरचन्द्र का हृदय कैसा कोमल और परन्तु सकातर था, सो केवल इस एक घटना से ही जाना जा सकता है। विद्यासागर वालिका विधवा के विवाह के पक्षपाती थे। बहुत सभव है कि इसी एक घटना से उनका हृदय विधवा वालिकाओ की दुर्दशा दूर करने के लिए दृढ हो गया हो।

परलोकवास के कुछ दिन पहले विद्यासागरजी के मुख से मैंने यह बात सुनी थी कि वे जिस समय पढते थे उस समय जब घर जाते थे तब विधवा-जीवन की शोक-पूर्ण हृदय-विदारक घटनायें सुन-कर बहुत ही कुढते और कष्ट पाते थे। एक बार घर जाने पर उन्होंने सुना कि उनके परिचित एक प्रतिष्ठित गृहस्थ की विधवा कन्या कुपथगामिनी हो गई थी। जब उसके गर्भ रह गया और सन्तान की सम्भावना हुई तब सब पिता, माता, भाई आदि घर के लोग मान-प्रतिष्ठा और जाति-रक्षा के लिए बहुत ही घबराये। ऐसी अवस्था में साधारणत जो उपाय किये जाते हैं वे ही उपाय यहाँ भी किये गये। परन्तु भावी को कौन टाल सकता है? उस विधवा के यथासमय एक पुत्र उत्पन्न हुआ और वह उत्पन्न होते ही सौर मे गला दबा कर मार डाला गया। इस घटना का वर्णन करते करते विद्यासागर की मुँह की बात मुँह मे ही रह गई। मानसिक ग्लानि और यन्त्रणा से भरी हुई उत्तेजना उनके सब अगो में झलकने लगी।

इन सब बातो से स्पष्ट प्रतीत होता है कि छात्रावस्था से ही इन सब कठिन सामाजिक समस्याओं को हल करने—अनेक प्रकार के

देश-हितकर कामो को सम्पन्न करने का सङ्कल्प वह कर रहे थे। इसीसे वह अपना व्याह नहीं करना चाहते थे। किन्तु पिता के रुष्ट हो जाने के भय से उन्होने विवाह कर लिया। इस बात से स्पष्ट जान पडता है कि पढने की अवस्था से ही इन सब सामाजिक विशृखलाओ और अत्याचारो के दृश्य उनके कोमल हृदय मे चोट पहुँचा रहे थे और वह इन सब अनिष्टो को मिटाने के लिए प्रस्तुत हो रहे थे।

जो लोग समाज के वह रहे प्रवाह की गति फिराने या समाज की धीमी गति तेज करने अथवा समाज-स्रोत का कूडा हटा कर दूर फेकने पर कमर कसते हैं उनके वैसे विचार को दृढ करने वाली दो एक घटनाये अवश्य उनको पहले देख पडती और उनके कोमल, किन्तु दृढ, हृदय पर अपना प्रभाव डाल जाती हैं।

ससार-जीवन की असारता, मनुष्य-शरीर की क्षणभङ्गुरता और दुस्सह दारिद्र्य को देख कर महायोगी शाक्यसिंह को वैराग्य हो आया था। इसी तरह हर एक समाज-सस्कारक के जीवन-चरित को पढ-कर देख लीजिए, यही बात पाइएगा। राममोहनराय ने सतीदाह रोकने के लिए प्राणपण से चेष्टा की, इँगलेंड गये। उनके सकल्प का सूत्रपात उनके ही घर की एक घटना से सम्बन्ध रखता है। राम-मोहन के बडे भाई की अकाल-मृत्यु होने पर उनकी थोडी अवस्था की विधवा भौजाई को कुल-प्रथा से लाचार होकर सती होना पडा था। उस समय का भयानक दृश्य (उस बालिका का चिल्लाना और प्राणरक्षा के लिए छटपटाना) देख कर उन्होने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक जिऊँगा इस प्रथा का प्रतिवाद करूँगा और हो सका तो इसे आईन की सहायता से उठवा दूँगा।

ईश्वरचन्द्र जवान भी नहीं हुए थे, उनकी विद्या-शिक्षा समाप्त भी नहीं हुई थी, उसी समय उनके हृदय में बाल-वैधव्य का भयानक

चित्र अङ्कित हो चुका था। उन्होने जो पिछले समय मे इस कुप्रथा के विरुद्ध घोर आन्दोलन उपस्थित करके सारे समाज को हिला डाला, उसका प्रथम सूत्रपात वृद्ध वाचस्पति की बालिका पत्नी का वैधव्य और दु ख देख कर ही हुआ था। पीछे की और सब घटनायें गौण-रूप से सहायक मानी जा सकती हैं। मेरी समझ मे तो ऐसा ही होना सभव और सगत है। बहुत लोगों की धारणा यह है कि अपनी माता के अनुरोध से उन्होने इस बारे मे विचार किया था। किन्तु यह ठीक नहीं है। मेरी लिखी "माता और लडके" नाम की पुस्तक मे विद्यासागर की माता भगवती देवी के चरित्र की कई घटनाओं का उल्लेख है। विद्यासागरजी ने खुद छपते समय उस पुस्तक के प्रूफ देखे थे। उस पुस्तक मे प्रसग पाकर इस बात का भी उल्लेख हुआ है कि विधवाविवाह के बारे मे उनकी माता का कितना सम्बन्ध था। उसमे इस बात की चर्चा भी नही है कि विधवा-विवाह प्रचलित कराने के लिए विद्यासागर से उनकी माता ने अनुरोध किया था। अपने हृदय की उत्तेजना से ही विद्यासागर इस बात पर उद्यत हुए थे। हाँ, यह बात जरूर है कि इस काम मे उन्हे माता-पिता से उत्साह और सहानुभूति प्राप्त हुई थी। अस्तु।

न्याय और दर्शन-शास्त्र की श्रेणी मे जिस समय विद्यासागर पढते थे उस समय दो महीने के लिए व्याकरण की द्वितीय श्रेणी के अध्यापक का पद खाली हुआ था। ईश्वरचन्द्र की योग्यता स्मरण करके कालेज के प्रिन्सिपल ने उन्हीं को दो महीने के लिए यह पद दिया। ईश्वरचन्द्र को चालीस रुपया माहवारी के हिसाब से अस्सी रुपये मिले। ईश्वरचन्द्र ने वे रुपये पिता के हाथ मे रखकर कहा—"इन रुपयो से आप तीर्थयात्रा कर आइए।" पुत्र की ऐसी पितृ-भक्ति और तीर्थयात्रा का अनुराग देख कर ठाकुरदास और अन्यान्य लोग

बहुत प्रसन्न हुए। पिता ने पुत्र की इच्छा के अनुसार उन रुपयों से अपने पिता की गया कर डाली।

पिता ने तीर्थयात्रा से लौट कर देखा, ईश्वरचन्द्र ने दर्शन-शास्त्र की परीक्षा में प्रथम होकर सौ रुपये, सर्वोत्कृष्ट रचना करके सौ रुपये, आईन की परीक्षा के पुरस्कार में पचीस रुपये और उत्तम हस्ताक्षरों के पुरस्कार में आठ रुपये, सब मिलाकर २३३) रुपये पाये हैं। ईश्वरचन्द्र ने सब रुपये पिता के हाथ में रख कर कहा, इन रुपयों से ऋण चुका डालिए। चार साल तक दर्शन-शास्त्र पढ कर अन्त को षट्-दर्शन की परीक्षा भी ईश्वरचन्द्र ने विशेष योग्यता के साथ पास कर ली। दर्शन-शास्त्र के अध्यापक जयनारायण तर्कपञ्चानन का कथन था कि "ऐसा मेधावी और अद्भुतकर्मा छात्र और कभी मैंने नहीं देखा। इसे पढाते समय मुझे बहुत गौर करना पडता था। पढाते समय जान पडता था कि ईश्वरचन्द्र जैसे बहुत दिन पहले इन शास्त्रों को पढ चुका है।" ईश्वरचन्द्र की प्रतिभा की प्रशंसा इससे अधिक और क्या हो सकती है! बहुत लोगों की धारणा है कि विद्यासागर के सम-सामयिक लोगों में कई आदमी पाण्डित्य में उनसे श्रेष्ठ थे। एक एक विषय के पाण्डित्य में ऐसा होना सम्भव है। किन्तु हर एक श्रेणी में प्रथम से शेष परीक्षा तक अव्वल नम्बर रह कर सर्वविद्या-विशारद होना सचमुच ही एक कठिन काम है। विद्यासागर ने जिन जिन विषयों को पढा, उन सबमें पारदर्शी हुए। उनके छात्र-जीवन की कीर्त्ति को न जानने के कारण ही शायद ऊपर लिखी हुई धारणा उत्पन्न हुई होगी। विघ्न-बाधा के पहाडों की पर्वा न करके, अनिर्वचनीय दु ख-कष्ट सहकर, सब विषयों के पढने में समान-भाव से मन लगाकर सफलता प्राप्त करना अलौकिक गुण-सम्पन्न प्रतिभा-शाली पुरुष का ही काम है। कोई व्याकरण में, कोई साहित्य में,

कोई न्याय मे, कोई दर्शन-शास्त्र मे और कोई धर्मशास्त्र मे विशेष प्रतिष्ठा के साथ श्रेष्ठ पण्डित हो तो कोई उतने आश्चर्य की बात नहीं। किन्तु जो पुरुष-रत्न हर एक विद्या मे सर्वोच्च पद प्राप्त कर सका हो उसकी योग्यता के सम्बन्ध मे मतामत प्रकट करने के लिए विशेषरूप से विचार करने की आवश्यकता है। किन्तु खेद की बात तो यह है कि हम लोगो को इस प्रकार विचार करके अपनी राय देने का अभ्यास नहीं। समझे या न समझें, थोडे समय में बहुत सी बातें बक कर बहुदर्शी बनने की आकाक्षा हमारे स्वभाव मे दाखिल हो गई है। यही कारण है कि अनेक अनभिज्ञ लोगो के मुख से विद्यासागर के सम्बन्ध में ऐसी बाते सुन पडती थीं। ऊपर जो विद्यासागर के सम्बन्ध में राय जाहिर की जा चुकी है उसके प्रमाण मे यहाँ पर सस्कृत-कालेज के अध्यक्ष और अध्यापको की सम्मति नीचे लिखी जाती है। ईश्वरचन्द्र को हिन्दू-कालेज से विद्यासागर की उपाधि के साथ जो प्रशसापत्र मिला था उसकी नकल यह है—

अस्माभि श्रीईश्वरचन्द्रविद्यासागराय प्रशसापत्र दीयते। असौ कलिकाताया श्रीयुतकम्पनीसस्थापितविद्यामन्दिरे १२ द्वादश वत्सरान् ५ पञ्च मासाश्चोपस्थायाधोलिखितशास्त्राण्यधीतवान्।

व्याकरणम्	श्रीगङ्गाधरशर्म्मभि
काव्यशास्त्रम	श्रीजयगोपालशर्म्मभि
अलङ्कारशास्त्रम	श्रीप्रेमचन्द्रशर्म्मभि
वेदान्तशास्त्रम्	श्रीशम्भुचन्द्रशर्म्मभि
न्यायशास्त्रम	श्रीजयनारायणशर्म्मभिः
ज्योति शास्त्रम्	श्रीयोगध्यानशर्म्मभि
धर्म्मशास्त्रञ्च	श्रीशम्भुचन्द्रशर्म्मभि-

सुशीलतयोपस्थितस्यैतस्यैतेषु शास्त्रेषु समीचीना व्युत्पत्तिरजनिष्ट। १७६३ एतच्छकाब्दस्य सौरमार्गशीर्षस्य विंशतिदिवसीयम्।

(Sd) Rasomay Datta,

10th December, 1841 *Secretary*

सब श्रेणियों के अध्यापकों ने ईश्वरचन्द्र ऐसे असाधारण धीशक्ति-सम्पन्न बालक के शिक्षक बन कर अपने को धन्य समझा। ऊपर जिन अध्यापकों के नाम प्रशंसा-पत्र में लिखे हैं वे अपनी अपनी विद्या में उस समय श्रेष्ठ पण्डित माने जाते थे। उन सबने मिल कर इक्कीस वर्ष की अवस्था के नवयुवक ईश्वरचन्द्र को विद्यासागर की उपाधि दी थी। इससे यही जान पड़ता है कि वह हर एक विषय में विशेषता रखते थे। सभी विद्याओं की तह में उनकी बुद्धि पहुँच जाती। अनेक बाधा-विघ्नों की उपेक्षा करके और कष्ट सह कर पढ़ने में ऐसा चाव दिखाना और उसमें सफलता प्राप्त करना दरिद्र दीन भारत के हर एक छात्र के लिए अनुकरणीय है। विद्यासागरजी ने निष्ठा के साथ ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए छात्रजीवन निबाहा। उनका छात्रजीवन दृढ़ता, सहन-शीलता, अध्यवसाय और स्वार्थत्याग का अत्यन्त उज्ज्वल आदर्श है। ऐसा गुणी बालक जिस घर में उत्पन्न हो उस घर के हर एक आदमी का सिर ऊँचा होता है। जिस देश के बालक और नौजवान विद्यासागर के आचरण का अनुसरण करेंगे वह देश विशेष गौरवशाली होगा। जिस विद्यालय में विद्यासागर ने शिक्षा पाई उसका स्थापित होना सफल हो गया।

सन् १८२९ में ईश्वरचन्द्र संस्कृत-कालेज में भर्ती हुए थे। उस समय तक अँगरेजी शिक्षा का बहुत प्रचार नहीं हुआ था। कलकत्ते के और उसके आस-पास के बहुत से प्रतिष्ठित धनी मानी लोग मिल कर पाश्चात्य शिक्षाप्रणाली के अनुकरण पर इस देश के बालकों

सहायता लेना स्वीकार किया गया। इस कारण इसी समय से बङ्गाल मे अँगरेजी-शिक्षा के बहुल प्रचार का आरम्भ हुआ, यह कहना ही सङ्गत होगा। *

घनघटा से घिरी हुई अमावस की आधी रात के घोर अन्धकार मे नींद का मजा ले रहे लोग सहसा बढ़िया के जल मे बह कर जिस अवस्था को प्राप्त होते हैं, ठीक वही हालत यहाँ अँगरेजी-शिक्षा का पहला प्रवाह आने पर हुई थी। नये भावो और नये विचारो का स्रोत बिजली की तरह तीव्र-तेज से चारों ओर चकाचौंध पैदा करता हुआ फैलने लगा। नये प्रकाश मे नौजवान लोग राह भूल कर इधर उधर भटकने लगे। युवक फिरङ्गी प्रोफेसर डिरोजिओ इस नव्य सम्प्रदाय के दीक्षागुरु थे। कृष्णमोहन बनर्जी, हरचन्द्र घोष, रसिक-कृष्ण मल्लिक, दक्षिणारञ्जन मुकर्जी, रामगोपाल घोष, रामतनु लाहिड़ी, राधानाथ सिकदार, माधवचन्द्र मल्लिक, गोविन्द बसाक आदि उस समय के नवयुवक, विचारो और भावो के उच्च उदार बनाने मे, वर्त्तमान सम्प्रदाय के पिता कहे जा सकते हैं। मि० डिरोजिओ की सहृदयता, विद्या, बुद्धि और पाण्डित्य के मधुर आकर्षण से बहुत से युवक मिल कर एकाडेमी नाम की सभा मे धर्म्म, समाज-तत्त्व और अन्यान्य आवश्यकीय विषयो की आलोचना करने लगे। डेविड हेयर हर अधिवेशन मे उपस्थित होते थे। समय समय पर गवर्नर-जेनरल वेन्टिंक महोदय के प्राइवेट सेक्रेटरी कर्नल बेन्सन भी उस सभा मे उपस्थित हो, उपदेश और उत्साह दे कर सभासदो को अनुगृहीत करते थे। उस समय के प्राचीन समाज-सञ्चालको को यह नया उद्योग देख कर भय के साथ चिन्ता भी हुई। उन्होने दबाव डाल कर नये

* Account taken from the Biography of David Hare by Pyari Chandra Mittra

को शिक्षा दिलाने का उद्योग कर रहे थे। सन् १८१७ की २०वीं जनवरी को, सोमवार के दिन, गरानहट्टा मे गोराचांद वसाक के घर पर, प्रात स्मरणीय हेयर, हेरि गटन और सर हाइड ईस्ट आदि सहृदय अँगरेजो और बहुत से एतद्देशीय भद्र पुरुषों के उत्साह और आग्रह से हिन्दूकालेज का सूत्रपात हुआ था । किन्तु उसके चिरस्थायी और उन्नत होने के सम्बन्ध मे बहुत कुछ सन्देह बना ही रहा। क्योंकि उस समय तक उसकी उन्नति के लिए गवर्नमेंट का उतना आग्रह नहीं देख पडता था और इधर उद्योगी पुरुषों ने उसके लिए कोई चेष्टा भी नहीं की थी। एक समय धन न होने के कारण जब हिन्दूकालेज का अस्तित्व मिटने चाहता था, और उधर गवर्नमेंट ने केवल संस्कृत-कालेज स्थापित कर शिक्षा के सम्बन्ध मे अपने कर्त्तव्य की इतिश्री कर देनी चाही थी, तब महात्मा राममोहनराय के आवेदन और डाकृर विल्सन की चेष्टा से गवर्नमेंट ने यहाँ की शिक्षा के सम्बन्ध मे फिर से ध्यान दिया। इस समय इस कार्य मे हेयर साहब ने बडी सहायता की थी। अगर वे प्राणपण से चेष्टा और उद्योग न करते तो वर्त्तमान जोरदार पाश्चात्य शिक्षा का प्रवाह बहुत पीछे पडा हुआ होता। सन् १८२४ मे १२४०००) की लागत से हेयर साहब की दी हुई जमीन के ऊपर संस्कृतकालेज और हिन्दूकालेज की सम्मिलित इमारत बनना शुरू हुई। भवन तैयार होने पर उसमें संस्कृत-कालेज सहित हिन्दू-कालेज स्थापित हुआ। किन्तु उस समय भी धन की कमी से कभी कभी हिन्दू-कालेज के बन्द होने की सम्भावना जान पडने लगती थी । अन्त को निरुपाय होकर कालेज के सञ्चालकों ने गवर्नमेंट से सहायता मागी। शिक्षा-सम्बन्धिनी नीति पर हस्तक्षेप न करके केवल अपने दिये धन के सद्व्यय के सम्बन्ध में गवर्नमेंट को दृष्टि रखने का अधिकार देने की शर्त पर सरकारी

सहायता लेना स्वीकार किया गया। इस कारण इसी समय से बङ्गाल मे अँगरेज़ी-शिक्षा के बहुल प्रचार का आरम्भ हुआ, यह कहना ही सङ्गत होगा। *

घनघटा से घिरी हुई अमावस की आधी रात के घोर अन्धकार मे नींद का मजा ले रहे लोग सहसा बढ़िया के जल म बह कर जिस अवस्था को प्राप्त होते हैं, ठीक वही हालत यहाँ अँगरेज़ी-शिक्षा का पहला प्रवाह आने पर हुई थी। नये भावों और नये विचारो का स्रोत बिजली की तरह तीव्र-तेज से चारो ओर चकाचौध पैदा करता हुआ फैलने लगा। नये प्रकाश में नौजवान लोग राह भूल कर इधर उधर भटकने लगे। युवक फिरङ्गी प्रोफेसर डिरोजिओ इस नव्य सम्प्रदाय के दीक्षागुरु थे। कृष्णमोहन बनर्जी, हरचन्द्र घोष, रसिक-कृष्ण मल्लिक, दक्षिणारञ्जन मुकर्जी, रामगोपाल घोष, रामतनु लाहिडी, राधानाथ सिकदार, माधवचन्द्र मल्लिक, गोविन्द बसाक आदि उस समय के नवयुवक, विचारो और भावो के उच्च उदार बनाने मे, वर्त्तमान सम्प्रदाय के पिता कहे जा सकते हैं। मि० डिरोजिओ की सहृदयता, विद्या, बुद्धि और पाण्डित्य के मधुर आकर्षण से बहुत से युवक मिल कर एकाडेमी नाम की सभा में धर्म्म, समाज-तत्त्व और अन्यान्य आवश्यकीय विषयो की आलोचना करने लगे। डेविड हेयर हर अधिवेशन मे उपस्थित होते थे। समय समय पर गवर्नर-जेनरल वेन्टिक महोदय के प्राइवेट सेक्रेटरी कर्नल वेन्सन भी उस सभा मे उपस्थित हो, उपदेश और उत्साह दे कर सभासदो को अनुगृहीत करते थे। उस समय के प्राचीन समाज-सञ्चालको को यह नया उद्योग देख कर भय के साथ चिन्ता भी हुई। उन्होने दबाव डाल कर नये

---

* Account taken from the Biography of David Hare by Pyari Chandra Mittra

विचारो और भावो को दवाना चाहा। लेकिन वही दशा हुई कि "मरज बढता गया ज्यों ज्यों दवा की"। नवीन विचारो की लहर चारो ओर फैलने लगी। अनेक लोगो ने उसका विरोध करना चाहा, किन्तु विपरीत फल देख कर वे चुप हो गये। सबसे पहले जिन्होने नवीन विचारो की जननी नवीन शिक्षा को स्वीकार किया वे प्राय सभी विद्यासागर महाशय के समसामयिक थे। जिस समय विद्यासागर विद्यालय मे थे उसी समय वे लोग भी पढते थे। विद्यासागरजी सस्कृत-कालेज मे और वे हिन्दू-कालेज मे शिक्षा पाते थे। नित्य हेलमेल के कारण विद्यासागरजी से सबसे विशेष मित्रता थी। रामगोपाल घोष, हरचन्द्र घोष, दक्षिणारञ्जन मुकर्जी, रामतनु लाहिडी आदि अनेक तेजस्वी छात्र विद्यासागर के घनिष्ठ मित्र थे। सन् १८४१ के दिसम्बर महीने मे विद्यासागरजी की शिक्षा समाप्त हो गई। सन् १८४२ की पहली जून को बङ्गाली छात्रों के परम सुहृद् डेविड हेयर की मृत्यु हुई। उस समय सारे कलकत्ते मे शोक छा गया। डेविड हेयर के कई स्मारको मे एक सभा भी हर साल उनकी मृत्यु के दिन होती चली आती है। उस सभा मे बन्धुबान्धवो सहित विद्यासागर महाशय प्राय उपस्थित होते थे।

विद्यासागरजी जब कालेज से पढ कर निकले उस समय अच्छी अँगरेजी पर अच्छी तरह अधिकार न होने पर भी अँगरेजी के भावो और विचारो से वह अच्छी तरह परिचित हो चुके थे। अँगरेजी सीखने की आवश्यकता का अनुभव करके ईश्वरचन्द्र ने सस्कृत-कालेज छोडने पर अँगरेजी पढने का प्रबन्ध किया। उस समय एक ओर अन्धविश्वास के अधीन होकर पुराने खयाल के लोग अपने भाग्य को दोष देते हुए अलस भाव से दिन बिता रहे थे और दूसरी ओर नवीन भाव और नवीन उद्योग का जोरदार प्रवाह तत्कालीन

युवक-मण्डली को किसी अज्ञात-मार्ग की तरफ बहाये लिये जा रहा था। विद्यालय की शिक्षा समाप्त होने के बाद कर्मक्षेत्र के द्वार पर खड़े होकर नव-युवक विद्यासागर ने देखा कि एक तरफ कूड़े-करकट से भरी हुई जंगल सी वन-भूमि बहुत से रत्नों की खान होने पर भी अज्ञता और कुसंस्कार की मजबूत बेड़ियों से जकड़ी हुई है, और दूसरी तरफ विचित्र दर्शनीय तारागण के प्रतिबिम्ब से सुशोभित और जल के उच्छ्वास से परिपूर्ण सागर उनके मन और नयनों को अपनी ओर खींच रहा है, किन्तु कितने ही भीषणकाय तिमि और मगर उसके भीतर लुके हुए हैं। विद्यासागर ने इन दोनों दृश्यों के सन्धिस्थल में खड़े होकर दिव्य दृष्टि से अपने भावी सङ्कल्प का मार्ग देख पाया। उनके हृदय के नेत्रों ने यह अंगीकार कर लिया कि वे उन्हें इन दोनों तरह की बाधाओं के बीच सदा सुमार्ग दिखाते रहेंगे। ईश्वरचन्द्र ने प्राच्य और पाश्चात्य भावों को मिला कर अपना नया मार्ग तैयार कर लिया। वह पूर्व के कुसंस्कार और पश्चिम के आडम्बर को छोड़कर निष्ठावान् और कर्त्तव्य-परायण वीर पुरुष के योग्य मार्ग में दिन दिन अग्रसर होने लगे। अँगरेजी और संस्कृत की शिक्षा के मेल से मनुष्य कैसी महामूल्य सम्पत्ति का अधिकारी हो सकता है, यह जानना हो तो विद्यासागर के जीवन-चरित का अनुशीलन करना चाहिए। वे दोनों शिक्षाओं का बुरा हिस्सा छोड़ कर उनके रत्नों के सञ्चय से अपने जीवन की शोभा और सौन्दर्य्य बढ़ा कर हम लोगों के सामने वर्त्तमान समय की जीवन-समस्या की मीमांसा कर गये हैं। वे अनेक गुणों के आधार थे। उनके सम्बन्ध में माननीय रमेशचन्द्रदत्त सी० आई० ई० की राय उद्धृत करके यह अध्याय समाप्त किया जाता है।

"ईश्वरचन्द्र की ऐसी विद्या और बुद्धि सबमें नहीं होती। ईश्वरचन्द्र की ऐसी ओजस्विता, मानसिक बल और दृढ प्रतिज्ञा सबकी नहीं हो सकती। ईश्वरचन्द्र की ऐसी जगत् को वश करने वाली सहृदयता, उदारता और उपकार करने की प्रवृत्ति सबके नहीं होती। किन्तु तो भी शायद हम ईश्वरचन्द्र की बातें याद करके सीधे रास्ते पर चलना सीख सकते हैं, कर्त्तव्य-पालन के लिए उद्योग कर सकते हैं, ढोंग करना छोड सकते हैं। जो समाज का उपकार करनेवाली है, जिसे प्राचीन हिन्दू-धर्म मानता है उसी प्रथा को हम लोग क्रमशः ग्रहण करना सीखें।"

पाँचवाँ अध्याय।

कर्म्मक्षेत्र में विद्यासागर।



अब तक जो कुछ लिखा गया उसका सम्बन्ध बालक ईश्वरचन्द्र से था। हमने देखा कि बचपन में वे बड़े उपद्रवी थे। विद्यालय में वे आदर्श बालक के रूप में भी देख पड़े। उनके अध्ययन और गवेषणा से सन्तुष्ट होकर सभी लोगों ने उनकी प्रशंसा की। किन्तु अब तक उनके जीवन-चरित का पहला ही अङ्क हमारे सामने था। अभी तक उनका सुकुमार सौरभमय जीवन कुसुमकली के रूप में ही हमको देख पड़ता था। उनके जीवन-कुसुम की कीर्त्तिसुवास ने देश को सुगन्धित कर दिया। परन्तु वे इस समय तक बालक ही हैं। विद्यार्थी बालक जो कर सकता है उसके अत्यन्त उज्ज्वल दृष्टान्त को पीछे छोड़ कर वे जीवन की भारी ज़िम्मेदारी से परिपूर्ण कर्मक्षेत्र-द्वार पर खड़े हुए। उनके जीवन के जिस अंश में घटना-वैचित्र्य, स्वार्थत्याग के अद्भुत दृष्टान्त, लोक-सेवा की अक्षय कीर्त्ति और देवदुर्लभ प्रेम ने सफलता प्राप्त की—सहन-शीलता, क्षमा और निर्भीकता की सजीव प्रति-मूर्त्ति ने पूर्णता प्राप्त की, हम इस समय उनके जीवन-चरित के उसी अंश की ओर धीरे धीरे अग्रसर होते हैं। इसी अंश में हमारे जातीय-जीवन के सब अमूल्य रत्न छिपे हुए हैं।

इसी अश में वर्त्तमान मोहमुग्ध और मृतप्राय जातीय-जीवन को जिलाने वाली मृतसञ्जीविनी विद्या भरी हुई है। दु ग्व यही है कि मुझ सरीखे थोडी बुद्धि के अयोग्य आदमी के द्वारा उन रत्नों का सुन्दर सग्रह होना सर्वथा असभव है। मुझसे अच्छे सुयोग्य पुरुष के हाथो यह काम होता तो न जानें कैसी सुन्दर माला बन कर मातृ-भाषा के साहित्य का वैभव बढाती। वह माला शिक्षित देशवासियो के गले का हार होकर उन्हे सर्वत्र जयमाला दिलाती।

कलकत्ते के फोर्ट विलियम-कालेज में मार्शल साहब की मातहती में सबसे पहले विद्यासागर ने नौकरी की। मधुसूदन तर्कालङ्कारजी के मरने पर उक्त कालेज के प्रधान पण्डित का पद खाली हुआ। उस पद को पाने के लिए कई लोगों ने जोर मारे। इधर विद्यासागरजी कालेज की पढाई समाप्त करके कुछ दिनो के लिए वीरसिंह मे जाकर माता के पास सुग्व से समय बिता रहे थे। पहले जब मार्शल साहब सस्कृत-कालेज के प्रिन्सपल थे तब से वह विद्यासागर को बहुत अच्छी तरह जानते थे। ईश्वरचन्द्र की असाधारण श्रमशीलता, अदम्य अध्यवसाय, अद्भुत बुद्धिमानी, सुन्दर हस्ताक्षर, कविता-रचना की निपुणता और सब विषयो पर समान अनुराग देख कर मार्शल साहब की उन पर विशेष कृपा थी। इस समय खाली जगह पर विद्यासागर को रखने के इरादे से मार्शल साहब सस्कृत-कालेज मे जयनारायण तर्कपञ्चाननजी के पास आये। पूछने पर साहब को मालूम हुआ कि आजकल वह कलकत्ते से बहुत फासले पर अपने गांव में हैं। मार्शल साहब ने तर्कपञ्चाननजी से कहा कि आप उन्हे अभी किसी तरह यह खबर दीजिए। तर्कपञ्चानन ने बडे बाजार में विद्यासागर के पिता के पास आदमी भेजा। खबर पाते ही ठाकुरदास घर गये और अपने साथ विद्यासागर को कलकत्ते ले आये। इसी

सन् १८४१ के शेषभाग में विद्यासागरजी पचास रुपये माहवारी पर परलोकगत तर्कालङ्कारजी के पद पर नियुक्त हुए। विलायत से आये हुए सिविलियन लोग यहाँ देशी भाषायें सीख कर परीक्षा देने के बाद नौकरी पाते थे। जो सिविलियन इस परीक्षा में पास न हो सकते थे उन्हें विलायत लौट जाना पडता था। विलायत में सिविलियनों के लिए आज कल की तरह उस समय प्रतियोगि-परीक्षा नहीं कायम हुई थी। उस समय सिविलियन लोग हालिबरी-कालेज में पढ कर यहाँ नौकरी करने आते थे। इन लोगों की परीक्षा विद्यासागरजी लेते थे। इस कालेज के काम में विद्यासागर ने जैसी दृढता दिखलाई और आग्रह के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन किया उससे मार्शेल साहब उन पर बहुत प्रसन्न रहने लगे। इस परीक्षा में पास न होकर जिन सिविलियनों को विलायत लौट जाना पडता था उनको बेहद रंज होता था। इसी कारण मार्शेल साहब ने विद्यासागर से परीक्षा लेने में कुछ रिआयत करने के लिए कहा। इसके उत्तर में युवक विद्यासागर ने बहुत ही स्पष्ट तौर पर कह दिया कि यह काम मुझसे न होगा, नौकरी छूट जाय तब भी अन्याय न करूँगा। विद्यासागर महाशय पीछे से एक अद्भुत-कर्म्मा वीर पुरुष हुए और उसकी सूचना ऐसी बातों द्वारा पहले ही हो चुकी थी। गरीब के लडके ने कल्पनातीत कष्ट सह कर जीवन का पहला अंश बिताया और उसके बाद ५०) की नौकरी, जो औरों के लिए उस समय महामूल्य सम्पत्ति थी, पाकर उसे कर्त्तव्य के आगे तुच्छ समझा। यह बात आज कल के बडे बडों में नहीं पाई जाती। उन्होंने बिना किसी सङ्कोच के साहब से कह दिया कि थोडे से भी अन्याय को आश्रय देने के पहले ही वह नौकरी छोड कर चल देंगे। मार्शेल साहब बडे सज्जन थे। केवल इसी ख्याल से उन्होंने विद्यासागरजी

से ऐसा अनुरोध किया था कि विलायत से नौकरी के लिए हिन्दुस्तान मे आना और फिर यहा से निराश होकर विलायत लौट जाना सिविलियनो के लिए बहुत ही असुविधा और कष्ट की बात थी। किन्तु विद्यासागर की न्यायनिष्ठा देख कर रुष्ट होने के बदले साहब सन्तुष्ट ही हुए।

नौकरी के साथ ही साथ विद्यासागर को अँगरेजी पढना भी शुरू करना पडा। वह अँगरेजी और हिन्दी साथ ही साथ सीखने लगे। सुविख्यात वक्ता बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के पिता प्रसिद्ध डाक्टर दुर्गाचरण बनर्जी विद्यासागरजी के परम मित्र थे। उक्त डाक्टर साहब कलकत्ते मे, तालतल्ले मे, रहते थे। वे प्राय विद्यासागरजी के घर आया करते थे। विद्यासागरजी ने पहले दुर्गाचरण बाबू से ही अँगरेजी सीखना शुरू किया। इसके बाद श्रीयुत राजनारायण वसुजी से कुछ दिन अँगरजी सीखी। वसुजी के साथ विद्यासागरजी की मित्रता हो गई और वह मित्रता जन्म भर बनी रही। इसके बाद कुछ दिन नीलमाधव मुकर्जी ने विद्यासागर को अँगरेजी पढाई। फिर उन्होने राजनारायण गुप्त नामक एक युवक को १५) महीना देकर अपना अँगरेजी का शिक्षक बनाया। हिन्दी सीखने के लिए भी १०) महीने का एक हिन्दुस्तानी पण्डित नौकर रक्खा। थोडे ही दिनो मे अँगरेजी और हिन्दी में उन्हें खासी योग्यता हो गई।

बाबू सुरेन्द्रनाथजी के पिता दुर्गाचरण बाबू तब तक डाक्टर नहीं हुए थे। वे उस समय हेयर स्कूल में मास्टरी करते थे। इसी समय फोर्टविलियम कालेज मे हेडराइटर का पद खाली हुआ। विद्यासागर ने मार्शल साहब से अनुरोध करके दुर्गाचरण बाबू को ८०) माहवारी पर, इस पद पर, नियुक्त करा दिया। दुर्गाचरण बाबू इधर यह नौकरी करते रहे और उधर मेडिकल कालेज मे अलग से पढ कर डाक्टरी

की योग्यता प्राप्त की और अन्त को डाकृरी ही करने लगे। विद्या-सागरजी के भाई श्रीयुत शम्भुचन्द्र विद्यारत्न का कथन है कि दुर्गाचरण बाबू को कलकत्ते में ही रखने के लिए विद्यासागरजी ने बहुत कोशिश की थी। डाकृर बाबू ने भी लोकसेवा के काम में विद्यासागरजी की यथेष्ट सहायता की। नीलमाधव बाबू ने भी डाकृरी पास करके अनेक प्रकार से विद्यासागरजी को सहायता पहुँचाई।

संसार में जन्म लेकर जिन्होंने प्रसिद्धि प्राप्त की है। जिनके जन्म लेने से जन-समाज का मुख उज्ज्वल हुआ है, जिनके आन्दोलन से संसार हिल उठा है, जिनके आविर्भाव से संसार की शिथिलता और मलिनता दूर हुई है उनमें से अनेक लोगों को अपनी पहली अवस्था गरीबी के कष्ट में ही बितानी पड़ी है। उन्होंने साधारण अवस्था और साधारण तैयारी से संसार को जीवन के बड़े कामों की सूचना दी है। अमेरिका के युक्त राज्य के भूतपूर्व प्रेसीडेन्ट महात्मा गारफील्ड एक किसान के लड़के थे। खेती करने, लकड़ी लाने और जहाज के मामूली काम करने में ही उनके बचपन का अधिकांश समय बीता था। फ्रांस के सम्राट् नेपोलियन पहले एक मामूली सिपाही थे। यूरोप के उदाहरणों को जाने दीजिए, अपने यहाँ देखिए। धर्म्म और समाज के संस्कारक प्रसिद्ध वक्ता केशवचन्द्रसेन पहले २०) के क्लर्क थे। निर्भीक और स्वाधीनचेता हिन्दूपैट्रियट के सम्पादक बाबू हरिश्चन्द्र मुकर्जी भी पहले एक मामूली क्लर्क थे। जिन विद्यासागर ने श्रमशीलता, सहिष्णुता, कार्य्यकुशलता और प्रखर प्रतिभा के पराक्रम से सारे वङ्ग-समाज को विस्मित कर दिया उन्होंने भी पहले ५०) महीने की साधारण नौकरी की। विद्यासागर गरीब के लड़के थे और इसी कारण हम उनका इतना आदर करते हैं कि उस गरीबी में ही उन्होंने अपनी ऐसी आशातीत उन्नति कर

दिखाई। यह बङ्गाली जाति भर के लिए विशेष गौरव की बात है कि उन्होंने वर्णनातीत दु ख, कष्ट की दारुण यन्त्रणा मे पड कर भी शान्त भाव से जीवन के मार्ग मे अग्रसर होकर अपनी अतुल कीर्त्ति का जयस्तम्भ ससार मे स्थापित कर दिया। प्रात स्मरणीय महापुरुषो मे उनकी गिनती की जा सकती है।

विद्यासागर ने खुद नौकर होने पर पिता से नौकरी छोड देने के लिए अनुरोध किया। पहले वे और लोगो की सलाह से नौकरी छोडने मे आनाकानी करते रहे। अपने मे शक्ति के रहते इस तरह पुत्र के अधीन होने मे पहले उन्होंने अनिच्छा प्रकट की। किन्तु पुत्र के अधिक अनुनय-विनय करने पर उन्हे नौकरी छोड कर घर जाना ही पडा। नौकरी छोडने के समय वे १०) माहवारी तनख्वाह पाते थ। विद्यासागरजी ने उन्हे हर महीने २०) की सहायता देने का वादा किया। विद्यासागर ने नौकर होते ही सबसे पहले पिता के बहुत दिन के क्लेश को दूर करना चाहा। इसी से जाना जा सकता है कि वे कितने बडे पितृभक्त थे। होश सँभालते ही उन्होंने पिता के मुख से उनकी दु ख की कहानी सुनी थी और छात्रावस्था मे पिता के पास रह कर उनकी तकलीफो और असुविधाओ को अपनी आखो से देखा था। इसी से अपने हाथ-पैर चलते ही उन्होंने पिता को विश्राम देना चाहा। हर महीने विद्यासागरजी पिता को बीस रुपये भेज देते थे। शेष तीस रुपयो से उन्हे दो सगे भाइयो का, दो चचाजात भाइयो का, दो बुआ के लडको का, एक मौसी के लडके का, एक पुराने नौकर का और अपना भरणपोषण करना पडता था। सब भाइयो मे बडे और कमाऊ होने पर भी विद्यासागरजी रसोई बनाने आदि के कामो मे बराबर सहायता करते रहते थे। बडे बाजार के डेरे मे सब आदमियो का गुजर न होने पर विद्या-

सागरजी ने बहूबाजार में प्रसिद्ध हृदयराम बनर्जी का सदर मकान किराये पर ले लिया।

विद्यासागरजी सबेरे ९ बजे तक मास्टर से अँगरेजी पढ़ कर यथा-समय कालेज जाते और फिर तीसरे पहर हिन्दी का अभ्यास करते थे। किन्तु विद्यासागर ऐसे सुतीक्ष्ण बुद्धि वाले अध्यवसायशील पण्डित के लिए इतना ही काम यथेष्ट न था। अँगरेजी के योग्य विद्वान् बाबू श्यामाचरण सरकार, रामरत्न मुकर्जी आदि अनेक हमजोली के बन्धु संस्कृत सीखने के लिए विद्यासागरजी के पास आते थे। बाबू राज-कृष्ण बनर्जी भी अपने स्वभाव के कारण इसी समय से विद्यासागरजी के विशेष स्नेह-पात्र बन गये। वह अँगरेजी की पढ़ाई एक प्रकार से समाप्त ही कर चुके थे। विद्यासागरजी की ओर उनका अनुराग दिनोदिन बढ़ने लगा। एक दिन विद्यासागर के मझले भाई दीनबन्धु के मुख से मेघदूत का मधुर पाठ सुन कर उन्हें संस्कृत पढ़ने की प्रबल इच्छा हुई। उन्होंने विद्यासागर से अपनी इच्छा प्रकट की। विद्यासागरजी उन्हें संस्कृत पढ़ाने के लिए राजी हो गये। किन्तु उन्होंने सोचा कि राजकृष्ण बाबू की अवस्था अधिक है, संस्कृत सीखने में अधिक समय लगने से उनका ऊब जाना सर्वथा सम्भव है। इस कारण मुग्धबोध व्याकरण की समय-सापेक्ष शिक्षा देने के बदले व्याकरण पढ़ाने का कोई ऐसा सहज ढँग निकालना चाहिए जिसमें समय थोड़ा लगे और काम उतना ही हो। यह सोच कर उन्होंने राजकृष्ण बाबू से कहा कि तुमको एक सहज उपाय से व्याकरण पढ़ाऊँगा। दूसरे दिन राजकृष्ण बाबू ने आकर देखा कि उन्हें संस्कृत पढ़ाने के लिए विद्यासागर ने बँगला अक्षरों में वर्णमाला से लेकर शेष तक एक नये ढँग का व्याकरण लिख डाला है। इसी हस्तलिखित व्याकरण से राजकृष्ण बाबू की संस्कृत-शिक्षा का सूत्रपात हुआ। अन्त को

इसी व्याकरण से "उपक्रमणिका" बनी और प्रकाशित हुई। "उपक्रमणिका" विद्यासागर की उद्भावनी शक्ति का एक विचित्र प्रमाण है। इसका सभी ढँग नया है। इस छोटी सी पुस्तक की सहायता से हर एक आदमी अनायास थोडे दिनो में सस्कृत सीख सकता है। यह एक ग्रन्थ ही उनकी बुद्धिमत्ता का एक श्रेष्ठ निदर्शन है।

राजकृष्ण बाबू खुद परिश्रमी और पुरुपार्थी पुरुप थे, और उस पर विद्यासागर का पढाने का ढँग भी सहज और मनोरञ्जक था। थोडे ही दिनो मे राजकृष्ण बाबू ने मुग्धबोध व्याकरण पढ लिया। छ महीने मे मुग्धबोध पढ लेने की अद्भुत बात सुन कर सब लोग सन्नाटे मे आ गये। छात्र और शिक्षक, दोनो की यह विचित्र सफलता देख कर लोग बहुत विस्मित हुए। इसके पहले ही मार्शल साहब ने सस्कृत कालेज में जूनियर और सीनियर परीक्षाये नियत कर दी थीं। विद्यासागर ने राजकृष्ण बाबू से जूनियर परीक्षा देने के लिए कहा। राजकृष्ण भी इस परीक्षा के लिए तैयारी करने लगे। किन्तु सहसा एक दिन विद्यासागर को मालूम हुआ कि एक असहाय ब्राह्मण जूनियर वृत्ति पाता है और उसी के सहारे सस्कृत पढ रहा है। अगर राजकृष्ण बाबू परीक्षा में पास हो जायँगे तो उस गरीब ब्राह्मण की वृत्ति बद हो जायगी और साथ ही उसका पढना लिखना भी बद हो जायगा। दयालु विद्यासागर ने उसी दिन राजकृष्ण बाबू से जूनियर परीक्षा न देने के लिए कह दिया। उन्होंने भी विद्यासागर जी से सहमत होकर अपना विचार बदल दिया। इस घटना से दोनों बधुओं की सहृदयता का यथेष्ट परिचय प्राप्त होता है। इसके बाद विद्यासागर ने राजकृष्ण बाबू को सीनियर परीक्षा देने के लिए उत्साहित किया। राजकृष्ण बाबू ने

उसके उत्तर में सकोच के साथ कहा, "मैं सीनियर परीक्षा दे सकूँगा ?" विद्यासागर ने कहा—"क्यो न दे सकोगे। हाँ, परिश्रम अधिक करना पडेगा। तुम नित्य भोजन करने के बाद मेरे साथ फोर्टविलियमकालेज जा सकते हो ?" राजकृष्ण बाबू ने स्वीकार कर लिया। वह रोज विद्यासागर के साथ कालेज जाकर दिन भर विद्यासागर की सहायता से लिख पढ कर सीनियर परीक्षा देने के लिए तैयार होने लगे। रात को भी वह विद्यासागर के पास आकर पढते थे। उसी समय और भी कई आदमी शाम के बाद विद्यासागरजी के पास सस्कृत पढने आने लगे। किन्तु राजकृष्ण बाबू बहुत रात गये तक रह कर लिखते पढते थे। इस प्रकार दिन रात परिश्रम करके ढाई वर्ष में राजकृष्ण बाबू ने सीनियर परीक्षा पास कर ली। पहली बार १५) रु० महीने की और दो वर्ष बाद प्रथम श्रेणी की २०) रु० महीने की वृत्ति उन्होंने पाई। पाँच छ वर्ष कठिन परिश्रम करने पर भी जिस परीक्षा मे सफलता प्राप्त करना कठिन होजाता है उसी परीक्षा को ढाई वर्ष मे पास कर लेने की बात सुन कर झुण्ड के झुण्ड मास्टर और विद्यार्थी राजकृष्ण बाबू और उनके गुरु विद्यासागर को देखने आने लगे। इसके बाद अन्तिम परीक्षा देने की इच्छा रहने पर भी घोर परिश्रम करने से शरीर अस्वस्थ हो जाने के कारण राजकृष्ण बाबू वह परीक्षा नहीं दे सके।

ईश्वरचन्द्र के सहपाठियों मे मदनमोहन तर्कालङ्कार का नाम विशेष रूप से उल्लेख के योग्य है। सस्कृत कालेज में व्याकरण की श्रेणी मे पढते समय ईश्वरचन्द्र और मदनमोहन मे मित्रता हो गई। वह मित्रता धीरे धीरे बहुत बढ गई। विद्यासागरजी जिन शुभ कार्यो के लिए उद्योग करते थे उन कार्यों मे मदनमोहन आग्रह के साथ सहायता करते थे। अनेक अच्छे कामों में दोनों मित्रो का ऐसा आग्रह देख

पडता था कि कौन परिचालक है और कौन परिचालित है, यह समझना कठिन हो जाता था। विद्यासागर की प्रकृति थी कि वह जिसके अनुकूल हो जाते थे उसके प्रतिकूल या उससे उदासीन कभी नहीं होते थे। विद्यासागर की चेष्टा से तर्कालङ्कार जी को पहले कलकत्ते के वगविद्यालय मे प्रधान शिक्षक का पद प्राप्त हुआ। उसके बाद एक साल से अधिक समय के लिए जब विद्यासागरजी बारासात के गवर्नमेण्टस्कूल के प्रधान पण्डित होगये तब कलकत्ते के फोर्टविलियम कालेज मे साहबों को (Civil) सम्पत्ति-विषयक आईन पढाने के लिए ४०) रु० माहवारी की एक जगह खाली हुई। विद्यासागर के कहने से मदनमोहन तर्कालङ्कार को वह जगह मिली। अपने सभी सहपाठियों से वह इसी तरह के सलूक किया करते थे। उन्होने चेष्टा और यत्न करके गिरिशचन्द्र विद्यारत्न, मुक्ताराम विद्यावागीश, द्वारकानाथ विद्याभूषण आदि अनेक सहपाठियो को नौकर रखा दिया था।

तर्कालङ्कार ऐसे बन्धुओ की भलाई सोचते हुए राजकृष्ण बाबू ऐसे प्रिय मित्रों की उन्नति मे तन मन लगा कर पिता को २०) रु० महीने की सहायता देना और बचे हुए तीस रुपयों से कलकत्ते मे नव दस आदमियो का भरण-पोषण करना और फिर रोटी बनाने में भी भाइयो की सहायता करना विद्यासागर ऐसे परिश्रमी और सयमी महापुरुष का ही काम था। वह इतना ही काम नहीं करते थे। खुद भी शास्त्रों का अनुशीलन किया करते थे। इसके सिवा मार्शल साहब की भी सहायता करनी पडती थी। सस्कृतकालेज की सीनियर और जूनियर परीक्षाओ के प्रश्न तैयार करने का काम मार्शल साहब को सौपा जाता था। मार्शल साहब यह काम विद्यासागर से लेते थे। वे प्रश्न ऐसे वैसे नहीं होते थे। व्याकरण, काव्य, साहित्य, स्मृति, वेदान्त आदि सभी विषयो के प्रश्न तैयार करने पडते थे। विद्यासागर

के बनाये प्रश्न के पर्चों मे बडे बडे पण्डित कोई दोष नहीं निकाल सकते थे। विद्यासागर का हर एक काम ऐसा सुन्दर होता था कि खोजने पर भी कोई दोष नहीं निकाला जा सकता था। वह बात चलने मे बडे ही साहसी थे। रसोई बनाने मे और गृहस्थी के कामों मे भी वह होशियार थे। वह लोक-सेवा करके पिता-माता से भी अधिक आत्मीय बन सकते थे। विद्यालय में वह एक सुयोग्य शिक्षक के रूप मे देख पडते थे। अन्त समय वह सब बातों मे सम्पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त कर चुके थे। इसका कारण यही था कि वह जिस काम मे हाथ डालते थे उसे जी लगा कर पूरा कर डालते थे। आरम्भ किये काम की उपेक्षा करना या उसमें ढिलाई डालना उनके स्वभाव के बिल्कुल विरुद्ध था। इसके साथ ही यह बात भी थी कि जिस काम को समझते थे कि मैं कर न सकूँगा उस काम मे कभी हाथ नहीं लगाते।

जिस समय ऐसे आग्रह और निष्ठा के साथ वह फोर्ट विलियम कालेज में काम कर रहे थे उस समय एक दिन तत्कालीन गवर्नर जेनरल लार्ड हार्डिंज बहादुर कालेज देखने आये। कुछ देर तक विद्यासागर से लाटसाहब बात चीत करते रहे। इसी प्रसङ्ग मे विद्यासागर ने कहा कि "संस्कृत कालेज से पास हो कर निकले विद्यार्थियों की ओर गवर्नमेंट का ध्यान नहीं है। उन लोगों के लिए केवल जज-पण्डित का पद था, सो वह भी अब उठा दिया गया है। इस कारण अब संस्कृत सीखने की रुचि लोगो मे घटती जाती है। संस्कृत कालेज के छात्रों की संख्या भी धीरे धीरे कम होती जाती है। अतएव संस्कृत कालेज से परीक्षा पास कर निकले हुए युवकों [illegible] या नौकरी का प्रबन्ध कुछ न कुछ होना चाहिए"। इस पर लार्ड हार्डिंज ने विद्यासागर के प्रस्ताव के अनुसार एक सौ एक [illegible]

में, सारे बगाल में, एक सौ एक बँगला-स्कूल स्थापित कर दिये। उन स्कूलो मे सस्कृतकालेज के विद्यार्थी मास्टरी पाने लगे। इसके साथ ही साथ एक ओर जैसे विद्यासागर के कार्य की जिम्मेदारी और परिश्रम बढ गया वैसे ही दूसरी ओर सस्कृत कालेज की प्राचीन शिक्षक-मण्डली उनसे ईर्ष्या करने लगी और अन्यान्य पण्डित लोग उनके विरोधी बन बैठे। इन एक सौ एक स्कूलो के स्थापित होने पर उनमे शिक्षक नियुक्त करने और उनकी परीक्षा लेने का काम मार्शल साहब और विद्यासागर को सौंपा गया। सस्कृतकालेज के शिक्षक तो इस लिए विद्यासागर से डाह करने लगे कि विद्यासागर से वृद्ध और अभिज्ञ पण्डितों को छोड कर वेही क्यो परीक्षक चुने गये? और अन्यान्य पण्डितो के विरोधी होने का कारण यह था कि विद्यासागर जी अपने-पराये का विचार न करके योग्य पुरुष को ही मास्टरी के लिए चुनते थे। इस व्यवस्था से अनेक उम्मेदवारो को हताश होना पडता था। जो लोग सब बातो मे सब से अधिक योग्य होते थे उन्हे ही नौकरी मिलती थी। जो लोग इस तरह हताश होते थे वे विद्यासागर जी की इधर उधर निन्दा करते फिरते थे। किन्तु जिन दृढप्रतिज्ञ न्यायनिष्ठ महापुरुष ने सिविलियनो से रिआयत का बर्ताव करने के लिए प्रस्ताव करने पर प्रिन्सिपल मार्शल साहब से कह दिया कि यह काम मुझसे न होगा, वह किसी के डाह या निन्दा करने से कैसे विचलित हो सकते थे? लोक-निन्दा के भय से कर्तव्यपालन मे त्रुटि करना या जान बूझ कर अन्याय करना विद्यासागर की दृष्टि मे महापातक था। सन् १८४६ मे बडे लाट हार्डिज साहब के स्थापित किये बँगला-स्कूल अभी तक कहीं कहीं मौजूद हैं और वे हार्डिज-बङ्ग-विद्यालय कहलाते हैं।

इस तरह के जिम्मेदारी के कामो को अपने हाथ में लेना और उन्हें अच्छी तरह पूरा करना ही एक आदमी के लिए कठिन बात है। किन्तु अद्भुत शक्तिशाली विद्यासागर के लिए यह कुछ बडी बात न थी। वह नित्य के अनेक प्रकार के आवश्यक काम करके उसके उपरान्त दुखी का दुख दूर करने और रोगी की चिकित्सा और सेवा की सुव्यवस्था करने के लिए रणसज्जा से सुसज्जित अश्वारोही नेपोलियन की तरह दिन रात प्रस्तुत रहते थे। किन्तु विद्यासागर के अस्त्र-शस्त्र और ही तरह के थे। सागूदाना, मिसरी, वेदाना, किशमिश आदि बाहरी और स्नेह, ममता, सेवा-शुश्रूषा, दौड-धूप, डाक्टर बुलाना आदि मानसिक अस्त्र थे। इन्हीं अस्त्र-शस्त्रो से वह पराये दु ख और रोग आदि से लडते थे। इतना ही नहीं, वह फोर्ट विलियम कालेज मे साहबो को बँगला, हिन्दी और सस्कृत पढाते थे। सस्कृत का इतना विस्तृत साहित्य है कि उसमे नवीन पुस्तक रचने की उतनी आवश्यकता नहीं। वह अनन्त समुद्र है। अनुसन्धान करने से अनेक अमूल्य रत्न उसमे पाये जा सकते हैं। किन्तु उस समय बँगलासाहित्य का हाल अच्छा न था। उसमे पढने लायक पुस्तके न थीं। दो चार को छोड कर सभी पुस्तकें अपाठ्य थीं। बगाल में एक सौ एक हार्डिज बग-विद्यालय स्थापित होने पर विद्यासागर को यह भी चिन्ता हुई कि बँगला में पुस्तके बननी चाहिए। विद्यासागर की पहली पुस्तक वासुदेवचरित है, जिसका पता अब चला है।

इसी समय सस्कृतकालेज मे व्याकरण की प्रथम और द्वितीय श्रेणी के अध्यापको के पद खाली हुए। प्रथम श्रेणी के अध्यापक की तनख्वाह थी ९०) रु० माहवारी। शिक्षा-कमेटी के अध्यक्ष डाक्टर मैट साहब इस पद पर एक आदमी नियुक्त करने के लिए मार्शल साहब के पास सलाह करने गये। सलाह करके दोनो साहबों ने यह

निश्चय किया कि वह पद विद्यासागर को देना चाहिए। विद्यासागरजी से जब यह प्रस्ताव किया गया तब उन्हों ने अपनी अनिच्छा प्रकट करके मार्शल साहब से कहा—"महाशय, मुझे रुपये का लालच नहीं है। आपके पास रहना ही मुझे पसन्द है। यहाँ रहने से मुझे नित्य नये नये उपदेश मिलेंगे"। नौजवान विद्यासागर जी वृद्ध मार्शल साहब से नित्य नई बातें सीखने के लिए भी प्रस्तुत रहते थे।

विद्यासागर ने यह वादा किया कि इन दोनो पदों के लिए मैं दो योग्य पुरुष खोज दूँगा। आश्चर्य है कि ५०) रु० महीने के नौकर विद्यासागर ने ८०) रु० महीने की नौकरी आप नहीं की और वह पद दूसरे को दिला दिया। स्वार्थत्याग का ऐसा कठिन काम देखकर सब लोग दग रह गये। मार्शल साहब बड़ी कोशिश करके भी विद्यासागर को राजी न कर सके। अन्त को मार्शल साहब ने पूछा कि "तुम किसे इस पद के योग्य समझते हो?" विद्यासागरजी ने सर्वशास्त्रविशारद तारानाथ तर्कवाचस्पति का नाम लेकर कहा कि "वह अद्वितीय वैयाकरण हैं। मेरी समझ मे पहला पद उन्हीं को मिलना चाहिए"। सुना जाता है कि विद्यासागरजी ने तर्कवाचस्पतिजी से नौकर करा देने का वादा किया था। सनीचर के दिन यह बातचीत हुई। सोमवार के दिन उस जगह पर आदमी आ जाना चाहिए था। पत्र लिखने से उसका उत्तर विलम्ब मे आता। यह भी निश्चय न था कि तर्कवाचस्पतिजी यह नौकरी करेंगे या नहीं। विद्यासागरजी उसी दिन रात को एक आत्मीय पुरुष को साथ लेकर कालना चल दिये। रात भर चलकर दूसरे दिन दोपहर को कालना पहुँचे। वाचस्पतिजी और उनके पिता को जब विद्यासागरजी के इस तरह पैदल चलकर इतनी दूर आने का कारण मालूम हुआ तब वे दोनो कृतज्ञता-पूर्ण विस्मय से विह्वल हो गये। मार्शल साहब की इच्छा जता-

कर और वाचस्पतिजी के प्रशसापत्र और अर्जी लेकर उसी दिन विद्यासागरजी कलकत्ते को लौट पडे। उनका साथी थक गया था, उसे नाव पर कलकत्ते भेजना पडा। विद्यासागरजी चलने मे शेर थे। इसके सिवा उनका हृदय दया का स्रोत था। परन्तु स्वन्कातर ईश्वर-चन्द्र को परोपकार के लिए घोर से घोर परिश्रम और कष्ट की पर्वा नहीं रहती थी। वह अपने उठाये हुए काम को पूरा कर डालने की हिम्मत और शक्ति रखते थे। कर्त्तव्य-पालन से कोई उन्हे हटा ही नहीं सकता था। वह अपना सर्वस्व और जीवन तक उस पर से निछावर कर सकते थे। ऐसे परोपकारी दयालु पुरुष बहुत कम होते हैं। दूनी आमदनी का मौका छोड कर वह फायदा दूसरे को पहुँचाना और दिन रात राह चलकर तीस कोस पर, ठीक समय पर, मित्र को खबर देना! यह क्या साधारण आदमी का काम है? केवल यही घटना विद्यासागर की मानसिक उच्चता और हृदय की उदारता का अनुमान कर लेने के लिए काफी है। विद्यासागर के चरित मे ऐसी अनेक घटनायें हैं। उन्हे हम 'जाति' का जीव कहे तो कुछ अत्युक्ति न होगी। उनके मानसिक भाव और विचार ऊँचे दर्जे के थे। वह सदा पवित्र और अच्छे कामो को सोचा करते थे। वह मनुष्य-लोक मे रहकर भी स्वर्गीय-भावो मे मग्न रहते थे।

इसके बाद व्याकरण की द्वितीय श्रेणी के शिक्षक का पद और लाइब्रेरियन की जगह खाली हुई। अर्जियो के, सिफारिशी चिट्ठियो के, ढेर लग गये। विद्यासागर ने परीक्षा लेना निश्चित किया। मैट साहब ने भी स्वीकार कर लिया। परीक्षा मे पास होकर द्वारकानाथ विद्याभूषण पहले पद पर और गिरिशचन्द्र विद्यारत्न दूसरे पद पर नियत हुए। शिक्षक को ५०) मासिक और लाइब्रेरियन को ३०) रु० मासिक मिलने लगा। इन्हीं दोनो आदमियो को नौकर रखाना

विद्यासागर को अभीष्ट भी था। अपने दोनो मित्रो की नौकरी लग जाने से विद्यासागरजी को विशेष आनन्द हुआ।

यह हम पहले ही कह आये हैं कि विद्यासागरजी पिता और माता को ही सचो देवता समझते थे। विद्यासागर की पितृ-भक्ति का पहले कुछ वर्णन किया जा चुका है। अब मातृ-भक्ति का कुछ हाल लिखा जाता है। ईश्वरचन्द्र लोक-सेवा मे एक थे। मित्रों का भी उन्हें वैसा ही खयाल रहता था। उनके पिता उनसे सदा सन्तुष्ट रहे। उनकी माता भी सदा उनसे प्रसन्न रहीं। जिन दिनो विद्यासागरजी फोर्टविलियमकालेज मे बडी प्रतिष्ठा के साथ काम कर रहे थे उस समय मँझले भाई शम्भुचन्द्र विद्यारत्न के व्याह में माता ने ईश्वरचन्द्र को बुला भेजा। विद्यासागरजी ने मार्शल साहब से छुट्टी माँगी। किन्तु उस समय इतना काम था कि विद्यासागर को छुट्टी दे देने से बडी गडबड हो जाने की सम्भावना थी। इसीसे साहब ने छुट्टी देने से इनकार कर दिया। कलकत्ते के डेरे मे जितने आदमी थे सब चले गये थे। भाई का व्याह, माता की आज्ञा, मगर छुट्टी नहीं मिली। माता की आज्ञा का खयाल करके ईश्वरचन्द्र को रात भर नींद नहीं पडी। सवेरा होते ही ईश्वरचन्द्र ने मार्शल साहेब से मुलाकात करके कहा— "मेरी माता ने मुझे बुलाया है। मुझे घर जाना ही पडेगा। अगर आप छुट्टी नहीं दे सकते तो मेरा इस्तीफा मज़ूर कीजिए"। विद्यासागर की मातृ-भक्ति से सन्तुष्ट होकर साहब ने छुट्टी दे दी। ईश्वरचन्द्र ने प्रसन्नता के साथ उसी दिन यात्रा कर दी। साथ में एक नौकर था। वर्षा की ऋतु थी। रास्ते सब खराब हो गये थे। चलना कठिन हो रहा था। इस प्रकार कुछ दूर चलकर उस दिन दामोदर नद के इस पार ही विद्यासागरजी टिक रहे। दूसरे दिन विद्यासागर ने देखा कि नौकर उनके साथ चलने में असमर्थ है। तब उसे लौटा

दिया। इच्छा न रहने पर भी उसे लौट जाना पडा। उसी दिन व्याह था। ईश्वरचन्द्र को उसी दिन घर पहुँचना था। वह जानते थे कि अगर मैं न पहुँचूँगा तो माता को बडा कष्ट होगा। वह बडी तेजी से चलने लगे। दामोदर नद का किनारा आ गया। बरसात में दामोदर नद का बडा वेग होता है। पार ले जाने वाली नाव उस किनारे पर थी। उसके इस पार आने और फिर उस पार जाने भर का ही दिन था। ईश्वरचन्द्र ने मातृभक्ति के आवेश में वह काम कर उठाया जिस पर कोई सहज ही विश्वास न करेगा। उन्होने दानव के समान हाहाकार करके वह रहे वर्षा के नद को तैर जाना चाहा और वही कर दिखाया। रास्ते में माता की ननिहाल पातुल-गांव में स्नान-पूजन करके विना कुछ भोजन किये ही सनासन चलते हुए ईश्वरचन्द्र को रास्ते मे एक और नदी मिली। वह उसे भी तैर गये। चलते चलते मैदान मे शाम होगई। वहाँ पर लुटेरो का बडा खटका रहता था। ईश्वरचन्द्र माता के चरणो का ध्यान करके आगे बढे। दो घटे रात बीते ईश्वरचन्द्र घर पहुँच गये। उस समय बरात चली गई थी। घर मे सन्नाटा पडा था। ईश्वरचन्द्र की आवाज कान मे पडते ही माता के जैसे जान आ गई। मातृभक्त ईश्वरचन्द्र ने माता की आज्ञा का पालन करके ही जल ग्रहण किया। माता-पिता की ऐसी दृढभक्ति और उसके लिए ऐसा साहस बहुत कम देखा जाता है। माता की आज्ञा का पालन करने के लिए जान को जोखिम मे डाल देना सहज काम नहीं है। आजकल के सुशिक्षित लोग चाहे ऐसी माता-पिता की भक्ति को पागलपन कहे, मगर विचार कर देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि माता-पिता पर भक्ति-श्रद्धा घटा देने से ही इस जाति का यह अध पात हुआ है। भाई भारतवासियो, विद्यासागर के चरित्र से माता-पिता की भक्ति करना सीखो। ऐसा उत्तम आदर्श इस युग में मुश्किल से मिलेगा।

फोर्टविलियमकालेज मे जो साहब देशी भाषायें सीखते थे उनमे से सीटनकार, कास्ट, चैपमैन, ग्रे, ग्रान्ट, हालिडे, वीडन, लार्ड ब्राउन, ईडेन आदि प्रतिष्ठित सिविलियन विद्यासागर को बहुत मानते और उनकी इज्जत करते थे। राबर्ट कास्ट नामक एक सिविलियन फोर्टविलियम कालेज मे पढते थे। वह मौका पाते ही विद्यासागरजी से मिलते और बातें करते थे। परिचय और आत्मीयता बढने पर कास्ट साहब ने एक दिन विद्यासागर से कहा कि आप मेरे नाम के दो संस्कृत श्लोक बना दीजिए तो मुझे बडी खुशी होगी। विद्यासागर ने दम भर मे ये दो श्लोक बना दिये —

श्रीमान् राबर्टकास्टोऽद्य विद्यालयमुपागत ।
सौजन्यपूर्णैरालापैर्निंतरा मामतोपयत् ॥
स हि सद्गुणसम्पन्न सदाचाररत सदा।
प्रसन्नवदनो नित्य जीवत्वब्दशत सुखी ॥

श्लोक और उनका अर्थ सुनकर साहब बहुत ही खुश हुए। साहब ने दो सौ रुपये पुरस्कार के तौर पर विद्यासागर को दिये। विद्यासागर ने वे रुपये खुद न लेकर उनसे संस्कृत-कालेज के सर्वोत्कृष्ट पद्य-रचना करने वाले छात्र को प्रतिवार ५०) रुपये देने की व्यवस्था कर दी। धन-लोभ से सयमी विद्यासागर सदा बचे रहे। वह अनायास प्राप्त धन से इसी प्रकार सत्कार्य कर डाला करते थे। इसी कारण अँगरेजों मे उनका बडा मान था।

ऊपर जिस ५०) रु० की वृत्ति का उल्लेख हो चुका है उसी परीक्षा में दूसरे साल विद्यासागर के मँझले भाई दीनबन्धु न्यायरत्न और श्रीशचन्द्र विद्यारत्न की रचना सर्वोत्कृष्ट समझी गई। दोनो की रचनायें सुन्दर थीं। श्रीशचन्द्र की रचना मे व्याकरण की भूलें भी थीं, पर दीनबन्धु की रचना बिलकुल निर्दोप थी। किन्तु दीनबन्धु को

इनाम नहीं मिला। इसका कारण यह था कि परीक्षक और पुरस्कार दिलाने वाले विद्यासागर थे। दीनवन्धु विद्यासागर के भाई थे। उन्हे पुरस्कार मिलने से लोग कहेंगे कि दोनो की रचना अच्छी थी तो दीनवन्धु को ही क्या पुरस्कार मिला, श्रीशचन्द्र को क्यों नही मिला? यही सोचकर विद्यासागर ने ऐसा किया। इसको एक प्रकार का विचार-विभ्राट् कह सकते हैं, किन्तु उसमे नि स्वार्थभाव, न्यायनिष्ठा और मनुष्यत्व का बहुत ही सुन्दर आभास प्राप्त होता है। स्वार्थ और परार्थ के संग्राम मे साधु लोग सदा परार्थ के पक्षपाती होकर अपनी हानि करने मे नहीं हिचकते। विद्यासागर भी इसी श्रेणी के साधु महात्मा थे।

परीक्षा पास करके कास्ट साहब पजाव के सिविलियन हो गये। बडी नामवरी के साथ काम करके स्वदेश को लौटते समय वह विद्यासागरजी से मिलने के लिए कलकत्ते आये। उस समय भी वह पाँच श्लोक विद्यासागरजी से वनवा ले गये। विद्यासागरजी अपनी इच्छा से भी कभी कभी कविता करते थे। वह गद्य और पद्य, दोनो प्रकार की रचना मे सिद्धहस्त थे। उन्होने देशभ्रमण, सन्तोप, क्रोध, मेघ आदि अनेक विपयो के ऊपर समय समय पर अनेक रचनायें की थीं। इसके अलावा उन्होंने शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, शाकद्वीप और अमेरिका, इँगलैंड, फ्रान्स, आफ्रिका और एशिया के सम्वन्ध में ४०८ श्लोक भी वनाये थे। विद्यासागर के भाई शम्भुचन्द्र विद्यारत्नजी का कहना है कि उन्होने इन सव कविताओ का संग्रह रख छोडा था, पर जिसके पास उन्होंने रक्खा था उसकी असावधानता के कारण वह संग्रह खो गया। जो कुछ वचा था वह वँगला सन् १२९६ मे विद्यासागरजी ने खुद प्रकाशित कर दिया था।

विद्यासागर ने एक सिविलियन साहव (जान मियर) के कहने से सूर्यसिद्धान्त और पुराणों के लेखानुसार पाश्चात्य गणित से भूगोल

और खगोल के सम्बन्ध मे कुछ श्लोकवद्ध रचना की थी, उसके लिए उन्हे सौ रुपये पुरस्कार के भी मिले थे। इस रचना से भी उनकी विद्या-बुद्धि का विशेष परिचय प्राप्त होता है।

राममाणिक्य विद्यालङ्कार के मरने पर संस्कृतकालेज के सहकारी सम्पादक की जगह खाली हुई। शिक्षाकमेटी के अध्यक्ष मैट साहब मार्शल साहब से सलाह करने गये कि इस जगह पर कौन योग्य आदमी रक्खा जाय। मैट साहब ने कहा कि अँगरेजी और संस्कृत मे विशेष व्युत्पन्न और कालेज की सर्वाङ्गीन उन्नति चाहने वाला आदमी चाहिए। यही निश्चित हुआ कि यह पद विद्यासागर को दिया जाय। विद्यासागर से बुलाकर कहा गया। विद्यासागर ने स्वीकार तो कर लिया, किन्तु मार्शल साहब से कहा कि "यदि वहाँ मेरी न पटेगी या कहासुनी की नौबत आवेगी तो मैं अन्याय की बात न मानकर नौकरी छोड दूँगा। मुझे अपने लिए कुछ सोच नहीं है। मेरे नौकरी छोड देने पर पिताजी को असुविधा होगी। इसी सोच से मैं कुछ इधर उधर कर रहा हूँ। मेरा मँझला भाई दीनबन्धु भी अच्छा पण्डित है। उसे अगर आप यहाँ मेरी जगह पर रख सकें तो मैं संस्कृत-कालेज के सहकारीसम्पादक का पद ग्रहण कर सकता हूँ"। मार्शल साहब ने स्वीकार कर लिया। विद्यासागरजी सन् १८४६ में एप्रिल के महीने से ५०) रु० माहवारी पर संस्कृत-कालेज के सहकारी सम्पादक हो गये।

आज संस्कृतकालेज जिस अवस्था में है उसी अवस्था मे पहले न था। उस समय वहाँ देहाती पाठशालाओ का ऐसा मनमाना काम होता था। उस समय के अधिकांश अध्यापक कुर्सी पर सुख की नींद सोते थे और विद्यार्थी बेचारे पसा झलकर नींद के मजे को बढाते थे। ऐसे अध्यापक तीसरे पहर विद्यार्थियो को पाठ पढाते थे। शिक्षको और

विद्यार्थियो के आने जाने का कोई नियम न था। जब जिसकी इच्छा होती थी, आता था, जब जिसकी इच्छा होती थी, चला जाता था। विद्यासागरजी ने कालेज का काम हाथ मे लेते ही सबसे पहले अध्यापको की नींद का प्रबन्ध किया। छात्रो और शिक्षको के आने-जाने का समय निर्दिष्ट होगया। पहले यह था कि जब जो बालक चाहता था तब वह कालेज के बाहर चला जाता था। विद्यासागरजी ने 'पास' लेकर बाहर जाने का नियम प्रचलित कर दिया। पहले जिसकी जो इच्छा होती थी वह वही करता था। विद्यासागरजी के समय में सब को सेक्रेटरी की अनुमति लेनी पडती थी। परीक्षा लेने का भी ढँग बदल देने से उस साल कालेज की परीक्षा का फल और भी अच्छा रहा। इससे सम्पादक बाबू रसमयदत्त और शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर मैट साहब भी विद्यासागर पर बहुत खुश हुए। विद्यासागरजी ने पाठ्य-पुस्तको मे जो कवितायें अश्लील समझीं उन्हें निकाल दिया। व्याकरण का पढना पहले बडा कठिन था। उसमे समय अधिक लगता था और परिश्रम भी बहुत करना पडता था। उन्होने व्याकरण पढने का ऐसा ढँग निकाला कि बहुत कुछ सुगमता होगई। उन्होंने साहित्य-श्रेणी के छात्रो के लिए अङ्क-शिक्षा की व्यवस्था कर दी। मतलब यह कि उन्होंने सब प्रकार से संस्कृतकालेज की उन्नति की।

इसी समय एक दिन विद्यासागरजी किसी विशेष काम के लिए हिन्दू-कालेज के प्रिन्सिपल कार साहब से मिलने गये। साहब शायद बंगाली जाति पर उतने अनुकूल न थे। कार साहब टेबिल के ऊपर पैर फैलाये आधे लेटे हुए कुर्सी के ऊपर बैठे रहे और विद्यासागरजी को खडे रहना पडा। विद्यासागरजी ने चुपचाप इस अपमान को सह लिया और अपना काम करके चले आये। लेकिन उन्हें यह बात नहीं भूली। दस पाँच दिन के बाद कार साहब को विद्यासागर के

पास आना पडा। विद्यासागरजी को भी मौका मिल गया। वह भी साहब बहादुर से उसी तरह मिले। वह भी टेबिल पर टाँगे फैलाये कुर्सी पर डटे रहे। साहब को खडे खडे बातचीत करनी पडी। साहब इस पर कुपित हुए। उन्होने यह हाल मैट साहब से कहा।

मैट साहब ने विद्यासागर से जवाब तलब किया। विद्यासागर ने कहा—"मैंने सोचा था कि हम काले आदमी और इसीसे असभ्य हैं। साहब का वर्त्ताव देख कर मैंने समझा कि किसी के आने पर इसी प्रकार उसकी अभ्यर्थना की जाती है। मैं हिन्दू-कालेज के अध्यक्ष कार साहब से ऐसा ही शिष्टाचार सीख आया था और मौका पडने पर साहब को वह सम्मान दिखाने में मैंने कुछ भी कृपणता नहीं की। इसमें अगर मुझसे कुछ दोष हुआ हो तो उसके लिए ऐसे व्यवहार की शिक्षा देने वाले कार साहब ही जिम्मेदार हैं। मुझे इसमें अपना दोष कुछ भी नहीं जान पडता।"

मैट साहब विद्यासागर के इस स्वाभिमान और तेजस्विता को देख कर खुश हुए। उन्होंने कार साहब से इसके लिए अनुरोध किया कि वह विद्यासागर से मिल कर मेल कर ले। कार साहब ने ऐसा ही किया। इस स्वाधीनचित्तता और स्वाभिमान ने ही सर्वत्र विद्यासागर को विजय दिलाई। वह ऐसे निर्भीक थे कि कभी किसी से नहीं दबे।

इसी समय संस्कृत कालेज मे साहित्य-श्रेणी के अध्यापक का पद खाली हुआ। कालेज के सेक्रेटरी बाबू रसमयदत्त और शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर मैट साहब ने विद्यासागर से इस पद पर काम करने के लिए बहुत कुछ अनुरोध किया। इस पद पर काम करने से अधिक तनख्वाह मिलती। किन्तु विद्यासागर ने इस खयाल से इस पद पर काम करना अस्वीकार कर दिया कि फिर कालेज की आन्तरिक उन्नति में सहायता करने का सुयोग न प्राप्त हो सकेगा। विद्यासागर ने उस

पद पर एक सुयोग्य अध्यापक रख देने का वादा कर लिया। विद्यासागर की इच्छा थी कि मदनमोहन तर्कालङ्कार उस पद पर नियुक्त किये जायँ। उस समय सर्वानन्द विद्यावागीश अस्थायीरूप से उस पद पर काम कर रहे थे। बहुत लोगों की इच्छा थी कि उक्त वृद्ध ब्राह्मण स्थायीरूप से उस पद पर नियुक्त कर दिये जायँ। किन्तु विद्यासागर इस बात पर किसी तरह राजी नहीं हुए। इसका प्रधान कारण यह था कि वह पण्डित जी अक्सर कुर्सी पर सुख की नींद सोया करते थे। बारम्बार हुलास सूँघने पर भी उनकी आंखें अच्छी तरह नहीं खुलती थीं। दूसरा कारण यह था कि विद्यासागरजी मदनमोहन तर्कालङ्कार को इस काम में उनसे योग्य समझते थे। अन्त को विद्यासागरजी के विशेष अनुरोध से मदनमोहन तर्कालङ्कारजी ही उस पद पर नियुक्त हुए। इससे पहले वह कृष्णनगर के कालेज मे सस्कृत पढाते थे और वहां उन्हे ५०) मासिक मिलता था। उनके आने मे जितने दिन की देरी हुई उतने दिन विद्यासागर ने खुद उनका काम किया।

इसी समय विद्यासागर के चौथे भाई हरचन्द्र पढने लिखने के लिए कलकत्ते में आये। सब भाइयों में अधिक बुद्धिमान् होने के कारण हरचन्द्र को विद्यासागरजी बहुत चाहते थे। विद्यासागर का विचार था कि पढा-लिखा कर उस बालक के द्वारा गाँव के गरीब बालकों को सुशिक्षा देने का प्रबन्ध कर देंगे। किन्तु कुटिल काल ने उनकी यह इच्छा पूर्ण न होने दी। बारह वर्ष की अवस्था मे वह बालक चल बसा। उसकी अकालमृत्यु से विद्यासागर को इतना दु ख हुआ कि कई महीने तक उनका लिखना पढना और शास्त्र-चर्चा भी बन्द रही। वह अच्छी तरह खाते न थे, रात को नींद न पडती थी और अक्सर अकेले रोया करते थे। शोक

का वेग कुछ कम होने पर विद्यासागरजी फिर पहले की तरह शुभ कार्य्यों में और शुभ-चिन्ता में लग गये।

इस घटना के कुछ दिन बाद कालेज की कार्य्यप्रणाली के विषय में सेक्रेटरी रसमयदत्त से विद्यासागरजी की कुछ अनबन हो गई। अपनी व्यवस्था में उलट फेर होते देख कर स्वाधीनचेता और दृढ़-प्रतिज्ञ ईश्वरचन्द्र ने नौकरी छोड़ दी। रसमयदत्त और मैट साहब ने बहुत कुछ अनुरोध किया, समझाया, किन्तु ईश्वरचन्द्र ने नहीं माना। बन्धु-बान्धवों और आत्मीय स्वजनों ने भी समझाया। किसी किसी ने खीझ कर कहा कि "नौकरी छोड़ दोगे तो खाओगे क्या?" निर्भीक वीर पुरुष विद्यासागर ने कहा कि "तरकारी बेचूँगा। मोदी की दूकान करूँगा, किन्तु जिस नौकरी में सम्मान नहीं उसे नहीं करूँगा।" स्वाधीनचित्तता का इस से बढ़ कर उज्ज्वल आदर्श और क्या हो सकता है। किसी के अधीन होकर चलना उनके स्वभाव के विरुद्ध बात थी। किसी की तावेदारी करने, किसी का मुँह ताकने, और किसी की कृपादृष्टि पाने की आकांक्षा से वह घृणा करते थे। नौकरी छोड़ने पर वह कुछ भी चिन्तित नहीं हुए। उनका वह प्रसन्न भाव वैसा ही बना रहा। उनके यहाँ जो अनाथ छात्र भोजन पाते थे वे उसी तरह भोजन पाते रहे।

इन दिनों मँझले भाई दीनबन्धु को जो ५०) मिलते थे उनसे कलकत्ते के घर का खर्च चलता था। विद्यासागर को पिता की सहायता के लिए प्रतिमास ५०) ऋण लेना पड़ता था। इसी तरह कुछ समय बीता। इस अवसर में विद्यासागरजी ने कई ग्रन्थ भी लिखे। इन्हीं दिनों मैट साहब के अनुरोध से कप्तान बैंक को विद्यासागर ने संस्कृत, बँगला और हिन्दी सिखलाई। शिक्षा समाप्त होने पर ५०) मासिक के हिसाब से साहब विद्यासागर को वेतन देने लगे।

किन्तु ऐसे आर्थिक अभाव के समय मे भी निर्लोभ ब्राह्मण विद्यासागर ने वेतन नहीं लिया। कारण पूछने पर विद्यासागर ने कहा कि "आप मैट साहब के परम मित्र हैं और मैं भी उन्हें अपना परम हितैषी समझता हूँ। इस कारण मैं आप से वेतन नहीं ले सकता।" वर्तमान समय मे ब्राह्मण-वश का ऐसा अध पात हुआ है, और लोगों मे अर्थ-लालसा ऐसी प्रबल हो गई है कि इस बात पर बहुत लोगों को विश्वास ही न होगा। विद्यासागर जी ने नौकरी छोड दी थी, कलकत्ते के घर मे साठ सत्तर आदमी भोजन करते थे हर महीने ऋण लेकर पिता को ५०) भेजने पडते थे। आश्चर्य है कि ऐसी अवस्था मे भी विद्यासागर ने साहब के दिये रुपये नहीं लिये। उस समय तीन चार सौ रुपये ले लेने से उन्हें बहुत कुछ सुभीता होता, किन्तु साधारण शिष्टाचार के खयाल से विद्यासागर ने रुपये नहीं लिये। यह घटना उनके हृदय की उच्चता और मन की दृढता का एक उज्ज्वल उदाहरण है।

नौकरी छोडने के बाद सन् १८४९ तक विद्यासागर ने कहीं कोई नौकरी नहीं की। इन्हीं दिनो विद्यासागरजी के परम मित्र दुर्गाचरण बनर्जी फोर्टविलियमकालेज मे हेडराइटर के पद पर काम करते हुए मेडिकलकालेज मे चिकित्सा-शास्त्र पढते थे। इस साल परीक्षा पास करके उन्होने डाक्टरी शुरू कर दी। कालेज के हेडराइटर का पद खाली हुआ। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि विद्यासागर जी की चेष्टा से ही दुर्गाचरण बाबू को यह पद मिला था। इस समय मार्शल साहब के विशेष अनुरोध करने पर विद्यासागरजी को यह पद स्वीकार करना पडा। किन्तु बहुत दिनों तक वह इस पद पर नहीं रहे। संस्कृत कालेज के साहित्य-श्रेणी के अध्यापक मदनमोहन तर्कालङ्कार के उदर-रोग हो गया। उन्हें कलकत्ता छोडने

के लिए चिकित्सकों ने सलाह दी। इसी समय मुर्शिदाबाद मे जज-पण्डित की जगह खाली हुई। बेथून साहब तर्कालङ्कारजी को बहुत चाहते थे। उन्होंने उस पद पर तर्कालङ्कारजी को बुला लिया। तर्कालङ्कारजी के जाने पर उनकी जगह खाली हुई। उस जगह पर काम करने के लिए विद्यासागर जी से फिर कहा गया। पहले तो वह राजी नहीं हुए, लेकिन अन्त को उन्होंने स्वीकार कर लिया।

सन् १८५१ के प्रारम्भ में संस्कृतकालेज के मन्त्री और सहकारी मन्त्री का पद तोड कर डेढ सौ रुपये वेतन का एक ही पद कर दिया गया। इस पद पर विद्यासागर नियुक्त हुए। इस पद पर नियुक्त होने के साथ ही साथ विद्यासागर को अपनी भारी जिम्मेदारी का खयाल हुआ। उन्हो ने इसी विचार मे अपनी सारी विद्या-बुद्धि लगादी कि किस उपाय से संस्कृतकालेज और सम्पूर्ण शिक्षा-विभाग की सर्वाङ्गीन उन्नति हो सकती है। सोते और जागते मे हर घडी उन्हे यही फ़िक्र रहती थी। उन्होंने सबसे पहले प्रयोजनीय और दुष्प्राप्य संस्कृत-साहित्य के ग्रन्थो का जीर्णोद्धार करना विचारा। बहुत पुरानी सडी गली हस्त-लिखित पोथियाँ छपाई। शिक्षक और विद्यार्थी उनके इस शुभ कार्य्य की प्रशसा करने लगे। विद्यासागर ने दर्शन-शास्त्रों को भी छपाया था।

कालेज के शिक्षको में से अधिकाश शिक्षक विद्यासागर के गुरु थे। इस कारण वह उनसे अव्यवस्था के लिए कुछ कह नहीं सकते थे। कालेज के शिक्षक लोग ठीक समय पर उपस्थित होकर ठीक तौर से अपना काम करे, इसके लिए बहुत चेष्टा करने पर भी जब कुछ सफलता नहीं हुई तो विद्यासागर ने एक नया उपाय निकाला। विद्यासागरजी उस समय संस्कृतकालेज के ऊपर के खण्ड पर रहते थे। वह साढे दस बजे के बाद से लोगो की हाजिरी पर नजर रखने

लगे। जैसे देखते थे कि कोई देर से आ रहा है वैसे ही दर्वाजे पर पहुँच कर उस अध्यापक सेकहते थे कि "क्या आप अभी आ रहे हैं ?" एक सप्ताह तक इस तरह करने से सबकी हाजिरी ठीक हो गई। केवल जयनारायण तर्कपञ्चाननजी की हाजिरी ठीक नहीं हुई और वही सबसे देर करके आते थे। विद्यासागरजी इन गुरुवर से कुछ भी नहीं कह सकते थे। दर्वाजे पर चुपचाप खडे हुए उनके आने की राह देखा करते थे। एक दिन वृद्ध तर्कपञ्चानन ने अपने छात्र-अध्यक्ष विद्यासागर से कहा कि "तुम कुछ कहते नही इसीसे मैं हार गया, अगर तुम कुछ कहते तो मैं उसका जवाब देता, क्यों देर होती है इसका कारण भी बतलाता। अच्छा कल से जिस तरह होगा ठीक समय पर आऊँगा"।

विद्यासागरजी ने सहसा एक बडे भारी आन्दोलन के काम मे हाथ डाला। सस्कृत-कालेज जब से स्थापित हुआ था तबसे उस समय तक उसमें केवल ब्राह्मणो और वैद्यो के लडके ही शिक्षा पाते थे। वैद्य-जाति के लडको को धर्म्म-शास्त्र नही पढाया जाता था। विद्यासागरजी ने प्रस्ताव किया कि धर्म्म-शास्त्र के सिवा अन्य सब सस्कृत-ग्रन्थ हिन्दू-मात्र के लडको को पढाये जायँ। कलकत्ते और अन्यान्य स्थानो के अध्यापक लोग इस कार्य्य से धर्म्मनाश की आशङ्का करके इस प्रस्ताव पर राजी नही हुए। इतना ही नहीं बल्कि जोर शोर से विद्यासागर का विरोध करने लगे। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि विद्यासागर जो काम उठाते थे उसे पूरा करके ही छोडते थे और अगर कोई उसमे बाधा पहुँचाता था तो उसे पूरा करने के लिए उनके हृदय का आवेग और मन का उत्साह बढिया के पानी या तूफान के समुद्र की तरह सौगुना हो जाता था। अपने विरोधी पण्डितो से उन्होने यह भी पूछा कि "यदि शूद्र को सस्कृत-चर्चा

का अधिकार नहीं है तो राजा राधाकान्त देव वहादुर सस्कृत पढने के अधिकारी कैसे समझे गये। और पण्डितो ने भी उनके सस्कृत पढने का विरोध क्यो न किया ?" विद्यासागर ने वहुत से शास्त्रो से प्रमाण उद्धृत करके अपने प्रस्ताव का समर्थन किया। विद्यासागर ने अपने विरोधी पण्डितो से यह भी प्रश्न किया कि "अगर शूद्रादि नीच जाति के लडको को आप सस्कृत पढाना नही चाहते तो साहव लोगों को वेतन लेकर सस्कृत पढाना कौन सा धर्म्म है ?" इस प्रकार अनेक प्रवल युक्तियो के द्वारा अकेले विद्यासागर ने अनेक पण्डितो को परास्त किया। उसी समय से सस्कृतकालेज मे सब जातियो के लडके लिये जाने लगे।

वॅगला सन् १२५६ के कार्त्तिक महीने की ३० तारीख को विद्यासागर के पहले लडके नारायणचन्द्र का जन्म हुआ। उसके वाद लगातार चार कन्याये हुई।

विद्यासागर के भाई हरचन्द्र के मरने का हाल पहले लिखा जा चुका है। उसके मरने के वाद विद्यासागरजी ने अपने दूसरे भाई हरिश्चन्द्र को पढाने-लिखाने के लिए कलकत्ते वुला भेजा। आठ वर्ष की अवस्था मे वह वालक भी हैजे की वीमारी से मर गया। विद्यासागर के हृदय को वडी चोट पहुँची। एक ओर ऐसा कठिन शोक और दूसरी ओर कालेज की सारी जिम्मेदारी। कितना ही शोक हो, ईश्वरचन्द्र अपने कर्त्तव्य से हटनेवाले पुरुष न थे। काम-काज मे लगे रहने और शोक के सहने से उनकी मानसिक अशान्ति वढ गई और स्वास्थ्य खराव हो गया। उनके सिर मे पीडा का सूत्र-पात हुआ। उसमें उन्हें वडा क्लेश मिलने लगा। वहुत दिनो तक अच्छे डाक्टरो की दवा करने पर भी रोग विलकुल अच्छा नहीं हुआ। जव वह कोई मस्तिष्क का काम लगातार करते थे तव दर्द शुरू हो जाता था। अव

की वार पुत्र-शोक से पीडित माता को विद्यासागर ने अपने पास ही वुला लिया और उनका शोक शान्त करने के लिए अनेक प्रकार के यत्न करते रहे । इस प्रकार कुछ दिनो के वाद शोक कम होने पर विद्यासागर ने माता को फिर घर पर भेज दिया। विद्यासागरजी माता-पिता भाई-वहन, इष्ट-मित्र सवसे अकृत्रिम स्नेह करते थे। उनकी सेवा मे उन्हे वडा आनन्द मिलता था और उनके दु ख मे वह अधीर से हो जाते थे।

अब तक सस्कृत कालेज के छात्रो को फीस नहीं देनी पडती थी। विद्यासागर ने अव से नाम लिखानेवाले विद्यार्थियो से फीस लेने का नियम प्रचलित करने का प्रस्ताव किया। प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। कोई कोई महाशय इस कार्य्य के लिए विद्यासागर पर कटाक्ष करते हैं। उसके उत्तर मे यह कहा जा सकता है कि फीस का नियम समर्थ छात्रो के लिए ही है। एक निर्दिष्ट सख्या तक गरीव लडके विना फीस के कालेज मे पढ सकते हैं। विद्यासागर की कार्य्यावली को सूक्ष्म दृष्टि से देखनेवाला मनुष्य कभी यह वात स्वीकार करने के लिए तैयार न होगा कि कटाक्ष करनेवाले मनुष्यो की अपेक्षा विद्यासागरजी मे उदारता और परोपकार की प्रवृत्ति की मात्रा कम थी। विद्यासागरजी दूरदर्शी थे। वह जानते थे कि वेंटिङ्क, मेटकाफ, कैनिङ्ग, सर हाइड, हेयर, वेथून ऐसे प्रात स्मरणीय लोग विदेशियो में कम पाये जाते हैं। वह खूव जानते थे कि खर्च कम करने की ओर राजकर्म्मचारियो की जव नजर फिरेगी तव यह विना फीस के शिक्षा देना विलकुल वन्द हो जायगा। केवल यही नहीं, रुपये की कमी होने पर सूद समेत दूनी तिगुनी फीस ली जायगी। इसी की वचत के लिए दूरदर्शी विद्यासागर ने पहले ही थोडी-वहुत फीस कायम करा दी।

विद्यासागरजी ने सस्कृत-कालेज की सर्वाङ्गीन उन्नति के लिए वडी भारी चेष्टा की। कालेज की व्यवस्था के अतिरिक्त शिक्षा-प्रणाली को सहज-साध्य बनाने पर भी उनका पूरा ध्यान था। देव-भाषा सस्कृत के भीतर प्रवेश करनेवाले को व्याकरण का सुदृढ द्वार नाँघना पडता है। इस द्वार को नाँघ कर सस्कृत-साहित्य के सुरम्य नन्दन-कानन मे विचरने और काव्य के सुन्दर सुवास को सूँघने का सौभाग्य विरले ही लोगो को प्राप्त होता है। विद्यासागरजी यही सोचते थे कि यह लोहे का फाटक सहज मे किस तरह खोला जा सकता है। अन्त को उन्हे इसमें सफलता भी प्राप्त हुई। पाणिनि और वोपदेव आदि वैय्याकरण व्याकरण रच कर अमर हो गये हैं। विद्यासागर महाशय नये ढँग का व्याकरण रच कर केवल अमर ही नहीं हुए, उन्होंने दुरूह और कठिन विषय को सहज और सरल बना कर अपने को आविष्कारक भी सिद्ध कर दिखाया। वह अपने मस्तिष्क-सञ्चालन द्वारा अपनी उद्भावनी शक्ति की सहायता से कुछ 'नई' वात कर सकते थे, इसका प्रथम और प्रधान प्रमाण उनकी बनाई हुई "उपक्रमणिका" है। बगाल मे आज जो सस्कृत सीखने के साथ शास्त्रों की आलोचना का प्रवल प्रवाह देख पडता है उसके लिए विद्यासागर की उपक्रमणिका और परवर्त्ती अन्यान्य व्याकरणो के हम ऋणी हैं। किन्तु जब यह देखा जाता है कि उस उपक्रमणिका की पहली कापी एक रात मे लिखी गई थी तब विस्मय से विह्वल होकर विद्यासागर की विचित्र शक्ति की प्रशसा किये बिना नहीं रहा जाता। कुछ लोग विद्यासागर को केवल सङ्कलनकर्त्ता और अनुवादकर्त्ता कहना चाहते हैं। वे अगर स्थिर होकर विचार करें तो उन्हें स्पष्ट देख पडेगा कि स्वाधीन-चिन्ता के साथ कुछ नवीन सृष्टि करने की शक्ति उनमें यथेष्ट थी। सस्कृत के धुरन्धर पण्डित रामगति न्यायरत्न लिखते हैं कि "विद्यासागर ने बँगला भाषा में

सस्कृत-व्याकरण की जो उपक्रमणिका लिखी है उससे देश में सस्कृत-शिक्षा बहुत ही सहज-साध्य हो गई है । पहले अँगरेजी के विद्वानो को सस्कृत पढने की इच्छा होती भी थी तो व्याकरण का दुर्भेद्य दुर्ग देख कर वे घबरा जाते थे। इसमे कुछ सन्देह नहीं कि विद्यासागर ने इस मुश्किल को बहुत कुछ आसान बना दिया। इस समय देहातो और शहरो में बालक, जवान, बूढे सब कुछ न कुछ सस्कृत का ज्ञान अवश्य रखते हैं। अगर उपक्रमणिका बना कर विद्यासागर इस मार्ग को साफ और सीधा न बना देते तो बहुत कम इस पथ के पथिक देख पडते। तात्पर्य यह कि विद्यासागर अगर कोई और काम न कर जाते तो भी देश के लोग केवल इसी एक काम के लिए उनके चिरकृतज्ञ बने रहते"।

विद्यासागर ने देखा, व्याकरण समाप्त करके थोडी अवस्था के बालक रघुवश आदि कठिन ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं और उसमे उनका बहुत सा समय वृथा नष्ट हो जाता है। कोमल बुद्धि के बालक सहज मे इन ग्रन्थों के असली तात्पर्य्य को नहीं समझ सकते। यह सोच कर विद्यासागर ने पञ्चतन्त्र, रामायण, हितोपदेश और महाभारत आदि ग्रन्थों से सग्रह करके ऋजुपाठ के तीन भाग बनाये। इस कार्य से भी सस्कृत सीखने वालो को बहुत कुछ सुगमता हो गई। ऋजुपाठ के अनुकरण पर कई सस्कृत-पुस्तके बनी हैं, पर प्रचार ऋजुपाठ ही का सब से अधिक है।

बगाल मे सर्वत्र स्कूलो मे जो गर्मियो की छुट्टियाँ होती हैं उनके लिए प्रयत्न करने वाले विद्यासागर ही हैं। कलकत्ते मे वैशाख जेठ मे असह्य गरमी पडती है। ऐसे दिनो मे मेहनत करने से लडके बीमार पड जाते हैं। विद्यासागर ने शिक्षाविभाग से दो महीने की छुट्टी मजूर कराई। धीरे धीरे सर्वत्र गर्मियों की छुट्टियाँ होने लगीं।

संस्कृत कालेज के अध्यक्ष होकर जब विद्यासागरजी इन सब नवीन परिवर्त्तनों से कालेज की ही नहीं, बल्कि सारे शिक्षाविभाग की उन्नति करने लगे तब उनके कामों की कीर्त्ति चारों ओर फैलने लगी। कालेज के अध्यापक और शहर के अन्यान्य प्रतिष्ठित लोग विद्यासागर की कार्यकुशलता से सन्तुष्ट होकर उनकी प्रशंसा और प्रतिष्ठा करने लगे। अँगरेज राजपुरुषों में से अनेक लोग उनसे बातचीत करके—उनकी विद्या, बुद्धि और अभिज्ञता का परिचय पाकर—उन्हें एक असाधारण पुरुष समझने लगे। मार्शल और मैट साहब तो बहुत दिन पहले से ही विद्यासागर के पक्षपाती थे। इधर शिक्षा-कमेटी के प्रेसीडेन्ट सहृदय बेथून साहब से भी उनका परिचय हो गया। विद्यासागर में एक ऐसी आकर्षणी शक्ति थी कि कोई भी उनसे मिल कर मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता था। उनके कोमलता-मय वीरत्व-व्यञ्जक मुखमण्डल पर प्रतिभा का पराक्रम पूर्णरूप से प्रकट होता था। उनकी वह मधुर मूर्त्ति देख कर एक ओर जैसे हार्डिञ्ज, डलहौसी, कैनिङ्ग और अन्यान्य प्रतिष्ठित अँगरेज लोग सम्मान के साथ सिर झुकाते थे, वैसे ही दूसरी ओर देसी रजवाड़े और बङ्गाली लखपती लोग उनसे मिलने और परिचित होने में अपने अहो-भाग्य समझते थे। एक ओर बेथून, बीडन, ग्रे, ग्रान्ट, हालिडे आदि प्रतिष्ठित अँगरेज और दूसरी ओर प्रसन्नकुमार ठाकुर, महर्षि देवेन्द्र-नाथ ठाकुर, महाराज सर यतीन्द्रमोहन ठाकुर, डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र, कालीकृष्ण ठाकुर, पाइकपाड़ा के राजा ईश्वरचन्द्र और प्रतापचन्द्र सिंह आदि उनके हितू और मित्र थे। किन्तु उन्हें मध्यश्रेणी के शिक्षित लोग ही बहुत प्यारे थे। जज द्वारकानाथ, प्रसिद्ध वक्ता रामगोपाल, हरचन्द्र, रामतनु, कालीकृष्ण, कालीचरण, दुर्गाचरण, शिवचन्द्र, अक्षयकुमार, प्यारीचरण, राजनारायण आदि बन्धुओं पर



उन्हें हार्दिक अनुराग था। गरीब भूखे और रोगी नर-नारियों को वह और भी अधिक चाहते थे। जो विद्यासागर बड़े लाट और छोटे लाट के यहाँ बड़े आदर से बिठलाये जाते थे, जो विद्यासागर महाराज सर यतीन्द्रमोहन ठाकुर के महल में सम्मान के साथ बुलाये जाते थे, वही विद्यासागर गरीबों की झोपड़ी में और रोगियों के पलँग के पास सेवा-सुश्रूषा करते देख पड़ते थे। कैसा अपूर्व दृश्य था! कैसे सुन्दर विचार थे! एक घटना का हाल सुनिए। विद्यासागर जी जब अधिक बीमार हो जाते थे तब कुछ दिन विश्राम करने के लिए खरमाटाड़ में जाते थे। किन्तु स्वभाव तो बदल नहीं सकता। किसी के दुख-कष्ट की खबर पाते ही आप चल देते थे। एक दिन सबेरे एक मेहतर रोता हुआ आकर कहने लगा—"मेरे घर में मेहतरानी को कालरा हो गया है। आपकी सहायता न मिलने से वह बच नहीं सकती।" विद्यासागर ने चट नौकर को दवाओं का बक्स और बैठने के लिए मोढ़ा दिया और आप उसके साथ उस भंगी के घर पहुँचे। वहाँ दिन भर रह कर रोगी की चिकित्सा की। शाम के वक्त रोगी के बचने की आशा होने पर आप घर आये और स्नान भोजन किया। दयासागर और स्नेह-ममता की मूर्त्ति हुए बिना क्या कभी कोई यह काम कर सकता है? चन्द्रमा और सूर्य सब जगह एक सा प्रकाश करते हैं, ईश्वरचन्द्र भी उसी तरह घर घर में विराजमान थे। लाट साहब के दरबार में अनेक लोग जाते हैं, बड़े आदमियों के यहाँ भी बहुत लोगों का मान देखा जाता है। किन्तु वे लोग गरीबों के घर नहीं जाते, दुखियों की खबर नहीं लेते। विद्यासागर के चरित्र का महत्त्व और सौन्दर्य गरीबों और रोगियों का दुख दूर करने में ही है। इसी से वह महापुरुष कहे जाते हैं।

विद्यासागर जब कालेज के अध्यक्ष हुए तब डाइरेक्टर के अनुरोध

से उन्होने कालेज की सर्वाङ्गीन उन्नति के सम्वन्ध मे एक रिपोर्ट लिखी। उसे देख कर मैट साहव ने गवर्नमेंट से अनुरोध करके विद्यासागर की तनख्वाह १५०) से ३००) करा दी। साथ ही विद्यासागर की सम्मति के अनुसार कालेज की कई तरह की आन्तरिक उन्नति भी उन्होने की। विद्यासागरजी जैसे कालेज की उन्नति के लिए सोचा करते थे वैसे ही सारे वङ्गाल मे शिक्षाप्रचार करने के उपायो पर भी विचार किया करते थे। विद्यासागर ने अपनी रिपोर्ट में यह भी प्रस्ताव किया था कि वङ्गाल के भिन्न भिन्न स्थानो में स्कूल खोले जायँ और उनमे पढाने वाले मास्टर तैयार करने के लिए नार्मल स्कूल स्थापित हो। इस प्रस्ताव के अनुसार सन् १८५५ में २००) की तनख्वाह देकर विद्यासागर अतिरिक्त इन्स्पेकृर वनाये गये और उनको नदिया, हुगली, वर्दवान और मेदिनीपुर जिलो के अनेक स्थानो मे स्कूल खोल कर उनके निरीक्षण का काम दिया गया। सव मिला कर विद्यासागर को महीने मे ५००) रु० मिलने लगे। उनके ही अनुरोध से कलकत्ते मे सवसे पहले नार्मल स्कूल खुला और उसकी देखरेख का काम कालेज के अध्यक्ष विद्यासागर को सौंपा गया। स्कूल खुलने के वाद स्वनामधन्य अक्षयकुमारदत्तजी उस स्कूल के हेडमास्टर वनाये गये। वहुत पहले शोभावाज़ार के राजभवन में राधाकान्तदेव वहादुर के दामाद श्रीनाथ घोष और नाती वावू आनन्दकृष्ण वसु महाशय के पास जाने आने में पहले पहल ईश्वरचन्द्र से और अक्षयकुमार वावू से जान पहचान हुई। तत्त्ववोधिनी सभा स्थापित होने पर विद्यासागर और अक्षयकुमार मे गहरी मित्रता हो गई। इनकी यह मित्रता मरते दम तक एक सी ही वनी रही। वहुत परिश्रम करने से अक्षय वावू को घोर सिर का दर्द दुख देने लगा। पहले वह छुट्टी लेकर दवा करते रहे, परन्तु अच्छी तरह चिकित्सा

होने पर भी किसी तरह सिर का दर्द दूर नहीं हुआ। अन्त को लाचार होकर उन्हें नौकरी छोडनी पडी । उसके बाद विद्यासागर के कृपापात्र रामकमल भट्टाचार्य उस पद पर नियुक्त हुए। विद्यासागर के लडकपन के साथी मधुसूदन वाचस्पति भी इस स्कूल के एक मास्टर थे। पहले संस्कृत कालेज में अँगरेजी पढने का नियम अवश्य था, पर उसके लिए कोई कडाई न थी । जिसकी इच्छा होती थी, पढता था और जिसकी इच्छा नहीं होती थी, नहीं पढता था । विद्यासागर ने नियम कर दिया कि हर एक बालक को अन्यान्य विषय पढ कर जैसे परीक्षा देकर नम्बर हासिल करने पडते हैं वैसे ही अँगरेजी की भी परीक्षा देकर नम्बर हासिल करने पड़ेंगे। ऐसी व्यवस्था होने से सभी लडके आग्रह के साथ अँगरेजी भी पढने लगे । हिन्दूकालेज से पदक और ४०) रु० की वृत्ति प्राप्त करने वाले बाबू प्रसन्नकुमार सर्वाधिकारी को विद्यासागर ने कालेज के अँगरेजी पढाने वाले मास्टरों का अगुआ बनाया। सर्वाधिकारीजी ने नौकरी की तलाश में निकल कर पहले ढाके में छोटी तनख्वाह की एक जगह पाई । इच्छा न रहने पर भी आगे उन्नति होने की आशा दिलाने पर वह ढाका गये। किन्तु शीघ्र उन्नति होने के लक्षण न देख कर वह आज्ञा लिये विना ही ढाका छोड कर चले आये। इस अपराध के कारण जल्द उनकी नौकरी नहीं लगी। अन्त को विद्यासागर के यत्न से वह हिन्दूकालेज में शिक्षक हो गये। यहाँ ४०) रु० की तनख्वाह सुन कर पहले वह किसी तरह राजी नहीं होते थे। पर फिर विद्यासागर के बहुत कुछ कहने सुनने से मान गये। पीछे से वह संस्कृतकालेज में अँगरेजी पढाने का काम करने के लिए १००) रु० माहवारी पर प्रधान शिक्षक बना दिये गये। विद्यासागर की कृपा और स्नेह के कारण सर्वाधिकारीजी की शीघ्र

उन्नति होने लगी। विद्यासगर के नौकरी छोड देने पर सर्वाधिकारीजी कालेज के अध्यक्ष बनाये गये और उन्होने अपने काम मे अपनी शक्ति और कार्यकुशलता का यथेष्ट परिचय दिया।

सस्कृतकालेज के नये बन्दोवस्त मे अँगरेजी पढाना गवर्नमेंट के द्वारा सम्पूर्णरूप से अनुमोदित हो गया। उसके वाद क्रमश सर्वाधिकारीजी, बाबू श्रीनाथदास, कालीप्रसन्न चट्टोपाध्याय, तारिणीचरण चट्टोपाध्याय और प्रसन्नकुमार राय आदि विद्वान् कालेज के अँगरेजी-शिक्षक हुए। इस नियम के जारी होने के कुछ दिनो वाद विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा की व्यवस्था हुई। सस्कृत कालेज के छात्र अन्यान्य स्कूलो के छात्रों के समान ही अँगरेजी की परीक्षा मे कृतकार्य होने लगे। यह सफलता देख कर विद्यासागरजी बहुत ही प्रसन्न हुए।

इसी समय विद्यासागरजी को एक दारुण शोक का सामना करना पडा। उनके परमबन्धु और स्त्रियो के परम हितैषी बेथून साहब का देहान्त हो गया। विद्यासागरजी उनको बडी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और उनको भी विद्यासागर से बडा स्नेह था। विद्यासागर को बेथून साहब के द्वारा शिक्षाप्रचार से भारत के कल्याण की बहुत कुछ आशा थी। स्वदेश-हितैषी विद्यासागर का ऐसे भारत-बन्धु के वियोग से व्याकुल होना स्वाभाविक ही था। जब कभी बेथून साहब की बात चलती थी तभी विद्यासागर की आंखो से आंसू बहने लगते थे।

इसी समय एक दिन द्वारकानाथ भट्टाचार्य के साथ द्वारकानाथ मित्र विद्यासागर से मिलने आये और विद्यासागर के परम मित्र हो गये। बाबू कालीचरण घोष भी विद्यासागरजी के विशेष स्नेह-पात्र थे। इनकी अवस्था अधिक न थी, पर योग्यता अच्छी [illegible]।

योग्यता के ही पक्षपाती थे । विद्यासागरजी ने कुछ दिनो के लिए संस्कृत-कालेज की किसी श्रेणी मे उन्हे अँगरेजी पढाने का काम सौंपा। शिक्षक की अवस्था थोडी देखकर, उन्हे अपनी हमजोली का देखकर, लडके उनके पास पढने के लिए राजी नहीं हुए। कोई कोई दल बांधकर उन्हे भगाने और उनका अपमान करने की चेष्टा करने लगे। विद्यासागर को यह जानकर बडा क्रोध आया और वह इस बात की खोज करने लगे कि इस कुचक्र मे कौन कौन बालक शामिल हैं। खोज से कोई पकडा नही जा सका, किसी ने अपना दोष स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार झूठ बोलने के विद्यासागर घोर शत्रु थे। उन्होंने उस क्लास के सब लडको को स्कूल से निकाल दिया। लडको ने दल बांधकर विद्यासागर के विरुद्ध अभियोग उपस्थित किया। कालेज के सञ्चालको ने इस बारे मे विद्यासागर का वक्तव्य पूछ भेजा। उसके उत्तर मे विद्यासागर ने कहला भेजा कि "कालेज के इन छोटे छोटे अन्दरूनी मामलो में अध्यक्ष को पूरे अख्तियारात रहने चाहिए। इस प्रकार छोटी छोटी बातो के लिए अगर लडके नालिश करने पावेंगे तो फिर उन्हे शासन मे रखना कठिन हो जायगा"। सञ्चालको ने यह बात मानकर विद्यासागर को उस सम्बन्ध के कागज-पत्र वापस कर दिये और लडको से कह दिया कि इस मामले मे विद्यासागर जो करेंगे वही होगा। अब बालक बहुत डरे। अन्त को बालकों के अभिभावक लोगो ने विद्यासागर से मिलकर बालको का अपराध क्षमा करने के लिए प्रार्थना की। विद्यासागर ने कहा कि लडको को मास्टर कालीचरण के पास भेजो और कहो कि उनसे माफी मांगें। यही हुआ। लडके कालीचरण बाबू के पास गये। कालीचरण बाबू लडको को साथ लेकर विद्यासागर के मकान पर आये। विद्यासागर ने कालीचरण से पूछा कि कहो, इन लोगो ने तुमसे माफी मांगी या नहीं?

कालीचरण बाबू ने कहा—मैं तो आता नहीं था। इन लोगों ने बहु
अनुनय-विनय करके अपना अपराध स्वीकार कर लिया है, इसी
इनके साथ आया हूँ। अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा कीजिए
विद्यासागर ने कहा—तुम कहोगे तो माफ करूँगा, नहीं तो नहीं
कालीचरण ने बहुत सोच विचार कर कहा—ये लड़के जितना मे
अपराधी हैं उससे कहीं अधिक आपके अपराधी हैं। आप जो चा
सो कीजिए। बालक निरुपाय होकर विद्यासागर के पैर पकड़ क
रोने लगे। तब फिर कभी ऐसा काम न करने के लिए प्रतिज्ञा कर
कर विद्यासागर ने उन्हें माफ कर दिया।

अपराधी के अपराध स्वीकार कर लेने पर उसे क्षमा कर दे
सहज काम है। ऐसा बहुत लोग करते हैं। किन्तु बिलकुल क्षमा क
देना—उस बात को बिलकुल भुला देना सबका काम नहीं है। विद्या
सागरजी जिसे क्षमा-प्रदान करते थे उससे स्नेह का व्यवहार कर
के लिए सदा प्रस्तुत रहते थे। उनके क्षमा करने की अपेक्षा क्षमा
प्रार्थना करना और भी सुन्दर था। प्रतिष्ठित स्वाधीन-प्रकृति तेजस्
पुरुष के लिए किसी के आगे झुकना बड़ा कठिन काम है। शायद
उससे ऐसा होही नहीं सकता। खासकर ऊँचे दर्जे का प्रतिष्ठित आदमी
छोटे दर्जे के आदमी के आगे कभी झुकता ही नहीं। किन्तु विद्या
सागर में यह बात न थी।

इस बारे की एक घटना का हाल सुनिए। एक बार किसी विश्वासी
आदमी के कहने पर विश्वास करके विद्यासागर ने पण्डित ताराकुमार
कविरत्न से कुछ कड़ी बातें कह डालीं। कविरत्नजी ने सब चुपचाप
सुन लिया। कुछ दिनों बाद विद्यासागर को मालूम हुआ कि जिसके
कहने पर उन्होंने विश्वास कर लिया था वह झूठ बोला था। उसी
समय विद्यासागरजी कविरत्न के पास गये और विनीतभाव से क्षमा-

प्रार्थना करके कहने लगे कि "मैंने जो आप से बुरा व्यवहार किया है उसके लिए जो दण्ड आप दीजिए उसे स्वीकार करने के लिए मैं तैयार हूँ"। जैसे जरूरत आ पडने पर कठिन पत्थर से मधुर जल-धारा निकलती है वैसे ही विद्यासागर की दृढता भेद कर आंसू और कोमल-भाव प्रवाहित होता था। कविरत्न महाशय से ही मैंने सुना है कि उस समय विद्यासागर की आखो मे आँसू भर आये थे। समय पर विद्यासागरजी बालको के समान सरल और कोमल बन जाते थे और समय पर हिमालय से भी बढ कर उन्नत गभीर और दृढ बने रहते थे।

विद्यासागरजी जिस समय कालेज मे अध्यक्ष के पद पर विराज-मान होते थे उस समय उन्हे देख कर छात्रो और अध्यापकों के मस्तक भय और सम्मान के कारण आप ही झुक जाते थे। उनके आगे किसी को सिर उठाकर जोर से बोलने की हिम्मत नहीं होती थी। कालेज में लडके उन्हे देख कर डरते थे और बाहर उन्हीं को अपने साथी से बढकर पाते थे। एक दिन किसी विशेष काम से विद्यासागर को कहीं जाना पडा। लौटने मे देर अधिक होगई। घर आकर भोजन करके कालेज जाने मे विलम्ब हो जाता। रास्ते मे ताराकुमार कवि-रत्न का छात्रावास पास ही पडता था। विद्यासागरजी वहाँ गये। चट-पट कुएँ के जल से स्नान करके जहां पर बालक भोजन करने बैठे थे वहां विद्यासागरजी पहुँचे। लडकों के साथ आप भी भोजन करने बैठ गये। एक एक कौर सबके हिस्से से लेकर विद्यासागर ने भोजन किया और फुर्ती से उठकर कालेज चले गये। कविरत्न महाशय से मैंने सुना है कि घडी भर पहले बालको के साथ भोजन करते समय विद्यासागर की जिस हँसमुख प्रसन्न मूर्ति को देख कर हम लोग पुल-कित हुए थे वह मूर्ति दमभर में अदृश्य होगई। कालेज में वही शिक्षक-वेष-धारी अध्यक्ष विद्यासागर की मूर्ति विराजमान देख पडी।

इस प्रकार भाव-परिवर्तन मे आत्म-शासन और अभ्यास की बड़ी आवश्यकता होती है। साधारण मनुष्य के लिए यह काम बड़ा ही कठिन है।

इसी समय विद्यासागर के परम मित्र और शिक्षा-कमेटी के मन्त्री मैट साहब ने कुछ समय के लिए छुट्टी ली और इँगलेंड चले गये। नये नये कायम हुए छोटे लाट के पद पर सुप्रसिद्ध हालिडे साहब की नियुक्ति हुई थी। उन्होने शिक्षा-विभाग मे बहुत से हेर फेर कर डाले। शिक्षा-कमेटी (Education Council) नाम बदल कर "पब्लिक इन्स्ट्रक्शन" नाम रक्खा गया। हालिडे साहब ने डाक्टर मैट साहब की जगह पर डब्लू गार्डन यग नामक एक युवक सिविलियन को रक्खा। विद्यासागर ने छोटे लाट साहब से उक्त पद पर एक बुद्धिमान् वृद्ध पण्डित को रखने की सलाह दी थी। माननीय हालिडे साहब ने इसके उत्तर मे कहा कि मैं खुद ही सब काम करूँगा, मिस्टर यग केवल उपलक्ष्य-मात्र हैं। आप उनको शिक्षा-विभाग का काम अच्छी तरह सिखला दीजिएगा। छोटे लाट की आज्ञा के अनुसार विद्यासागरजी आफिस मे जाकर यग साहब को काम समझा आते थे। किन्तु विद्यासागर ने जो आशका करके उक्त पद पर एक वृद्ध पण्डित के रखने की सलाह दी थी वही बात आगे आई।

सन् १८५४ के शिक्षा-विषयक मन्तव्य मे इँगलेंड के राज-पुरुषों ने साधारण भारतवासियो की शिक्षा की व्यवस्था के लिए कई लाख रुपये मंजूर किये। वह रुपया खर्च करके कैसी शिक्षा देनी चाहिए, इसका भी आभास दे दिया। सन् १८३५ मे मेकाले और लार्ड विलियम बेंटिक ने जो शिक्षा-नीति चलाई थी उसी का अनुसरण कर इस समय की मन्त्रि-सभा ने अपना मन्तव्य प्रकट किया। उसके अनुसार विद्यासागर ने कई जिलों मे बहुत से स्कूल स्थापित किये और उनके इन्स्पे-

कृर भी वही हुए। किन्तु इँगलेंड के सञ्चालकों के मन्तव्य के सम्बन्ध में विद्यासागर के साथ डाइरेक्टर यंग साहब का मत नहीं मिला। डाइरेक्टर ने अन्य दो अँगरेज इन्स्पेक्टरों से सलाह करके विद्यासागर के अनुमोदित ढँग पर स्कूल खुलना रोक दिया। किन्तु विद्यासागरजी इससे पहले ही कई स्कूल खोल चुके थे। विद्यासागर ने स्कूल खोलना फिर भी बन्द नहीं किया और छोटे लाट को इस बात की सूचना दी कि डाइरेक्टर साहब स्कूल खोलने की मनाही करते हैं। विद्यासागर और डाइरेक्टर साहब में मत-भेद के बाद मनोमालिन्य उत्पन्न हो गया। दोनों ने हालिडे साहब से अपना अपना वक्तव्य कहा। माननीय छोटे लाट ने कुछ दिनों के लिए स्कूल खोलना रुकवा कर विलायत को यह समाचार भेजा और वहाँ के सञ्चालकों की इस विषय में राय माँगी। इस मामले में विलायत से भी स्वाधीन-चेता विद्यासागर की ही जीत हुई। वह दूने उत्साह से स्कूल खोलने लगे। अँगरेज इन्स्पेक्टरों के बहकाये हुए यंग साहब विद्यासागर के घोर विरोधी बन गये। किन्तु विद्यासागरजी ऐसी समझदारी से काम करते थे कि कोई त्रुटि रहना एक प्रकार से असभव ही था। तथापि मामूली मामूली बातों पर विद्यासागर और डाइरेक्टर साहब में चोट चल जाती थी। दोनों आदमी छोटे लाट की सहायता से अपनी बात बाला चलाने की चेष्टा करते थे। किन्तु छोटे लाट साहब प्राय विद्यासागर के सुविचार- सगत मत का ही अनुमोदन करते थे। इस प्रकार लाट साहब की पृष्ठ-पोषकता के बल पर यग साहब के विरोध की पर्वा न कर विद्यासागरजी अपने कर्त्तव्य का पालन करने लगे।

जब विद्यासागरजी स्पेशल इन्स्पेक्टर हो गये तब वह अनेक स्थानों में माडल स्कूल और बालिका-विद्यालय स्थापित करने लगे। उस समय शिक्षा-प्रचार के काम में इँगलेंड के सञ्चालकों की विशेष

सहानुभूति रहने के कारण विद्यासागर की जीत होती थी। इसके कुछ दिन बाद एकाएक इँगलेड की मन्त्रि-सभा बदलने के साथ ही भारतवर्षीय शिक्षा की नीति भी बदल गई। छोटे लाट के जवानी हुक्म से विद्यासागर ने हुगली, नदिया, बर्दवान और मेदिनीपुर जिलों मे बहुत से बालिका-विद्यालय स्थापित किये थे। इन विद्यालयो मे बहुत रुपया खर्च होता था। डाइरेक्टर यग साहब ने इन स्कूलों के खर्च का बिल नामञ्जूर कर दिया। उन्होने यह मन्तव्य भी प्रकाशित किया कि शिक्षा मे इस तरह रुपया खर्च करना वर्तमान शिक्षा-नीति के बिल्कुल विरुद्ध है। डाइरेक्टर साहब को यही एक ऐसा सुयोग हाथ लगा कि वह विद्यासागर को कष्ट और हानि पहुँचा सके।

विद्यासागर जब इन्स्पेक्टर हुए तब उन्हे उस कार्य मे सहायता करने के लिए चारो जिलो में चार डिपुटी इन्स्पेक्टर रखने की अनुमति मिली थी और उसके अनुसार उन्होने ताराशङ्कर भट्टाचार्य, माधवचन्द्र गोस्वामी, दीनबन्धु न्यायरत्न और हरिनाथ बनर्जी को रख लिया था।

संस्कृत कालेज के स्थायी होने के सम्बन्ध मे कभी कभी सञ्चालकों मे बहुत कुछ तर्क-वितर्क होते थे और कभी कभी कालेज उठा देना निश्चित सा हो जाता था। किन्तु विद्यासागर जी के यत्न और आग्रह से तथा बगालियो के सौभाग्य से यह दुर्घटना नही हो पाती थी। किन्तु कालेज के कई अग छिन्न-विछिन्न हो चले थे। शिक्षार्थी बालको को उत्साहित करने के लिए प्रथम और द्वितीय श्रेणी की कुछ वृत्तियाँ नियत थी। उन वृत्तियों मे गवर्नमेन्ट को अच्छी रकम खर्च करनी पडती थी। गुणी गरीब बालको के दुर्भाग्य से वे वृत्तियाँ बद हो गई। किन्तु विद्यासागर के बहुत आग्रह से कालेज का अस्तित्व नहीं नष्ट हुआ।

संस्कृत-हिन्दू-कालेज की इमारत इतनी बडी थी कि दोनो कालेजो का काम निकलने के अलावा ऊपर के दो कमरे खाली पडे रहते थे। पहले वे कमरे हिन्दूकालेज के ही थे। पीछे संस्कृतकालेज मे अँगरेजी पढाने की व्यवस्था होने पर उन दोनों कमरो की जरूरत पडी। विद्यासागर ने आवश्यकता जता कर यंग साहब से वे दोनो कमरे मांगे। इसके उत्तर में यग साहब ने उनसे हिन्दू-कालेज के अध्यक्ष साट्क्लिफ साहब से मिल कर प्रार्थना करने के लिए कहा। विद्यासागर का पहले ही इन दोनो कमरो के लिए साट्क्लिफ साहब के साथ मनो-मालिन्य हो चुका था। विद्यासागर ने यग साहब से कहा कि आप हिन्दूकालेज मे साट्क्लिफ साहब के पास जा कर मुझे बुलवावें तो मैं उनसे मिल कर आप के आगे अपनी आवश्यकता जता सकता हूँ। यग साहब इस पर राजी हो गये। लेकिन समय पर साहब ने और ही कुछ किया। वह खुद तो साट्क्लिफ से मिलने गये, परन्तु विद्यासागर को नहीं बुलाया। विद्यासागर जी से बार बार कहने पर भी वह अकेले साट्क्लिफ साहब से मुलाकात करने नहीं गये। इससे यग साहब और भी उनके खिलाफ हो गये।

सर चार्ल्स उड के सन् १८५४ के निर्देश के अनुसार सन् १८५६ में कलकत्ता-यूनिवर्सिटी स्थापित होने का प्रस्ताव हुआ। लार्ड डलहौसी ने इस शुभ कार्य्य की सब तरह की तैयारी करके पेन्शन ले ली। भारतबन्धु लार्ड कैनिंग के समय के आरम्भ मे सन् १८५७ के जनवरी महीने मे कलकत्ता-यूनिवर्सिटी का यथार्थ सूत्रपात हुआ। उस समय उस यूनिवर्सिटी के सदस्य केवल ३९ थे। इनमें केवल ६ देशी सभ्य थे। उनमे दो मुसल्मान सज्जन थे। विद्यासागर, प्रसन्नकुमार ठाकुर, रमाप्रसाद राय और रामगोपाल घोष ये चार हिन्दू सदस्य थे। विश्वविद्यालय की पहली सालाना सभा (कनवोकेशन)

मे सभापति गवर्नर जनरल बहादुर के एक ओर लार्ड विशप और दूसरी ओर विद्यासागर बैठे थे। इस विश्वविद्यालय के सगठन-कार्य्य मे विद्यासागरजी की भी राय ली गई थी। इसी वर्ष के २८ नवम्बर को विश्वविद्यालय के सदस्यो की जो सभा हुई थी उसमे एक परीक्षक-समिति (वोर्ड आफ एग्जामिनर्स) का सगठन हुआ था। सस्कृत, बँगला, हिन्दी और उड़िया भाषा के प्रश्न बनाने और पास-फेल करने का काम विद्यासागरजी को सौंपा गया था। इट्रेंस और बी० ए० परीक्षा का सब काम इसी वोर्ड के ऊपर होने के कारण वोर्ड के हर एक मेम्बर को बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता था और इस लिए उनमे से प्रत्येक को साल मे छ सौ रुपये के हिसाब से मेहनताना दिया जाता था। आनर्स (Honours) परीक्षा देने वाले विद्यार्थी जिस साल होते थे उस साल और भी एक सौ रुपये परीक्षको को दिये जाते थे। इसके बाद परीक्षक-समिति का फिर सगठन हुआ। किन्तु बहुत चेष्टा करने पर भी विद्यासागर उसमे सम्मिलित नहीं हुए। सन् १८६५ मे वह केवल एम० ए० परीक्षा के परीक्षक हुए थे। इसके बाद भी समय समय पर बी० ए० और एम० ए० के सस्कृत-परीक्षक होने के लिए विद्यासागर से अनुरोध किया गया, किन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। विश्वविद्यालय सगठित होने के बाद उसके किसी अधिवेशन मे शिक्षा-सम्बन्धी अनेक प्रकार की आलोचनाये होते होते सस्कृत-कालेज उठा देने का प्रस्ताव किया गया। बहुत से अँगरेजों और बगालियो ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया, परन्तु अकेले विद्यासागर ने अनेक युक्तियो और तर्को के सहारे सबके मुँह बन्द कर दिये। उन्हीं के प्रयत्न से सस्कृत-कालेज इस समय भी मौजूद है और उनके गौरव की घोषणा करता हुआ सस्कृत-शिक्षा का प्रचार कर रहा है।

सिविलियन परीक्षा में पास होकर जो साहब नौकर होते थे उनकी परीक्षा लेने के लिए तत्कालीन गवर्नर जेनरल ने सेंट्रल कमेटी नाम से एक कमेटी स्थापित की थी। सिविलियन साहबों की परीक्षा लेना ही इस कमेटी का काम था। विद्यासागर इस कमेटी के एक प्रधान सदस्य थे और परीक्षा का प्रबन्ध उन्हीं के हाथ में था।

इँगलेंड के मन्त्रिमण्डल की आज्ञा के अनुसार बङ्गाल के अनेक स्थानों में जब स्कूल खुलने लगे तब उन स्कूलों में बँगला और संस्कृत पढ़ाने के लिए बहुत से पंडितों की जरूरत पड़ी। लेकिन तनख्वाह थोड़ी होने के कारण पण्डित कम मिलते थे। इस कारण दक्षिण बङ्गाल के तत्कालीन इन्स्पेक्टर प्राट् साहब ने विद्यासागर से कई पण्डित माँग भेजे। विद्यासागर ने उन्हें लिख दिया कि संस्कृत-कालेज के विद्यार्थी लोग इस काम को बहुत अच्छी तरह कर सकते हैं, लेकिन तनख्वाह कम होने के कारण कोई भी जाने को राजी नहीं होता। कम से कम ५०) की तनख्वाह होती तो कुछ लोग जा सकते थे।

छोटे लाट हालिडे साहब के साथ विद्यासागर का बहुत मेल-जोल था। अँगरेज और नेटिवों में ऐसा मेल-जोल बहुत कम देखा जाता है। खास कर मालिक और नौकर में ऐसा भाव होना तो असंभव ही जान पड़ता है। इसके प्रमाण में एक दो घटनाओं का वर्णन करना ही यथेष्ट होगा। एक बार विद्यासागरजी ने छोटे लाट के घर में उपस्थित होकर देखा कि कलकत्ते के और कई प्रतिष्ठित आदमी अपने अपने नाम के कार्ड भेज कर लाट साहब से मिलने के लिए अपेक्षा कर रहे हैं। विद्यासागरजी के आने की खबर सुनते ही लाट साहब फौरन् ऊपर के मकान में आकर विद्यासागरजी से मिले।

इस घटना से वे रईस लोग जो अपेक्षा कर रहे थे बहुत झेपे और उनमे से किसी किसी ने लाट साहब से इसका कारण भी पूछा। छोटे लाट ने उत्तर दिया—"आप लोग अपने अपने काम के लिए बातचीत करने आते हैं और विद्यासागरजी राजकाज में मुझे सुन्दर सलाह देने के लिए आया करते हैं। इस प्रकार उद्देश्य-भेद से अधिकार-भेद भी हो जाता है। आप आते हैं अपने लिए और वह आते हैं मेरे लिए। ऐसी अवस्था में सबसे पहले उनसे मिलना कुछ भी अनुचित नहीं जान पडता।"

दूसरी घटना यो है। हालिडे साहब के अनुरोध के अनुसार विद्यासागरजी हर बृहस्पति को अनेक विषयो पर वार्तालाप करने के लिए लाट साहब के यहाँ जाते थे। लेकिन वह वहाँ भी पैरों मे चट्टी और शरीर पर चादर ही डाल कर जाते थे। छोटे लाट के बहुत अनुनय-विनय और अनुरोध करने पर कई बार पतलून चोगा चपकन और पगडी पहन कर भी गये। पर यह फैशन उन्हे पसन्द नहीं था। ऐसे कपडो का पहनना भी वह एक प्रकार का अनाचार समझते थे। उनकी समझ में ऐसे कपडे पहनना एक तरह से स्वाँग बनना था। जितनी बार ऐसे कपडे पहन कर वह गये, उन्हें बडा क्लेश और असुविधा उठानी पडी। दो तीन दिन तक ऐसे कपडे पहन कर जाने के बाद चौथे दिन उन्होंने साहब से कह दिया कि "यही आपकी मेरी आखिरी भेट है।" लाट साहब ने विस्मित होकर कहा—"क्यों पण्डित, क्या हुआ जो अब भेट न होगी।" स्वाधीन-चेता विद्यासागर ने हँसते हँसते कहा कि "कैदियो की ऐसी कष्ट देने वाली पोशाक पहन कर स्वाँग बन कर आप से मिलने आना मेरे लिए सर्वथा असभव है।" लाट साहब ने दम भर कुछ सोच कर कहा—"पण्डित, जिस पोशाक से आने में आपको सुविधा हो उसी पोशाक

में आइए"। इस घटना के बाद विद्यासागरजी उसी अपने पुराने फैशन से आते जाते रहे।

यह पहले लिखा जा चुका है कि यङ्ग साहब और विद्यासागर में कोई विवाद आ पड़ने पर हालिडे साहब अक्सर विद्यासागर का ही पक्ष लेते थे। साथ ही यङ्ग साहब के साथ सद्भाव बनाये रखने के लिए अनुरोध किया करते थे। विद्यासागरजी भी इस बात के लिए कोशिश करते थे, लेकिन यङ्ग साहब के मारे कुछ नहीं होता था। एक बार विद्यासागर ने स्कूलों के मुआइने की रिपोर्ट पेश की। डाइरेक्टर यङ्ग साहब ने कहा कि "इस रिपोर्ट को अच्छी तरह बना चुना कर लिखो।" इसका मतलब यह था कि रिपोर्ट को इस ढँग से लिखो कि ऊपर के अफसर लोग समझें कि काम बहुत अच्छा हो रहा है। उन्नत विचार वाले और न्यायपरायण विद्यासागर ने साहब के इस कथन से अपने को अपमानित समझा और रिपोर्ट में एक अक्षर का भी हेरफेर करने को राजी नहीं हुए। बहुत कहने सुनने पर उन्होंने नौकरी छोड़ देने की इच्छा प्रकट की। उनके नौकरी छोड़ने का विवरण नीचे लिखा जाता है। इसे देख कर पाठक लोग समझ सकेंगे कि साधारण नीचता न स्वीकार करके ५००) महीने की नौकरी छोड़ देने वाले विद्यासागर कैसे पुरुष थे और नौकरी न छोड़ने के लिए उनसे कहाँ तक अनुरोध किया गया था।

विद्यासागर ने छोटे लाट हालिडे साहब को जो पत्र पहले लिखा था और जिससे यह आग सुलग उठी वह पत्र यह है —

प्रथम पत्र।

महाशय,

गत शनिवार को मैं आपसे मिलने गया था। दक्षिण बंगाल

विभाग के इस्पेकृर की नियुक्ति के सम्बन्ध मे मैंने दो एक बाते कहने की अनुमति मांगी थी । आपने मुझसे कहा था कि इस विषय के मन्तव्यो को लिख कर मुझे दो। उसी के अनुसार निवेदन है कि यदि आप मुझे उक्त इस्पेकृर के पद पर भेजना चाहते हो तो मेरी जगह पर सस्कृत-कालेज मे किसे रखने से कालेज की भलाई होगी, इस बारे मे मेरे साथ सलाह करके किसी योग्य व्यक्ति को रखना ही अच्छा होगा । बहुत दिनो की अभिज्ञता के द्वारा मैं ही इस बात को अच्छी तरह बतला सकता हूँ कि उक्त कालेज के अध्यापको मे से इस पद के लायक कौन है । गवर्नमेंट के स्थापित किये हुए अँगरेजी स्कूल-कालेजो-सहित जिलो के डिवीजनल इस्पेकृर का पद मुझे देना यदि उचित न समझा जाय तो आप कम से कम हुगली, मेदनीपुर, बर्दवान और नदिया जिलो के माडल स्कूलो के इस्पेकृर के पद पर नियुक्त कर सकते हैं। सर्कारी स्कूल कालेजो के निरीक्षण का भार डिवीजनल इस्पेकृर के ऊपर छोडने से भी काम चल सकता है । बँगला भाषा की शिक्षा के प्रचार के सम्बन्ध मे मैं आपको इतना तग कर चुका हूँ कि फिर उसका उल्लेख करके आपके बहु-मूल्य समय को नष्ट करना नहीं चाहता ।

(ह०) ईश्वरचन्द्र शर्म्मा ।

दु ख की बात है कि पत्र की नकल मे तारीख नहीं दी हुई थी । किन्तु इस पत्र के उत्तर मे छोटे लाट साहब ने जो उत्तर भेजा था उसकी तारीख देखने से जान पडता है कि सन १८५७ की २१ वीं मई के लगभग यह पत्र लिखा गया होगा ।

विद्यासागर के पत्र के उत्तर में हालिडे साहब ने जो पत्र भेजा था उसकी नकल यह है —

द्वितीय पत्र।

दार्जिलिङ्ग,
२७ वीं मई १८५७

पण्डित ईश्वरचन्द्र शर्म्मा।
कलकत्ता।

पण्डित महाशय,

आपको शायद मालूम हुआ होगा कि आप का पत्र पाने के पहले ही मिस्टर लाज को मैंने उक्त पद के लिए चुन लिया है। इसके पहले वह पद लेफ्टिनेन्ट लीज को दिया गया था। वह इँगलेंड मे हैं और उक्त पद पर काम करना उन्होने अस्वीकार कर दिया है।

मैं आशा करता हूँ कि शीघ्र ही मुझसे मुलाकात होगी। क्योंकि मैं कलकत्ते की ओर जा रहा हूँ। इन प्रयोजनीय विषय के सम्बन्ध मे, जिसकी उन्नति के लिए हम दोनो को आग्रह है, बात-चीत होगी।

(ह०) फ्रेड, जे, हालिडे।

शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर यग साहब को विद्यासागर ने जो पहला पत्र लिखा था उसकी नकल यह है —

तृतीय पत्र।

सस्कृत-कालेज,
२० वी अगस्त, १८५७।

माननीय डव्लू, गार्डन, यग,
शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर महाशय की सेवा मे।

महाशय,

आप तीन महीने के लिए शहर छोड कर जाते हैं। अतएव इसे ही सुसमय समझ कर मैं आपको सूचित करता हूँ कि मैंने कुछ ही दिनों

मे नौकरी छोड देने का विचार कर लिया है। मेरे इस तरह इतनी जल्दी नौकरी छोडने का उद्देश्य सर्व-साधारण के जानने लायक नहीं है। अन्य किसी को मैं उसकी सूचना नहीं देना चाहता, इसी -से इस पत्र मे भी उसका उल्लेख नही करता हूँ।

सस्कृत-कालेज की शिक्षा-विषयक नवीन पद्धति अभी तक ठीक नहीं हुई। उसे ठीक करने मे और भी दो तीन महीने लगेगे। दिसम्बर तक मैं काम करता रहूँगा। दिसम्बर में अपना इस्तीफा दाखिल करूँगा

आपको इतने दिन पहले से अपनी यह इच्छा जताने का मतलब यह है कि मेरे नौकरी छोडने पर जो जगह खाली होगी उस पर किसी अच्छे आदमी को रखने के लिए आप अच्छी तरह विचार कर सकें

(ह०) ईश्वरचन्द्र शर्म्मा।

चतुर्थ पत्र।

कलकत्ता सस्कृत-कालेज,
३१ वीं अगस्त, १८५७।

माननीय एफ़, जे, हालिडे,
महाशय की सेवा में।

महाशय,

कुछ दिन हुए जब आपने बँगला की शिक्षा देने की वर्त्तमान पद्धति के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट तैयार करने के लिए मुझसे कहा था। मैंने बिलकुल इच्छा न रहने पर भी स्वीकार कर लिया था। किन्तु बाद को सोचने पर मुझे मालूम हुआ है कि अपने ही साथ काम करनेवाले कर्मचारियो और अन्यान्य लोगों के कार्यों की आलोचना से पूर्ण रिपोर्ट देना बहुत ही कठिन काम है। अतएव उसके लिए क्षमा-प्रार्थना करता हुआ रिपोर्ट लिखने की प्रतिज्ञा को मैं वापस लेना चाहता हूँ।

यहाँ पर आपकी अनुमति लेकर मैं सूचित करना चाहता हूँ कि मैं जनवरी से नौकरी छोड देने का पक्का इरादा कर चुका हूँ। अपना यह अभिप्राय एक आध "सरकारी" पत्र द्वारा मिस्टर यग को जता चुका हूँ। उस पत्र की एक नकल इस पत्र के साथ आपके पास भी भेजता हूँ।

ससम्मानश्रद्धावनत

(ह०) ईश्वरचन्द्र शर्म्मा ।

इस पत्र के उत्तर मे छोटे लाट साहब ने जो पत्र लिखा था उसकी नकल यह है—

पञ्चम पत्र ।

पण्डित ईश्वरचन्द्र शर्म्मा के पास । ३१ अगस्त ।

प्रिय पण्डित महाशय,

मैं आपके इस इरादे को सुन कर सचमुच ही बहुत दुःखित हुआ। आगामि बृहस्पति वार को आकर मुझसे मिलिएगा और आपके इस इरादे का मूल कारण क्या है सो बतलाइएगा।

आपका,

फ्रेड, जे, हालिडे ।

सन् १८५७ के शुरू मे ही कलकत्ते के निकटवर्त्ती बारकपुर नगर मे पहले सिपाही-विद्रोह के लक्षण देख पडे । थोडी चेष्टा से ही वह विद्रोह शान्त कर दिया गया । गवर्नमेंट भी निश्चिन्त हो गई। किन्तु मार्च, अप्रेल, मई और जून में भारत के अनेक स्थानो मे विद्रोह की आग फिर जल उठी। कलकत्ता शहर राजधानी था। इस कारण जहाँ जो कुछ उपद्रव हुआ उसका असर यहाँ के लोगों पर बहुत अधिक पडा । कलकत्ते के अँगरेज और बगाली स्त्री-पुरुष बहुत डर गये । नगर-रक्षा के लिए दिन-रात गोरों का पहरा

रहने लगा। शाम के पहले लोग अपने दरवाजे बन्द कर लेते थे और सवेरे सूर्य्योदय के बहुत देर बाद खोलते थे। उस समय छात्र लोग स्कूलों मे पढने जाने का साहस नही करते थे। सस्कृत-कालेज में गोरो को जगह देने के लिए विद्यासागर ने कुछ दिनो के वास्ते कालेज का काम बन्द रक्खा। इतनी जल्दी कालेज बन्द करना पडा कि विद्यासागरजी डाइरेक्टर इत्यादि किसी को उसकी सूचना नहीं दे सके। कालेज बन्द करके विद्यासागर ने डाइरेक्टर यग के पास अन्यत्र कार्य्य शुरू करने के लिए रिपोर्ट की। साहब ने बिना अनुमति लिये कालेज बन्द करने के लिए असन्तोष प्रकट किया। विद्यासागर ने यंग साहब के पत्र के उत्तर मे लिखा कि विद्रोह के समय सहसा सर्कारी काम आ पडने से मैंने कालेज का मकान खाली कर दिया और अपनी सम्मति मे यह मैंने अन्याय नहीं किया। यग साहब इस बात से मन ही मन बहुत खीझे लेकिन जाहरी तौर पर विद्यासागर के विरुद्ध कोई कारखाई नहीं कर सके। वह जानते थे कि इस बारे मे कुछ करने से उन्हीं की हार होगी। किन्तु विद्यासागर के इस्तीफा देने का यह भी एक प्रबल कारण हो गया।

इसके बाद छोटे लाट हालिडे साहब ने मीठी बातो से सन्तुष्ट करके और एक साल तक विद्यासागर को उनके पद पर बनाये रक्खा। सन् १८५७ की ३१ वीं अगस्त को पत्र लिख कर हालिडे साहब ने विद्यासागर को अपने पास बुलाया और समझाया। विद्यासागरजी भी उस बार मान गये। किन्तु जब यंग साहब उनसे हुकूमत का बर्त्ताव करके मनोमालिन्य का परिचय देते थे तभी वे नौकरी छोडने का विचार करते थे। अन्त को सन् १८५८ के अगस्त महीने मे विद्यासागर ने नौकरी छोड ही दी। छोटे लाट के बहुत कहने पर भी नहीं माना। छोटे लाट ने उस

समय यह भी कहा कि "आप ने इतना बड़ा समाज-संस्कार का काम उठाया है। ऐसी अवस्था में नौकरी छोड़ देने से अर्थाभाव के कारण आप को कष्ट होगा।" विद्यासागर ने इसके उत्तर में कहा कि "मैं विपत्ति कष्ट को बिलकुल नहीं डरता"। विद्यासागर के निम्न-लिखित अन्तिम दो पत्रों को पढ़ने से जान पड़ता है कि उन्हों ने यह सोच कर कि बालिका-विद्यालय का काम भी समाप्त करके एकदम अलग हो जाना चाहिए, एक महीने का विलम्ब करके इस्तीफा दिया था, किन्तु नौकरी छोड़ने के बाद बहुत दिनों तक उन्हें बालिका-विद्यालय की स्थापना के मामले में क्लेश उठाना ही पड़ा।

पष्ठ पत्र।

माननीय डब्लू गार्डन यङ्ग

शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर महाशय की सेवा में।

महाशय,

जो भारी कर्त्तव्य-भार इस समय मेरे ऊपर है उसके सम्पन्न करने में निरन्तर मानसिक परिश्रम करने के कारण मेरा स्वास्थ्य एकदम खराब हो गया है। इसी से लाचार होकर मैं अपना इस्तीफा माननीय लेफ्टिनेन्ट गवर्नर बहादुर की सेवा में भेजता हूँ।

मैं, खूब समझता हूँ कि इस दायित्वपूर्ण कार्य को अच्छी तरह करने के लिए जैसे मनोयोग की आवश्यकता है वह मुझसे इस समय नहीं हो सकता। मुझे इस समय विश्राम की जरूरत है। सर्वसाधारण के स्वार्थ और अपने शरीर के स्वास्थ्य तथा मानसिक शान्ति की रक्षा के लिए मुझे यही ठीक जान पड़ता है कि मैं यह नौकरी सदा के लिए छोड़ दूँ। उस सुख के पाने का इसके सिवा और कोई उपाय मुझे नहीं देख पड़ता।

मैंने निश्चय कर लिया है कि स्वास्थ्य ठीक होने पर नई पुस्तकों की रचना और सकलन के द्वारा मैं बँगला-साहित्य की श्रीवृद्धि करता रहूँगा। यद्यपि स्वदेशीय जनसाधारण के सुशिक्षालाभ और उनमें ज्ञानप्रचार के साथ मेरा साक्षात्-सम्वन्ध उठा जाता है तथापि मेरे जीवन का शेष समय उसी पवित्र कार्य के करने में बीतेगा। मेरे इस पवित्र व्रत का उद्यापन अन्तिम दिन चिता की भस्म मे होगा।

ऐसे भारी कार्य के लिए मेरे अग्रसर होने के कई कारण हैं। उनमें से भविष्यत् उन्नति की आशा का न रहना और शिक्षाप्रणाली की वर्त्तमान पद्धति के साथ मेरी व्यक्तिगत सहानुभूति का न होना ही प्रधान कारण है। विभागीय कर्मचारियो के कर्त्तव्य कार्य के सुसम्पादन के लिए भविष्यत् उन्नति की आशा और ऊपर के कर्म्मचारियों के कार्यों के साथ व्यक्तिगत सहानुभूति—ये दोनो बातें परम आवश्यक हैं।

ऊपर लिखे हुए दोनो कारणो में से पहले के सम्बन्ध में मेरा वक्तव्य यह है कि वैसा होने से अवसर के समय औरो की अपेक्षा थोडा ही कायिक और मानसिक परिश्रम करके मैं बहुत अधिक कार्य कर सकूँगा। किन्तु यह स्वीकार करना अनुचित है कि गुरुतर कार्य मे अग्रसर होने के लिए यही यथेष्ट है। खास कर अब तक मैं अपने परिवार और परिजन के खाने-पहनने का ठिकाना नहीं कर सका हूँ और और भी अधिक दिन तक ऐसे गुरुतर दायित्वपूर्ण कार्य मे लगे रहने से मेरा शरीर बिलकुल इस काम के करने लायक न रहेगा। यही चिन्ता मुझे व्याकुल किये हुए है।

दूसरे कारण के सम्बन्ध में मैं केवल यही कहना चाहता हूँ कि गवर्नमेंट के ऊपर अपनी बुद्धि-विवेचना और मतामत लादने का कुछ भी अधिकार मुझे नहीं है, तथापि मैं जिनकी मातहती मे काम

करता हूँ उनके निकट मैं यह बात छिपा नहीं सकता कि जो काम मैं कर रहा हूँ उसमें अब मुझे उतना अनुराग नहीं है। इसी अनुराग के अभाव से मेरी कार्यकुशलता भी नहीं रह सकती। मैं इससे अधिक कुछ कहना नहीं चाहता।

नौकरी छोड़ने के समय मुझे सन्तोष यह है कि मैं अपनी छोटी सी शक्ति की सहायता से भरसक आग्रह के साथ अब तक काम करता रहा, और मैं समझता हूँ कि गवर्नमेंट ने अविचलित भाव से मेरे ऊपर जो अनुग्रह प्रकट किया है, मेरी जिदों को माना है, और मेरे प्रस्तावों पर ध्यान दिया है उसे कृतज्ञतापूर्ण हृदय से स्वीकार करना मेरे लिए बेअदबी की बात न होगी। ससम्मान निवेदन इति।

संस्कृतकालेज, ५वीं अगस्त, सन् १८५८।

(ह०) ईश्वरचन्द्र शर्म्मा।

सप्तम पत्र।

प्रिय महाशय,

आप क्या ५ वीं अगस्त के पत्र में किसी जगह कुछ परिवर्त्तन करना चाहते हैं? यदि चाहते हो तो, जहाँ तक सम्भव हो, शीघ्र एक दिन यहाँ आवें और अपनी इच्छा के अनुसार चाहे कोई अंश बदल दें अथवा इस आवेदनपत्र के बदले और एक संशोधित नया पत्र लिख कर भेज दें। किन्तु जो करें सो शीघ्र ही करें। मैं शनिवार को यहाँ रहूँगा। और फिर मंगलवार को आऊँगा। आपकी गत शनिवार की बातों से मैं समझा था कि आप छुट्टी की अर्जी अफसरों के पास भेजना नहीं चाहते, इसीसे मैंने उसे नहीं भेजा।

आपका

९ सितम्बर। डब्लू गार्डन यंग।

इन सब पत्रों में सन् तारीख महीने आदि का ठीक उल्लेख नहीं

है। किसी किसी पत्र में सन् तारीख आदि कुछ नहीं है, केवल वार का उल्लेख है। किसी में तारीख है तो साल का उल्लेख नहीं है। इसके सिवा एक विशेष बात यह है कि इन पत्रों के सिवा जबानी बातचीत भी बहुत कुछ हुई थी।

प्रथम पत्र।

१५ वीं सितम्बर, सन् १८५८।

माननीय एफ जे हालिडे
बंगाल के लेफ्टिनेण्टगवर्नर महाशय की सेवा में।

महाशय,

मैंने खूब मन लगाकर, विचार कर, देखा, मुझे मेरे भेजे हुए इस्तीफे से जिन अंशों को आप आपत्ति-जनक समझते हैं उन्हें निकाल डालना किसी तरह युक्तियुक्त या न्यायसंगत नहीं जान पड़ता। उसका कारण यह है कि यद्यपि इस समय मेरा शरीर अस्वस्थ है तथापि मैं यह नहीं कह सकता कि शारीरिक अस्वस्थता ही मेरे इस्तीफा दाखिल करने का एकमात्र कारण है। यदि शारीरिक अस्वस्थता ही मुख्य होती तो मैं स्वास्थ्य ठीक करने के लिए एक लम्बी छुट्टी ले लेता। मैं तो आपको कई बार जता चुका हूँ कि वर्त्तमान व्यवस्था की मातहती में काम करना मेरे लिए बिलकुल ही अरुचिकर और क्लेशदायक हो उठा है। खासकर बहुत रुपया खर्च करके जिस प्रणाली से बँगला की शिक्षा दी जाती है उसके प्रति मुझे कुछ भी सहानुभूति नहीं है। आप अच्छी तरह जानते हैं कि मुझे सदा मेरे कर्त्तव्य के मार्ग में बाधा प्राप्त हुई है। इसके सिवा कर्म्मक्षेत्र में मेरे और अधिक अग्रसर होने की संभावना भी नहीं देख पड़ती। एक आध बार मेरे पीछे के लोग मुझसे आगे बढ़ गये हैं। आप अगर विचार कर देखेंगे तो स्वीकार करेंगे कि मेरे उत्साह-भंग के यथेष्ट कारण

मौजूद हैं। किन्तु तो भी शारीरिक अस्वस्थता के कारण इस समय अगर मैं काम छोड़ने के लिए लाचार न होता तो और भी कुछ दिन इस्तीफा न देता। वर्त्तमान शारीरिक अस्वस्थता ने मुझे बिल्कुल ही अपने भारी कर्त्तव्य कार्य के अनुपयुक्त बना डाला है। जब शारीरिक अस्वस्थता के अलावा अन्यान्य कारणों ने भी मेरे नौकरी छोड़ने के इरादे को दृढ बनाने में सहायता की है तब उन्हें स्वीकार न करना मेरी विवेचना-बुद्धि के विरुद्ध होगा। केवल अस्वस्थता का ही उल्लेख करके अन्य कारणों को इस्तीफे से उड़ा देना मुझसे न होगा। एक बात और है। अपना इस्तीफा जब मैंने भेज दिया है तब अनेक लोग उसकी बातों को जान गये हैं। अब अगर मैं उसकी इबारत में कुछ अदलबदल करूँगा तो उसे भी लोग जान जायँगे। तब केवल बन्धुओं के निकट ही नहीं, बल्कि सर्वसाधारण के निकट भी मुझे निन्दा का पात्र बनना पड़ेगा। × × × मेरे इस्तीफे के इस अंश को न वापस लेने से आपको असुविधा होगी। मुझे इसका बड़ा ही दुःख है। जब मैं सोचता हूँ कि बिना जाने मुझसे आपको ऐसा क्लेश और असुविधा हुई तब मुझे बेहद रंज होता है। यदि किसी उपाय से मैं इस्तीफे के उस अंश को बदल सकता तो मेरे सुख की सीमा न रहती। किन्तु मैं जिस विषम अवस्था में पड़ा हूँ (और जिसे मैंने विस्तार के साथ इस पत्र में बतलाया है) उसमें वैसा परिवर्त्तन करना मेरे लिए एक प्रकार से असंभव है। आशा है, आप स्वयं यह बात समझ रहे होंगे।

सम्पूर्णरूप से अपने इस मामले में आपको मैंने जो क्लेश दिया है उसके लिए क्षमा-प्रार्थना करके आपको अपनी भक्ति और सम्मान जताकर अब मैं विदा होता हूँ।

(ह०) ईश्वरचन्द्र शर्म्मा।

नवम पत्र।

१५ वीं सितम्बर, १८५८।

पण्डित ईश्वरचन्द्र शर्म्मा।

प्रिय महाशय,

आपका आज की तारीख का पत्र मिला। अपने इस्तीफे के जिस अंश को रखने के प्रस्ताव के सम्बन्ध में आपने अपने पत्र में चर्चा की है उस अंश को न निकाल देने से मुझे किसी प्रकार की असुविधा होगी—यह आपका समझना भूल है। उस अंश के रहने न रहने से मेरा कुछ हानि-लाभ नहीं है। मैंने आपसे जो इस्तीफे के उस अंश को निकाल देने के लिए कहा था उसका कारण यह है कि शायद शिक्षा-विभाग के कामों के सम्बन्ध में आपके या असन्तोष प्रकट करने के गूढ़ कारण को साफ साफ लिखने के लिए ऊपर के अफसर आपसे अनुरोध करेंगे, और आप कह चुके हैं कि इन सब बातों के असली मतलब को सरकारी कागज-पत्रों में खुलासा करके लिखने के लिए आप किसी तरह राजी नहीं हैं। आप यह कहते हैं कि इस्तीफ़ा देने के अनेक कारणों में शारीरिक अस्वस्थता एक प्रधान कारण है। ऐसी अवस्था में जिन कारणों का स्पष्ट वर्णन करना आपके लिए सुविधा-जनक नहीं, उनका उल्लेख न करके केवल अस्वस्थता के कारण इस्तीफा देने की बात लिखना ही अच्छा होगा।

आपने मुझसे यह स्वीकार करने के लिए कहा है कि आपके उत्साह-भङ्ग या अनुयोग करने के यथेष्ट कारण मौजूद हैं। किन्तु मैं इस बात को स्वीकार करने में सम्पूर्ण असमर्थ हूँ। आपने जिन बातों को इस्तीफा देने का यथेष्ट कारण बतलाया है वे ये हैं—(१) बँगला की शिक्षा देने की वर्त्तमान पद्धति आपको पसन्द नहीं है। उसमें केवल धन का अपव्यय होता है। (२) आपको आपके काम

में हमेशा वाधा पहुँचाई गई। (३) आपके उन्नति के मार्ग में अग्रसर होने के उचित अवसर की उपेक्षा की गई।

इन सब बातो के उत्तर मे केवल यही कहना यथेष्ट होगा कि अन्तिम बात के सम्बन्ध मे आपके मत से मेरा मत बिलकुल नहीं मिलता। दूसरी बात के सम्बन्ध मे मेरा कहना यह है कि आपको किसी दिन किसी काम मे मेरे द्वारा वाधा न पहुँची होगी। पहली बात के सम्बन्ध मे इतना ही कहना यथेष्ट है कि यह केवल मत-भेद मात्र है। खास कर आप जिस बँगला की शिक्षा देने के काम मे नियुक्त हैं उसमे यह प्रश्न उतना प्रयोजनीय नहीं है।

एकान्त विश्वासपात्र

फ्रेड जे हालिडे।

दशम पत्र।

सोमवार, २० वीं सितम्बर।

माननीय डब्लू गार्डन यंग शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर महाशय की सेवा मे।

प्रिय महाशय,

बहुत सोचने के बाद मैं देखता हूँ कि अपने इस्तीफे मे किसी तरह का परिवर्त्तन करना, न्याय की दृष्टि से, मेरे लिए असम्भव है। पत्र के उत्तर में विलम्ब होने के लिए क्षमा चाहता हूँ।

आपका—

(ह०) ईश्वरचन्द्र शर्म्मा।

ग्यारहवाँ पत्र।

माननीय एफ जे. हालिडे बगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर
महाशय की सेवा में।

प्रिय महाशय,

मेरे इस्तीफे के उस अश को न निकालने से आपको किसी प्रकार की असुविधा न होगी, इस बात को जान कर मुझे बडा ही आनन्द हुआ। मुझे जहाँ तक याद है, उस दिन जो आपसे और मुझसे बात-चीत हुई थी उसीसे मुझे यह धारणा हो गई कि इस्तीफे के उस अश को न निकाल देने से आपको असुविधा होने की सम्भावना है। अगर मेरी ऐसी धारणा न होती तो १३ वीं तारीख के पत्र मे मैं उस विपय का उल्लेख न करता। अब मेरे मन से एक भारी बोझ जैसे उतर गया।

एक बारे मे मैं कुछ बाते कहना चाहता हूँ। अन्तिम पत्र मे मैंने वक्तव्य को विस्तार के साथ नही लिखा। यह मुझे खेद है। अपने इस पत्र में घडी भर के लिए भी मैंने ऐसा अभिप्राय नही व्यक्त किया कि आपके द्वारा मुझे कर्त्तव्य-सम्पादन में बाधा पहुँची। मुझे इस बात का अच्छी तरह अनुभव है कि आपसे मुझे सदा सब तरह उत्साह ही मिला है। मैंने अपनी समझ से अपने इस्तोफे के अन्त मे अपने हृदय का ऐसा ही भाव प्रकाशित किया है। कामकाज में बाधा पहुँचने के उल्लेख का तात्पर्य यह है कि मैं कामकाज में बाधा पाकर निरन्तर आपको दिक करने के लिए विवश हुआ हूँ। आपने सर्वदा अनुग्रह करके ध्यान देकर मेरी सब बातें सुनी हैं और अक्सर मध्यस्थ होकर मेरी उन सब असुविधाओं को दूर कर दिया है। आपको इस प्रकार दिक करने मे सदा मुझे असुविधा जान पड़ी है।

किन्तु ऐसे कारण आ पड़े हैं जिनसे लाचार होकर मुझे वैसा करना पड़ा है। मेरे निज के आचरण के सम्बन्ध में जब ऐसा कठिन प्रश्न उठा तब उसके सम्बन्ध में दो-चार बातें लिखे बिना काम न चलता। इसीसे फिर पत्र लिख कर आपको कष्ट दिया है। निवेदन इति। १८वीं सितम्बर, सन् १८५८।

ससम्मान श्रद्धावनत

(ह०) ईश्वरचन्द्र शर्म्मा।

बंगाल गवर्नमेंट के सेक्रेटरी के पास से शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर को सन् १८५८, २५ सितम्बर का नं० १५६६ का जो पत्र मिला था उसका कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है।

बारहवाँ पत्र।

ऊपर के अफसरों के आदेश से मैं आपके गत १८ वीं अगस्त के नं० २०८७ पत्र की (अन्यान्य पत्रों सहित) प्राप्ति स्वीकार करता हूँ और उसके प्रत्युत्तर में सूचित करता हूँ कि लेफ्टिनेन्ट गवर्नर बहादुर आप के अनुरोध के ऊपर निर्भर करके संस्कृतकालेज के अध्यक्ष और अतिरिक्त इंस्पेक्टर पण्डित ईश्वरचन्द्र शर्मा का इस्तीफा मंज़ूर करते हैं। आक्षेप की बात यह है कि पण्डित महाशय ने ऐसे निर्मम भाव (रुखाई) से नौकरी छोड़ना उचित समझा है। वह अपने असन्तोष का उपयुक्त कारण दिखला नहीं सकते। तथापि आप उन्हें जताइएगा कि देश के लोगों को शिक्षा देने में उन्होंने इतने दिनों तक जो उत्साह के साथ काम किया है उसके लिए गवर्नमेन्ट उनकी कृतज्ञ है।

तेरहवाँ पत्र।

माननीय डब्लू गार्डन यंग की सेवा में।

प्रिय महाशय,

आपके २४६१ नं० के पत्र द्वारा मेरा इस्तीफा मंज़ूर होने की

सूचना मिली । × × × अनेक स्थानो के बालिका-विद्यालयो के पण्डितो और अन्यान्य लोगो का वेतन आदि देने मे असमर्थ होने के कारण मुझे अत्यन्त असुविधा हो रही है । मुझे डर है कि मेरे नौकरी छोड कर चले जाने पर यह अशान्ति और भी अधिक बढ जायगी । मेरी शारीरिक अवस्था काम करने के बिल्कुल अयोग्य होने पर भी, यदि आप को आपत्ति न हो, मै इस अप्रीतिकर बालिका-विद्यालयो की स्थापना के मामले मे गवर्नमेन्ट के अन्तिम निर्णय तक अपेक्षा करना चाहता हूँ। ५ वीं अक्तूबर, सन १८५८ ।

(ह०) ईश्वरचन्द्र शर्म्मा ।

चौदहवाँ पत्र ।

बृहस्पतिवार, प्रात काल ।

प्रिय महाशय,

कालेज, नार्मल-स्कूल, पाठशाला आदि के सम्बन्ध मे जो आज्ञा निकली है और जो बन्दोबस्त किया गया है उसमे अब किसी तरह का हेरफेर करना सम्भव नही है । विशेष कर बालिका-विद्यालयो की स्थापना के सम्बन्ध मे सुप्रीम गवर्नमेन्ट कब अपना आखरी फैसला जाहिर करेगी, इसका कुछ ठीक नही है । ऐसी अवस्था मे नये बन्दोबस्त के अनुसार काम शुरू करने मे विलम्ब करना मेरी समझ मे न्यायसगत न होगा । आपका ५ ता० का पत्र और भी दो एक सप्ताह पहले मिलता तो आपके अनुरोध के अनुसार काम करना सभव होता। मेरी समझ से अब बहुत देर हो गई है । मैं विश्वास करता हूँ कि यह बालिका-विद्यालयो के खर्च का मामला शीघ्र ही निपट जायगा । निपटारे के समय जिसमे न्यायपूर्ण विचार हो और आपकी इच्छा पूर्ण हो, इसके ऊपर गवर्नमेन्ट की विशेष दृष्टि रहेगी और जहाँ तक सभव

होगा, आपको इस बालिकाविद्यालय-स्थापना के अशान्तिकर प्रश्न से छुटकारा दिया जायगा।

आपका—

डब्लू गार्डन यग

अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क और अनुरोध-उपरोध की उपेक्षा करके विद्यासागर ने सन् १८५८ के नवम्बर महीने में पूरी तौर से काम छोड दिया। अब वह स्वाधीन भाव से जीवन के मार्ग मे चलने का सुयोग पाकर कृतार्थ हो गये। नौजवान अफसर यङ्ग साहब को उन्होने खुद काम-काज सिखाया था, छोटे लाट हालिडे साहब के स्नेह और मैत्री के अनुरोध से, सोलहो आने इच्छा न रहने पर भी, उन्होने यङ्ग साहब के साथ मेल रखकर चलने की प्राणपण से चेष्टा की थी, किन्तु बड ही खेद की बात है कि डाइरेक्टर यङ्ग साहब के व्यवहार और बाधाओ से स्वाधीन-प्रकृति विद्यासागर की धैर्यच्युति हो गई। यङ्ग साहब के अन्तिम पत्र को आदि से अन्त तक मन लगा कर पढने से स्पष्ट देख पडता है कि उसका अन्तिम अश पहले अश के बिल्कुल विपरीत है। एक छोटे से पत्र मे इस तरह का पूर्वापर-विरोध विद्यासागर के प्रति यङ्ग साहब की आन्तरिक अनबन का ही परिचय देता है। विद्यासागरजी कुछ दिन अपने पद पर रहकर झगडे के प्रधान कारण—बालिकाविद्यालय-स्थापना के व्यय-सम्बन्धी प्रश्न—का अन्तिम निपटारा कर जाना चाहते थे। साहब ने कहा—नहीं, यह न होगा। ऐसी अवस्था मे सरकारी पत्र (बारहवे पत्र) में प्रकाशित छोटे लाट हालिडे साहब का मन्तव्य कहां तक युक्ति-सगत हुआ है, यह पाठक-गण स्वय विचार कर लेंगे। ऐसे अवसर पर विद्यासागर के लिए यही परम प्रशसा की बात है कि बहुत अनुनय-विनय होने पर भी उन्होंने ५००) रु० मासिक की नौकरी की ओर फिर कर भी नहीं देखा।

इस बडी आमदनी और भारी सम्मान की नौकरी को छोड देने पर विद्यासागर के मित्र एक स्कूल-इन्स्पेक्टर ने कहा था—"विद्यासागर, तुमने यह अच्छा काम नहीं किया"। इसके उत्तर मे विद्यासागर ने अपनी स्वाभाविक स्वाधीनता-प्रियता के अनुसार कहा कि "मैं रुपये की अपेक्षा—पदमर्यादा की अपेक्षा—इज्जत को ही बहुमूल्य समझता हूँ"। विद्यासागर के नौकरी छोड देने पर उनके पिता, माता और परिवार के और सब लोग बहुत ही चिन्तित हो पडे थे। किन्तु विद्यासागर के परवर्ती जीवन की घटनाओं ने उनकी कल्पनाओ के विपरीत फल दिखा कर विद्यासागर के जीवन को सौगुना उज्ज्वल बना दिया। उनके अद्भुत परोपकार-व्रत के द्वारा देश का कल्याण करने वाली सुलभ शिक्षा का द्वार खुल गया है। उन्होने बडी आशा करके अपने इस्तीफे मे लिखा था कि—

"मेरे जीवन का अन्तिम समय उसी पवित्र कार्य (स्वदेश के नर-नारियो की ज्ञानोन्नति और साधारण शिक्षा-प्रचार) में लगेगा और उस व्रत का उद्यापन मेरी चिता के भस्म से होगा"।

उनकी यह आकाक्षा पूर्णरूप से सफल हुई। अपने राजसूय-यज्ञ मे वह विजयी पाण्डवो की तरह सर्वदा भगवान् की शुभ दृष्टि पाकर कृतार्थ हुए। वह सब बाधाओ को नांघ कर, सब शत्रुओ या प्रति-द्वन्द्वियो की उपेक्षा करके, जीवन के मार्ग मे अग्रसर हुए और बहुत तेज बिजली की रोशनी के समान सब को मुग्ध बना देने वाली प्रतिभा के पराक्रम से मानवमण्डली को मोहित करके अपने कर्त्तव्य-पालन मे अग्रसर हुए। सब कामो मे जय पाने के कारण उन्हे नररत्न या पुरुष-शिरोमणि कहना ही ठीक होगा। समय बीतने के साथ ही साथ उनके चरित्र की माधुरी और भी अपूर्व शोभा धारण करती जायगी। युगयुगान्तर तक सब मनुष्य उस गुणराशि के आगे सिर झुकावेंगे।

दूसरे की नौकरी करने में मनुष्य की शक्ति-सामर्थ्य अच्छी तरह विकसित नहीं होती। हमारी इस बात का अनुमोदन करने वाले बहुत से लोग मिलेंगे। एक बार हमारे एक श्रद्धेय और माननीय महोदय के नौकरी छोड़ कर देश-सेवा के व्रत में आत्मोत्सर्ग करने पर उनके परिवार के लोग विद्यासागर के निकट आकर अनेक प्रकार से अपना दुखड़ा रोने लगे। विद्यासागरजी ने मुसका कर कहा—"उस पागल के नौकरी छोड़ देने का दुखड़ा रोने के लिए तुमको और कहीं जगह नहीं मिली ? एक पागल की बात दूसरे पागल से कहने आये हो। नौकरी छोड़ दी तो अच्छा ही किया। दूसरों के पैर चाटते चाटते यह जाति रसातल को चली गई है। लोग जितना ही तावेदारी करना नापसन्द करेंगे उतना ही देश का कल्याण होगा"। विद्यासागर ऐसे दृढ़-प्रतिज्ञ और स्वाधीन-प्रकृति पुरुष के लिए ऐसा उत्तर देना ही स्वाभाविक था।

महाबली सिंह की लोहे के पिंजड़े में बन्द होने पर जो दशा होती है वही दशा गुणी पुरुष की परपदसेवी होने पर होती है। आकाशचारी पक्षी को पिंजड़े में बन्द कर दीजिए तो उसका सारा सुख और शान्ति जाती रहेगी। वह तुम्हारी सिखाई बातें ही कहेगा, अपनी बोली भूल जायगा। उसका स्वभाव, उसका मुक्तभाव, उसका आत्मप्रभाव जैसे नहीं रहता वैसे ही दासत्व-शृङ्खला में बँधा हुआ पुरुष भी दूसरे की ही बोली बोलता है, दूसरे की ही बातें दुहराता है। वह क्रमशः पराये दिये सुख में सुख का अनुभव करना सीख जाता है। विद्यासागरजी इस प्रकृति के आदमी न थे। ऐसी नौकरी छोड़ देने से उन ऐसे खर्चीले और मर्यादाशाली दूसरे आदमी को एक दिन गुजर करना भी कठिन हो जाता, किन्तु उन्होंने सहसा कुछ भी नहीं किया। उनके अनेक अँगरेज मित्र उनके लिए चिन्तित

थे। तत्कालीन सुप्रीमकोर्ट के प्रधान जज माननीय सर जेम्स कालवि
ने विद्यासागर से आईन की परीक्षा देने के लिए बहुत कहा। आईं
की परीक्षा देकर सुप्रीमकोर्ट मे वकालत करने की सलाह पसन्द
करके पहले तो विद्यासागर ने कहा कि "अब परीक्षा देना केवल
विडम्बनामात्र है। विशेष कर वकालत के पेशे मे मुझे वैसा अनुरा
नहीं है"। किन्तु साहब के फिर भी अनुराध करने पर विद्यासागरज
राजी हो गये। वह इस कार्य का फलाफल देखने के लिए कई दिन त
अपने मित्र बाबू द्वारकानाथ मित्र वकील के घर जाते आते रहे। वह
उन्होंने इस पेशे के आदमियों का आचार-व्यवहार ऐसा देखा वि
जी लगने के बदले और भी उचट गया। विद्यासागर ने कालवि
साहब के घर पर जाकर अपनी अनिच्छा का कारण बता दिया औ
वकालत का इरादा छोड दिया। उस समय जीविका का कोई उपाय
न सूझने पर कुछ समय के लिए विद्यासागर को भी विशेष चिन्ति
होना पडा था। इस समय सर सिसिल बीडन बङ्गाल के लाट थे
बीडन साहब भी हालिडे साहब की तरह विद्यासागर को सम्मान
की दृष्टि से देखते थे। बीडन साहब ने फिर विद्यासागर को सरकारी
नौकरी दिलाने की कोशिश की थी। किन्तु अनेक कारणों से, खास
कर विद्यासागर का आग्रह न होने से, बात जहाँ की वहाँ रह गई।
आगे चल कर प्रयोजन के अनुसार इन बातों का उल्लेख किया
जायगा।

षष्ठ अध्याय ।

बँगला-साहित्य में विद्यासागर ।



जातीय जीवन के प्रधान लक्षण दो हैं—धर्म्म और भाषा। जिस जाति का एक धर्म्म नहीं है, जिस जाति का समाज-शरीर धर्म्म की आलोचना में सिर से पैर तक उच्छ्वसित नहीं होता, जिस जाति के धर्म्म-सम्बन्धी आन्दोलन की लहरों से समाज-शरीर में सजीवता की झलक नहीं पाई जाती वह जाति मुर्दा है। उस जाति से जातीय-जीवन के सगठन में सहायता मिल ही नहीं सकती। वैसे ही माता की गोद में दूध पीते पीते मनुष्य सब से पहले जिस भाषा में माता को सम्बोधन करना या पुकारना सीखता है, जिस भाषा के सरल और मधुर शब्दों का उच्चारण करते करते जिह्वा की जड़ता दूर हो जाती है, जिस भाषा में अपने क्षुद्र-जीवन के शोक और दुःख को प्रकाशित करता हुआ बच्चा रोता है, जिस भाषा में छोटे छोटे बालक-बालिकायें आनन्द-मग्न होकर अपने जय-पराजय का परिचय देते हैं, जिस भाषा को मनुष्य बचपन के क्रीडा-कौतुक और आमोद-प्रमोद के साथ साथ सीखता है, जिस भाषा में आदमी अपने आनन्द और कष्ट की कहानी अपने बन्धु-बान्धवों को सुनाता है, वही उसकी मातृभाषा है। माता और मातृभाषा एक ही चीज़ है। जो जाति

अभाग्यवश मातृपूजा करना नहीं सीखती वह मातृभाषा का आदर करना भी नहीं जानती। जिस जाति की मातृभाषा एक नहीं है, जिस जाति के लोग एक शब्द और एक स्वर से माता को पुकार नहीं सकते उनके जातीय-जीवन की नाट्यशाला मे उपस्थित होने मे अभी बहुत विलम्ब है।

हर एक बालक विधाता के दिये हुए राजचिह्न को धारण कर पृथ्वी पर आता है। मामूली घर मे, मामूली लोगो मे उत्पन्न होने पर भी तत्त्वदर्शी लोग लक्षणो को देख कर उसके भावी कार्यों के सम्बन्ध मे भविष्यद्वाणी कर देते हैं। किन्तु सब तरह के सुलक्षण रहने पर भी अक्सर किसी किसी के जीवन मे, ग्रहदशा के फेर से, शीघ्र शुभ दिन नही उपस्थित होता। वैसे ही वही दशा बँगला भाषा की भी हुई। प्रबल देवभाषा संस्कृत के पेड के नीचे ही इसे अपना बाल्यकाल बिताना पडा। बङ्गाली-जीवन की प्रथमावस्था मे, बङ्गाल के सामाजिक इतिहास के शैशवकाल मे, स्मृति-शास्त्र-सस्कारक प० रघुनन्दन भट्टाचार्य और गीतगोविन्द-रचयिता जयदेव गोस्वामी आदि प्रातःस्मरणीय महात्मा जन्म लेकर मातृभूमि का मुख उज्ज्वल कर गये हैं। किन्तु उन सबने संस्कृत की आलोचना में ही जन्म बिता दिया, उनके ग्रन्थ भी संस्कृत मे ही हैं। उन्होने अपना स्नेह, ममता और उद्यम सब संस्कृत की सेवा मे लगा दिया। उन्होने मातृभाषा बँगला की पुष्टि कुछ भी नहीं की। बँगला भाषा का साहित्य प्राचीन-युग के नीतिकुशल निपुण लेखको की सेवा से वञ्चित है। बँगला भाषा की उन्नति के लिए बङ्गाल के सर्वसाधारण लोगो के पढने लायक़ ग्रन्थो की रचना करने में पहले पहल जो लोग अग्रसर हुए हैं उनमे सब से आगे विद्यापति, चण्डीदास, उनके बाद चैतन्यभागवत के लेखक वृन्दावनदास, फिर चैतन्यचरितामृत के लेखक कृष्णदास कविराज

और चण्डीकाव्य के लेखक मुकुन्दराम चक्रवर्ती आदि के नाम लिये जाते हैं। इससे यही स्पष्ट होता है कि वैष्णवधर्म्म के अभ्युदय के बहुत पहले, बँगला भाषा, भारतवर्ष में आर्यजाति के प्रथम अभ्युदय-काल की भाषा की तरह मौखिक ही थी। ग्रन्थरचना करके मनुष्यों की उक्तियों को स्थायी बनाने की कुछ भी चेष्टा नहीं की जाती थी। अतएव विद्यापति और चण्डीदास बँगला-ग्रन्थकारों के पथप्रदर्शक और गुरु कहे जाते हैं। किन्तु इस विषय में इस समय मतभेद हो गया है कि विद्यापति बङ्गाली कवि थे। डाक्टर ग्रियर्सन ने "विहार-डायलेक्ट" नाम की पुस्तक रच कर यह प्रमाणित कर दिया है कि विद्यापति मैथिल कवि थे। उनकी सब कवितायें मैथिली भाषा में हैं। उनकी मृत्यु के बाद बङ्गालियों ने उन कविताओं को बँगला के साँचे में ढाल लिया है। यह बात असम्भव नहीं है, और अगर यह सच हो तो विद्यापति को हम बँगला-ग्रन्थकारों का पथप्रदर्शक या आदि-गुरु नहीं मान सकते। किन्तु बँगला-साहित्य के बाल्यबन्धु और यौवन-सखा विज्ञवर राजनारायण वसु महाशय ने अपनी बँगला-भाषा-सम्बन्धी वक्तृता के शुरू में ही लिखा है कि "ईसा की सातवीं शताब्दी में चीना यात्री हियनसांग भारतवर्ष में आया था और वह बङ्गाल, विहार और उत्तर-पश्चिम अञ्चल के कुछ अंश में एक ही भाषा का व्यवहार देख गया था। केवल आसाम और उड़ीसा की भाषा कुछ भिन्न थी। यह मागधी-प्राकृत भाषा से उत्पन्न एक तरह की पुरानी हिन्दी-भाषा थी। हिन्दी और बँगला दोनों ही इस एक ही भाषा से उत्पन्न हुई हैं। इसी कारण यहाँ के प्राचीन कवियों की भाषा में बहुत अधिक हिन्दी मिली हुई है। विद्यापति मैथिली-हिन्दी के कवि हैं। उनकी भाषा न तो प्राकृत-हिन्दी है और न बँगला। परवर्त्ती वैष्णव कवियों ने विद्यापति की कविता को बँगला-लिबास पहनाया

है"। डाक्टर ग्रियर्सन और राजनारायण बाबू की उक्ति का फल एक ही है। भेद यही है कि ग्रियर्सन साहब विद्यापति को बङ्गाली कवि नहीं कहते, और राजनारायण बाबू कहते हैं कि विद्यापति के होने के पहले बङ्गालियो की कोई जुदी भाषा नहीं थी, मैथिली ही उस समय बङ्गालियो की भाषा थी। उक्तियाँ भिन्न होने पर भी मतलब एक ही है। ऐसे मतविरोध की अवस्था मे हमारी राय यह है कि बङ्गाली लोग विद्यापति को उनके प्राप्य सम्मान से एकदम वञ्चित न कर दे। विद्यापति के समय मे बँगला-भाषा की स्वतन्त्रता की सूचना हुई थी। वैष्णव कवियो की रचना वर्त्तमान बँगला-भाषा से भिन्न और बहुत कुछ हिन्दी-मिली होने पर भी वह बँगला के सिवा और कुछ नही कही जा सकती। विद्यापति के मैथिल कवि होने की बात को ग्रियर्सन साहब और राजनारायण बाबू दोनो ने स्वीकार किया है। वह बिहारी हैं, मैथिल-कवि हैं, बँगला मे उनकी कोई रचना होने का प्रमाण नही पाया जाता। उनका जो कुछ है वह मैथिली भाषा की कविता का बँगला-संस्करणमात्र है। ऐसी अवस्था मे यदि उन्हें बङ्गाली कवियो का अगुआ और बँगला-ग्रन्थकारो का पथप्रदर्शक न माने तो कोई दोष की बात न होगी। हमारी समझ मे तो चण्डीदास और गोविन्ददास ही बँगला के आदि-ग्रन्थकार हैं। अस्तु। विद्यापति, चण्डीदास और गोविन्ददास, ये श्रीगौराङ्गदेव के आविर्भाव के कुछ पहले हुए। उस समय जो इन्होंने लिखा वह सब कृष्णलीला से सम्बन्ध रखता है।

४०० बरस पहले बङ्गाल की सामाजिक अवस्था बहुत ही शोचनीय हो रही थी। सब आदमी निर्जीव जडप्राय हो रहे थे। खाने-पीने सोने मे ही उनका समय बीतता था। वे अपने अमूल्य जीवन को इसी तरह बिता देते थे। उस समय बङ्गाल की सामाजिक अवस्था

में परिवर्तन न होता तो समाज-शरीर का प्राणवायु थोड़े ही समय में निकल जाता। विधाता अपने महान् कार्यों का सूक्ष्म सूत्र जिस रास्ते से चलाते हैं वह मनुष्य की बुद्धि-विवेचना से परे होता है। १४०७ शकाब्द (सन् १४८५ ई०) में बङ्गाल की भूतपूर्व राजधानी और धर्म्मक्षेत्र नवद्वीप में नवद्वीपचन्द्र का जन्म हुआ। उनकी विद्या-बुद्धि का प्रभाव बहुत फैल गया। उनका अलौकिक सुन्दर शरीर और गोरा रंग दर्शनीय था। ऐसे सुरूप और गुणी पुरुष ने मृतकल्प बङ्गालियों के जीवन में नवीन शक्ति का सञ्चार करने में अपनी जान लड़ा दी। जननी शचीदेवी के आँसुओं की पर्वा न करके, प्यारी स्त्री विष्णुप्रिया के सुदृढ़ प्रेमबन्धन को काट कर, उन्होंने लोकसेवा में अपना जीवन लगा दिया, धर्म्म की प्रबल तरङ्गें उठा कर वह उसमें डूब गये। उन्होंने अपने साथ ही देश के अनेक लोगों को भी धर्म्मभाव के सागर में मग्न कर दिया। इस धर्म्म के आन्दोलन में दो तरह के लेखक उत्पन्न हुए। कुछ लोग वैष्णव-धर्म्म के मधुर भाव के प्रचार में, काव्य-रचना करने में, कमर कस कर खड़े हो गये। वैष्णव-साहित्य इसी आन्दोलन का एक अंश है। वैष्णव धर्म के बहुल प्रचार से जब चारों ओर उलट पुलट हो रहा था, जब जाति और धर्म का भेद उड़ गया और सभी उच्च धर्म के अधिकारी बतलाये जाने लगे, जब वैष्णव लोग ऐसे उच्च भाव का प्रचार करने लगे कि "चण्डालोऽपि द्विजश्रेष्ठ हरिभक्तिपरायण।" "जाति पाँति पूछै ना कोय। हरि का भजै सो हरि का होय॥" तब कुछ शाक्त लोग पैदा हुए और वे अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए बहुत से ग्रन्थ रचने लगे। इन शाक्तों और वैष्णवों की प्रतिद्वन्द्विता से बँगला का साहित्य सङ्गठित होने लगा। उस समय की बंगाली भाषा दोनों ओर से परिपुष्ट होने लगी। एक ओर चैतन्य भागवत, चैतन्यमङ्गल, चैतन्य-

चरितामृत, भक्तमाल आदि छोटे और बडे वैष्णवो के ग्रन्थ लिखे जाने लगे तो दूसरी ओर कविकङ्कण, मुकुन्दराम चक्रवर्त्ती आदि लेखक चण्डीकाव्य ऐसे ग्रन्थो से बँगला-भाषा की श्रीवृद्धि करने में अग्रसर हुए। कविकङ्कण के बारे मे बाबू राजनारायण वसु ऐसे प्रवीण साहित्यानुरागी पुरुष की राय है कि वह राजा कृष्णचन्द्र-राय के सुसभ्य सभासद भारतचन्द्र और वग के अमर कवि माइकेल मधुसदन-दत्त से भी कपोलकल्पित रचना के बारे मे बढे चढे हैं।

मुकुन्दराम की कोमल कविताये ऐसी सरल हैं कि समाज के सब लोग उन्हे सहज मे समझ लेते है। यही उनका प्रधान गुण है। उनकी रचना-परिपाटी और कविता मधुर भी है। इसीसे मुकुन्दराम की कविता को "सोने मे सोहागे" का सौभाग्य प्राप्त है। उन्होन खुद अपनी कविता को "स्वर्णमण्डित गज-दन्त" कहा है। एक समालोचक की राय है कि उनकी यह अपनी उक्ति होने पर भी बहुत ही समीचीन है।

इसके उपरान्त बङ्गाल के अमर कवि कृत्तिवास और काशीराम ने रामायण और महाभारत बँगला मे लिख कर हमको अपना चिर-ऋणी बनाया। इनके ऋण को बगाली लोग किसी तरह चुका नहीं सकते। बगाल मे घर घर मर्द-औरत लडके-लडकी सब रामायण और महा-भारत को पढते रहते हैं। इसीसे इन दोनो महात्माओ को भक्ति-पूर्वक याद करना हमारा परम कर्त्तव्य है। हमारे देश के छोटे लोग अन्यान्य देशो के छोटे लोगो से नम्र और धर्म्मात्मा हैं। इसका प्रधान कारण रामायण और महाभारत का उनमे प्रचार होना ही है। पाश्चात्य जातियो के धर्म-ग्रन्थ बाइबिल से जो उद्देश्य नहीं सिद्ध हुआ और भारत में वेद, उपनिषद्, पुराण आदि से जो काम सुसम्पन्न नहीं हो सका वही काम इन दो महाकाव्यों ने बगाल मे कर दिखाया।

समाज-शरीर के भीतर, बहुत सी विभिन्नतायें और विचित्रतायें रहने पर भी जो जातीयता की शेष रक्षा अब भी देख पडती है उसकी चुप-चाप रक्षा करने वाले ये ही दो महाकाव्य हैं—रामायण और महा-भारत। बगाल मे कृत्तिवास और काशीराम और भारत भर मे वाल्मीकि और व्यास को यह श्रेय प्राप्त है। इसके बाद वैष्णवो और शैवो के बहुत से ग्रन्थ बने, जिनका केवल उल्लेख भी यहाँ पर असभव है। इनके बाद बँगला भाषा की सेवा करने वालो मे रामप्रसाद और राय गुणाकर का नाम विशेष भाव से उल्लेख के योग्य है। रामप्रसाद श्यामा के उपासक थे और उन्हीं के सम्बन्ध के कुछ सगीतो की रचना ही उनकी इस कीर्त्ति का कारण है। उनके सात्त्विकभाव-पूर्ण सरल गीतों को मीठे "प्रसादी" स्वर मे बङ्गाल के बच्चे-बूढे सब गाते हैं। उन गीतो से सात्त्विक प्रसन्नता और तृप्ति प्राप्त होती है। कविरञ्जन ने भी "विद्या-सुन्दर" लिखा है किन्तु राय गुणाकर के "अन्नदामङ्गल" के अन्तर्गत "विद्यासुन्दर" को ही विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। राय गुणाकर भ्रमर की तरह अनेक पुष्पो से मधुसञ्चय करके जो मधु-चक्र (मक्खियो का छत्ता) बना गये है वह बङ्गालियो के लिए सदा मधुमय बना रहेगा।

जिस समय का यह जिक्र है उस समय ग्रन्थकार ग्रन्थ बना कर बडे कष्ट से जुगा कर उसकी कापी रखते थे। आज कल लोग बहुमूल्य वस्तुओं को जिस तरह हिफाजत से रखते हैं उससे भी अधिक साव-धानता के साथ उस समय हस्तलिखित ग्रन्थो की रक्षा की जाती थी। जिसको जरूरत या शौक होता था वह ग्रन्थकार की खुशामद करके बहुत क्लेश उठा कर बहुत दिनो मे उसकी नकल कर लेता था। इस प्रकार उस समय ग्रन्थ का प्रचार होना बहुत ही कठिन था। ऐसी अवस्था मे यह मानना ही पडेगा कि उस समय के ग्रन्थकार लोग

धन की आशा से ग्रन्थ नहीं लिखते थे। वे अपनी प्रसन्नता के लिए अपनी रुचि और प्रकृति के अनुरूप मार्ग मे एक एक पग अग्रसर होते थे। जिनमे ग्रन्थरचना की प्रवृत्ति प्रबल होती थी वे ही अपनी अपनी मित्रमण्डली की प्रसन्नता या सन्तोष के लिए ग्रन्थ लिखते या बनाते थे। किन्तु उससे लोकशिक्षा को विशेष सहायता नही मिलती थी। उस समय, जब कि छापे का बिलकुल प्रचार न था, ग्रन्थकारो और साहित्य का कल्याण चाहने वालो की इच्छा पूर्ण होने का एक उपाय था। ग्रन्थकार लोग कृष्णचरित, रामायण, महाभारत आदि के आधार पर पुस्तके बनाते थे। कुछ लोग ऐसे भी थे जो बाजो के साथ इन सब ग्रन्थो के विषय गा गा कर लोगो को सुनाते फिरते थे। इसके सिवा कथा बाँचने वालो और नाचने गाने वाली मण्डलियो ने भी बँगला-साहित्य के प्रचार मे यथेष्ट सहायता पहुँचाई है।

अब हम सत्तेप मे इसी बात का उल्लेख करेंगे कि किस शुभ-मुहूर्त मे किस महात्मा के द्वारा किस उपाय से यह लोक-शिक्षा का मार्ग साफ हुआ है, किन किन कार्यो से वर्त्तमान बँगला भाषा की सृष्टि हुई है, और सहसा कौन दैवी-शक्ति प्राप्त करके बँगला का साहित्य अपनी किशोर अवस्था बीतने के पहले ही इतनी शक्ति-सामर्थ्य, इतनी विचित्रता और इतनी विस्तृति के साथ प्रबल वेग से उन्नति के मार्ग मे अग्रसर हो रहा है। बङ्गाल मे अँगरेजी राज्य का सूत्रपात हुए कुछ अधिक डेढ सौ वर्ष बीते हैं। किसी नई जगह पर पदार्पण करते ही करते उस स्थान के अभावो को मिटाने और उस जगह को सब प्रकार मनुष्य के रहने लायक बनाने के लिए उपाय करना अँगरेज-जाति का स्वभाव-सिद्ध गुण है। खोजने से हर एक जाति मे दोष दिखाई देंगे। अँगरेजों मे भी दोष हो सकते हैं। किन्तु यह मानना ही पडेगा कि जातीय उन्नति के लिए जिन गुणो की

जरूरत हुआ करती है वे अधिक मात्रा में उनमें मौजूद हैं। राजदण्ड से दण्डित अपराधी अँगरेजों को देश-निकाला होता था तो वे आस्ट्रेलिया को भेज दिये जाते थे। रूस में ऐसे अपराधी साइबेरिया को भेज दिये जाते हैं और भारत से ऐसे अपराधी अण्डमन टापू पहुँचा दिये जाते हैं। किन्तु आस्ट्रेलिया में निर्वासित अँगरेजों और उनके वंशधरों ने सभ्य-जगत् की सुख-वृद्धि के काम में बड़ी सहायता पहुँचाई है। यह बात निर्वासित रूसियों और भारतवासियों में नहीं पाई जाती। जिस जाति के अपराधी भी ऐसी विचित्र उन्नति कर सकते हैं उस जाति में हजार दोष होने पर भी वह आदरणीय है। ऐसी पूजनीय अँगरेज-जाति की इस विचित्र जातीय उन्नति की एक प्रबल तरङ्ग अटलांटिक और भारत-महासागर को नाँघ कर बढ़िया के पानी की तरह अनेक मार्गों से भारत में भी पहुँच गई। उसी तरङ्ग के घात-प्रतिघात से जो श्वेत फेन-पुञ्ज उठा था उसी ने सारे भारत को उज्ज्वल बना रक्खा है। इस अँगरेजों के आगमन से जिन मङ्गल-कार्यों की शुभ-सूचना हुई उनमें एक प्रधान कार्य छापेखानों की स्थापना है। सन् १७७८ में चार्ल्स विल्किन्स नाम के एक अँगरेज ने सबसे पहले बहुत क्लेश उठा कर छापे के लायक बँगला-अक्षर बनाये। इन अक्षरों की सहायता से हालहेड नामक एक अँगरेज का बनाया हुआ सबसे पहला बँगला का व्याकरण छापा गया। इन दोनों चिरकृतज्ञता-भाजन विदेशी महात्माओं के निकट बँगला भाषा और उसके हितैषी लोग सदा ऋणी बने रहेंगे। विल्किन्स और हालहेड वर्त्तमान शीघ्रगामी बँगला साहित्य के अतिवृद्ध प्रपितामह होने के कारण बङ्गालियों के पूजनीय हैं। जो लोग किसी कार्य के सुफल का ही सम्भोग करते हैं वे उस कार्य की सूचना करनेवालों के अध्यवसाय, आत्म-त्याग और कष्टसहिष्णुता की रत्ती भर भी धारणा अपने मन में

नहीं कर सकते । ये दोनो महात्मा अँगरेज थे, इसी से शायद ऐसे असाध्यसाधन के लिए साहस करके छ. साल तक इस देश की अनेक भाषायें सीख कर, उन भाषाओ के अक्षर एकत्र कर, उन्हे परस्पर मिला कर, इन्होने बँगला-टाइप बनाया । इसी से कहते है कि दृढ-प्रतिज्ञ अँगरेज-जाति धन्य है। उक्त दोनो सज्जनो ने नि स्वार्थ-भाव से नगण्य उपेक्षित बँगलासाहित्य के उद्धार का प्रयत्न किया, इसी से आज हम अनेक दैनिक, साप्ताहिक और मासिकपत्र तथा ग्रन्थो का ऐसा प्रचार देख पाते हैं। सन् १७९३ मे एच० पी० फास्टर नामक एक अँगरेज ने लार्ड कार्नवालिस के सगृहीत और अनुमोदित आईनो का बँगला-भाषा मे अनुवाद किया । इन्ही सज्जन ने बँगला का सबसे पहला 'कोष' तैयार किया । आईनो का बङ्गानुवाद ही बँगला मे गद्यग्रन्थ-रचना की सूचना है । यह पुस्तक श्रीरामपुर मे, सन् १८२६ मे, दूसरी बार छपी थी ।

श्रीरामपुर के पादरियो का मुख्य उद्देश्य ईसाई-धर्म का प्रचार होने पर भी उसी कार्य के सुभीते के लिए उन्होने ही पहले-पहल बँगला का छापाखाना खोला था । ये ही लोग बँगला टाइप के अधिक प्रचार के उत्साहदाता और बँगला भाषा सवाद-पत्रो और ग्रन्थो की रचना के पथप्रदर्शक हैं। और, इसीसे हम इनके चिरकृतज्ञ बने रहेगे। जैसे चैतन्यसम्प्रदाय के वैष्णवो के द्वारा बँगला मे पद्य-रचना की उन्नति शुरू हुई थी उसी तरह ईसाई पादरियो के द्वारा बँगला गद्य का प्रचार शुरू हुआ। कृत्तिवास की रामायण और काशीदास का महाभारत जो सुलभ मूल्य मे बिक कर बङ्गाल मे घर घर फैल गया, वह भी इन्हीं पादरियो के उद्योग और अध्यवसाय का फल है। जिस समय की बात लिखी जा रही है उस समय पूर्वोक्त हालहेड, विल्किन्स, फ़ास्टर, केरी, मार्शमैन, कोलब्रुक और सर विलियम जोन्स

आदि अनेक अँगरेज सज्जन संस्कृत, बँगला, हिन्दी, उड़िया आदि इस देश की भाषाओं के अनुशीलन और उन्नति की विशेष चेष्टा में लगे हुए थे।

ईसाई मिशनरियों का काम शुरू होने के बाद और महात्मा राममोहनराय के बँगला-साहित्य की सेवा में नियुक्त होने के पहले, सन् १८०० में, अँगरेज सिविलियनों को देशी भाषाओं की शिक्षा देने के लिए, कलकत्ते में, फ़ोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हुई। इस कालेज में साहबों को बँगला की शिक्षा देने के लिए कई एक बँगला के गद्य-ग्रन्थ बनाये गये । इन ग्रन्थों की बँगला बड़ी विचित्र थी। इस समय के बङ्गाली पाठक उस भाषा को पढ़ कर अपनी हँसी न रोक सकेंगे । राजीवलोचन का लिखा "कृष्णचन्द्रचरित" पहले पहल सन् १८०५ में छप कर प्रकाशित हुआ था। रामराम वसु का बनाया "प्रतापादित्यचरित" पहले पहल सन् १८०६ में छप कर प्रकाशित हुआ था। ऐसे ही उड़ीसे के रहनेवाले मृत्युञ्जय विद्यालङ्कार की बनाई "राजावली" सन् १८०८ में और "प्रबोधचन्द्रिका" सन् १८१३ में पहले पहल छप कर प्रकाशित हुई थी। बहुत चेष्टा करने पर भी इनके बाद के बँगला के गद्य-ग्रन्थ हमको नहीं मिले। ये सब ग्रन्थ इस समय बहुत ही कम पाये जाते हैं। शायद कुछ वर्षों के बाद बङ्गाल में कहीं ये ग्रन्थ नहीं मिलेंगे । किन्तु विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ है कि लन्दन में शाही लाइब्रेरी में ये पुस्तकें बड़े यत्न से सुरक्षित हैं। यही कारण है कि वर्त्तमान समय में अँगरेज-जाति ज्ञान और गुण में हमारी अपेक्षा श्रेष्ठ जाति समझी जाती है। हम अपनी बहु-मूल्य वस्तुओं को यत्न से रखना नहीं जानते और वे लोग अपनी चीज़ों के अलावा औरों की भी चीज़ों को जमा करके अपने यहाँ रखते हैं। कृष्णचन्द्रचरित सन् १८११ में लन्दन में छपा और प्रका-

शित हुआ था। आश्चर्य्य तो यह है कि उस समय भी इँग्लेंड मे बँगला पुस्तक छापनेवाले और उसके प्रूफ देखनेवाले लोग मौजूद थे।

अँगरेज लोग ऐसे उद्यमशील और कार्यतत्पर होने के कारण ही देश देश में विचरते हैं और सर्वत्र सिद्धि प्राप्त करके अपनी जाति का गौरव बढाते हैं। और हम, इसी गुण के न होने से अपने ही घर मे मुर्दों की तरह पडे हुए हैं।

बहुत लोगो की धारणा यह है कि ब्राह्मसमाज के संस्थापक महात्मा राममोहनराय ही बँगला-गद्य-रचना के पथ-प्रदर्शक हैं। लोगो की ऐसी धारणा होने के यथेष्ट कारण मौजूद हैं और इस धारणा मे कुछ सत्य भी है। राममोहनराय काम-काज छोड कर सन् १८१४ मे कलकत्ते मे आकर रहने लगे। सन् १८१५ में उन्होंने वेदान्त-सूत्र का वङ्गानुवाद प्रकाशित किया। उस समय भी बँगला-भाषा की बडी ही शोचनीय अवस्था थी। विद्यालय मे पढाने के लिए बनाई गई ऊपर लिखी पुस्तको के अलावा केवल 'ग्रन्थ-प्रणयन और ग्रन्थ-प्रचार के उद्देश्य से कोई बँगला-गद्य-ग्रन्थो की रचना करनेवाला न था। किन्तु यह बात जान पडती है कि जगह जगह बँगला के गद्य-ग्रन्थ रचे और सुरक्षित रक्खे जाते थे। इस सम्बन्ध मे सब तरह के संशय दूर करने की इच्छा से मैंने बङ्गाल-गवर्नमेंट के लाइब्रेरियन श्रद्धेय हरप्रसाद शास्त्रीजी को एक पत्र लिखा था। उन्होंने अनुग्रह करके मेरे पत्र का जो उत्तर दिया वह यहाँ पर उद्धृत किया जाता है।

श्रीश्रीदुर्गा सहाय।

नैहाटी,

१६ जून, १८६४,

विहित विनयानुनयपुरस्सर निवेदनमेतत्।

महाशय, अनेक लोगो की धारणा यह है कि स्वर्गीय महात्मा

राममोहन राय ही बँगला-गद्य के जन्मदाता हैं। उन्होंने ही सबसे पहले बँगला मे बहुत से गद्य-ग्रन्थो की रचना की है। यह बात सच होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उनसे पहले गद्य नहीं लिखा जाता था। गद्य लिखने मे राममोहन राय के प्रतिद्वन्द्वी स्वर्गीय गौरीशङ्कर ने भी बहुत से ग्रन्थ लिखे हैं। अगर राममोहन को ही गद्य का जन्मदाता माने तो यह प्रश्न होता है कि गौरीशङ्कर ने गद्य लिखना कहाँ सीखा ? इस कारण इसमे कोई सन्देह नहीं कि गद्य-रचना-प्रणाली राममोहनराय के बहुत पहले से प्रचलित थी। गद्य-रचना की प्राचीनता के पता लगाने मे वैष्णवो के ग्रन्थो से सहायता अवश्य मिलेगी, यह समझ कर मैंने चैतन्यप्रभु-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया। उसमे देख पडा कि श्रीचैतन्य के समय मे चिट्ठी-पत्री तक सस्कृत मे लिखी जाती थीं। खोजने से भी मुझे बँगला मे लिखे किसी पत्र का पता नहीं मिला। महाराज नन्दकुमार के कारावास के समय लिखे हुए पत्र ही बँगला-गद्य की प्रथम रचना जान पडते हैं। कम से कम उनसे पहले की कोई गद्य-रचना अब तक नहीं पाई गई। नन्दकुमार की बँगला मे भी उर्दू शब्द बहुतायत से हैं और वह कचहरी की भाषा के समान है। नन्दकुमार के बहुत पहले से ही अदालती कागजात गद्य मे लिखे जाते थे। जान पडता है अदालती कागजों से गद्यरचना सीखने के कारण नन्दकुमार की भाषा ऐसी हुई थी।

किन्तु अदालती कागज और पत्र आदि गद्य मे लिखे जाने पर भी जब तक गद्य मे लिखी कोई पुस्तक न पाई जाय तब तक बँगला-गद्य की प्राचीनता स्वीकार करने के लिए कोई तैयार न होगा। इसी से सस्कृत-पुस्तको के अनुसन्धान के समय मैंने बँगला के गद्य-ग्रन्थों की भी खोज शुरू की थी। मेरे घर मे पिताजी की हस्तलिखित

पुस्तकों में खोज करते करते स्मृतिकल्पद्रुम नामक एक हस्तलिखि गद्य-ग्रन्थ मुझे प्राप्त हुआ। ग्रन्थ सम्पूर्ण नहीं है। उसमें तिथिमञ्जरी प्रायश्चित्तमञ्जरी, शुद्धिमञ्जरी आदि कई मञ्जरियाँ हैं। वृद्ध चाचाजी से पूछने पर मालूम हुआ कि वह पुस्तक उनके फूफा के हाथ की लिखी है और उन्होंने यशोहर जिले से लाई गई पुस्तक से उक्त ग्रन्थ की यह कापी की थी। चाचाजी का खयाल है कि थानाकुल के वन्द्योपाध्याय ठाकुर के वंशधरों की यह रचना है। यह बात किसी कदर सच भी जान पड़ती है। क्योंकि वन्द्योपाध्याय महाशय और उनके वंशधर लोग स्मृतिशास्त्र की व्यवस्था देना सहज-साध्य बनाने के लिए बहुत से स्मृति-ग्रन्थ बँगला-गद्य में लिख गये हैं। भट्टाचार्य घराने का कोई भी आदमी संस्कृत न जानने पर भी व्यवस्था दे सके, इसी अभिप्राय से बँगला-स्मृतिकल्पद्रुम लिखा गया था।

चाचाजी ने जिस समय की बात कही उस समय थानाकुल के भट्टाचार्य्यों में से कई आदमी मेरे घर में पढ़ते थे। यह कुछ विचित्र नहीं है कि उन लोगों में से किसी की जबानी खबर पाकर एक संस्कृत न जानने वाले आदमी (अर्थात् चाचाजी के फूफा) ने उक्त ग्रन्थ की कापी करके पाण्डित्य-प्रसिद्धि पाने की चेष्टा की हो। इसी समय पूर्वोक्त गौरीशङ्कर भी मेरे घर में पढ़ते थे। उन्होंने इस ग्रन्थ की गद्य-प्रणाली देख कर वैसा ही गद्य लिखने की चेष्टा की हो तो क्या आश्चर्य है? और भी एक बँगला-गद्य में लिखित स्मृति-ग्रन्थ शेरपुर-निवासी पण्डित-प्रवर महामहोपाध्याय श्रीयुत चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार महाशय के घर में मिला है। वह भी निपट आधुनिक नहीं जान पड़ता।

सत्तर बरस के लगभग हुए, जब मेरे घर में स्मृति-कल्पद्रुम ग्रन्थ की नकल की गई थी। उस समय जिस पुस्तक से नक़ल की गई

थी वह पुरानी थी। अनायास यह अनुमान किया जा सकता है कि वह १०० वर्ष पहले की लिखी हुई थी। वल्कि वह प्रति इससे भी अधिक पुरानी मानी जा सकती है। नारायण ठाकुर और उनके पुत्रो ने इस ग्रन्थ को बँगला-गद्य मे लिखा था। वे नकल करने के समय से २०० वर्ष पहले पैदा हुए थे। राममोहनराय की बँगला-ग्रन्थावली इस शताब्दी के १४।१५ वर्ष बीतने पर लिखी जाने लगी थी। अतएव बँगला-स्मृतिकल्पद्रुम उसकी अपेक्षा प्राचीन है।

एकान्त वशवद

श्रीहरप्रसाद शास्त्री।

किन्तु महात्मा राममोहनराय के जीवनचरित मे उन्होंही ने लिखा है कि "सोलह वर्ष की अवस्था मे मैंने हिन्दुओ की मूर्ति-पूजा के विरुद्ध एक पुस्तक लिखी थी"। यह पुस्तक निस्सन्देह गद्य ही मे लिखी गई थी। राममोहनराय की गद्यरचना का समय सन् १८१५ नहीं, सन् १७९० ही है।

अब इससे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि उस समय के बहुत पहले से बङ्गाल के अनेक स्थानो मे छिपे हुए रत्नों की तरह थोड़े बहुत हस्तलिखित गद्य-ग्रन्थ यत्नपूर्वक सुरक्षित रहने पर भी उनके द्वारा महात्मा राममोहनराय का कुछ उपकार नहीं हुआ। सात आठ वर्ष तक पटने मे और उसके बाद काशी मे पढने के लिए रह कर सोलह वर्ष की अवस्था मे घर आकर उन्होने पहली पुस्तक लिखी थी। उनके उक्त ग्रन्थ लिखने के समय उन्हे यह बात बिलकुल नहीं मालूम थी कि और कहीं भी गद्य-ग्रन्थ मौजूद हैं। इस बात को कहने का खास मतलब यह है कि उन्होंने शास्त्र-प्रचार के लिए जितने गद्य-ग्रन्थ लिखे थे उनकी भाषा उन्हीं की प्रतिभा का निज-स्व थी। राममोहनराय भाषाप्रणाली के विषय मे किसी के ऋणी नहीं

हैं। वेदान्त-ग्रन्थ की भूमिका मे उन्होने बँगला-गद्य पढने के नियमो के बारे मे जो उपदेश दिया है उससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि इस तरह गद्य पढने का लोगो को अभ्यास न था। हम उस भूमिका का कुछ अश यहाँ उद्धृत किये देते हैं।

"ओ तत्सत्। पहले तो बँगला-भाषा मे केवल आवश्यक घर के कामो के निर्वाह योग्य कुछ शब्द हैं। यह भाषा सस्कृत की कितनी अनुगामिनी है, यह बात उस समय स्पष्ट जान पडती है जब किसी दूसरी भाषा का अनुवाद इस भाषा मे किया जाता है। दूसरे इस भाषा मे अभी तक किसी शास्त्र या काव्य का वर्णन नही किया गया। इसका फल यह देख पडता है कि इस देश के अधिकाश लोग अभ्यास न होने के कारण, दो तीन वाक्यो का अन्वय करके उसका अर्थ समझने मे असमर्थ से देख पडते हैं। कानूनी तर्जुमो का अर्थ समझने के समय यह बात स्पष्ट जान पडती है। अतएव वेदान्त शास्त्र की भाषा लिखना साधारण बातचीत की भाषा की तरह सुगम न देख कर इसे पढने मे किसी किसी का मन नही लगेगा। इसी लिए यह भूमिका लिख रहा हूँ। जिन लोगो को सस्कृत मे कुछ भी व्युत्पत्ति होगी और जो लोग ऐसे व्युत्पन्न लोगो के साथ रह कर साधुभाषा कहते और सुनते हैं वे थोडे ही परिश्रम से इस गद्यव्याख्या का अर्थ समझ लेंगे। वाक्य के प्रारम्भ और समाप्ति का खयाल खास तौर पर रखना चाहिए। जिस जिस जगह जब, जो, जैसे इत्यादि शब्द हो उस उस जगह उनके प्रतिशब्द तब, वह, वैसे इत्यादि शब्दो का अन्वय करके वाक्य को समाप्त करना चाहिए। जब तक वाक्य की क्रिया न मिले तब तक वाक्य को समाप्त समझ कर उसका अर्थ निकालने की चेष्टा न करनी चाहिए। किस नाम के साथ किस क्रिया का अन्वय है, इस बात का विशेष ध्यान रखना

चाहिए। क्योंकि कभी कभी एक वाक्य में कई नाम और कई क्रियायें रहती हैं। उनमें से किस नाम के साथ किस क्रिया का अन्वय है, यह जाने बिना ठीक अर्थ समझ में नहीं आ सकता। इसका उदाहरण नीचे दिया जाता है। जैसे—ब्रह्म, जिसे सब वेदों में गाते हैं और जिसकी सत्ता के सहारे जगत् का काम चलता है, सब के उपास्य हैं। इस उदाहरण में यद्यपि ब्रह्म शब्द सब के पहले है तथापि अन्तिम 'हैं' इस क्रियापद के साथ उसका अन्वय होता है''।

इसी तरह हर एक पद का अन्वय करके उन्होंने दिखलाया है कि किस प्रकार गद्य-रचना पढ़ी जाती है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस देश में उस समय गद्य के चलन का वैसा आदर नहीं था और राममोहनराय ने और की सहायता की अपेक्षा न रख कर यह गद्य-रचना की थी। अतएव यदि उन्हें ब्रह्मज्ञान-प्रचार और शास्त्रों का अर्थ प्रकट करने योग्य गद्य लिखने का प्रवर्तक कहें तो शायद किसी के साथ कुछ अन्याय न होगा। बँगला-साहित्य में उनका हाथ लगने के बहुत पहले से ही गद्य-रचना होती थी। पण्डित हरप्रसाद शास्त्री महाशय के पत्र में इस बात का आभास पाया गया है। इधर राममोहन के प्रतिद्वन्द्वी गौरीशङ्कर भट्टाचार्य भी गद्य के तत्कालीन लेखक समझे जाते हैं। तथापि यह बात निर्विवाद है कि राममोहनराय की रचना में मौलिकता देखने को मिलती है और गद्य पढ़ने की पद्धति चलाने और उसके नियमों का उपदेश करने के कारण वे गद्य-लेखकों में विशेषता पाने के अधिकारी हैं। जो कुछ हो, उन्होंने ब्रह्मज्ञान के प्रचार के लिए बहुत से ग्रन्थों की रचना करके बँगला-साहित्य की बड़ी भारी उन्नति की। आज जो बँगला के साहित्य में धर्म्म की आलोचना का प्रबल प्रवाह देख पड़ता है उसके पथ-

प्रदर्शक या पितृपुरुष राममोहनराय ही है। जो चाहे जिस तरह बँगला-भाषा मे शास्त्र की व्याख्या और धर्म्म की आलोचना करे उसे स्मरण रखना चाहिए कि वह इस महापुरुष के निकट ऋणी है। भीष्मपितामह की तरह महात्मा राममोहनराय भी बङ्गाल के हर एक मनुष्य से तर्पण-जल पाने के अधिकारी हैं। वैष्णव-धर्म्म के अभ्युदय के समय आन्दोलन के घात-प्रतिघात से जैसे बँगला का साहित्य पुष्ट हुआ वैसे ही राममोहनराय के ब्रह्मज्ञान-प्रचार के समय भी अँगरेज पादरियो और एतद्देशीय कर्म्मकाण्डी आस्थावान् हिन्दुओ के साथ उनका वाद-प्रतिवाद होने से बँगला-साहित्यजीवन के मार्ग मे और भी अग्रसर होने लगा। राममोहनराय की बनाई जो कई एक बँगला की पुस्तके देख पडती है वे सब शास्त्र-ग्रन्थो के अनुवाद और मूर्त्तिपूजक प्राचीन भट्टाचार्य पण्डितो के साथ शास्त्रार्थ करने से सम्बन्ध रखती हैं। इन सब शास्त्रार्थों मे सर्वत्र राममोहन राय के शास्त्रज्ञान, विद्या, बुद्धि, तर्क, विनय, गाम्भीर्य आदि सद्गुणो का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। मन लगा कर उन्हे पढने से विस्मय के साथ ही उनके ऊपर भक्ति का उदय होता है। किन्तु जो सुमधुर सुललित भाषा आज वगवासियो के कानों मे अमृत की वर्षा करती है, जिस भाषा की प्रवल शक्ति और बहुविस्तार देख कर आज हर एक बङ्गाली फूला नहीं समाता, जिसके श्रीसम्पादन के लिए अतुल-प्रतिभाशाली बकिमचन्द्र ने लेखनी उठाई और उसे अनुपम सौन्दर्य प्रदान किया, जिस भाषा की गम्भीरता का गौरव बढाने के लिए पूर्ववगनिवासी रायबहादुर कालीप्रसन्न घोष ने अपना जीवन अर्पण कर दिया और आज जिस भाषा की सेवा में बङ्गाल के बहुत से सपूत लगे हुए हैं उसके सगठन और सँवारने तथा उसके श्वासहीन शरीर मे प्राणसञ्चार करने के लिए हम किसके निकट ऋणी हैं?

अपने हृदय का रक्त चढा कर, बहुत चिन्ता और परिश्रम स्वीकार कर, अपनी कन्या के समान भाषा का लालन-पालन करने वाला महात्मा कौन है ? सारी बङ्गाली-जाति एक स्वर से इसके उत्तर मे कहेगी कि वह प्रात स्मरणीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ही हैं। उन्होने ही महर्षि कण्व की तरह 'शकुन्तला' का पालन किया। उन्होंने ही महर्षि वाल्मीकि की तरह सीता के आँसू वनवास मे पोंछे। उनके आश्रय मे सीता और शकुन्तला से शोभित वङ्गभाषा बड़े ही गौरव को प्राप्त हुई।

विद्यासागर का पहला गद्य-ग्रन्थ वासुदेवचरित है। इस प्रथम ग्रन्थ के सम्बन्ध मे मतभेद रहने पर भी विशेष अनुसन्धान करके हमने पता पाया है कि वह अप्रकाशित वासुदेवचरित ही उनका पहला ग्रन्थ है।

उसके बाद सन् १८४७ मे विद्यासागर ने वेतालपञ्चविंशति का बँगला अनुवाद प्रकाशित किया। विद्यासागर की प्रकाशित पुस्तको मे पहला ग्रन्थ यही है। उस समय के साहित्यानुरागी पण्डितो को वेतालपञ्चविंशति का अनुवाद देख कर ही इस बात का पूर्वाभास प्राप्त हो गया था कि आगे चल कर साहित्यक्षेत्र मे विद्यासागर को सम्पूर्ण सफलता होगी।

इस ग्रन्थ की रचना के बाद, फोर्टविलियम कालेज मे यह पुस्तक पाठ्य पुस्तक रूप से मजूर की जा सकती है या नहीं, इस बारे मे सब से पहले परलोकगत डाकूर कृष्णमोहन बनर्जी से पूछा गया। उन्हे उक्त पुस्तक अच्छी नहीं जँची। विद्यासागर ने बिल्कुल ही निरुपाय हो कर श्रीरामपुर के पादरियों की शरण ली। पादरी मार्शमैन साहब ने इस आशय का एक प्रशसापत्र दिया कि इस समय जितने बँगला के गद्य-ग्रन्थ हैं उनमें वेतालपञ्चविंशति के अनुवाद का सर्वोच्च स्थान

है। वर्तमान बँगला भाषा के पितृस्थानीय विद्यासागर का पहला ग्रन्थ पहले इस प्रकार दो एक धक्के खाकर अन्त को पादरी साहब के अनुमोदन से पाठ्य पुस्तक बना लिया गया। यह घटना हमें यह बात स्मरण कराती है कि जगत्प्रसिद्ध शेक्सपियर की बहुमूल्य रचना बहुत दिनों तक अज्ञात और अनादृत ही बनी रही और मिल्टन की जिन्दगी में उनके "पैराडाइज लास्ट" का कुछ भी आदर नहीं हुआ। जानसन भले आदमियों की ऐसी पोशाक का सुभीता न होने के कारण लोगों से मुलाकात नहीं कर सकते थे। गोल्डस्मिथ जिन्दगी भर गरीबी के दु ख सहते रहे। इन लोगों के ग्रन्थो का, उस समय समादर होने पर भी, अच्छी तरह आदर होने मे बहुत देर लगी। अगर ऐसा न होता तो इन सुलेखकों को आर्थिक कष्ट कभी न उठाना पडता। विदेश के सुलेखकों को जाने दीजिए। बगाल के अमर कवि माइकेल मधुसूदनदत्त का उनकी जिदगी मे आदर नही हुआ और मृत्यु के समय उनका किसी ने साथ नही दिया। अतएव विद्यासागर महाशय को पहले उद्योग मे अगर ऐसी बातो का सामना करना पडा तो उसमे विचित्र ही क्या है? उनका यही यथेष्ट सौभाग्य समझना चाहिए कि पहली ही बार मे वह अपने मार्ग को साफ करके अग्रसर हो सके। उनकी बेतालपचीसी (बँगला) को अब लोग बडे आदर और चाव से खरीद कर पढते हैं।

बेतालपचीसी की सौ कापियाँ ३००) की मार्शल साहब ने खरीदी थी। इन तीन सौ रुपयो से छपाई का खर्च निकल आया था। बाकी कापियाँ बन्धु-बान्धवो को उपहार देने मे ही चुक गई। बेतालपचीसी के पहले सस्करण की भाषा वैसी प्राञ्जल न थी। सस्कृत के कठिन शब्द उसमे भरे हुए थे। जैसे—"उत्तालतरगमालासङ्कुल उत्फुल्लफेन-निचयचुम्बित भयङ्करतिमिमकरनक्रचक्रभीषण स्रोतस्विनीपतिप्रवाह के

मध्य से सहसा एक दिव्य तरु उद्भूत हुआ"। किन्तु यह बात बहुत शीघ्र ही उनकी समझ में आ गई कि ऐसे लम्बे समासो की कठिन पदावली पाठको को सहजगम्य और रुचिकर न होगी। इसीसे वेताल-पचीसी के अगले संस्करणो मे क्रमश ऐसे ऐसे स्थानो की भाषा बदल कर सहज कर दी गई है। वर्त्तमान संस्करण की भाषा प्राञ्जल और लालित्यपूर्ण है। सुमधुर पदविन्यास के साथ ही भाषा और भाव के समावेश मे वेतालपचीसी तत्कालीन सब पुस्तकों से श्रेष्ठ समझी जाती है। गद्य-भाषा के विषय मे वेतालपचीसी ही वर्त्तमान बँगला-साहित्य का सबसे पहला ग्रन्थ कहा जाता है। सन् १८४८ मे विद्यासागर ने मार्शमैन साहब के लिखे इतिहास के आधार पर बङ्गाल का इतिहास (दूसरा भाग) लिखा। उसमे अँगरेज़ों के राज्य की सूचना से लेकर उस समय के वर्तमान गवर्नर जनरल के शासन-काल तक का वर्णन है। उसकी भी भाषा प्राञ्जल और मनोहर है। लडकपन मे स्कूल मे यह पुस्तक हम लोग बड चाव से पढते थे। अभी तक इसकी स्थान स्थान पर की सुमधुरपदावली-पूर्ण भाषा मुझको कण्ठस्थ है। विद्यासागर ने, सन् १८५० मे, "चेम्बर्स बिओग्राफी" नामक ग्रन्थ के आधार पर "जीवनचरित" लिखा। जीवनचरित मे विदेशी वीरो की कथायें हैं। जिन महात्माओ के आविर्भाव से पाश्चात्य जातियो का जातीय गौरव बढा है, जिन्होने आत्मसमर्पण करके अपने देश की भलाई की है, जिनके जन्म और सेवा से पृथ्वी की सारी मनुष्य-मण्डली का उपकार और लाभ हुआ है उनके कीर्त्तिकलाप और प्रात स्मरणीय नाम केवल ग्रीस, केवल रोम या केवल इँगलैंड की ही सम्पत्ति नहीं हैं। वे सारी पृथ्वी के हैं। ऐसे ही महात्माओ की कीर्त्तिगाथा "जीवनचरित" है। जैसे पदमाधुर्य के बारे मे वेताल-पचीसी की प्रसिद्धि है वैसेही भाषा की ओजस्विता के बारे मे "जीवन-

चरित" की। उस समय सुन्दर, सुमधर, सुश्राव्य बँगला के आदर्श ये ही दो ग्रन्थ समझे जाते थे। "जीवनचरित", "आख्यानमञ्जरी" और "चरितावली" आदि पुस्तकों में विदेशी चरित्रों के ही लिखने के कारण कुछ लोग यह कटाक्ष करते हैं कि वह विदेशियों के पक्षपाती थे, किन्तु यह कटाक्ष उचित नहीं है। बालकों के पढने लायक सहज ही समझ में आजाने वाली देशी आख्यायिकाओं का सग्रह अगर उस समय सभवपर होता तो विद्यासागर उसकी कभी उपेक्षा न करते। इसके अतिरिक्त विद्यासागरजी तो इस सिद्धान्त के आदमी थे कि "अय निज परो वेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥"। वह जैसे दान में मुक्तहस्त थे वैसे ही साधुचरित के समादर में भी सच्चे हिन्दू की तरह उदारता के उच्च शिखर पर विराजमान थे। हिन्दूचरित्र का उच्च आदर्श उनके हर एक काम में देख पडता है। सन् १८५१ में, "चेम्बर्स रूडीमेन्ट्स् आफ नालेज" नामक अँगरेजी पुस्तक के आधार पर उन्होने 'शिशुशिक्षा" का चौथा भाग (बोधोदय) बनाया। इस पुस्तक में सहज रीति पर सरल भाषा में पदार्थविभाग, वस्तु-विचार, काल-विभाग और सख्या आदि का वर्णन है। बहुत सी जानने योग्य बाते अत्यन्त सरल भाव से बच्चों को समझाने के लिए ऐसा उपयोगी ग्रन्थ, बँगला में, शायद ही दूसरा हो।

इसके बाद सन् १८५५ में विद्यासागर ने कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल के कथाभाग को लेकर एक बहुत ही उपादेय सुखपाठ्य ग्रन्थ लिखा और उसका नाम रक्खा "शकुन्तला"। शकुन्तला से बँगला-साहित्य की शोभा बढ़ गई। शकुन्तला में विद्यासागर की लिपि-चातुरी, रचनामाधुरी और पदलालित्य देख कर पाठकगण मुग्ध हो गये और चारों ओर उनकी प्रशसा फैल गई।

विद्यासागर ने इसी साल अपनी सुप्रसिद्ध "विधवा-विवाह-विषयक पुस्तक" बना कर प्रकाशित की। इस पुस्तक के प्रकाशित होने पर कैसा आन्दोलन हुआ था, यह बात विधवा-विवाह-सम्बन्धी अध्याय में पढ़ने को मिलेगी। विधवा-विवाह-विषयक आन्दोलन में लगे रह कर और साथ ही कालेज का काम भी ठीक तौर पर करते रह कर विद्यासागरजी पुस्तकें लिखने का श्रम भी जारी किये हुए थे। सन् १८५६ में विधवा विवाह का आन्दोलन सारे बङ्गाल में हलचल डाले हुए था उस समय सब बङ्गालियों को विद्यासागर की पड़ी हुई थी—कोई उनके पक्ष में था और अनेक उनके प्रतिपक्षी थे—और विद्यासागर उस हलचल के बीच में, उस समाज-तरङ्ग के फेनपुञ्ज के भीतर, विधवा-विवाह-सम्मतिरूपी घोर आँधी से आन्दोलित विपत्ति-पूर्ण समाज की छाती पर बैठे बालकों के पढ़ने लायक पुस्तकें लिख रहे थे। "वर्णपरिचय" के दो भाग, कथामाला और चरितावली की रचना इसी साल हुई। विद्यासागरजी जब जिस काम में हाथ लगाते थे उसी में उनकी असाधारण शक्ति का परिचय प्राप्त होता था। इस प्रकार का धैर्य और शान्तभाव तथा तेजस्वी उद्धत प्रकृति से विद्यासागर की विचित्रता स्पष्ट झलकती है।

"डेविड हेयर" की तरह "बेथून" के मरने पर भी कलकत्ता-वासियों को बड़ा शोक हुआ था। बहुत लोगों के उद्योग से बेथून के स्मारक में "बेथूनसोसाइटी" नाम की एक सभा स्थापित हुई। इस सभा की स्थापना में विद्यासागर का प्रधान उद्योग था। इस सभा में अब तक बहुत से विषयों की आलोचना हो चुकी है और यहाँ प्रबन्ध पढ़ कर या व्याख्यान देकर अनेक विद्वानों की प्रतिष्ठा हो गई है। स्वर्गीय केशवचन्द्रसेन को जिस व्याख्यान से विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त हुई उस "ईसा ख्रीष्ट, यूरोप और एशिया" विषयक व्याख्यान

की रङ्गभूमि वेथूनसोसाइटी ही है। इसी सभा के एक अधिवेशन में विद्यासागर ने "संस्कृत-भाषा, संस्कृत-साहित्य और शास्त्र" विषयक निबन्ध पढा था। यह एक समालोचना-ग्रन्थ है। संस्कृत के ग्रन्थों और ग्रन्थकारों की संक्षिप्त और संगत समालोचना ही इस छोटी सी पुस्तक का उद्देश्य है। किन्तु आश्चर्य की बात है कि इसमें वाल्मीकि और व्यास के दोनों अमूल्य ग्रन्थों (रामायण और महाभारत) के बारे में कुछ भी नहीं लिखा गया। इसका ठीक कारण ढूँढ निकालना कठिन है। जान पडता है, लेख छोटा था और उसे पढने का समय थोडा होना ही इसका मुख्य कारण है। किन्तु ऐसा होने पर भी उक्त दोनों ग्रन्थों का उल्लेख भी न करना न्याय की दृष्टि से उचित नहीं हुआ।

इसके बहुत पहले से विद्यासागर की कलकत्ता ब्राह्मसमाज के सभासदों के साथ जान-पहचान हो गई थी। अक्षयकुमारदत्त, राजनारायण वसु, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि महानुभावों से हेल-मेल बढने का एक विशेष कारण आ पडा। इसी समय "तत्त्वबोधिनी पत्रिका" में विद्यासागर ने लिखना शुरू किया। अनेक तरह के प्रबन्ध लिख कर तत्त्वबोधिनी की शोभा और गौरव बढाने के लिए विद्यासागर ने विशेष परिश्रम किया। जिस तत्त्वबोधिनी सभा की पत्रिका तत्त्वबोधिनी थी उसके मन्त्री भी विद्यासागर हो गये और साथ ही वह ब्राह्मसमाज की भी भलाई सोचने लगे। इसी समय विद्यासागर ने बँगला-गद्य में महाभारत लिखना शुरू किया। तत्त्व-बोधिनी पत्रिका में महाभारत की उपक्रमणिका क्रमश: प्रकाशित होने लगी। पीछे से सन् १८६० में वह उपक्रमणिका पुस्तकाकार छप कर प्रकाशित हुई। इस ग्रन्थ की भी लेखशैली मनोहर है। बडे खेद की बात है कि गद्य-महाभारत पूरा नहीं हो सका।

इसके बाद सन् १८६२ मे विद्यासागर ने "सीतारवनवास" नाम की पुस्तक लिखी। इस पुस्तक मे उन्होंने अपनी लेखशैली की शोभा और सौन्दर्य पूरी तौर से दिखला दिया है। यह पुस्तक सहृदयता और प्रसादगुण से परिपूर्ण है। यथार्थ मे यह अनुवाद नहीं है। अनुवाद की छाया पडने पर भी इसे एक प्रकार से मूलग्रन्थ कह सकते हैं। इस ग्रन्थ की विषयगत मौलिकता सम्पूर्णरूप से विद्यासागर की न होने पर भी भाव और भाषा के बारे में वही इस प्रकार के ग्रन्थ लिखने के पथदर्शक हैं। रामवनवास, रामवनगमन, रामराज्याभिषेक आदि ग्रन्थ रामायण की छाया पर बँगला मे लिखे गये हैं। इन ग्रन्थो का आदर्श "सीतारवनवास" ही है। सीतारवनवास बहुत दिनो से स्कूलो मे पढाया जाता है। दु ख-कष्ट मे पड कर भी एकनिष्ठता, सहिष्णुता और पति के प्रति अटल भक्ति दिखलाना ही इस पुस्तक की अमूल्य सम्पत्ति है। इस पुस्तक का प्रथम अश तो भवभूति के उत्तरचरित का अविकल अनुवाद है, किन्तु आगे का हिस्सा बिलकुल नई रचना है। उसका एक पृष्ठ भी ऐसा नहीं है जिसे पढ कर पत्थर भी पसीज न उठे। इसमे विद्यासागर ने करुणरस खूब दरसाया है। प० रामगति न्यायरत्न ने इस पुस्तक की लिखावट पर प्रसन्न होकर गुप्तरूप से सोमप्रकाश-सम्पादक के द्वारा विद्यासागर को एक सोने की कलम उपहार मे देने का विचार किया था। पर कई कारणो से वैसा नहीं हो सका।

"सीतारवनवास" लिखने के उपरान्त विद्यासागर ने "रामराज्याभिषेक" लिखना शुरू किया था। कुछ दिनो बाद, जब इस ग्रन्थ के कई फार्म छप चुके थे, तब सहचर पत्र के सम्पादक शशिभूषण चटर्जी ने निज रचित "रामराज्याभिषेक" की एक कापी लाकर विद्यासागर को अर्पण की। विद्यासागरजी ने देखा कि शशि-

भूषण बाबू की पुस्तक अच्छी हुई है। तब विद्यासागर ने अपना "रामराज्याभिषेक" छापना बन्द कर दिया। साहित्य-संसार में आज कल ऐसी उदारता कम देखने को मिलेगी।

इसके बाद विद्यासागर ने सन् १८६४ में "आख्यानमञ्जरी," सन् १८६९ में "व्याकरणकौमुदी" का दूसरा हिस्सा, सन् १८७० में सटीक मेघदूत और बीमारी की हालत में बर्दवान में रहते समय शेक्सपियर के "Comedy of Errors" के आधार पर "भ्रान्ति-विलास" लिखा। भ्रान्तिविलास ग्रन्थ बहुत ही अनूठा है। इसमें निर्मल हास्य है। इसके उपरान्त विधवा-विवाह और कुलीनों के बहु-विवाह के सम्बन्ध में कई पुस्तकें विद्यासागर ने लिखीं।

विद्यासागर ने सब मिला कर ५२ ग्रन्थ लिखे। उनमें १७ संस्कृत के ग्रन्थ हैं। उपक्रमणिका और उसके उपरान्त के व्याकरण खास उनके परिश्रम का फल हैं। ऋजुपाठ आदि कई पुस्तकें संस्कृत के अनेक ग्रन्थों से संग्रह करके लिखी गई हैं। उन्होंने रघुवंश, किरा-तार्जुनीय, माघ, मेघदूत आदि ग्रन्थों के पाठान्तर मिला कर मूल-ग्रन्थ भी प्रकाशित किये हैं। पाँच अँगरेज़ी के ग्रन्थ हैं। उनमें से विधवा-विवाह-सम्बन्धी अँगरेज़ी की पुस्तक उनकी निज की रचना है और अन्य पुस्तकें संग्रह या अनुवाद-मात्र हैं। शेष ३० पुस्तकें बँगला की हैं। उनमें १४ स्कूली किताबें हैं। इन १४ में वर्ण-परिचय आदि उनकी निज की रचना हैं। और पुस्तकें अँगरेज़ी या संस्कृत की पुस्तकों के अनुवाद हैं। बची हुई १६ पुस्तकों में तीन पुस्तकें भारतचन्द्र-रचित अन्नदामङ्गल, विद्यासुन्दर और मानसिंह के सुस-म्पादित संस्करण हैं। तेरह पुस्तकें सर्व-साधारण के लिए लिखी गई हैं। शकुन्तला, सीतावनवास और भ्रान्तिविलास आदि कई पुस्तकें अन्य भाषाओं के अनुवाद या उनके आधार पर लिखी हुई हैं। बाक़ी

ग्रन्थ उनकी निज की रचना हैं। विधवा-विवाह और बहु विवाह के सम्बन्ध मे लिखी गई सब पुस्तकें मौलिक हैं। उनके लिए विद्यासागर किसी के ऋणी नहीं हैं।

विद्यासागर के पहले बँगला-साहित्य 'साहित्य' नाम के योग्य ही न था। उनके पहले साहित्य की कैसी बुरी हालत थी और उनकी बेतालपचीसी ने साहित्य-ससार में कैसा युगान्तर उपस्थित कर दिया, इसके सम्बन्ध में पण्डित रामगति न्यायरत्न महाशय लिखते हैं कि "इस समय जो सुन्दर सुश्राव्य सस्कृत-शब्दमयी बँगला-भाषा लिखने की शुद्ध रीति प्रचलित हुई है इसका मूल कारण विद्यासागर की बेतालपचीसी ही है। बेतालपचीसी के पहले वैसी भाषा नहीं लिखी जाती थी। उसके जन्मदाता विद्यासागर ही हैं"। वास्तव मे विद्यासागर ने बड़े परिश्रम से सोच-विचार कर सहज मे समझने लायक बँगला लिखना आरम्भ किया था। उनकी लेखशैली की विशेषता यह है कि एक ओर सीतावनवास, शकुन्तला, भ्रान्ति-विलास आदि पुस्तको मे मधुर और कोमल भाषा लिखी है और दूसरी ओर विधवा-विवाह आदि शास्त्रीय समालोचना-ग्रन्थो मे ओजस्विनी भाषा का प्रयोग किया है। विद्यासागर के वर्ण-परिचय, कथामाला आदि शिशुपाठ्य ग्रन्थो मे बहुत ही सरल भाषा लिखी गई है। उसी लेखनी ने बेतालपचीसी में सुललित भाषा और जीवन-चरित में गम्भीर भाषा लिख कर अपनी विचित्र शक्ति का परिचय दिया है। इसी भाषा की सरलता, कोमलता, गम्भीरता और ओज-स्विता मे ही विद्यासागर की विचित्र प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है। विद्यासागर ने बँगला की पहली पुस्तक "वर्ण-परिचय" पालकी पर चलते चलते एक दिन में लिखी थी। बँगला-भाषा मे विरामचिह्न (, ,), विस्मय-चिह्न (!) और प्रश्न चिह्न (?) का प्रयोग भी सबसे

पहले विद्यासागर ही ने किया था। ये चिह्न अर्थ समझने में बड़ी सहायता करते हैं, और इस कारण भी बँगला-भाषा का साहित्य विद्यासागर के निकट विशेष रूप से ऋणी है।

साहित्य-चर्चा मे लोगो की रुचि पैदा करने और लोक-शिक्षा का मार्ग सुगम और सहज-साध्य बनाने के जितने उपाय हैं उनमें समाचारपत्रों का प्रचार एक प्रधान उपाय है। इसके द्वारा बहुत ही थोड़े दिनो में इस देश की जातीय उन्नति मे युगान्तर उपस्थित हो गया है। समाचारपत्रो मे उपन्यास, आख्यायिका, समाजतत्त्व, इतिहास और विज्ञान के अनेक लेख प्रकाशित होने के कारण उनके पाठक लोग हमेशा अगली सख्या देखने के लिए उत्सुक बने रहते हैं। जिस समाचारपत्र को पढने के लिए लोगो को जितना अधिक आग्रह होता है उसमे जन-समाज पर असर डालने की ताकत भी उतनी ही अधिक होती है। इँग्लेंड मे टाइम्स, डेलीन्यूज आदि समाचारपत्रो का ही सच्चा आधिपत्य है। बङ्गाल मे भी समाज-तत्त्व, ज्ञान और विज्ञान के तत्त्वो का प्रचार करके उच्च श्रेणी के पत्रो ने कैसा दबदबा जमा लिया था इसके उज्ज्वल दृष्टान्त तत्त्ववोधिनी, प्रभाकर, बङ्ग-दर्शन, बान्धव, वामाबोधिनी और भारत-संस्कारक आदि पुराने और नये पत्र हैं। वर्त्तमान समय मे जो साप्ताहिक समाचारपत्र इस प्रकार शक्ति प्राप्त करके बङ्ग देश की सेवा कर रहे हैं उनमें सबसे पहला पत्र "समाचारदर्पण" था। इसे श्रीरामपुर के मिशनरी मार्शमैन साहब ने सन् १८१८ के अगस्त महीने मे निकाला था। यह पत्र सन् १८४१ तक निकलता रहा। उस समय २३ वर्ष तक निकल कर समाचार-दर्पण देश की सेवा करता रहा, यही उसके लिए यथेष्ट गौरव की बात है। बँगला का पहला समाचारपत्र होने के कारण तत्कालीन गवर्नर जनरल हेस्टिंग्स और उनके बाद लार्ड अमहर्स्ट इस पत्र को सरकारी

सहायता देते रहे थे। सन् १८१९ मे महात्मा राममोहन राय द्वारा सम्पादित "कौमुदी," उसके बाद सन् १८२२ में "समाचार-चन्द्रिका" निकली। समाचार-चन्द्रिका को सतीदाह का समर्थन करने के लिए, राममोहनराय के खिलाफ, स्वर्गीय भवानीचरण बनर्जी ने निकाला था। इसके बाद सन् १८३० में माघ के महीने से विद्यासागर ने "सवादप्रभाकर" निकालना शुरू किया। प्रभाकर की प्रभा के आगे पहले के समाचारपत्र कुछ फीके पड गये थे। उस समय गद्य की जैसी दुर्दशा थी वैसे ही समाचारपत्रों के लेख भी होते थे। उस भाषा से पाठको की तृप्ति नहीं होती थी। हाँ, पद्य जो प्रकाशित होते थे वे उत्तम और मनोहर हुआ करते थे। यह सच है कि विद्यासागर के पहले भी अनेक पत्र बँगला मे निकलते थे, परन्तु ऊँचे दर्जे का सर्वजनप्रिय पत्र भी पहले पहल विद्यासागर ने ही निकाला था। उस पत्र का नाम 'सोमप्रकाश' था। सस्कृत-कालेज की परीक्षा पास किये हुए एक बहरे विद्यार्थी का नाम शारदाचरण था। उसकी लेखशैली प्रशसनीय थी। विद्यासागर ने उसी छात्र को सोमप्रकाश के सम्पादन का काम सौंप दिया। किन्तु सोमप्रकाश की उन्नति के लिए विद्यासागर स्वय यथेष्ट परिश्रम करते थे। विद्यासागर के ससर्ग, उत्साह और सहायता से फुर्ती के साथ सोमप्रकाश की श्रीवृद्धि होने लगी। बर्दवान के राजभवन मे महाभारत के बँगला अनुवाद का काम पा कर शारदाचरण वहाँ चले गये तब सोमप्रकाश का सम्पादन स्वनामधन्य स्वर्गीय द्वारकानाथ विद्याभूषण को सौंपा गया। इन्होंने सोमप्रकाश की और भी उन्नति की। विद्यासागर सदा सोमप्रकाश के पृष्ठपोषक बने रहे। पहले पहल विद्यासागर के लेख भी उसमें निकले थे। जैसे वर्त्तमान बँगला-गद्य-ग्रन्थो की भाषा का आदर्श वेतालपचीसी है वैसे ही ऊँचे दर्जे के, सुरुचिसङ्गत और प्राञ्जल भाषा में लिखे गये

बँगला-अखबारो का पथप्रदर्शक सोमप्रकाश है। सोमप्रकाश, प्रचार और तत्त्वबोधिनी के अतिरिक्त और भी किसी किसी पत्र मे समय समय पर विद्यासागर ने लेख लिखे हैं। वह जब जिस पत्र मे लिखते थे तब उसे लोग बडे आदर और चाव से पढते थे। विद्यासागर की लेखशैली की उनके सम-सामयिक और परवर्त्ती सब विद्वानो ने मुक्त-कण्ठ होकर प्रशसा की है।

विज्ञवर राजनारायण बाबू ने अपनी "बँगला-भाषा और साहित्य" शीर्षक वक्तृता मे कहा है—"अब हम बँगला-भाषा के जानसन विज्ञवर माननीय श्रीयुत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की ओर अग्रसर होते हैं। विद्यासागर महाशय ने ही अपने लिखे और प्रकाशित ग्रन्थो के द्वारा बँगला की वर्तमान उन्नति का प्रथम सूत्रपात किया है। अनेक लोगो को मालूम नही है कि देवेन्द्रनाथ ठाकुर और विद्यासागर ने बँगला के उद्भट लेखक अक्षयकुमारदत्त का कितना उपकार किया है। अक्षय बाबू के लेख को पहले पहल ये ही दोनो महाशय देख कर शुद्ध कर दिया करते थे। कुछ दिनो मे अक्षय बाबू स्वय प्रवीण लेखक हो गये और उनके लेख मे सशोधन की आवश्यकता ही नहीं रही। बहुत लोगो की धारणा है कि विद्यासागर मे उद्भावनी शक्ति न थी, उन्होने जो कुछ लिखा है वह अनुवादमात्र है। किन्तु जिन्होंने विद्यासागर के 'सस्कृतसाहित्य-विषयक प्रस्ताव' और 'विधवाविवाहविचार' को पढा है वे कभी यह नहीं कह सकते कि विद्यासागर मे अपने दिमाग से कुछ लिखने की ताक़त न थी। बँगला में व्याख्यान देते समय और उसे समाप्त करते समय अनेक अँगरेजीदाँ लोग अज्ञातभाव से विद्यासागर-लिखित विधवाविवाह-सम्बन्धी दूसरी पुस्तक के उपसहार का अनुकरण किया करते हैं। विद्यासागर-लिखित सीतावनवास में भवभूति के उत्तरचरित और वाल्मीकि के

रामायण का कोई कोई अंश अवश्य लिया गया है, किन्तु उसमें विद्यासागर के अपने दिमाग से लिखे गये अनेक मनोहर अंश भी हैं। सीतावनवास को एक प्रकार से मौलिक ग्रन्थ कहना ही ठीक होगा। विद्यासागर ने बँगला के संगठन और परिमार्जन का बहुत कुछ काम किया है। बँगला-भाषा उनके निकट बहुत कुछ ऋणी है"।

स्वर्गीय प्यारी चांद मित्र की ग्रन्थावली की भूमिका में रायबहादुर बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय सी आई ई महोदय लिखते हैं—"कहा जाता है कि राजा राममोहनराय उस समय के प्रथम गद्य-लेखक हैं। उनके बाद जो गद्य लिखा जाने लगा वह प्रचलित बँगला से बिलकुल भिन्न था। यहां तक कि बँगला-भाषा दो तरह की कहलाई जाने लगी। एक साधुभाषा अर्थात् पण्डितों की भाषा, और दूसरी इतर-भाषा अर्थात् पण्डितेतर लोगों के व्यवहार में आने वाली भाषा। मैंने खुद बचपन में अध्यापक पण्डितों को जिस भाषा में बातचीत करते देखा है उस भाषा को संस्कृत पढ़े-लिखे लोगों को छोड़ कर और कोई समझ नहीं सकता था। वह बँगला सोलहों आने संस्कृत होती थी। वे 'खैर' न कह कर 'खदिर' कहते थे। 'चीनी' से उन्हें अरुचि थी, उन्हें 'शर्करा' ही भाती थी। वे चूल (बाल), केला, दई (दही) की जगह केश, रम्भा, दधि ही कहते थे। मैंने खुद एक दिन देखा है कि एक अध्यापक पण्डित 'शिशुमार' कह कर 'शुशुक' (सूस) का बयान कर रहे थे। सुनने वालों में कोई 'शिशुमार' का अर्थ न जानता था। अगर पण्डितजी 'शुशुक' कहते तो सब की समझ में आ जाता। पण्डितों की बोलचाल की भाषा जब ऐसी थी तब उनकी लिखी बँगला-भाषा कैसी होगी, यह पाठक-गण स्वयं ही अनुमान कर सकते हैं। ऐसी भाषा में कोई ग्रन्थ लिखा

जाता तो वह उसी समय लुप्त हो जाता, क्योंकि उसे पढ़ने वाला कोई न मिलता। इसी से उस भाषा में लिखे ग्रन्थो द्वारा बँगला-साहित्य की श्रीवृद्धि नहीं हो सकती थी। इस संस्कृतमयी भाषा को पहले पहल महात्मा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और बाबू अक्षयकुमारदत्त ने सहजबोध्य सुश्राव्य शब्दो से अलङ्कृत और परिमार्जित बनाया। इनकी भाषा संस्कृत की अनुगामिनी होने पर भी इतनी कठिन नहीं है। खास कर विद्यासागर की भाषा अत्यन्त मधुर और मनोहर है। उनके पहले कोई ऐसी मधुर गद्य-बँगला न लिख सका है और न आगे कोई लिख सकेगा"।

श्रद्धास्पद बङ्किम बाबू ने ठीक ऐसी ही बातें मुझ से भी कही थीं। उन्होंने कहा था—"विद्यासागर के हाथो संगठित और सुसंस्कृत भाषा ही हम लोगों का मूलधन है। उन्हीं की सम्पत्ति लेकर इस समय हम बँगला-साहित्य की श्रीवृद्धि का प्रयास कर रहे हैं"। बड़ी ही कृतज्ञता और विनय के भाव से बङ्किम बाबू ने यह बात कही थी।

बहुत से ग्रन्थो के लेखक बाबू रजनीकान्त गुप्त ने अपने 'स्वर्गीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर' लेख में लिखा है कि "विद्यासागर और किसी काम में हाथ न डालते तो भी वह अपनी अमृतमयी लेखनी से निकली ग्रन्थावली के कारण बङ्गसाहित्य में चिरकाल तक अमर बने रहते। वह बँगला-साहित्य के पिता न होने पर भी स्नेहमयी माता की तरह उसके पोषक और सँवारने-सिंगारने वाले अवश्य हैं। उन्हीं के प्रयत्न से गद्य-साहित्य की उन्नति और पुष्टि हुई है। दशभुजा दुर्गा की प्रतिमा के बांस-फूस-रस्सी के ढांचे पर मिट्टी लेसी गई थी। विद्यासागर ने उस मिट्टी को चिकना कर, उस मूर्त्ति पर रङ्ग फेर कर, उसे सुसज्जित, श्रीसम्पन्न और मनोहर बना दिया। उनके असम्पूर्ण महाभारत और

जाता तो वह उसी समय लुप्त हो जाता, क्योंकि उसे पढने वाला कोई न मिलता। इसी से उस भाषा में लिखे ग्रन्थो द्वारा बँगला साहित्य की श्रीवृद्धि नहीं हो सकती थी। इस संस्कृतमयी भाषा को पहले पहल महात्मा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और बाबू अक्षयकुमारदत्त ने सहजबोध्य सुश्राव्य शब्दों से अलङ्कृत और परिमार्जित बनाया। इनकी भाषा संस्कृत की अनुगामिनी होने पर भी इतनी कठिन नहीं है। खास कर विद्यासागर की भाषा अत्यन्त मधुर और मनोहर है। उनके पहले कोई ऐसी मधुर गद्य-बँगला न लिख सका है और न आगे कोई लिख सकेगा"।

श्रद्धास्पद बङ्किम बाबू ने ठीक ऐसी ही बाते मुझ से भी कही थीं। उन्होने कहा था—"विद्यासागर के हाथो संगठित और सुसंस्कृत भाषा ही हम लोगो का मूलधन है। उन्ही की सम्पत्ति लेकर इस समय हम बँगला-साहित्य की श्रीवृद्धि का प्रयास कर रहे हैं"। बड़ी ही कृतज्ञता और विनय के भाव से बङ्किम बाबू ने यह बात कही थी।

बहुत से ग्रन्थो के लेखक बाबू रजनीकान्त गुप्त ने अपने 'स्वर्गीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर' लेख मे लिखा है कि "विद्यासागर और किसी काम में हाथ न डालते तो भी वह अपनी अमृतमयी लेखनी से निकली ग्रन्थावली के कारण वङ्गसाहित्य मे चिरकाल तक अमर बने रहते। वह बँगला-साहित्य के पिता न होने पर भी स्नेहमयी माता की तरह उसके पोषक और सँवारने-सिंगारने वाले अवश्य हैं। उन्हीं के प्रयत्न से गद्य-साहित्य की उन्नति और पुष्टि हुई है। दशभुजा दुर्गा की प्रतिमा के बाँस-फूस-रस्सी के ढाँचे पर मिट्टी लेसी गई थी। विद्यासागर ने उस मिट्टी को चिकना कर, उस मूर्त्ति पर रङ्ग फेर कर, उसे सुसज्जित, श्रीसम्पन्न और मनोहर बना दिया। उनके असम्पूर्ण महाभारत और

ालपचीसी की भाषा में जैसे ओजस्विता और शब्दप्रयोगवैचित्र्य
ख पड़ता है वैसे ही उनके सीतारवनवास और शकुन्तला में ललित-
विन्यास के साथ साथ असामान्य माधुर्यगुण का उत्कर्ष दृष्टिगोचर
ता है। उनमें गद्यरचना की असाधारण शक्ति थी, इसका बढ़िया
दाहरण उनका सीतारवनवास और शकुन्तला है।"

बहुत सी ऐसी पुस्तकें भी विद्यासागर की हैं जिन्हें आरम्भ करके
मय न मिलने के कारण वह लिख नहीं सके। ऐसी पुस्तकें या
असम्पूर्ण ही पड़ी रह गई हैं और या विद्यासागर की अनुमति से
नके किसी इष्टमित्र ने उन्हें पूर्ण कर डाला है। जैसे 'नीतिबोध'
ाम की पुस्तक विद्यासागर ने शुरू की थी, पर समयाभाव स वह उसे
र्ण नहीं कर सके। उस पुस्तक को उनके कहने से उनके प्रिय मित्र
ाजकृष्ण बाबू ने पूरा किया। विद्यासागर की बहुत दिनों से भारत
ा एक सर्वाङ्गपूर्ण इतिहास लिखने की इच्छा थी। उसका सब
सामान भी उन्होंने जुटा लिया था। अन्त समय, असी वर्ष की
अवस्था में, जब वह बीमार पड़े हुए थे तब उन्होंने अपने स्नेहपात्र
ीलाम्बर मुखोपाध्याय एम० ए० से कहा कि "मैं एक भारत का
सर्वाङ्गपूर्ण इतिहास लिखना चाहता था, उसका सामान भी जुटा
रखा है, पर अब मुझ से यह काम होने की कोई सम्भावना नहीं
है। तुम लिखे-पढ़े योग्य आदमी हो। तुम से यह काम अच्छा हो
सकता है"। इस समय मैं भी वहाँ उपस्थित था।

विद्यासागरजी गुणग्राही पुरुष थे। गुण का आदर करने में वह
कभी चूकते न थे। मोतीलाल शील और द्वारकानाथ ठाकुर की वह
सदा प्रशंसा किया करते थे। इन दोनों सज्जनों के जीवनचरित लिखने
की भी उनकी बड़ी इच्छा थी। किन्तु दुःख की बात है कि उनकी
यह इच्छा भी पूरी न हो सकी।

विद्यासागर ने विद्यालय में 'विद्यासागर' की उपाधि पाकर ही विद्याचर्चा की इतिश्री नहीं कर दी। वह जन्म भर विद्या का अनुशीलन करते रहे। अन्त समय, बीमारी की हालत में भी, वह बराबर पुस्तकें पढ़ते रहते थे। हाथ पैर समेट कर बेकार बैठे रहने का उनको अभ्यास न था। वह हमेशा कुछ न कुछ करते ही रहते थे। उन्होंने अपना एक पुस्तकालय बना रक्खा था। उसमें संस्कृत, बँगला, हिन्दी और अँगरेजी की अनेक पुस्तकें थीं। अपनी चेष्टा से विद्यासागर ने जो संस्कृत की पुस्तकें छपाई थीं उनके अलावा अनेक हस्तलिखित संस्कृत पुस्तकें भी उन्होंने अपने यहाँ जमा कर रक्खी थीं। संस्कृत पुस्तकें उनके यहाँ असंख्य थीं और वे खूब ही सुरक्षित थीं। वह अँगरेजी की पुस्तकों का भी यथेष्ट आदर करते थे। सुपरिचित और गण्य मान्य अँगरेजों की लिखी सभी पुस्तकें उनके पुस्तकालय में थीं। चाहे संस्कृत का हो, चाहे अँगरेजी का, कोई नया ग्रन्थ प्रकाशित होते ही वह उसे मँगा लेते थे। कोई कोई लोग कहते हैं कि उनके पुस्तकालय में पुस्तकों का जैसा संग्रह था, वह, वैसे विद्वान् नहीं थे। यदि ऐसा था तो वह यह कैसे यथासमय बतला देते थे कि इस ग्रन्थ में इस विषय की आलोचना है, इसकी भाषा ऐसी है, इससे इस इस तत्त्व का संग्रह किया जा सकता है—इत्यादि। मैंने खुद देखा है कि चाहे जिस विषय की चर्चा हो, वह उसके सम्बन्ध में किसी प्रवीण लेखक की राय का उल्लेख करके अपना मन्तव्य प्रकट करते थे। मैंने उन्हें स्काट, शेक्सपियर, मिल्टन, हक्सले, टिण्डेल, मिल, स्पेन्सर आदि अँगरेज कवि, औपन्यासिक, वैज्ञानिक और दार्शनिक पण्डितों के ग्रन्थों के बारे में आलोचना करते देखा है। उन्होंने पुस्तकालय की शोभा बढ़ाने के लिए कोई पुस्तक नहीं खरीदी। उन्होंने जो पुस्तक खरीदी उसे पढ़ा और फिर अच्छी जिल्द बँधा कर

पुस्तकालय में रख दिया। वह अच्छे दाम देकर सोने के अक्षरों से विभूपित अच्छी जिल्द बँधवाते थे।

एक बार एक प्रतिष्ठित पुरुष विद्यासागर से मिलने और उनका पुस्तकालय देखने आये। पुस्तकें देख कर उन्होंने कहा—"इस तरह बहुत दाम खर्च करके जिल्द बँधवाना क्या आप अच्छा समझते हैं ?" विद्यासागर ने कहा—"क्यों, इसमें क्या कुछ दोष है ?" इसके उत्तर में आने वाले महाशय ने कहा—"इस रुपये से अनेक आदमियों का उपकार हो सकता था"। उस समय इस बात को विद्यासागरजी टाल गये, कुछ नहीं कहा। थोड़ी देर में इधर उधर की बातचीत करते करते विद्यासागर ने उनसे पूछा—"महाशय यह शाल का जोड़ा आपने कितने को लिया था ? चीज तो अच्छी है"। उक्त महाशय ने कहा—"यह जोड़ा ५००) रुपये को खरीदा था"। विद्यासागर ने कहा—"पाँच रुपये के कम्बल से भी तो जाड़ा जा सकता है, फिर इतना कीमती दुशाला ओढ़ने की जरूरत क्या है ? इस रुपये से भी तो बहुत लोगों का उपकार हो सकता था। मैं तो जाड़े में मोटी चद्दर का जोड़ा ओढ़ा करता हूँ"। बाबू बहुत ही शरमाये और उन्होंने कहा—"मुझसे बड़ी बेअदबी हुई, माफ कीजिएगा"। बाबू इस उत्तर से ऐसा झेंपे कि जब तक वहाँ रहे तब तक आँख सामने करके बात नहीं कर सके।

पहले विद्यासागरजी अपनी लाइब्रेरी से इष्टमित्रों को पुस्तकें, देखने के लिए, ले जाने देते थे। एक बार उनके एक मित्र एक बहुमूल्य पुस्तक विद्यासागर से माँग ले गये। कुछ दिनों बाद विद्यासागर ने जब वह पुस्तक मँगा भेजी तब उन भलेमानुस ने कहला भेजा कि "वह पुस्तक मैंने लौटा दी है"। विद्यासागर को इससे बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि अब किसी को पुस्तक ले जाने

न देंगे । जो पुस्तक इस प्रकार खो गई थी वह एक दुष्प्राप्य संस्कृत-ग्रन्थ था । जर्मनी के सिवा और कहीं वह मिल न सकता था । और वहाँ भी नया संस्करण हुए बिना उसके मिलने की कोई सम्भावना न थी। किन्तु सुन कर पाठकों को आश्चर्य होगा कि विद्यासागर का जाना पहचाना एक पुस्तक-विक्रेता (Hawker) उसी पुस्तक को विद्यासागर के पास बेचने लाया । थोड़ी देर तक तो विस्मित विद्यासागर चुपचाप खड़े रहे, उसके बाद उन्होंने उससे पूछा—तूने यह पुस्तक कहाँ से पाई ? इसके उत्तर में उसने उन्हीं महाशय का नाम लिया जो विद्यासागर से माँग ले गये थे । सुन कर क्रोध के मारे विद्यासागर काँपने लगे । इसके बाद जो दाम उस फेरी वाले ने माँगे वही देकर विद्यासागर ने वह पुस्तक खरीद ली । इसके बाद एक टुकड़ा कागज भी विद्यासागर किसी को ले जाने न देते थे ।

विद्यासागर की साहित्य-सम्बन्धी दो एक बातें अन्य अध्यायों में प्रसङ्गवश लिखी जायँगी ।

सातवाँ अध्याय ।

स्त्रीशिक्षा और विद्यासागर ।

सन् १८४९ मे, कई देशी प्रतिष्ठित पुरुषो की सहायता और भारत-बन्धु प्रात स्मरणीय जे ई डी बेथून साहब के उद्योग से कलकत्ते में बङ्ग देश की वर्त्तमान स्त्रीशिक्षा का सूत्रपात हुआ था । किन्तु उसके बहुत पहले से कलकत्ते के अनेक स्थानो में लडकियो के स्कूल खोल कर उनमे लडकियों को पढाने की व्यवस्था की जा चुकी थी। सन् १८२० की बङ्गाल की शिक्षा-सम्बन्धी रिपोर्ट मे देखा जाता है कि उस साल की स्कूल-परीक्षा मे गरीब घरो की ४० लडकियो ने परीक्षा देकर पुरस्कार पाये थे । बालिकाओ की परीक्षा लेने के उपरान्त प्रसन्न हो कर राजा राधाकान्त देव बहादुर ने लिखा था कि "महिला-शिक्षा-समिति के द्वारा शिक्षा पाई हुई लडकियो की भी परीक्षा ली गई, उनका उच्चारण और फल बहुत ही सन्तोष-जनक पाया गया" । इसी से अच्छी तरह जान पडता है कि इस साल के पहले से ही कलकत्ते में लडकियो को शिक्षा दी जाने लगी थी । उक्त साल के सन्तोष-जनक फल से उत्साहित होकर महिलासमिति के सञ्चालको ने शोभाबाजार, श्यामबाजार, जानबाजार और इटाली मे चार कन्यापाठ-शालायें और स्थापित की थीं । राजा राधाकान्त देव बहादुर ने

महिला-समिति को एक प्रबन्ध लिख कर दिया, उसका हेडिंग था—"स्त्री-शिक्षा-विधायक प्रस्ताव"। स्त्रीशिक्षा की उपयोगिता और आवश्यकता समझाने के लिए (और खास कर यह प्रमाणित करने के लिए कि यह काम उच्च श्रेणी के भद्रपुरुषों की रीतिनीति के विरुद्ध नहीं है) वह प्रबन्ध लिखा गया था। प्रातःस्मरणीय सुशिक्षिता आर्य-महिलाओं के नामों का उल्लेख करके स्त्रीशिक्षा का गौरव दिखलाते हुए उस प्रबन्ध की रचना हुई थी। उसमें उक्त राजा साहब ने लिखा है कि "यदि इस स्त्री-शिक्षा को विशेष भाव से उत्साह दिया जाय तो यह समाज का बड़ा कल्याण करेगी"। मेरे पास इस "स्त्री-शिक्षा-विधायक प्रस्ताव" की एक कापी मौजूद है। उससे कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है।

"आज कल की स्त्रियों में भी देखो। मुरशिदाबाद में वारेन्द्र श्रेणी की ब्राह्मणी रानी भवानी थीं। उन्होंने लड़कपन में शिक्षा पाई थी। वह राजकाज का सारा हिसाब आप देखती थीं और आप ही सब बन्दोबस्त करती थीं। × × × एक और राढ़-श्रेणी की ब्राह्मण-कन्या थीं। उनका नाम था, हठी विद्यालङ्कार। वह बचपन में काम-काज से फुरसत मिलने पर पढ़ती थी। धीरे धीरे वह ऐसी पण्डिता हो गई कि सब को शास्त्र पढ़ाने लगीं। काशीवास के समय उन्होंने अनेक बङ्गाली और हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों को पढ़ाया। उस समय अन्यान्य अध्यापक पण्डितों की तरह उन्हें भी सभाओं में निमन्त्रण मिलता था और वह पण्डितों से शास्त्रार्थ भी करती थीं। फरीदपुर जिले के कोटालीपाड़ा गाँव में श्यामासुन्दरी नाम एक वैदिक ब्राह्मण की स्त्री ने व्याकरण के उपरान्त सम्पूर्ण न्यायदर्शन पढ़ा था। उनके स्वामी भी महामहोपाध्याय थे। उनको अपनी आँखों देखने वाले अभी तक मौजूद हैं। कलकत्ते के शोभाबाजार वाले राजघराने की सब स्त्रियाँ लिखना पढ़ना जानती हैं"।

इस प्रकार उत्साह पाकर तीन चार साल तक इस महिला-शिक्षा-समिति का काम खूब चलता रहा। अनेक बालिकायें सालाना, छमाही और तिमाही की परीक्षा देने के लिए राजा राधाकान्त देव के घर जाती थीं। किन्तु अन्त को अर्थाभाव से यह शुभ कार्य बहुत दिनों तक नहीं चल सका। सब सदस्यों का एक सा उत्साह न रहने से और काफी रुपया खर्च न कर सकने के कारण आरंभ में ही इस अच्छे काम की इतिश्री हो गई। सन् १८२४ में यह समिति टूट गई। पचीस वर्ष बाद महात्मा बेथून के आने से फिर स्त्रीशिक्षा का काम शुरू हुआ। बेथून स्त्रीजाति के बड़े ही शुभचिन्तक और कृतज्ञ थे। उन्होंने मन-वाणी-काया से बङ्गललनाओं का हितसाधन करना अपना व्रत बना लिया। जिस काम का जैसा गुरु होता है वैसा ही शिष्य भी मिल जाता है, और यही कार्यसिद्धि की सूचना समझी जाती है। बेथून साहब लाट साहब की सभा के व्यवस्था-सचिव थे। बड़ी लम्बी चौड़ी तनख्वाह पाते थे। इज्जत भी उनकी बड़े लाट के बराबर ही थी। किन्तु व्यवहार में वह बहुत ही निष्कपट और सीधे आदमी थे। उनके पास जा कर बातचीत करके कोई यह न जानता था कि किसी अफसर से बात-चीत कर रहे हैं, यही जान पड़ता था कि किसी अपने बड़े या गुरुजन से बातचीत कर रहे हैं। परोपकारपरायण बेथून साहब बङ्गललनाओं को शुशिक्षा देने के लिए अग्रसर हुए। किन्तु उन्हें प्रेरणा करनेवाले—इस ओर आकृष्ट करनेवाले—अमरकीर्त्तिशाली विद्यासागर महाशय ही थे। इसी समय विद्यासागर को एक बार हुगली, ढाका, कृष्णनगर और हिन्दू-कालेज के सीनियर परीक्षा देनेवाले विद्यार्थियों का बँगला का पर्चा बनाना पड़ा। विद्यासागर ने उस पर्चे का विषय "स्त्रीशिक्षा की आवश्यकता" रक्खा। परीक्षा में कृष्णनगर-कालेज के नीलकमल भादुड़ी का

लेख सर्वोत्तम ठहरा और उन्ही को स्वर्णपदक मिला। यह लेख उस समय के अखबारो में और शिक्षाविभाग की रिपोर्ट में छपा था। पारितोषिक देने के समय सभा में स्त्रीशिक्षा के परम प्रेमी बेथून साहब उपस्थित थे। उन्होने एक उत्साह-पूर्ण वक्तृता द्वारा उपस्थित सज्जनो को इस शुभ कार्य्य के लिए उत्तेजित भी किया था। शिक्षा-प्रचार के अच्छे प्रवन्ध तथा बङ्गाल मे जगह जगह अँगरेजी और बँगला के स्कूल खुलवाने के लिए विद्यासागर जी अक्सर बेथून साहब के यहाँ आया जाया करते थे। बेथून का विद्यासागर से बड़ा हेलमेल हो गया था।

बेथून साहब उस समय की शिक्षा-समिति के प्रेसीडेन्ट थे। विद्यासागर जी उससे पहले ही पढाई समाप्त करके कामकाज करने लगे थे। उस समय विद्यासागर पर मार्शल, मायेट आदि शिक्षा-विभाग के प्रतिष्ठित कर्मचारी ऐसी श्रद्धा रखते थे कि कोई भी काम उनसे सलाह लिये विना न करते थे। बहुतही थोडे दिनो मे विद्यासागर और बेथून की ऐसी दाँत-काटी-रोटी होने का यह भी एक कारण है। बेथून और विद्यासागर की मैत्री ने ही बङ्गाल में स्त्री-शिक्षा का ऐसा जोरदार प्रचार कर दिया है। विद्यासागर का स्वभाव ही था कि वह जिस काम मे हाथ लगाते थे उसे पूरा करने के लिए तन, मन, धन, मान, सुख और सम्पत्ति सब कुछ त्याग करने को तैयार रहते थे। उनके बन्धुबान्धव भी उनके इस स्वभाव को गुण समझते थे। विद्यासागर और उनके इष्टमित्रगण सैकडो विघ्न-बाधाओ की पर्वाह न करके बेथून साहब के बालिकाविद्यालय की श्री-वृद्धि करने के लिए अग्रसर हुए। इस कार्य मे सहायता करने के कारण राजा दक्षिणारञ्जन, स्व० मदनमोहन तर्कालङ्कार, स्व० पण्डित शम्भुनाथ, स्व० रामगोपाल घोष आदि बहुत से सम्माननीय लोगो को समाज-कृत निग्रह भोगना पडा था। इन लोगो में से हर एक ने इस काम में इतनी



मिस्टर बेथून ।

सहायता की थी कि हर एक को बेथूनविद्यालय का संस्थापक कह सकते हैं। इन लोगों ने अपनी बालिकाओं को उक्त स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा, और उसके लिए अनेक लाञ्छनायें भी सहीं। तर्कालङ्कार महाशय को कुछ अधिक उपद्रव सहने पड़े थे। उन्होंने ही सब से पहले अपनी दो लड़कियों को स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा था। उस समय के अखबारों ने भी इन लोगों पर बड़े कड़े लेख लिखे थे।

बेथून ने विद्यालय स्थापित करके उसका प्रबन्ध विद्यासागर को सौंपा। विद्यासागर ने मित्र के अनुरोध से विद्यालय की देखरेख और उन्नति करने का काम स्वीकार कर लिया। विद्यासागर के साथ बेथून साहब अक्सर स्कूल देखने आया करते थे। डेविड हेयर की तरह बेथून साहब भी जब स्कूल देखने जाते थे तब लड़कियों के लिए तरह तरह की खेलने की चीजें ले जाया करते थे। विद्यालय में जाकर बालिकाओं को खिलौने देते और लड़कों की तरह उनके साथ खेलते थे। मदनमोहन तर्कालङ्कार के जीवनचरित में विद्याभूषण महाशय लिखते हैं कि "वह प्रायः अपने घर जाते समय भुवनमाला और कुन्दमाला नाम की तर्कालङ्कार महाशय की लड़कियों को गोद में लिया करते थे और कभी कभी उन्हें अपने बँगले पर भी ले जाते थे। उन लड़कियों के ऊधम और उपद्रवों को भी बेथून साहब सह लेते थे। भुवनमाला और कुन्दमाला बेथून की इतनी दुलारी थीं, इसीसे लेडी डलहौसी आदि को भी बहुत प्यारी थीं"। इस प्रकार विद्यालय का काम अच्छी तरह चलने लगा। बेथून की पृष्ठपोषकता और विद्यासागर के यत्न से थोड़े ही दिनों में विद्यालय का अपना घर बनाने के लिए चंदा होने लगा। इतने दिनों तक विद्यालय का खास मकान नहीं था। विद्यालय के प्रधान उद्योगी दक्षिणारञ्जन मुखोपाध्याय के घर में पढ़ाई होती थी। स्थान कम होने के कारण कुछ दिनों बाद बेथून-

विद्यालय गोलदीघी के पास उठ कर चला गया था। बेथून साहब ने खुद बालिका-विद्यालय की इमारत के लिए बहुत सा धन दिया था। पहले बिना फीस लिये, फिर कुछ फीस लेकर, पढ़ाई होती रही। मास्टरों को तनख्वाह भी अच्छी देनी पड़ती थी। वह खर्च भी बेथून के जिम्मे था। लड़कियों को लाने और भेज आने के लिए गाड़ियाँ थीं। उनका भी खर्च भला चगा था। करीब करीब सभी खर्च अपने सिर लेकर बेथून साहब इस विद्यालय की सहायता करते रहे।

सन् १८५१ में, बरसात के समय, गंगा के उस पार ४।५ कोस पर जनाई गाँव के बहुत से रईसों के अनुरोध से वहाँ का बालिका-विद्यालय देखने के लिए बेथून साहब गये। रास्ते में भीगते हुए कीचड़ मँझाकर वहाँ पहुँचे। सहसा वहाँ उन्हें बुखार आगया और उसी में उनकी मृत्यु भी हो गई। बेथून के वियोग से व्याकुल विद्यासागर बालकों की तरह रोने लगे थे। भारत के परम बन्धु और बङ्गललनाओं के हितैषी बेथून् के स्वर्गवास से विद्यासागर बहुत दिनों तक निरुत्साह-से बने रहे। उसके बाद बेथून के बालिका-विद्यालय की उन्नति के लिए उन्होंने बहुत कुछ परिश्रम, उद्योग और खर्च किया। अन्त को अनेक प्रकार के मत-भेद होने के कारण विद्यासागर ने बेथून-विद्यालय के सञ्चालन का काम छोड़ दिया। स्थापना के समय विद्यालय का नाम था हिन्दू-बालिका-विद्यालय। बेथून विल में विद्यालय के लिए बहुत सा रुपया लिख गये थे। उसी धन से विद्यालय का घर बना और उन के स्मारक के तौर पर उन्हीं के नाम पर विद्यालय का नामकरण हुआ।

बेथून के मरने पर विद्यालय के लिए विद्यासागर बड़ी मुश्किल में पड़े। तब प्रातःस्मरणीय गवर्नर जनरल लार्ड कैनिंग साहब की स्त्री श्रीमती लेडी कैनिंग ने उक्त विद्यालय की पृष्ठपोषकता स्वीकार

करली। इस विद्यालय को बनाये रखने के लिए उन्हो ने अच्छी आर्थिक सहायता भी की। लेडी कैनिंग की चेष्टा से गवर्नमेंट ने भी उक्त विद्यालय को धन से सहायता की थी।

विद्यासागर ऐसे महानुभावो की स्त्री-शिक्षा-प्रचार-सम्बन्धी चेष्टा आज सफल होती देख पडती है। दिन दिन स्त्री-शिक्षा के फायदे लोगो की समझ में आते जाते हैं और इस ओर समाज की रुचि बढती जाती है। अब लोग यह अच्छी तरह समझने लगे हैं कि जब तक हम स्त्रियो को पढाने लिखाने का प्रबन्ध नहीं करेंगे तब तक खना, लीलावती, सीता, सावित्री, गार्गी और आत्रेयी का नाम लेकर गौरव का अनुभव करना आत्मवञ्चना के सिवा और कुछ नही है। अतएव बालिकाओ को जैसे घर के कामकाज सिखलाये जाते हैं वैसे ही, जब तक वे स्यानी न हों तब तक, उन्हें पढाना लिखाना भी चाहिए। किसी श्रुति या स्मृति में ऐसा नहीं लिखा है कि स्त्रियो को शिक्षा न देनी चाहिए। एक विदुषी वङ्गमहिला (श्रीमती मान-कुमारी) के एक ग्रन्थ (काव्यकुसुमाञ्जलि) की समालोचना करते हुए माननीय जज गुरुदास बनरजी लिखते हैं कि "इन कविताओ को देख कर, साहस के साथ यह बात कही जा सकती है कि स्त्री-शिक्षा का बडा अच्छा फल हुआ है"। पण्डित चन्द्रनाथ वसु महाशय ने इसी पुस्तक के सम्बन्ध मे लिखा है कि "एक विशुद्ध-मन, एक सरल-हृदय, एक सतोगुण की मूर्त्ति मुझे इन कविताओं में देख पडी"।

कुछ लोग इस जमाने में भी कुछ पढीलिखी स्त्रियो के बुरे आचरणों का उल्लेख करके स्त्री शिक्षा का विरोध करते हैं। पर उन्हें यह विचारना चाहिए कि कच्चे नारियल का पानी बडा अच्छा होता है, पर वह कांसे के बर्तन में रखने से खराब हो जाता है।

तो इसपात्र दोष को जल के सिर मढना कहां का न्याय है ? इस के अलावा बुरे आचरण वाले पढे लिखे मर्दों का उल्लेख करके अगर कोई मर्दो की शिक्षा का द्वार बन्द करना चाहे तो फिर वे क्या कहेंगे ?

विद्यासागरजी जीवन की शेष घडी तक स्त्री-शिक्षा के पूर्ण पक्षपाती रहे। स्त्री-शिक्षा की उन्नति के लिए जो लोग वेथून-विद्यालय की किसी प्रकार की सहायता करते थे उनसे मुलाकात होने पर विद्यासागरजी बराबर उक्त विद्यालय की खबर लेते थे। वेथून के मरने के एक साल बाद उनके पुराने मित्र वोलपुर-निवासी प्रतापनारायणसिंह ने अपने पुत्र हेमेन्द्रनाथसिंह के विलायत जाने की सम्भावना देख कर अपनी वहू सुशीला बाला को वेथून-कालेज मे स्थायी भाव से भर्ती करने के लिए विद्यासागर को पत्र लिखा। विद्यासागरजी उक्त बालिका को कालेज मे भर्ती कराने के लिए गय तो बालिकाओ और पढानेवाली स्त्रियो को देख कर उनके आनन्द के आंसू बहने लगे। आते समय विद्यासागर ने सबके जलपान के लिए मिठाई मँगादी। पुराने समय की एक दासी उस समय भी विद्यालय मे मौजूद थी, उसने आकर विद्यासागर को प्रणाम किया। उसके पुरानी बातें याद कराने पर विद्यासागर का हृदय भर आया और आंखो से आंसू वहने लगे। स्कूल के दालान मे वेथून की पत्थर की मूर्ति के आगे खडे होकर विद्यासागर जी बहुत देर तक रोते रहे। फिर उस पुरानी दासी को उन्होंने नये कपडे मँगा दिये और इस प्रकार सबको सन्तुष्ट करके अपने घर आये। ठीक उसी समय मैं विद्यासागर जी से मिलने गया था। अक्सर मुझे विद्यासागर के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, किन्तु उस दिन विद्यासागर के मुख पर जो घोर विषाद की छाया देखी उसे देख कर मैं डर गया। मैंने बहुत व्यग्र होकर पूछा कि

"क्या तबीयत बहुत खराब है?" कुछ भी उत्तर नहीं मिला। दम भर के बाद उन्होंने कुर्सी की ओर उँगली से इशारा करके मुझसे बैठने के लिए कहा। मैं धीरे से बैठ गया। घड़ी भर बाद विद्यासागर ने कहा—"नहीं, मेरी तबीयत नहीं खराब है"। मैंने कहा—"तो फिर आप इतने उदास क्यों देख पड़ते हैं?" उन्होंने कहा—"अभी मैं बेथून-स्कूल गया था, वहाँ का हाल देख कर बड़ा दुःख हुआ"। मैंने फिर भी विद्यासागर के गंभीर हृदय की थाह न पा कर पूछा—"उसमें फिर उदास होने का क्या कारण है?" विद्यासागर ने कहा—'इतनी लड़कियाँ पढ़ती हैं और वहीं की पढ़ी हुई कुछ लड़कियाँ वहाँ पढ़ाती भी हैं, किन्तु जिस पुरुष के उद्योग और उत्साह से यह सब हुआ उसने न देखा। अपनी पदमर्यादा का खयाल न करके जो उनके साथ खेलता और उन्हें अपनी पीठ पर चढ़ाता था वह महात्मा आज नहीं है।" इस प्रकार बेथून के लिए शोकाकुल होकर विद्यासागरजी बालकों की तरह रोने लगे।

विद्यासागर केवल कलकत्ते के बेथून-विद्यालय की स्थापना और सञ्चालन के कार्य में सहायता करके ही निश्चिन्त न थे। पहले कहा जा चुका है कि छोटे लाट हालिडे साहब की जबानी आज्ञा से विद्यासागर ने मेदिनीपुर, बर्दवान, हुगली और नदिया जिले के अनेक स्थानों में बहुत से बालिका-विद्यालय स्थापित किये थे और इसी काम को लेकर शिक्षाविभाग के तत्कालीन डाइरेक्टर यंग साहब के साथ उनके स्थायी मनोमालिन्य का सूत्रपात हुआ था। छोटे लाट ने इन विद्यालयों को स्थापित करने के लिए विद्यासागर से अनुरोध किया था। किन्तु इस बारे में कोई लिखी हुई आज्ञा विद्यासागर को नहीं मिली थी। यह मौका पा कर यंग साहब ने बालिका-विद्यालयों की स्थापना और उनके लिए धन खर्च करने का विरोध किया और

इस चेष्टा में उनको सफलता भी प्राप्त हुई। ऊपर लिखे चारों जिलों के भिन्न भिन्न स्थानों में पचास वालिका-विद्यालय खुल चुके थे। उनका खर्च अपने सिर लेना साधारण वात न थी। हर एक स्कूल में दो अध्यापक और एक नौकर था। उनकी तनख्वाह के अलावा और भी वहुत कुछ खर्च था। लडकियाँ विना फीस के पढती थीं। उनको पढने की पुस्तकें, कागज, स्लेट, पेंसिल, सव देना पडता था। इसी समय विद्यासागर ने नौकरी भी छोड दी थी। वह इस समय वड़ी धर्मसङ्कट में पड गये थे।

वालिका-विद्यालय-सम्वन्धी विल मजूर न होने पर छोटे लाट ने विद्यासागर को अपने ऊपर नालिश करने की सलाह दी थी। किन्तु उसमें असम्मत होकर विद्यासागर ने कहा कि "मैंने कभी किसी के ऊपर नालिश नहीं की। फिर आप पर कैसे नालिश करूँ? इस रुपये को मैं कर्ज लेकर अदा कर दूँगा"। विद्यासागर को इस झंझट में केवल नौकरी ही नहीं छोडनी पडी, कर्जदार भी वनना पडा। इतने पर भी वह महात्मा वहुत दिनों तक इस चेष्टा में लगे रहे कि ये लडकियों के स्कूल वद न होने पावें। इस काम में उनके कुछ अँगरेज दोस्त उनको मासिक सहायता दिया करते थे। उनमें सर सिसिल वीडन का नाम विशेषभाव से उल्लेख के योग्य है।

सन १८६३ की ३०वीं मई को सर सिसिल वीडन ने विद्यासागर को जो पत्र लिखा था उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है। असल पत्र अँगरेजी में था।

प्रिय पण्डित महाशय, × × × इस साल के एप्रिल, मई और जून महीने का, वालिका-विद्यालय-फंड का चंदा १६५) रु०. चिक के द्वारा, भेजता हूँ।

भवदीय—

सी० वीडन।

एक पत्र बीडन साहब के प्राइवेट सेक्रटरी का भी यहाँ पर उद्धृत किया जाता है।—

पण्डित ईश्वरचन्द्र शर्म्मा की सेवा में।

दार्जिलिंग,
१७ अगस्त, १८६६

प्रिय महाशय,

इस समय मैं प्रसन्नतापूर्वक बालिकाविद्यालय-फंड के लिए सर सिसिल बीडन का, इस साल की पहली छमाही का, चन्दा, ३३०) रुपये, चेकद्वारा भेजता हूँ। चेकबुक कलकत्ते में ही रह गई थी, इसी से इतनी देर हुई।

आपका एकान्त विश्वासपात्र
एच० रावन

इन विद्यालयों में से कई विद्यालय बहुत दिनों तक जारी रहे और उनसे बङ्गाल में स्त्री-शिक्षा के प्रचार को बहुत सहायता मिलती रही। इन्हीं स्कूलों के साथ विद्यासागर ने अपनी जन्मभूमि वीरसिंह गाँव में भी एक कन्यापाठशाला खोली थी। उसमे अध्यापक के वेतन और लड़कियों को किताबें आदि खरीदने में तीस रुपये के लगभग माहवारी खर्च होता था। बहुत दिनों तक यह खर्च विद्यासागर के ही जिम्मे रहा।

इसी समय विद्यासागर ने सर बार्टल फ्रेयर को एक बड़ा भारी पत्र लिखा था, उसका स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी अंश यहाँ पर उद्धृत किया जाता है। यथा —"आप सुन कर अवश्यही प्रसन्न होंगे कि आपने मुफस्सल की जिन कन्यापाठशालाओं की सहायता करने की कृपा की थी उनका काम खूब अच्छी तरह चल रहा है। कलकत्ते

के पास के जिलों मे स्त्री-शिक्षा की ओर लोगो की रुचि दिन दिन बढती जाती है और समय समय पर नये बालिका-विद्यालय भी खुलते जाते हैं"।

प्रतिकूल घटनाओ के डर से कभी विद्यासागर हटते न थे। कह कर न करना या भरोसा देकर निराश करना विद्यासागर की प्रकृति के विरुद्ध था। सैकडा बाधा-विघ्नो का सामना करके, सैकडो अभाव और असुविधाओ मे पड कर जब अपना रुपया लगा कर और बन्धु-बान्धवो की सहायता से विद्यासागरजी इन कन्यापाठशालाओ को जारी रखने के उद्योग मे लगे हुए थे, उसी समय, सन् १८६६ के शेषभाग मे परोपकार-परायणा कुमारी कार्पेन्टर भारत के अनेक स्थानो की सैर करती हुई कलकत्ते पहुँचीं। मिस कार्पेन्टर ने जब से महात्मा राममोहन राय को देखा तब से उन्हे भारत पर एक प्रकार की ममता सी हो गई। राममोहन राय के चरित्रलेखक ने लिखा है कि राममोहन राय ने ही पहले पहल मिस कार्पेन्टर के हृदय में भारत की भलाई करने का भाव उद्दीप्त किया था। जगत्प्रसिद्ध वक्ता केशवचन्द्रसेन की वक्तृत्व-शक्ति और मैत्री से मुग्ध हो कर मिस कार्पेन्टर भारतवर्ष के नर-नारियो को और भी अधिक स्नेह की दृष्टि से देखने लगीं। मिस कार्पेन्टर के शुभागमन के अवसर पर भारत के अनेक स्थानो में उनके आदर और अभ्यर्थना की भारी तैयारियाँ हुई थीं। कलकत्ता और उसके उपनगरो मे भी उनका बहुत अच्छा स्वागत हुआ था। बराहनगर और उत्तरपाडा मे बडी धूमधाम से उनका स्वागत किया गया था। मिस कार्पेन्टर ने कलकत्ते मे आकर बेथून के परम मित्र और अबला-बान्धव विद्यासागर से मिलने की इच्छा प्रकट की। उसके लिए तत्कालीन डाइरेक्टर एट्किन्सन साहब ने विद्यासागर को यह पत्र लिखा था—

२७ नवम्बर, १८६६

प्रिय पण्डित महाशय,

मिस कार्पेन्टर का नाम आपने अवश्य सुना होगा। वह आप से मिल कर भारत में स्त्री-शिक्षा की उन्नति के बारे में बात-चीत करके अपनी सम्मति प्रकट करना चाहती हैं। आप क्या अगले बृहस्पतिवार को साढ़ ग्यारह बजे वेथून-विद्यालय मे आ सकते है? मैं उस समय उन्हे वेथून-विद्यालय दिखलाने लेजाऊँगा। हम लोग प्रकाश्य रूप से न जायँगे। साथ में और कोई न होगा। इससे बात-चीत करने का सुभीता रहेगा। शायद इसके बाद एक बार विद्यालय कमेटी के मम्बरो से भी उनकी मिलने की इच्छा है। किन्तु मि० सीटनकार जब तक कलकत्ते लौट न आवे तब तक इस तरह प्रकाश्यभाव से सब से मिलना मुल्तवी रक्खा जायगा।

आपका—

डब्लू एस एटकिन्सन

मिस कार्पेन्टर से जान पहचान होते ही उनके साथ विद्यासागर की घनिष्ठता बढ गई। मिस कार्पेन्टर प्राय जहाँ जाती थी वहाँ विद्यासागर को अवश्य अपने साथ ले जाती थी। उत्तरपाडे की कन्या-पाठशाला देखने के समय विद्यासागरजी मिस कार्पेन्टर के अनुराध से उनके साथ गये थे। साथ में उड्रो और एट्किन्सन साहब भी थे। विद्यासागरजी गाडी पर बाली स्टेशन से उत्तरपाडा जा रहे थ। उत्तरपाडे के पास पहुँच कर रास्ते में एक जगह मोड पर गाडी उलट गई। विद्यासागरजी गाडी पर से दूर जाकर गिर पडे। बडी चोट लगी और वह सडक के पास ही गिर कर वेहोश हो गये। घोडा और गाडी भी उलटी पडी थी। उनकी यह हालत देख कर हँसनेवाले बहुत से आदमी जमा हो गये, पर किसी ने होश में लाने का यत्न



२७ नवम्बर, १८६६

प्रिय पण्डित महाशय,

मिस कार्पेन्टर का नाम आपने अवश्य सुना होगा। वह आप से मिल कर भारत मे स्त्री-शिक्षा की उन्नति के बार मे बात-चीत करके अपनी सम्मति प्रकट करना चाहती हैं। आप क्या अगले बृहस्पतिवार को साढे ग्यारह बजे बेथून-विद्यालय मे आ सकते है ? मैं उस समय उन्हें बेथून-विद्यालय दिखलाने लेजाऊँगा। हम लोग प्रकाश्य रूप से न जायँग। साथ मे और कोई न होगा। इससे बात-चीत करने का सुभीता रहेगा। शायद इसके बाद एक बार विद्यालय कमेटी के मेम्बरो से भी उनकी मिलने की इच्छा है। किन्तु मि० सीटनकार जब तक कलकत्ते लौट न आवे तब तक इस तरह प्रकाश्यभाव से सब से मिलना मुल्तवी रक्खा जायगा।

आपका—

डब्लू. एस एटकिन्सन

मिस कार्पेन्टर से जान पहचान होते ही उनके साथ विद्यासागर की घनिष्ठता बढ गई। मिस कार्पेन्टर प्राय जहाँ जातीं थीं वहाँ विद्यासागर को अवश्य अपने साथ ले जाती थीं। उत्तरपाडे की कन्या-पाठशाला देखने के समय विद्यासागरजी मिस कार्पेन्टर के अनुरोध से उनके साथ गये थे। साथ मे उड्रो और एट्किन्सन साहब भी थे। विद्यासागरजी गाडी पर बाली स्टेशन से उत्तरपाडा जा रहे थे। उत्तरपाडे के पास पहुँच कर रास्ते मे एक जगह मोड पर गाडी उलट गई। विद्यासागरजी गाडी पर से दूर जाकर गिर पडे। बडी चोट लगी और वह सडक के पास ही गिर कर बेहोश हो गये। घोडा और गाडी भी उलटी पडी थी। उनकी यह हालत देख कर हँसनेवाले बहुत से आदमी जमा हो गये, पर किसी ने होश में लाने का यत्न

नहीं किया। पीछे में मिस कार्पेन्टर को गाड़ी आने पर उन्होंने उस भीड़ का कारण जानना चाहा तो उन्हें बेहोश विद्यासागर देख पड़े। उन्होंने फौरन पास जाकर विद्यासागर का सिर अपनी गोद में ले लिया, पानी मँगा कर मुँह धोया और पङ्खा झलने लगीं। उन्होंने माता की तरह सेवा करके विद्यासागर को सचेत किया। किन्तु जबसे यह चोट विद्यासागर के लगी तबसे उनके सुस्थ शरीर में रोग, सबल शरीर में कमज़ोरी और शान्त चित्त में अशान्ति का सूत्र-पात हो गया। उनके फेफड़े में कड़ी चोट लग गई। एक प्रकार से उनका स्वास्थ्यभङ्ग हो गया। उनके फेफड़े में अक्सर दर्द होने लगता था और उससे उन्हें महीनों खटिया सेनी पड़ती थी। डाक्टर महेन्द्र-लाल सरकार आदि का कहना था कि उनका फेफड़ा फट गया था। मिस कार्पेन्टर बहुत दिनों तक कलकत्ते में रहीं और बराबर विद्या-सागर की खबर लेती रहीं। कलकत्ता छोड़ने के कुछ दिन पहले उन्होंने विद्यासागर को यह पत्र लिखा था कि—

प्रिय महाशय,

आप फिर बीमार हो गये, यह सुन कर मुझे बड़ा दुःख हुआ। इसीसे मुझे सन्देह है कि अगले बुधवार को सवेरे मेरे कलकत्ता छोड़ने के पहले शायद आप से मुलाक़ात न हो सकेगी।

मैंने कल तीसरे पहर चार बजे स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में परामर्श करने के लिए अपने कई एतद्देशीय बन्धुओं को अपने घर में निम-न्त्रण दिया है। आशा है, अच्छी तबीयत होगी तो आप भी अवश्य आने की कृपा करेंगे।

आपकी—

मेरी कार्पेन्टर।

मेरी कार्पेन्टर की इच्छा थी कि बेथून-स्कूल में कुछ स्त्रियों को

खास तौर पर अध्यापिका बनने लायक शिक्षा दी जाय । अपनी इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए उन्होने यथेष्ट चेष्टा भी की थी । चेष्टा के अनुकूल कार्य भी हुआ था, पर वह कार्य्य स्थायी नहीं हो सका ।

सर विलियम ग्रे, मि सीटनकार, मि एट्किन्सन आदि साहबों और कुछ बङ्गालियों ने मेरी कार्पेन्टर के इस प्रस्ताव का समर्थन किया था । किन्तु विद्यासागर ने इसका विरोध किया था । खास कर उनकी सहानुभूति के अभाव मे ही यह प्रस्ताव कार्यरूप मे परिणत नहीं हो सका । अध्यापिकायें तैयार करने के लिए, मिस कार्पेन्टर के प्रस्ताव के अनुसार, वेथून-स्कूल मे ही एक नार्मल स्कूल स्थापित करने के लिए सर विलियम ग्रे न विशेष उद्योग किया था । उस कार्य के औचित्य या अनौचित्य का निश्चय करने के लिए उन्होने सन् १८६७ की पहली सितम्बर को एक लम्बी चिट्ठी लिख कर विद्यासागर की राय पूछी थी । उस पत्र मे ग्रे साहब ने अध्यापिकायें तैयार करने के पक्ष का समर्थन करते हुए उसके बिना व्यर्थ बहुत सा रुपया खर्च होने पर आक्षेप प्रकट किया था । विद्यासागर ने जिस युक्तिप्रणाली के द्वारा उनकी हर एक बात का प्रतिवाद करते हुए अपने पक्ष को प्रबल रक्खा था और जिस बड़े पत्र के दबाव से उस समय का वह प्रबल आयोजन व्यर्थ हो गया था उसका अनुवाद नीचे दिया जाता है । वह पत्र पढने से देखा जाता है कि वह बड़ही सुन्दर उपाय से सब ओर की देख रेख रख कर उन्नति करने के पक्षपाती थे । उनकी समझ में स्त्री-शिक्षा की बहुत बड़ी आवश्यकता थी । स्त्री-शिक्षा-प्रचार की उस प्रथम अवस्था मे देश, काल और पात्र का विचार न करके बहुत वेग से अग्रसर होने मे बात बिल्कुल न बिगड जाय, इस आशङ्का से विद्यासागरजी सदा सावधानी से काम करते थे । वह पत्र यह है—

कलकत्ता,

१ अक्तूबर, १८६७

माननीय सर विलियम ग्रे।

प्रिय महाशय,

आप से आखरी मुलाकात होने के बाद मैंने विशेष साव-धानता के साथ अनुसन्धान किया है और विशेष रूप से इस बार म सोचा भी है, किन्तु मिस कार्पेन्टर के प्रस्ताव के अनुसार, कुछ अध्यापिकाये, जिन्हे सर्वसाधारण हिन्दू स्वीकार करे, बेथून-स्कूल में या और कही तैयार करने के मार्ग मे अनेक विघ्न-बाधाये होने की जा मेरी धारणा है उसे बदलने का कोई कारण मुझे नहीं देख पड़ता। इस भारी मामले के सम्बन्ध मे मैं जितना सोचता हूँ उतना ही मुझे दृढ रूप से यह विश्वास होता है कि हिन्दूभाव और हिन्दू-समाज की वर्त्तमान अवस्था इस कार्य के सम्पूर्ण विरुद्ध है। इसके द्वारा किसी शुभ फल की प्रत्याशा नहीं की जासकती, इसीसे मैं गवर्नमेन्ट को साक्षात् रूप से इस कार्य का भार अपने ऊपर लेने के लिए सलाह नहीं देसकता। आप सहज ही समझ सकते हैं कि कोई प्रतिष्ठित हिन्दू अपनी सयानी स्त्रियों को अध्यापिका का काम करने न देगा। उच्च कुल के हिन्दू लोग वर्त्तमान सामाजिक नियम के अनुसार १०। ११ वर्ष की अविवाहिता बालिकाओ को भी घर से बाहर निकलने नहीं देते। केवल कुछ अनाथ असहाय विधवाये ही इस काम के लिए पाई जासकती हैं। किन्तु इस देश की कुल-कामिनियो को शिक्षा देने के लिए ये विधवा अध्यापिकाये उपयुक्त होगी या नहीं, इस प्रश्न को न उठा कर मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि वे जब भीतर से बाहर निकलने लगेंगी तब लोगो के मन मे आप ही आप उनके बारे मे तरह तरह के सन्देह और अविश्वास के कारण उपस्थित होगे। और,

इसके द्वारा गवर्नमेन्ट के इस कार्य का शुभ उद्देश सहज ही नष्ट हो जायगा।

इस विषय को सफल बनाने की उत्तम प्रणाली सरकारी विज्ञापन में लिखी हुई है—इस बारे में ([illegible]) धन की सहायता देने का वादा करना ही सर्वसाधारण के मन का भाव जानने का उत्तम उपाय जान पड़ता है। यदि इस देश के आदमी मिस कार्पेन्टर की बतलाई स्त्री-शिक्षा-पद्धति को पसन्द करेंगे तो वे आर्थिक सहायता के लिए आवेदन करेंगे और तब गवर्नमेन्ट बहुत सा रुपया खर्च करके उनके कार्य्य की सहायता कर सकती है। यद्यपि मैं यह स्पष्ट समझता हूँ कि इस देश के अधिकांश आदमी इस तरह की सहायता के लिए प्रार्थना न करेंगे, तथापि जो लोग इस कार्य की सफलता पर बहुत अधिक भरोसा किये बैठे हैं उनको इस बारे में अगर सचमुच ही आग्रह और अनुराग होगा तो आशा है कि वे गवर्नमेन्ट की दी सहायता लेकर इस कार्य के फलाफल की परीक्षा के लिए प्राणपण से चेष्टा करेंगे।

मैं स्पष्ट रूप से यह स्वीकार करता हूँ कि जो लोग इस कार्य के पक्षपाती हैं उनके इस कार्य पर मुझे विशेष विश्वास नहीं है। किन्तु भारतगवर्नमेन्ट के चलाये ऊपर लिखे नियम की मौजूदगी मे उन्हें भी फिर कोई शिकायत का मौका न रह जायगा।

मैं भी स्त्रीजाति के सुशिक्षा-लाभ के लिए अध्यापिकाओं की आवश्यकता समझता हूँ और अगर हमारे देशी भाइयों के सामाजिक संस्कार दुर्लङ्घ्य बाधा के रूप मे आगे न खड़े होते तो मैं सबसे आगे इस कार्य्य का पृष्ठपोषक और सहायक बनता। किन्तु जब यह देखता हूँ कि किसी तरह इस काम में सफलता न प्राप्त होगी और यदि गवर्नमेन्ट इस काम मे हाथ डालेगी तो आप लोग ही अनैतिकर अवस्था मे पड़

कर अपदस्थ होंगे तब मैं किसी तरह इस काम का सहायक बनना उचित नहीं समझता।

यह बात मैं स्वीकार करता हूँ कि बेथून-स्कूल की उन्नति के लिए जितना रुपया खर्च किया गया है उतनी सफलता नहीं हुई। इस बारे मे मैं आप से सहमत हूँ। किन्तु उसके साथ ही मेरा यह भी कहना है कि इस स्कूल को एकदम तोड देना किसी प्रकार युक्तिसङ्गत नहीं है। यह भारत मे स्त्रीजाति के ज्ञान की उन्नति का चिह्न है। एक परोपकारी महात्मा का नाम इसके द्वारा चल रहा है। इस विद्यालय की उन्नति के लिए रुपया खर्च करना, मेरी समझ मे, गवर्नमेंट का कर्तव्य है। इसके सिवा यह भी जरूरी जान पडता है कि बङ्गाल की राजधानी मे एक सुपरिचालित स्कूल मौजूद रह कर मुफस्सिल की सब कन्यापाठशालाओ का आदर्श होकर अपना काम करता रहे। वङ्गदेश के हिन्दूसमाज के ऊपर इस विद्यालय की नैतिक शक्ति का बहुत बडा असर है। असल बात तो यह है कि इस स्कूल ने निकटवर्ती जिलो मे स्त्रीशिक्षा का प्रचार किया है। इसी लिए, मेरी समझ मे, हर साल बहुत सा रुपया खर्च करके इस स्कूल को जारी रखने से जो लाभ हुआ है वह कम नहीं है। किन्तु चेष्टा करने से और भी कम खर्च में इसकी उन्नति की जा सकती है। विचार-पूर्वक चेष्टा करने से स्कूल मे कुछ कमी न करके भी आधे के लगभग खर्च घटाया जा सकता है।

मैंने स्वास्थ्य ठीक होने की आशा से अधिक समय के लिए उत्तर-पश्चिम अञ्चल में जाकर रहने का विचार पक्का कर लिया है। यदि आप बेथूनस्कूल की नई व्यवस्था करना चाहे, और उस बारे में मेरी सलाह जानने की इच्छा करें, तो मैं आप के कलकत्ते लौट कर आने

तक अपना और आप के साथ इस बारे में सलाह करने के लिए राजी हूँ।

आपका विश्वासपात्र—

ईश्वरचन्द्र शर्म्मा।

इसके उत्तर मे मिस्टर ग्रे ने यह पत्र लिखा था —

सुन्दरवन, १४ अक्तूबर, १८६७

पण्डित ईश्वरचन्द्र शर्म्मा।

प्रियमहाशय,

आप का पहली अक्तूबर का पत्र पाकर अत्यन्त अनुगृहीत हुआ। पत्र बहुत सी जानने लायक जरूरी बातो से परिपूर्ण है। आशा है, आप किसी भी कारण से अपनी उत्तर-पश्चिमाञ्चल की यात्रा न रोकेंगे। मुझको विश्वास है कि जगह बदल देने से आप बिलकुल आरोग्य हो जायँगे।

यदि मैं और कई दिन बाद कलकत्ते में आकर आप के दर्शन पा सकूँ तो बेथ्यून-स्कूल के नवीनसंस्कार के बारे मे आपके साथ सलाह करके परम सुखी होऊँगा। नहीं तो आप यथावकाश पत्र के द्वारा मुझे अपनी सम्मति लिखिएगा।

उत्तर-पश्चिम अञ्चल मे यदि आप किसी अँगरेज अफसर के नाम चिट्ठी ले जाना चाहे तो मैं यह सहायता करके बहुत प्रसन्न होऊँगा। १५ तारीख मे मैं बेलवेडियर-भवन में रहूँगा।

आपका विश्वासपात्र

डब्लू ग्रे

इस मामले मे विद्यासागर के साथ बहुत कुछ तर्क-वितर्क होने के बाद अध्यापिकायें तैयार करने को नार्मल स्कूल खोलने के लिए सहायता देना निश्चित हुआ। नार्मलस्कूल खोलने का प्रस्ताव मंजूर होकर भी दो साल तक यों ही पड़ा रहा। एक दिन किसी मतलब से भूतपूर्व "अबलाबान्धव"-सम्पादक बाबू द्वारकानाथ गंगोपाध्यायजी

तत्कालीन डिपुटी-इन्स्पेक्टर रायबहादुर राधिकाप्रसन्न मुखोपाध्याय से मिलने गये। उस समय प्रसगवश रायबहादुर ने यह खबर दी कि अध्यापिका-विद्यालय स्थापित करने का प्रस्ताव दो साल से मंजूर हुआ पड़ा है। यदि सम्भव हो तो आप लोग इस समय भी चेष्टा कर सकते हैं। द्वारका बाबू ने इसी लिए शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर साहब से मुलाक़ात करके यह विद्यालय स्थापित करने के लिए अनुरोध किया। द्वारका बाबू की लाई हुई ५। ६ स्त्रियों से उक्त विद्यालय का काम शुरू किया गया। डेढ वर्ष तक इस विद्यालय का काम चलता रहा। पीछे सहसा तत्कालीन बङ्गाल के छोटे लाट सर जार्ज कैम्बेल ने वह स्कूल बद कर दिया। स्कूल उठा देने के समय वैसा करने के किसी विशेष कारण का उल्लेख नहीं किया गया।

मत-भेद के कारण, खास कर उनके स्वदेशी बन्धुओं में से किसी किसी के बहुत सताने पर, अन्त को खीझ कर विद्यासागर ने बेथून-स्कूल से प्रकाश्य सम्बन्ध छोड दिया था। किन्तु स्त्री-शिक्षा के प्रचार के लिए जो कार्य होते थे उनसे उनकी हार्दिक सहानुभूति मरते दम तक बनी रही। कहीं पर कुछ भी स्त्री-शिक्षा का उद्योग होता था तो वह उसमें यथाशक्ति सहायता करते थे। कुल-कामिनियों को शिक्षा देने के लिए बङ्गाल के भिन्न भिन्न प्रदेशों में जो स्त्री-शिक्षाविधायिनी सम्मिलनी स्थापित हैं और जिनके द्वारा स्त्री-शिक्षा का अच्छा प्रचार हो रहा है उन पर विद्यासागर की विशेष स्नेहदृष्टि थी। उत्तरपाडा-हितकारी, श्राहट्ट और मैमनसिंह की सम्मिलनी, फ़रीदपुर-सुहृत्सभा, बाकरगंज-हितसाधनी, विक्रमपुर-सम्मिलनी, मध्यबङ्गाल-सम्मिलनी आदि का कार्य्यविवरण वह बडे चाव से सुनते थे।

बेथूनविद्यालय की वर्त्तमान प्रधान अध्यापिका श्रीमती चन्द्रमुखी वसु एम ए जब एम ए परीक्षा में पास हुई थीं तब विद्यासागर

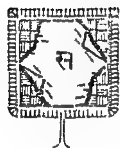
ने उनको बडे आनन्द के साथ शेक्सपियर-ग्रन्थावली उपहार मे दी थी। उस ग्रन्थावली के पहले पृष्ठ पर विद्यासागर ने अपने हाथ से लिख दिया था—

SHRIMATI
KUMARI CHANDRAMUKHI BASU,
THE FIRST BENGALI LADY,
WHO HAS OBTAINED THE DEGREE OF MASTER OF ARTS,
OF THE CALCUTTA UNIVERSITY
FROM HER SINCERE WELL-WISHER,
ISHWAR CHANDRA SHARMA

स्त्रीशिक्षा-प्रचार के लिए जन्म भर उद्योग करने वाले विद्यासागर के स्वर्गारोहण के उपरान्त बङ्गललनाओं ने उक्त महापुरुष के स्मारक के लिए १६७०) रु० का चन्दा करके बेथून-विद्यालय की कमेटी को दे दिया है। हिन्दू के घर की कोई बालिका तीसरी श्रेणी का पाठ समाप्त करके प्रवेशिका परीक्षा देना चाहे तो दो साल तक उसे इन रुपयो की आमदनी से एक वृत्ति दी जाती है। बङ्गललनाओं ने विद्यासागर के प्रति जो कृतज्ञता प्रकट की है वह सर्वथा उनके उपयुक्त ही है। धन्य हैं ये बङ्गललनाये, जो अपना उपकार करने वाले देवसुलभ गुणालङ्कृत विद्यासागर महाशय के प्रति इतनी भी कृतज्ञता दिखला सकीं।

अष्टम अध्याय।

समाजसंस्कार और विद्यासागर।



न् १८२९ की चौथी दिसम्बर को लार्ड विलियम बेंटिक की आज्ञा से सारे भारत से सती होने की प्रथा उठा दी गई। उसी दिन से खास कर भारतवर्ष मे वैधव्य का असह्य दु ख सहने की सूचना हुई। भारत के हृदय मे जो सती की चिता चिरकाल से धक धक जलती चली आती थी, जिस अग्नि में असख्य हिन्दूरमणियो ने अपनी इच्छा से, और अनिच्छा से भी, अपनी आहुति दे दी, वह अग्नि राममोहनराय की सहायता और बेन्टिङ्क के इशारे से चिर दिन के लिए बुझ गई। चिता पर मरे हुए पति के पास बैठ कर जो हिन्दू-स्त्रियाँ अग्निपरीक्षा देती थीं वे धन्य था। किन्तु जब सती होने की एक रीति निकल गई और स्त्रियो को जबरदस्ती, तरवार के जोर से, जलाया जाने लगा तब उसका बन्द होना ही सर्वथा श्रेयस्कर था। सबसे बढ कर आश्चर्य्य तो यह है कि भारतवासी पुरुष-गण ही इस कठोर व्यवहार के—और इसे बनाये रखने के—पक्षपाती होकर आत्मग्लानि और निन्दा के पात्र बने। इतने पर भी जो मर्द ऐसे नारी-चरित्र पर "दुर्बल हृदय और चञ्चल स्वभाव" का दोषारोपण करते हैं, वे कितने बडे मूर्ख हैं। अच्छा हम

मानते हैं कि सभी स्त्रियाँ अपनी इच्छा से हँसते हँसते पति के साथ जल जाती थीं, तो फिर क्या मर्दों को ऐसा प्रेम का निदर्शन न दिखाना चाहिए? ऐसी स्त्री-जाति का ऋण चुकाने के लिए कितने पुरुषों ने प्राण दे दिये हैं? प्राण दे देना कैसा, आजन्म फिर विवाह न करने का प्रण ही कितने पुरुष निबाहते हैं? परलोक में पति के पास स्थान पाने की कामना जैसे स्त्री के लिए वाञ्छनीय है वैसे ही पत्नी के पास स्थान पाने की आकांक्षा क्या पति के लिए स्वाभाविक न होनी चाहिए? अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर श्रीरामचन्द्र को अर्धाङ्गिनी की जरूरत पड़ी थी। इस देश के बालक-बूढ़े-जवान सभी, जानते हैं कि रामचन्द्र ने बनवासिनी सीता की सोने की मूर्ति बनवा कर अपने पास रक्खी थी। ऐसा उच्च आदर्श सामने रहते भी स्त्री-जाति के लिए ही जन्मदुखिनी सीता की तरह अग्नि-प्रवेश की व्यवस्था क्यों है? इस पर तुर्रा यह कि मर्द के लिए दूसरा व्याह करना (सो भी कहीं कहीं एक स्त्री की मौजूदगी में) शास्त्र-संगत और सदाचार के द्वारा अनुमोदित है! ऐसे पक्षपात का पक्ष लेना ज्ञानी होनेवाली मनुष्य-जाति, ख़ास कर आर्य्य-जाति, के लिए तो सर्वथा अनुचित है। पुरुष-शक्ति-प्रधान समाज में असहाय अबलाएँ तो वेद, विधि, व्रत, नियम, पूजा-पाठ आदि करें और आपके लिए अपने प्राण दे दें और आप सब नियमों के बन्धन से मुक्त, उच्छृङ्खल, होकर मजे करें, यह क्या न्यायसङ्गत कहा जा सकता है?

अस्तु। बेन्टिक साहब के उद्योग से चिता की आग तो बुझ गई, पर उसकी जगह जन्म भर सुलगानेवाली वैधव्ययन्त्रणा की सृष्टि हुई। दुरूह ब्रह्मचर्य्य ने आकर सतीदाह के स्थान पर अधिकार जमा लिया। अग्नि ने दूसरा आकार धारण कर देह के बदले हृदय जलाना शुरू कर दिया। बालिकायें विधवा होने के दिन से जीवन की अन्तिम

घडी तक तिल तिल करके जलने लगीं । सतीदाह में तो एक ही दिन मे दो-चार घन्टो में ही सब मामला खतम हो जाता था, किन्तु यह आग जन्म भर जलाने के लिए हो गई । घर में देखोगे कि प्रौढा सौभाग्यशालिनी स्त्रियाँ सुख-सम्भोग कर रही हैं, और वहाँ एक नाबालिग लडकी सन्यासिनी-वेश से विषाद की मूर्ति बनी बैठी रहती है । ऐसा भी कहीं कहीं देख पडेगा कि पचास-साठ वर्ष का पिता घर मे बचपन से रांड बनी बैठी हुई लडकी के आगे दूसरी या तीसरी शादी कर लाता है । कोमल स्वभाववाली बहनो-बेटियो को वैधव्य मे ब्रह्मचर्य्य की शिक्षा क्या इसी तरह दी जाती है ? फिर जो ब्रह्मचर्य्य चारो ओर अन्धकार करता है, जो सबके हृदय पर बोझ सा बना रहता है, जिसे देख कर हृदय मे सैकडो साँपो के डसने की सी यन्त्रणा होती है वह भी क्या ब्रह्मचर्य कहा जा सकता है ? शम्भुचन्द्र वाचस्पति ने बुढापे मे व्याह करके थोडे ही दिनो में जिस ब्रह्मचर्य की सृष्टि की थी—जो सबल का अपने सुख के लिए दुर्बल पर अत्याचार होने के सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता—उसे ब्रह्मचर्य कहना अपने आत्मा को सरासर धोखा देना है । विद्यासागर जिस समय पढ ही रहे थे उसी समय इस नीति-वैषम्य या आचार-विभ्राट् को देख कर उनके हृदय में एक प्रकार का आन्दोलन मच गया था। इसीसे अपने गुरु वृद्ध वाचस्पति की बालिका स्त्री को देख कर वह रोने लगे थे । विद्यासागर ने विधवा-जीवन की नाना प्रकार की दुर्दशा का हाल जान कर उसकी स्थिति मे शास्त्रानुकूल परिवर्त्तन करना चाहा था। पति की स्मृति को हृदय मे धारण कर ब्रह्मचारिणी होकर जो स्त्रियाँ जिन्दगी बिताने के लिए समर्थ और सहमत हो वे वही करें, उनके लिए वही श्रेष्ठ धर्म है । वे सब स्त्री-रूपधारिणी देवताये आत्मदमन और परसेवा की परम-सम्पत्ति भोगती हुई सदैव

मनुष्य-समाज में नि स्वार्थ प्रेम और परार्थपरायणता का आदर्श बन कर पुजती रहेगी। किन्तु जिन्हे पति-सम्बन्धी कोई ज्ञान नहीं है, अथवा जो इस कठिन मार्ग में नहीं चल सकतीं, उनके लिए नीति-कुशल दूर-दर्शी लोग अन्य उपाय निर्दिष्ट करते हैं। वैसा किये बिना लोकलाज और समाजशृङ्खला का दुरुस्त रहना असम्भव हो जाता है। इस उपाय के लिए बहुत सी जानकारी, भारी अभिज्ञता और असीम सहृदयता का होना परम आवश्यक है। ये सब बातें विद्यासागर महाशय में यथेष्ट रूप से मौजूद थीं। उन्होंने बहुत कुछ देख सुन कर, विविध तत्त्वो की आलोचना कर और बहुत लोगो के विरोध के विरुद्ध खडे होने की शक्ति प्राप्त करके समाज-संस्कार की तैयारी की थी। इस बार उन्होंने उस बड़े काम की तैयारी में कमर कसी जिसमे उनके मनुष्यत्व का पूर्ण परिचय प्राप्त हुआ। उनके इस कार्य से बङ्गाल भर मे हलचल मच गई। उनके इस सग्राम मे थोडी शक्ति के कायर आदमी अपनी अपनी जान लेकर इधर उधर भाग गये। अबकी बार विद्यासागर ने वह महायज्ञ शुरू किया जिसमे उन्होने भारतवासीमात्र को निमन्त्रित किया था। भारत के पवित्र क्षेत्र मे अनेक महायज्ञ हो गये हैं, ऋषियो ने अनेक बार वैदिक यज्ञो के अनुष्ठान किये हैं, भारतीय सम्राटो ने बहुत बार राजसूय यज्ञ किये हैं, किन्तु बङ्गाल की स्वार्थपरायण पण्डित-मण्डली से प्रकट होकर एक गरीब ब्राह्मण के लड़के ने जिस महायज्ञ का आयोजन किया उसकी बराबरी और कोई यज्ञ नहीं कर सकता। विद्यासागर के बारे में अब तक जो कहा जा चुका है वह उनकी गुणगरिमा लुप्त हो सकती है। किन्तु उनके इस महायज्ञ के कार्य को कोई नहीं छिपा सकता। लोग यह भूल सकते हैं कि गरीब के घर विद्यासागर पैदा हुए, गरीबी के कष्ट सह कर उन्होंने इतनी विद्या पढी, विद्यालय में सर्व-विद्याविशारद होकर उन्होंने

विद्यासागर की उपाधि पाई। लोग यह भी भूल सकते हैं कि उन्होंने अपनी स्वतन्त्र प्रकृति के कारण ५००) रु० महीने की नौकरी छोड़ दी और छोटे लाट के कहने पर भी फिर नौकरी नहीं की। लोग यह भी भूल सकते हैं कि उन्होने अनेक पुस्तकें लिख कर बँगला के साहित्य की श्रीवृद्धि की और सदा दुखियो का दुःख मिटाने तथा आर्त-पीडित लोगो की सहायता करने मे भी अपने जीवन का अधिकाश समय बिताया। किन्तु उनके द्वारा प्रचलित बाल-विधवा-विवाह की बात को कोई हिन्दू नही भूल सकता। इस कार्य के कारण हिन्दू जाति के छोटे-बडे स्त्री-पुरुष बालक-वृद्ध सब सदैव विद्यासागर को जाने-पहचानेंगे। इस विधवा-विवाह के आन्दोलन में विद्यासागर ने समाज को अपना सच्चा और पूरा परिचय दिया है। उन्होने यह दिखला दिया कि उनके शरीर मे जितनी शक्ति थी, मन मे उतना ही बल था। इस सामाजिक जटिल प्रश्न के निर्णय में उन्होने अपनी सारी विद्या बुद्धि और अभिज्ञता खर्च कर डाली।

इस कार्य मे विद्यासागर को निन्दा और प्रशसा, तिरस्कार और पुरस्कार, अनादर और सम्मान का समानरूप से सामना करना पडा था। यह ऐसा भारी आन्दोलन था कि अदालत मे हाकिम और वकील, देवमन्दिर मे पुजारी और तीर्थयात्री, बाजार मे सौदा बेचने और खरीदने वाले, अन्त पुर मे कुलकामिनियाँ और खेतो मे किसान लोग विधवा-विवाह की आलोचना करते करते या तो विद्यासागर की प्रशसा करते थे या निन्दा। अखबारो का तो कहना ही क्या है। विधवाविवाह को शास्त्र-सम्मत प्रमाणित करके विधवाविवाह प्रचलित करना ही विद्यासागर की इतनी प्रसिद्धि और यश का कारण कहा जा सकता है। विधवाविवाह के पक्ष का समर्थन और विधवाविवाह को शास्त्रानुकूल प्रमाणित करना ही विद्यासागर के जीवन का महाव्रत हो गया

था। इस व्रत को सम्पूर्ण रूप से सम्पन्न करने में ही उन्होंने अपने जीवन का अधिक समय और अपनी आमदनी का बहुत सा हिस्सा लगा दिया।

अब प्रश्न यह है कि भारतवासी आर्य-जाति के सामाजिक इतिहास में विधवाविवाह का विचार क्या यह पहले ही पहल उठाया गया था? नहीं, यह बात नहीं है। एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में "भारत में हिन्दू-जाति की अन्त्येष्टि क्रिया" शीर्षक प्रबन्ध लिख कर उसमें डाकृर राजेन्द्रलाल मित्र ने इस प्रसङ्ग को उठाया था। किस प्रकार अन्त्येष्टि क्रिया होती थी, और उस समय कौन मन्त्र पढ़े जाते थे, इसकी आलोचना करते समय उन्होंने दिखलाया है कि उस समय मरे हुए पति के अनुगमन के समय भी प्रायः मृत-पुरुष का छोटा भाई या वैसा ही और कोई आदमी मृत व्यक्ति की चिता में आग लगा कर उसकी विधवा को, बायाँ हाथ पकड़ कर, चिता पर से उतार लेता था और घर में लाकर उससे विवाह करता था। वह विधवा भी दुबारा के पति के साथ सुख से रहती थी। इस प्रकार विधवा को चिता पर से उतारने का मन्त्र भी था। मन्त्र रहने से यह साबित होता है कि यह कार्य शास्त्रसङ्गत था। लोग मनमानी नहीं करते थे। इस बारे में डाकृर राजेन्द्रलाल के कथन का कुछ अंश यहाँ पर उद्धृत किया जाता है—"इस मन्त्र में विशेष रूप से उल्लेख के योग्य वाक्य "दिधिषू" है। आरण्यक ने इस वाक्य का कोष-सङ्गत सहज अर्थ किया है कि दिधिषू, अर्थात् 'जो व्यक्ति विधवा से ब्याह करे' या 'किसी स्त्री का दूसरी दफा का स्वामी'। इसके सिवा अन्य प्रमाणों और युक्तियों से भी यह बात अनायास सिद्ध की जा सकती है कि वैदिक काल में विधवाविवाह आर्य-नीति द्वारा सर्वथा अनुमोदित था। बहुत पुराने जमाने से संस्कृत भाषा में दिधिषू (विधवा से ब्याह करने

वाला), परपूर्वा (दूसरे पति को ग्रहण करनेवाली), पौनर्भव (दूसरे पति से उत्पन्न पुत्र) आदि शब्दों का प्रचलित होना ही इस बात का प्रमाण है कि विधवाविवाह पहले हुआ करता था ”।

इस बात के और भी बहुत से प्रमाणो का सग्रह किया जा सकता है कि बङ्गाल या भारत भर में विधवाविवाह की यह चेष्टा नई नहीं थी। इस सम्बन्ध मे राजा राजवल्लभ के वर्त्तमान वशधरो ने मिल कर जो पत्र लिखा था वह यहाँ पर उद्धृत किया जाता है।—

महाशय,

राजा राजवल्लभ ने तत्कालीन समाज मे विधवाविवाह चलाने के लिए बडी कोशिश की थी। अनेक देशो से शास्त्रज्ञ पण्डितो की व्यवस्था भी मँगवाई थी। विक्रमपुरनिवासी कई स्मार्त्त भट्टाचार्य्यों ने राजवल्लभ के इस काम मे विशेष सहायता की थी। नवद्वीप (नदिया) की अध्यापकमण्डली द्वारा अनुमोदित और उन पण्डितो के हस्ताक्षरो सहित व्यवस्थापत्र पाने के लिए राजवल्लभ ने कई अध्यापको को नदियानरेश कृष्णचन्द्र के पास भेजा था। सुन पडता है कि नदिया के पण्डितो ने अन्यान्य प्रदेशो के पण्डितो की दी हुई व्यवस्था को शास्त्रानुकूल मान लिया था। किन्तु कृष्णचन्द्र के दबाव मे पड कर उस व्यवस्थापत्र मे हस्ताक्षर करने का साहस किसी पण्डित को

* The most important word in the *mantra* is *didhishu* In the Âranyaka, he accepts it in its ordinary well-established dictionary meaning of a man "who marries a widow, or the second husband of a woman twice married * * * "That remarriage of widows in Vedic time was a national custom can be easily established by a variety of proofs and arguments The very fact of the Sanscrit language having from ancient times such words as *didhishu*, 'a man that has married a widow,' *parapurva*, 'a woman that has taken a second husband, *paunarbhava*, son of a woman by her second husband' are enough to establish it. —On the Funeral Ceremonies of the Ancient Hindus *The Journal of the Asiatic Society of Bengal*, 1870

नहीं हुआ। राजा कृष्णचन्द्र के कुचक्र से राजवल्लभ का सब उद्योग विफल हो गया। राजवल्लभ के तीन सभा-पण्डित थे—सार्वभौम, विद्यावागीश और सिद्धान्त। प्रथम दो पण्डित राजवल्लभ के अनुकूल थे, तीसरे पण्डित को राजवल्लभ ने फोड लिया था। यही कारण है कि राजनगर में सार्वभौम और विद्यावागीश के वंशधरों का बड़ा भारी मान है।

इसके सिवा इस विधवाविवाह चलाने के प्रसङ्ग मे "क्षितीश-वंशावलिचरित" मे लिखा है कि विक्रमपुर और नदिया प्रान्त के भद्रसमाज में अभी तक यह प्रवाद प्रचलित है कि विक्रमपुरनिवासी प्रसिद्ध राजा राजवल्लभ ने अपनी नौजवान विधवा कन्या की वैधव्य-यन्त्रणा देख कर बहुत ही व्यथित हो विधवाविवाह प्रचलित करने के लिए बहुत उद्योग किया था। विधवाविवाह शास्त्र-विरुद्ध नहीं है, इस बात की व्यवस्था पूर्व और पश्चिम प्रान्त के अनेक पण्डितो से मँगवा कर, उसमें नदिया की पण्डित मण्डली के हस्ताक्षर कराने के लिए, राजवल्लभ ने वह व्यवस्थापत्र कई पण्डितों के हाथो राजा कृष्ण-चन्द्र की सभा में भेजा था। राजवल्लभ का उस समय ढाका मे बडा दबदबा था। उन्होंने समझा था कि जब अन्य प्रान्तो के पण्डितो ने विधवाविवाह के अनुकूल व्यवस्था दे दी है तब नदिया के पण्डित अनायास ही इस व्यवस्था से सहमत हो जायँगे। राजवल्लभ के भेजे हुए पण्डित जब कृष्णचन्द्र की सभा में पहुँचे तब उन्होंने बड़े आदर और सत्कार के साथ उनकी अभ्यर्थना की और यह भी स्वीकार कर लिया कि मैं यथाशक्ति तुम्हारे राजा की इच्छा पूर्ण करने का उद्योग करूँगा। इसके बाद छिपे तौर से अपनी सभा के और नदिया के प्रधान पण्डितो को बुला कर कृष्णचन्द्र ने वह व्यवस्था दिखलाई। उस व्यवस्था को पढ कर सब पण्डितो ने कहा कि "यह व्यवस्था पूरे

तौर से शास्त्र के अनुकूल है"। यह सुन कर डाह के मारे कृष्णचन्द्र ने कहा कि "यह व्यवस्था शास्त्रानुकूल होने पर भी लौकिक व्यवहार के विरुद्ध है, यह कह कर राजवल्लभ को निराश करना होगा। वैद्य जाति का एक आदमी इस चिरकाल से अप्रचलित व्यवहार को प्रचलित कर जायगा! यह बात सर्वथा असह्य है। किन्तु इस समय राजवल्लभ का दबदबा बडा भारी है, इस कारण खुल्लमखुल्ला मैं उसके विरुद्ध कारखाई करना पसन्द नहीं करता। उसके सन्तोष के लिए मैं आप लोगो से इस व्यवस्थापत्र पर हस्ताक्षर करने को बहुत कुछ अनुरोध करूँगा, परन्तु आप लोग किसी तरह न मानिएगा। आप लोग यही कहिएगा कि महाराज, किसी के भी अनुरोध से इस व्यवस्था पर हस्ताक्षर करके पाप के भागी नहीं बनेंगे"।

इसके बाद दूसरे दिन राजवल्लभ के पण्डित लोग जब सभा में आये तब राजा कृष्णचन्द्र ने नदिया के पण्डितो से कहा कि राजवल्लभ ने जो व्यवस्था भेजी है वह अवश्य ही शास्त्रसम्मत होगी। यदि वह शास्त्रसम्मत न हो तो भी जब उन्होने अनुरोध किया है तब आप लोगो को उसे मजूर ही करना पडेगा। पण्डित लोगो ने पहले की सलाह के माफिक अनेक प्रकार की आपत्तियाँ उठा कर हस्ताक्षर करना अङ्गीकार न किया। राजवल्लभ के भेजे हुए पण्डित निराश होकर अपने घर लौट गये। राजवल्लभ को कृष्णचन्द्र का कौशल कुछ भी मालूम न था, उन्होंने अपने विचार को छोड दिया। इस घटना के उल्लेख के समय ग्रन्थकार ने आक्षेप करके फुटनोट मे राजा कृष्णचन्द्र के आचरण के सम्बन्ध मे लिखा है कि "महाराज श्रीशचन्द्र के मुँह से सुना है कि कृष्णचन्द्र ने राजवल्लभ की भेजी हुई व्यवस्था पढ कर बडे खेद से कहा था कि 'हाय, इससे पहले मैंने क्यों न इस काम के लिए यत्न किया'।"।

इस पत्र से पाठकों को सब हाल मालूम हो गया होगा। अभागे भारत का सर्वनाश सब कामो में इसी जली फूट और ईर्षा ने कराया है। राजा राजा के झगडे से भारत की राजशक्ति क्षीण और हीनबल हो गई। समाज मे एकता न रहने से वह भी निर्बल हो गया। राजवल्लभ और कृष्णचन्द्र अगर मिल कर इस शुभ कार्य को करते तो समाज का बडा भारी कल्याण होता। प्रबल शक्तियो के परस्पर मिल कर काम करने से जो सुफल होता है उसका अत्यन्त उज्ज्वल दृष्टान्त इँगलेड है और प्रबल शक्तियो के परस्पर विरोध करने मे जो कुफल होता है उसका सबसे बडा उदाहरण वर्तमान भारत है।

विद्यासागर ने जिस समय यह प्रश्न उठाया था कि विधवा का विवाह होना चाहिए या नहीं, उस समय देश मे इस ओर से पण्डितो के उदासीन रहने पर भी साधारण गृहस्थ लोग सर्वथा विधवाविवाह की आवश्यकता का अनुभव करते रहते थे। जब कहीं किसी की बालिका कन्या विधवा होती थी तब वह उसकी भावी यन्त्रणा और दुर्दशा का खयाल करके यह सोचता था कि यदि समाज मे विधवा का विवाह किया जाता होता तो बडा अच्छा होता। किन्तु साहस और प्रतापी नेता के न होने से कोई इस काम के लिए अग्रसर न होता था। खास कर हमारे देश के लोग अदृष्टवाद के वशवर्त्ती होकर ऐसे आलसी और अकर्मण्य हो गये हैं कि किसी काम के लिए अधिक दिनो तक उनका आग्रह नहीं बना रहता। किसी काम मे पहले उत्साह होता है तो वह कुछ ही दिनो मे आप ही आप बुझ जाता है। इसी कारण हम लोग स्थिर भाव से कोई काम करने के लायक नहीं रह गये हैं। विद्यासागर के इस काम में हाथ डालने के दस साल पहले कलकत्ता, बहूबाजार, के रहने वाले नीलकमल बनर्जी आदि कई गृहस्थों ने बहुत से आत्मीय स्वजनो को अपना साथी बना

कर विधवाविवाह चलाने की चेष्टा की थी, किन्तु काम के समय
अधिक अग्रसर नहो हो सके ।

विद्यासागर के विधवाविवाह की चेष्टा करने के कुछ दिन पह
कृष्णनगर के राजा महाराज श्रीशचन्द्र ने ब्राह्मसमाज की स्थापना
सफलता प्राप्त करने के उपरान्त विधवाविवाह प्रचलित करने
चेष्टा की थी । उनके चरित-लेखक का कथन है कि महारा
श्रीशचन्द्र ने विधवाविवाह की शास्त्रसङ्गत व्यवस्था प्राप्त करने के लि
नवद्वीप के पण्डितो की सभा की थी । उसमे पण्डितो ने यह
स्वीकार कर लिया कि विधवाविवाह शास्त्रसङ्गत है किन्तु सहसा व्यवस्थ
पत्र देने का साहस उन्हे नहीं हुआ । अन्त को राजा के विशेष आग्र
और अनुरोध से वे व्यवस्था देने के लिए राजी भी हो गये थे
व्यवस्थापत्र लिख देने में कुछ ही विलम्ब था, इसी समय बाबू ब्रज
नाथ मुखर्जी और बारासात-निवासी बाबू कालीकृष्ण मित्र आदि
नेतृत्व में कृष्णनगर के नौजवान लोग सभासमिति करके विधवाविवा
आदि समाजसस्कार के काम करने के लिए कमर कस कर खडे
गये । उस आन्दोलन से नवद्वीप के समाज मे हलचल पड गई
किन्तु वीरनगरनिवासी जमीदार बाबू वामनदास मुखर्जी ने अप
दल के लोगो के साथ इस कार्य का ऐसा विरोध शुरू किया कि कुछ
न हो सका । उनके विरोध से कृष्णनगर में विधवाविवाह चलाने की
चेष्टा धीरे धीरे धीमी पड रही थी, इसी समय कलकत्ते मे ईश्वरचन्
विद्यासागर ने विधवाविवाह का आन्दोलन जारी कर दिया ।

तत्त्वबोधिनी पत्रिका मे इस विषय पर विद्यासागरजी के लेख
निकलने लगे । उस समय तत्त्वबोधिनी में ओजस्विनी भाषा मे इस
विषय के लेख निकलने से समाज में एक भारी आन्दोलन उपस्थित
हो गया ।

इसी समय कालीकृष्ण मित्र महाशय ने एक लेख लिख कर कृष्ण-नगर की एक सभा मे पढा। इस लेख मे उन्होने विधवाविवाह की आवश्यकता के साथही विद्यासागर के दिये शास्त्रीय प्रमाणो को लोकाचार-सङ्गत साबित कर दिखाया। उनके इस लेख पढने से कृष्णनगर मे फिर नये जोश के साथ विधवाविवाह का आन्दोलन होने लगा। इधर तत्त्वबोधिनी पत्रिका मे इस विषय पर लेख के ऊपर लेख प्रकाशित होने लगे। पहले लिखे पढे लोगो में और फिर सर्वसाधारण मे विधवाविवाह के आन्दोलन और विद्यासागर की समर-घोषणा का प्रचार होगया।

अदृष्टवादी भारतवासियो का आलस्य और शिथिलता कुम्भकर्ण की नींद से कम नहीं है। यदि समय पर वे आलस्य और शिथिलता को छोड दे तो उनके द्वारा अनेक शुभ कार्य हो सकते हैं। किन्तु दुःख की बात है कि अक्सर असमय पर उनकी नींद खुलती है और उनके उद्यम उत्साह की क्षीण रेखा आलस्य की खुमारी ही मे लीन होकर रह जाती है। किन्तु समाज-संस्कारक विद्यासागर ने उस समय आन्दोलन उपस्थित किया था जिस समय समाज ने आपही आप आंखे खोल कर अपनी आवश्यकता की ओर ध्यान देना शुरू किया था। बहुत दिनो तक सोच कर, बहुत से ग्रन्थ पढ़ कर, बहुत से शास्त्रों की आलोचना कर, फिर वह सामाजिक सग्राम के मैदान में उतरे थे। यद्यपि विद्यासागर को सहज ज्ञान और सहज बुद्धि से बालिका विधवाओ का फिर ब्याह होना उचित जान पडता था तथापि जब तक उनको अपने अनुकूल शास्त्र का प्रमाण नहीं मिला तब तक वह बराबर शास्त्रका अभिप्राय समझने और उसकी छानबीन करने ही मे लगे रहे। इस शास्त्र-समुद्र को मथकर किसी तत्त्व का निरूपण करना कितना कठिन काम है, इसका अनुमान करना भी सहज नहीं है।

बहुत सी पुरानी कीड़ों की खाई मैली हस्तलिखित पोथियों से शास्त्र का मतलब निकालना अशोक-वनवासिनी सीता के उद्धार से कम कठिन काम नहीं है। इसके लिए कितना धीर स्वभाव, कितनी सहिष्णुता और कितनी साधना की जरूरत है, इसकी धारणा भी हर एक आदमी नहीं कर सकता।

सुना है कि जिस समय विद्यासागरजी विधवाविवाह का शास्त्रीय प्रमाण खोज रहे थे उस समय वह केवल एक बार अपने मित्र राजकृष्ण बाबू के यहाँ भोजन करने जाते थे। कालेज का काम समाप्त करके तीसरे पहर से लेकर रात भर संस्कृतकालेज के पुस्तकालय में बैठे वह पुस्तकें देखा करते थे। कालेज के पास ही उनके परम मित्र श्याम बाबू रहते थे। शाम के बाद उनके यहाँ से जलपान के लिए कुछ मिठाई आती थी। किसी दिन विद्यासागर खुद उनके यहाँ जाकर जलपान कर आते थे। शास्त्र की आलोचना में इस तरह नियुक्त रहने के समय एक दिन रात को बहुत देर तक विचार करने पर भी एक शास्त्रीय वचन के अर्थ की ठीक सङ्गति नहीं लगी। अन्त को उदास होकर विद्यासागर घर को लौटे। सहसा रास्ते में उन्हें उसका ठीक अर्थ लग गया। विद्यासागर मेहनत करके थक गये थे। वह वैसे ही संस्कृत-कालेज को लौट गये और वहाँ उस श्लोक का अर्थ लिखने लगे। इस प्रकार लिखते लिखते रात बीत गई। सवेरे की ठंडी हवा लगने पर, धूप निकल आने पर, उन्होंने लिखना बन्द किया। ऐसी एकाग्रता और तत्परता के बिना कभी कोई किसी बड़े काम में सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। शास्त्रों की इस प्रकार आलोचना करते करते विद्यासागर ने पराशरसंहिता में निम्नलिखित तीन श्लोक देखे—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥

मृत भर्त्तरि या नारी ब्रह्मचर्य्ये व्यवस्थिता।
सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटिश्च यानि लोमानि मानवे।
तावत्कालं वसेत्स्वर्गं भर्त्तारं याऽनुगच्छति॥"

इन श्लोकों को देख कर इनका अर्थ ठीक ठीक लग जाने से विद्यासागर को बडी प्रसन्नता हुई।

इस प्रकार स्मृतिशास्त्र का प्रमाण पाने पर और उसका ठीक अर्थ लग जाने पर विद्यासागर ने उसी शास्त्र-वचन के आधार पर सहज ज्ञान और सुयुक्तियों के सहारे एक ग्रन्थ लिख डाला। वह पहला ग्रन्थ उतना बडा नहीं बना था। थोडे ही में प्रयोजन की बातें लिख कर विधवा-विवाह की आवश्यकता प्रमाणित कर दी गई थी। पुस्तक तो लिख डाली, पर उसका प्रचार नहीं किया। पुस्तक लिख कर विद्यासागर सबसे पहले पिता के पास गये और कहा—"देखिए, मैंने शास्त्रों से प्रमाण संग्रह करके विधवा-विवाह के पक्ष का समर्थन करने के लिए यह पुस्तक लिखी है। आप इसे सुन कर इस बारे में जब तक सहमत न होंगे तब तक मैं इस पुस्तक को प्रकाशित नहीं कर सकता"। ठाकुरदास ने विद्यासागर से कहा—"अच्छा, अगर मैं इस काम में सहमत न होऊँ तो तुम क्या करोगे?" ईश्वरचन्द्र ने कहा—"तो मैं आपके जीवनकाल में इस पुस्तक को प्रकाशित न करूँगा। उसके बाद जैसी इच्छा होगी वैसा करूँगा"। पिता ने पुत्र से कहा—"अच्छा, कल एक बार एकान्त में मन लगा कर सब पुस्तक आदि से अन्त तक सुनूँगा। उसके बाद अपनी राय दूँगा"। दूसरे दिन विद्यासागर ने पिता के पास बैठ कर सब पुस्तक पढ सुनाई। पिता ने सब सुन कर कहा—"तुमको क्या इस बात का विश्वास है कि तुमने जो कुछ लिखा है वह शास्त्रसङ्गत है?"

पुत्र ने कहा—"हाँ, इसमे मुझे जरा भी सन्देह नहीं है"। उदार-हृदय ठाकुरदास ने कहा—"तो तुम इस मामले मे चेष्टा कर सकते हो, मुझे इसमें कुछ आपत्ति नहीं है"। पिता से आज्ञा लेकर विद्यासागर अपनी माता के पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने कहा—"माताजी, तुम तो शास्त्र क्या कहता है, यह समझ नहीं सकतीं। मैंने विधवा-विवाह के बारे मे यह पुस्तक लिखी है। किन्तु जब तक तुम आज्ञा न दोगी तब तक इसे मैं छपा न सकूँगा। शास्त्र मे विधवा-विवाह का विधान है"। सरलता की सौम्यमूर्त्ति विद्यासागर-जननी ने कहा—"बेटा, इसमे मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं है। लेकिन उनसे न कहना"। विद्यासागर ने कहा—"क्यों, पिताजी से छिपाने की क्या जरूरत है ?" माता ने कहा—"वह शायद तुमको मना करे। क्योकि तुम विधवा-विवाह की हलचल मचाओगे तो उससे उनका बहुत कुछ नुकसान हो सकता है"। विद्यासागर ने कहा—"मैं उनसे पहले ही पूछ चुका हूँ। वह मेरी सम्मति से सहमत हैं"। करुणारूपिणी भगवती देवी ने यह समाचार सुन कर और भी उत्साहित होकर कहा—"तो ठीक है, फिर डर काहे का है ?"

इस प्रकार विद्यासागर महाशय जिस समय पिता-माता की अनुमति और सहानुभूति प्राप्त करके इस सामाजिक संग्राम के मैदान मे उतरे थे, ठीक उसी समय कलकत्ता, पटलडांगा, के रहने वाले श्यामचरणदास कर्मकार नामक एक बङ्गाली सज्जन ने अपनी बालिका विधवा कन्या का व्याह करने के लिए पण्डितो से व्यवस्था माँगी थी। उस समय स्वर्गीय काशीनाथ तर्कालङ्कार, भवशङ्कर विद्यारत्न, रामतनु तर्कसिद्धान्त, ठाकुरदास चूडामणि और मुक्ताराम विद्यावागीश आदि कई स्मार्त्त भट्टाचार्य्यों ने विधवा-विवाह को धर्मशास्त्रानुकूल

स्वीकार करते हुए जो व्यवस्थापत्र दिया था उसकी नक़ल और अनुवाद यहाँ पर उद्धृत किया जाता है —

व्यवस्था।

श्रीश्रीदुर्गा।

परम पूजनीय श्रीयुत धर्मशास्त्राध्यापक महाशयगणसमीपे।

प्रश्न—नवशाख जाति के किसी आदमी की कन्या व्याह होने के बाद आठ या नव वर्ष की अवस्था में विधवा हो गई है। वह आदमी अपनी कन्या को कठिन विधवाधर्म (ब्रह्मचर्य आदि) के पालन में असमर्थ देख कर फिर दूसरे वर के साथ उसका व्याह करना चाहता है। अब यहा पर प्रश्न यह है कि ब्रह्मचर्य के पालन में असमर्थ होने पर ऐसी विधवा का पुनर्विवाह शास्त्र-सिद्ध हो सकता है या नहीं और पुनर्विवाह के उपरान्त वह बालिका दूसरे पति की शास्त्रानुकूल पत्नी हो सकती है या नहीं? इस बारे में कृपा कर शास्त्रविहित व्यवस्था लिख दीजिए।

उत्तर। मन्वादिशास्त्रेषु नारीणां पतिमरणानन्तरं ब्रह्मचर्यसहमरण-पुनर्भवनानामुत्तरोत्तरापकर्षेण विधवाधर्मतया विहितत्वात् ब्रह्मचर्यसह-मरणरूपाद्यकल्पद्वयेऽसमर्थाया अक्षतयोन्या शूद्रजातीयमृतभर्तृकबालाया पात्रान्तरेण सह पुनर्विवाहः पुनर्भवनरूपविधवाधर्मत्वेन शास्त्रसिद्ध एव यथाविधि संस्कृतायाश्च तस्या द्वितीयभर्तृभार्य्यात्वं सुतरां शास्त्र-सिद्धं भवतीति धर्मशास्त्रविदाम्मतम्।

अत्र प्रमाणम्। मृते भर्त्तरि ब्रह्मचर्य्यं तदन्वारोहणं वेति शुद्धि-तत्त्वादिधृतविष्णुवचनम्। या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया। उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते॥ इति सा चेदक्षतयोनिः स्यात्

गतप्रत्यागताऽपि वा। पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हतीति च मनुवचनम्। सा स्त्री यद्यक्षतयोनिः सत्यन्यमाश्रयेत् तदा तेन पौनर्भवेन भर्त्रा पुनर्विवाहाख्य संस्कारमर्हतीति कुल्लूकभट्टव्याख्यानम्। नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित्। न विवाहविधावुक्त विधवावेदनं पुनरिति वचनन्तु। देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया। प्रजेप्सिताऽधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये॥ इति नियोगमुपक्रम्य लिखना-न्नियोगाङ्गविवाहनिषेधपरं न सामान्यतो विधवाविवाहनिषेधकमन्यथा पुनर्भवनप्रतिपादकवचनयोर्निर्विषयत्वापत्तिरिति। दत्तायाश्चैव कन्याया पुनर्दानं परस्य चेत्युद्वाहतत्त्वधृतबृहन्नारदीयवचनम्। देवरेण सुतोत्पत्तिर्दत्ता कन्या प्रदीयते। इति तद्धृतादित्यपुराणवचनञ्च। समयधर्मप्रतिपादकतया न नित्यवदनुष्ठाननिषेधकम्। सत्यामप्यत्र विप्रतिपत्तौ प्रकृतेऽक्षतयोन्या पुनर्विवाहस्य प्रस्तुतत्वात् देवरेण सुतोत्पत्तिर्वानप्रस्थाश्रमग्रह। दत्तक्षताया कन्याया पुनर्दानं परस्य वै॥ इतिमदनपारिजातधृतवचनेन सह तयोरेकवाक्यत्वेऽक्षतयोन्या बालाया पुनर्विवाह न तं प्रतिपेद्धु शक्नुत प्रत्युत क्षतयोन्या विवाहनिषेधकतया व्यतिरेकमुखेनाक्षतयोन्या पुनर्विवाहमेव द्योतयते इति।

जगन्नाथ शरणम्	रामचन्द्र शरणम्
श्रीकाशिनाथशर्म्मणाम्।	श्रीमुक्तारामशर्म्मणाम्।
श्रीविश्वेश्वरोजयति	श्रीहरि शरणम्
श्रीभवशङ्करशर्म्मणाम्।	श्रीठाकुरदासशर्म्मणाम्।
श्रीराम शरणम्	काशिनाथ शरणम्
श्रीरामतनुदेवशर्म्मणाम्।	श्रीमधुसूदनशर्म्मणाम्।
श्रीराम	श्रीशङ्करो जयति
श्रीठाकुरदासदेवशर्म्मणाम्।	श्रीहरनाथशर्म्मणाम्।
श्रीहरिनारायणदेवशर्म्मणाम्।	

व्यवस्था का अनुवाद।

प्रश्न—(इसका हिन्दी अनुवाद ऊपर दिया जा चुका है)

उत्तर। मनुसंहिता आदि शास्त्रों में स्त्रियों के पति के मरने के बाद ब्रह्मचर्य, सहमरण और पुनर्विवाह, ये तीन विधवा-धर्म्म कहे गये हैं। अतएव जो शूद्र जाति की अक्षतयोनि विधवा ब्रह्मचर्य और सहमरण में असमर्थ हो उसका फिर ब्याह होना अवश्य शास्त्रसिद्ध है। विधिपूर्वक विवाहसंस्कार होने पर उस स्त्री का द्वितीय पति की स्त्री होना भी शास्त्र-सिद्ध है। धर्म्मशास्त्र के जानने वाले पण्डितों की यह सम्मति है।

इस बारे में प्रमाण—मृते भर्त्तरि ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणं वा।

(शुद्धितत्त्व में उद्धृत विष्णु का वचन)

पति के मरने पर ब्रह्मचर्य या सहगमन करना।

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया।
उत्पादयेत् पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते॥
सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागताऽपि वा।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति॥

(मनु)

जो स्त्री पति के छोड़ देने पर या विधवा होकर अपनी इच्छा से पुनर्भू होती है, अर्थात् फिर दूसरे आदमी से विवाह करती है उसके गर्भ से उत्पन्न पुत्र पौनर्भव कहलाता है। यदि वह स्त्री अक्षतयोनि अथवा गत-प्रत्यागता होती है, अर्थात् प्रथम पति को छोड़ कर अन्य पुरुष को ग्रहण करने के बाद फिर पति के घर आती है तो फिर उसका ब्याह हो सकता है।

सा स्त्री यद्यक्षतयोनिः सत्यन्यमाश्रयत् तदा तेन
पौनर्भवेन भर्त्रा पुनर्विवाहाख्यं संस्कारमर्हतीति।

(कुल्लूक भट्ट की व्याख्या)

वह स्त्री यदि अक्षतयोनि रह कर अन्य पुरुष का आश्रय ग्रहण करे तो उस दूसरे पति के साथ उस स्त्री का फिर व्याह हो सकता है ।

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोग कीर्त्यते क्वचित् ।
न विवाहविधावुक्त विधवावेदन पुन ॥

(मनु)

विवाह-विधि के मन्त्रों मे कहीं पर नियोग का उल्लेख नहीं है । और, विवाहविधि में कहीं पर विधवा के विवाह का उल्लेख नहीं है ।

यह जो वचन है, उसके द्वारा नियोग के अगीभूत विवाह का ही निषेध किया गया है । क्योंकि नियोगप्रकरण को शुरू करके यह वचन लिखा गया है । साधारणत विधवाविवाह का निषेध करने के लिए यह वचन नहीं है । यदि इसे तुम विधवाविवाह का निषेधक समझोगे तो फिर ऊपर जिन दो श्लोको में पुनर्विवाह की विधि का उल्लेख किया गया है उनकी ठीक सङ्गति नहीं लगती, वे व्यर्थ हुए जाते हैं ।

दत्तायाश्चैव कन्याया पुनर्दान परस्य च ।

(उद्वाहतत्त्व में उद्धृत बृहन्नारदीय वचन)

दी हुई कन्या को फिर दूसरे को देना ।

देवरेण सुतोत्पत्तिर्दत्ता कन्या प्रदीयते ।

(उद्वाहतत्त्व मे उद्धृत आदित्यपुराण का वचन)

देवर के द्वारा पुत्र उत्पन्न कराना और दी हुई कन्या का फिर दान।

ये दोनो वचन समय, धर्म्म के बोधक हैं । इनसे एकदम विधवा-विवाह का निषेध नहीं पाया जाता । यदि इस मीमासा में आपत्ति हो तो मदनपारिजात में उद्धृत—

देवरेण सुतोत्पत्तिर्वानप्रस्थाश्रमाग्रह ।
दत्ताक्षताया कन्याया पुनर्दान परस्य वै ॥

देवर के द्वारा पुत्र उत्पन्न करना, वानप्रस्थ आश्रम का ग्रहण, विवाहिता क्षतयोनि कन्या को दूसरे वर के साथ ब्याहना।

इस वचन के साथ सङ्गति मिलाने से उक्त दोनो वचन अक्षतयोनि कन्या के पुनर्विवाह को रोक नहीं सकते। बल्कि मदनपारिजात का वचन क्षतयोनि विधवा के विवाह का निषेध करके अक्षतयोनि विधवा के पुनर्विवाह का बोधक ही होता है।

यह व्यवस्थापत्र संस्कृत कालेज के अध्यापक मुक्ताराम विद्यावागीश की रचना और उन्हीं के हाथ का लिखा हुआ है। कुछ दिनो बाद सर राजा राधाकान्त देव बहादुर के घर में एक सभा हुई। उसमें बहुत से पण्डितो के सामने नवद्वीप से आये हुए स्मार्त्त व्रजनाथ विद्यारत्न से शास्त्रार्थ हुआ। उसमे, व्यवस्था-पत्र में हस्ताक्षर करने वाले भवशङ्कर विद्यारत्न ने विधवाविवाह के पक्ष का समर्थन करने में विजय पाई। इसका पुरस्कार उन्हें एक बढिया दुशाला मिला था। किन्तु काम के समय भवशङ्कर विद्यारत्न ने वही पुरस्कार में प्राप्त दुशाला ओढ कर विधवा-विवाह के विरोधियो की सहायता की। मुक्ताराम विद्यावागीश भी विद्यारत्न के दिखलाये मार्ग मे फिसल पडे। विद्यासागर ने अपने विधवा-विवाह-सम्बन्धी ग्रन्थ की भूमिका मे बडे दु ख के साथ लिखा है कि "श्रीयुत बाबू श्यामाचरणदास गृहस्थ आदमी हैं, शास्त्रज्ञ नहीं हैं। उन्होने श्रीयुत भवशङ्कर विद्यारत्न आदि पण्डितो को धर्म-शास्त्र का जानकार जान कर उनसे शास्त्रानुकूल व्यवस्था मांगी थी और उन्होंने भी व्यवस्था दी थी। यदि विधवाविवाह वास्तव में शास्त्र-विरुद्ध है, ऐसी धारणा रहते भी उक्त महापुरुषो ने विधवाविवाह को शास्त्रसङ्गत बतला कर व्यवस्था दी है तो उन्होने भले आदमी का काम नहीं किया। और यदि विधवाविवाह को यथार्थ शास्त्र-सम्मत समझ कर वैसी ही व्यवस्था दी थी तो भी अब विधवाविवाह को शास्त्र-विरुद्ध बतलाना और उसका

विरोध करना भले आदमियो का काम नहीं है। जो कुछ हो, आक्षेप की बात यही है कि जिनकी रीति-नीति ऐसी है वे महापुरुष ही इस देश मे धर्म-शास्त्र के मीमासक समझे जाते हैं और उन्हीं के वाक्य व व्यवस्था पर आस्था स्थापित करके देश के लोगों को चलना पडता है"।

धर्म-शास्त्र की व्याख्या करने वाले अध्यापको के ऐसे आचरण देख कर पिछले जमाने मे विद्यासागरजी बडे दु ख के साथ कहते थे कि "मैं जगल मे रो रहा हूँ। मुझे विश्वास था कि इस देश के लोग शास्त्र को मान कर चलते हैं, किन्तु अब देखता हूँ कि इस देश के लोग शास्त्र को नही मानते, लोकाचार ही इनका धर्म्म है"। फिर भी विद्यासागर अपने कर्त्तव्य पर डटे ही रहे।

सन् १८५३ मे विद्यासागर की विधवाविवाह-सम्बन्धी पुस्तक छपते ही भारत भर में सर्वत्र हलचल मचगई। सेना-सहित नेपोलियन के यात्रा करने से जैसे सारा यूरोप हिल उठा था वैसे ही विद्यासागर के इस सस्कार-सग्राम की आयोजना से भारत मे एक तूफान सा आ गया। सर्वत्र विद्यासागर और विधवाविवाह की आलोचना होने लगी। कितने ही प्रतिवाद हुए और कितने ही लोग ग्रन्थ लिख कर विद्यासागर के शास्त्रसिद्ध प्रमाणो में भ्रम दिखाने की चेष्टा करने लगे। किन्तु वि ासागर की प्रतिभा से उत्पन्न शास्त्र की सुसङ्गत व्याख्या के आगे किसी की कोई युक्ति नहीं चली। विरोधियो के किये कूट तर्कों का समाधान करते हुए विद्यासागर ने सन् १८५५ मे दूसरी बार विधवाविवाह की पुस्तक छपाई। अबकी पुस्तक का आकार बहुत बढ गया।

इस विधवाविवाह-ग्रन्थ के अनेक स्थानो में जो विचार-निपुणता देख कर लोग मुग्ध हैं उसका कुछ अश यहां पर पाठको की प्रसन्नता के लिए उद्धृत किया जाता है।

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥
मृते भर्त्तरि या नारी ब्रह्मचर्य्ये व्यवस्थिता।
सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटिश्च यानि लोमानि मानवे।
तावत्कालं वसेत्स्वर्गं भर्त्तारं याऽनुगच्छति॥

अर्थात् स्वामी के लापता होने पर, मर जाने पर, नपुसक निश्चित होने पर, सन्यासी या पतित होने पर स्त्रियों का दूसरा पति शास्त्र-विहित है। जो स्त्री स्वामी के मरने पर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करती है वह मरने पर ब्रह्मचारियों की तरह स्वर्ग को जाती है। मनुष्य के शरीर में साढे तीन करोड रोम होते हैं, जो स्त्री स्वामी के साथ सती हो जाती है वह उतने ही समय तक स्वर्गवास करती है।

कलियुग में पराशरसंहिता ही प्रधान माननीय स्मृतिग्रन्थ है। हिन्दू-धर्म और शास्त्र-विधि के अनुसार पराशरसंहिता का प्रमाण सर्वमान्य होना चाहिए। महात्मा व्यास ने पराशरसंहिता को ही कलियुग में धर्म का सहजसाध्य विधान बतलाया है। मनु आदि धर्माचार्यों की संहितायें खासकर पहले के युगों के लिए रची गई हैं। कलियुग के सहजसाध्य धर्म्म-मार्ग को दिखलानेवाले महात्मा पराशर ही हैं। ऊपर जो तीन श्लोक लिखे गये हैं वे पराशरसंहिता के ही हैं। इन श्लोकों का जो सहज और सरल अर्थ निकलता है वह भी ऊपर लिखा जा चुका है। किन्तु इस अर्थ में मनमानी करने के लिए अनेक पण्डितों और गृहस्थों ने बडे बडे जोर मारे। परन्तु पराक्रमी विद्यासागर ने इन सब प्रतिद्वन्द्वी पण्डितों को चुटकी बजाते परास्त कर दिया। उन्होंने हर एक श्लोक को उठा कर मनमानी करने वालों के कथन का खण्डन कर डाला। उन्होंने यह दिखला दिया कि किस लिए किस

श्लोक के बाद कौन श्लोक बनाया गया है। विद्यासागर के समा
ऐसा सहज और सुन्दर है कि जो आदमी लिखना-पढ़ना
उसे भी उस ग्रन्थ के द्वारा सब बातें बड़े मजे में समझा दी ज
'पराशरसंहिता के विवाहविधिप्रकरण में लिखे गये पूर्वोक्त
का दूसरा अर्थ करने के लिए और साधारण लोगों को
मतलब समझाने के लिए जिसने जितनी अधिक चेष्टा
उतना ही अधिक विद्यासागर को गालियाँ दी हैं, उनके
और नीच-व्यग्य किये हैं। किन्तु ऐसे भारी मामले के वि
धैर्य्य और शान्ति की आवश्यकता हुआ करती है उससे
बिन्दुमात्र विचलित नहीं हुए। प्रमाण-स्वरूप विद्यासागर
एक अंश यहाँ पर उद्धृत किया जाता है —

"किन्तु खेद की बात है कि जो महाशय उत्तर दे
मैदान में आये हैं उनमें से बहुत से तो इस बात को भी
नहीं जानते कि ऐसे भारी विषय का विचार किस प्रका
चाहिए। कोई कोई तो 'विधवाविवाह' शब्द सुनते ही
अधीर हो उठे हैं। विचार के समय धैर्य्य न रखने से
के समय सूक्ष्मदृष्टि नहीं रहती। इ लो
उत्तरों में पाया जाता है। किसी ने पूर्व
विचार से विमुख होकर
उन्होंने प्राय
भी हो
शास्त्र का
होने के
समझ

पहले तो अनेक लोगो ने मेरे लिखे विधवाविवाह-विषयक प्रस्ताव को पढ कर विधवाविवाह शास्त्रसम्मत ठहराया, किन्तु पीछे कुछ लोगो को कई एक आपत्तियां उठाते देख कर वे ही विधवा-विवाह को शास्त्रविरुद्ध समझ वैठे। खास कर गृहस्थ लोग संस्कृत नहीं जानते, इस कारण वे खुद संस्कृतवचनो के अर्थ को नहीं समझ सकते। उनके समझने के लिए भाषा में अर्थ लिख देना पडता है। उसी अर्थ के ऊपर भरोसा करके वे लोग सत्यासत्य का निर्णय करते हैं। इस सुयोग को देख कर अनेक महाशयो ने अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए, अपने उद्धृत किये श्लोको का मनमाना अर्थ लिख दिया है। संस्कृत न जाननेवाले पाठकों ने उनके लिखे अर्थ को ही ठीक अर्थ समझ लिया है। इस बारे में पाठको को दोष नहीं दिया जा सकता। क्योंकि किसी हिन्दू की यह धारणा हो ही नहीं सकती कि कोई आदमी धर्म-शास्त्र के विचार में प्रवृत्त होकर, छल-कौशल के सहारे ऋषिवचनो का मनमाना अर्थ लिख कर, बिना किसी सङ्कोच के सर्व-साधारण को धोखा दे सकता है।

"अधिक खेद की बात यह है कि उत्तर देनेवाले महाशयो में से अनेक महाशय दिल्लगीबाज और गालीगलौज के प्रेमी हैं। इस देश मे दिल्लगी और गालीगलौज भी धर्म-शास्त्र-सम्बन्धी विचार का एक प्रधान अंग समझा जाता है, यह बात पहले मुझे मालूम न थी। सबकी एक तरह की प्रवृत्ति नहीं होती, इसीसे सब का एक ढँग नहीं है। प्रकृति-भेद ही प्रवृत्ति-भेद का प्रधान कारण है। किन्तु ऐसे भारी मामले के विचार के समय अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार भिन्न भिन्न प्रणालियो का सहारा न लेकर विषयानुरूप प्रणाली का अवलम्बन किया जाना ही अच्छा था। आश्चर्य तो यह है कि जिसके उत्तर में जितना अधिक मसखरापन और गालीगलौज है उतना ही अधिक

उसका आदर अनेक लोगों ने किया है। अनेक लोगों के उत्तर का ऐसा ढँग देख कर पहले मुझे बड़ा क्षोभ हुआ था। किन्तु एक उत्तर पढ़ कर मेरा सारा क्षोभ जाता रहा। इस उत्तर में लेखक का नाम नहीं है। 'एक वर' ने यह उत्तर लिखा है। इस वर ने अवस्था में वृद्ध और सर्वत्र सर्व-श्रेष्ठ विज्ञ कह कर प्रसिद्ध होने पर भी उत्तर के लेख में बीच बीच मसखरेपन और कटूक्ति-प्रियता का परिचय दिया है। अतएव मैंने यह निश्चय कर लिया है कि धर्म-शास्त्र के विचार में प्रवृत्त होकर वादी को गालियाँ देना और उससे मसखरापन करना ही इस देश में विज्ञ का लक्षण समझा जाता है। अगर यह मूर्ख का लक्षण होता तो देश के सब लोग जिसे सर्वोत्तम विज्ञ कहते हैं वह व्यक्ति इस ढँग से उत्तर देने का साहस कभी न करता।

किन्तु कोई किसी प्रणाली से उत्तर दे, मैं हर एक उत्तरदाता के द्वारा अपने को अत्यन्त उपकृत समझता हूँ और उन लोगों को सहस्र साधुवाद देता हूँ। वे लोग परिश्रम-पूर्वक उत्तर देने के लिए उद्यत न होते तो यही प्रतीत होता कि इस देश के पण्डित और समाज के अगुआ लोगों ने इस विषय को तुच्छ अग्राह्य समझ लिया है। उनके उत्तर देने से कम से कम यह बात अच्छी तरह साबित हो गई कि यह प्रस्ताव ऐसा नहीं है कि एकदम इसकी अवज्ञा या उपेक्षा करके निश्चिन्त बैठा जा सके। वे इस प्रस्ताव को अग्राह्य समझ कर कुछ भी उत्तर न देते तो सचमुच मुझे बड़ा क्षोभ होता। उन्होंने मेरे प्रस्ताव को शास्त्र-विरुद्ध साबित करने के लिए, यथा-सम्भव परिश्रम और अनुसन्धान करके, अपने अपने लेख और पुस्तक में प्रमाण-वाक्य उद्धृत किये हैं। जब अनेक ओर से अनेक व्यक्तियों ने अनेक प्रकार से आपत्ति उठाई है तब यह कहना अनुचित न होगा कि विधवा-विवाह के विरुद्ध जो कुछ कहा जा सकता है वह सब कहा जा

चुका। अब उन्हीं प्रतिवाद की युक्तियों का खण्डन या आपत्तियों की मीमांसा हो जाने से यह बात निर्विवाद हो जायगी कि कलियुग में विधवाविवाह शास्त्र-सिद्ध है"।

अब यहां पर कुछ इस बात का आभास दिया जाता है कि (पराशरसंहिता के) पूर्वोक्त तीन श्लोकों के कितने भिन्न भिन्न पाठ बनाये गये हैं और विद्यासागर ने उन सबका कैसा सहज और सुन्दर समाधान किया है। कलकत्ते के निकटवर्त्ती स्थानों के दस अध्यापकों ने मिल कर यह मीमांसा प्रकाशित की कि "पराशरसंहिता" के उक्त श्लोक का मतलब यह है कि यदि वाग्दत्ता कन्या का वर ब्याह के के पहले लापता हो जाय, मर जाय या नपुंसक इत्यादि हो तो उसका अन्य वर के साथ विवाह हो सकता है। इसका यह अभिप्राय कभी नहीं है कि ब्याही हुई विधवा का फिर विवाह हो सकता है"। विद्यासागर ने इस आपत्ति का खण्डन करते हुए लिखा है कि "पांच प्रकार की विपत्तियों की अवस्था में ब्याही हुई स्त्री के पुनर्विवाह का विधान ही इस श्लोक का स्वाभाविक सरल अर्थ है। कष्ट-कल्पना द्वारा शब्द के दूसरे अर्थ की कल्पना किये बिना इस श्लोक से दूसरा मतलब निकाला नहीं जा सकता। भाष्यकार माधवाचार्य्य स्वयं विधवाविवाह के विरोधी थे। तथापि उन्होंने यह स्वीकार किया है कि पराशर का यह वचन विवाहिता विधवा आदि के पुनर्विवाह से ही सम्बन्ध रखता है। यथा—

"परिवेदन और पर्य्याधान की तरह प्रसङ्गवश किसी किसी जगह स्त्रियों के पुनर्विवाह की भी विधि दिखलाते हैं। (१), पुनर्विवाह न

---

(१) परिवेदनपर्य्याधानयोरिव स्त्रीणां पुनरुद्वाहस्यापि प्रसङ्गात् क्वचिदभ्यनुज्ञां दर्शयति "नष्टे मृते" इत्यादि।

करके ब्रह्मचर्य्य-पालन का अधिक फल दिखलाते हैं। (१), सहमरण में ब्रह्मचर्य्य से भी अधिक फल दिखलाते हैं (२)। ये तीनो पराशर-संहिता के श्लोक माधवाचार्य्य के मत से विवाहिता स्त्री के पुनर्विवाह के विधायक न होते तो वह अपनी टीका में परवर्त्ती श्लोक का ऐसा आभास न देते। क्योंकि पूर्व-श्लोक के द्वारा विधवा आदि विवाहिता स्त्रियों की विवाह विधि सिद्ध न होती तो परवर्त्ती श्लोकों का ऐसा आभास कैसे सङ्गत होता कि विवाह न करके ब्रह्मचर्य्य धारण करने से अधिक फल होता है"।

इसके बाद, वाग्दत्ता के विवाह की विधि यह नहीं है, यह शास्त्र-वचन विधवा आदि विवाहिता स्त्रियों के पुनर्विवाह के लिए है, इस बात का दूसरा प्रमाण देते हुए विद्यासागर ने लिखा है—"नारद-संहिता देखने से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि "नष्टे मृते प्रव्रजिते" इस वचन मे कही गई विवाह-विधि वाग्दत्ता के लिए कभी हो ही नहीं सकती। उसमे 'नष्टे मृते प्रव्रजिते' यह श्लोक पूरा लिख करके लिखा है कि स्वामी लापता हो जाय तो ब्राह्मणी आठ वर्ष तक उसके आने की प्रतीक्षा करे। यदि उसके कोई सन्तान न हुई तो केवल चार ही वर्ष उसकी राह देख कर फिर दूसरा ब्याह कर ले *।

---

(१) पुनरुद्वाहमकृत्वा ब्रह्मचर्य्यव्रतानुष्ठाने श्रेयोऽतिशयं दर्शयति "मृते भर्त्तरि या नारी' इत्यादि।

(२) ब्रह्मचर्य्यादप्यधिक फलमनुगमने दर्शयति 'तिस्र कोट्योऽर्धकोटिश्च" इत्यादि॥

* नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥
अष्टौ वर्षाण्यपेक्षेत ब्राह्मणी प्रोषितं पतिम्।
अप्रसूता तु चत्वारि परतोऽन्यं समाश्रयेत्॥

इस श्लोक मे स्वामी के लापता होने आदि पाँच आपत्कालो में पुन-र्विवाह का जो विधान है वह वाग्दत्ता के लिए सम्भव नहीं। क्योकि आगे साफ लिखा है कि सन्तान हुई हो तो आठ वर्ष तक और सन्तान न हुई हो तो चार वर्ष तक उसकी राह देख कर फिर व्याह कर ले। वाग्दत्ता के लिए सन्तान का नियम हो ही नहीं सकता। जब तक व्याह नहीं हुआ तब तक सन्तान कैसी" ?

कुछ लोग यहाँ पर यह आपत्ति उठा सकते हैं कि नारदसंहिता और पराशरसंहिता एक ही समय के शास्त्र नहीं हैं। एक सत्ययुग का और दूसरा कलियुग का शास्त्र है। अतएव पराशरसंहिता के श्लोक के अर्थ की संगति, नारदसंहिता के श्लोक के अर्थ के साथ करना ठीक नहीं। इसके उत्तर मे विद्यासागर ने लिखा है—"इस बारे मे मेरा वक्तव्य यही है कि यह बात सच है कि नारदसंहिता सत्ययुग का शास्त्र है। किन्तु नारद के उक्त वचन में जितने शब्द हैं वे ही शब्द परा-शर के वचन में भी हैं। अतएव नारद के वचन से जो अर्थ निकलेगा वही अर्थ पराशर के वचन से भी निकलेगा। यह तो कोई सिद्ध कर ही नहीं सकता कि युग के भेद से शब्द का अर्थ भी बदल जाता है। सत्ययुग मे जिस शब्द का जो अर्थ था वही अर्थ कलियुग मे भी बना रहेगा। इस कारण नारदसंहिता और पराशरसंहिता के 'नष्टे मृते प्रव्रजिते' इस श्लोक मे बिन्दु-विसर्ग का भी जब अन्तर नहीं है तब अर्थ मे भी कुछ अन्तर नहीं हो सकता। कहने का मतलब यह है कि 'नष्टे मृते' यह वचन दोनों संहिताओ में एक सा है, अतएव दोनो जगह एक ही अर्थ का प्रतिपादक है। इस विषय में विप्रतिपत्ति करने के लिए उद्यत होना केवल अप्रतिपत्ति पाने का प्रयासमात्र है। इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि 'नष्टे मृते' वचन में विवाहिता, विधवा के लिए ही पुनर्विवाह की विधि है"।

जिस जगह पर वेद, स्मृति और पुराण मे परस्पर विरोध हो वहाँ वेद का ही प्रमाण मुख्य है। स्मृति और पुराण के परस्पर विरोध में स्मृति का ही प्रमाण मान्य है।

वेद, स्मृति और पुराण के परस्पर विरुद्ध होने पर स्मृति और पुराण के अनुसार न चल कर वेद के अनुसार चलना चाहिए, और स्मृति और पुराण मे परस्पर विरोध देख पडने पर पुराण के अनुसार न चल कर स्मृति के अनुसार चलना चाहिए। पुराणकर्त्ता व्यास ने स्वय व्यवस्था दी है कि पुराण के आगे स्मृति मान्य है। अतएव यदि बृहन्नारदीय और आदित्यपुराण के अनुसार विधवाविवाह निषिद्ध हो तो भी उसको न मान कर पराशरसहिता के अनुसार काम करना चाहिए"।

विद्यासागर ने इस भारी समस्या के हल करने मे हाथ डाल कर किसी बात की उपेक्षा नहीं की, कोई तर्क छिपाया नहीं। वह फिर भी, उसी पुस्तक में, लिखते हैं कि—"अतएव कलियुग में विधवा-विवाह का शास्त्रविहित कर्त्तव्य होना निर्विवाद सिद्ध हो गया। अब एक आपत्ति यह उठाई जा सकती है कि कलियुग मे विधवाविवाह शास्त्र के अनुसार कर्त्तव्य कर्म होने पर भी शिष्टाचार के विरुद्ध है, इसलिए वह ग्राह्य नहीं हो सकता। इस आपत्ति का निराकरण करने के लिए यह देखना चाहिए कि किस जगह शिष्टाचार की प्रधानता माननी चाहिए? भगवान् वसिष्ठ ने अपनी संहिता में इस विषय की मीमासा कर दी है।

लोके प्रेत्य वा विहितो धर्म्मः।
तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम्॥

लौकिक और पारलौकिक, दोनो तरह के मामलों में धर्म्म-शास्त्र के अनुसार ही चलना चाहिए। वही धर्म्म है। शास्त्र का कुछ विधान जिस मामले में न मिले उसमें शिष्टाचार को प्रमाण मानना उचित है।

इस वसिष्ठसंहिता में शास्त्र-विधान के न होने पर शिष्टाचार को प्रमाण बतलाया है। अतएव कलियुग में विधवा-विवाह के शास्त्र-सम्मत कर्त्तव्य होने में कुछ भी संदेह नहीं रह गया। इस विषय में अब कोई और आपत्ति नहीं उठाई जा सकती"।

आदित्यपुराण, पराशरभाष्य में उद्धृत क्रतुवचन, बृहन्नारदीय पुराण, आदिपुराण आदि कई ग्रन्थों में विवाहिता के पुनर्विवाह का निषेध पाया जाता है। किन्तु कलियुग के खास धर्म-शास्त्र पराशर-संहिता में "नष्टे मृते प्रव्रजिते" इस वचन के द्वारा विवाहिता के पुनर्विवाह को विहित बतलाया है। कात्यायन और वसिष्ठ भी अपनी अपनी संहिता में किसी खास युग का निर्देश न करके साधारणत: पति के पतित, लापता, कुल-शील-हीन, यथेच्छाचारी, चिर रोगी, सगोत्र, दास और अन्यजातीय निश्चित होने या मरने पर विवाहिता स्त्री के पुनर्विवाह की आज्ञा देते हैं। इन सब विरोधी कूटतर्कों से उत्पन्न संशय काटने के लिए विद्यासागर ने लक्ष्य स्थिर कर जो शरसञ्चालन किया है वह देखने ही लायक है। जिन्होंने विद्यासागर के विधवा-विवाह के सुविस्तृत समालोचना-ग्रन्थ को मन लगाकर आदि से अन्त तक नहीं पढ़ा वे शायद इस संक्षिप्त समालोचना से विशेष तृप्त होने का सुयोग न प्राप्त कर सकेंगे। स्थान कम है और विषय बड़ा भारी है, तथापि यथासम्भव विद्यासागर की बहुज्ञता और शास्त्रज्ञान का आभास देने की चेष्टा की जायगी। यह समालोचना पढ़ कर अगर किसी के मन में विधवाविवाह-ग्रन्थ को पढ़ने की इच्छा हो तो हम समझेंगे कि हमारा उद्देश्य सफल हो गया। विद्यासागर ने पूर्वोक्त शास्त्र-विरोध का निराकरण करने के लिए लिखा है कि "इस समय सब लोग विचार कर देखें, पहले तो कात्यायन आदि संहिताकार मुनियों के वचनों में कई जगह पर

साधारणत. सभी युगो के लिए विधवा स्त्री के पुनर्विवाह की आज्ञा थी। उसके बाद आदिपुराण आदि मे साधारण रूप से कलियुग में विवाहिता के पुनर्विवाह का निपेध किया गया। तदनन्तर पराशर-संहिता में, कलियुग में, "नष्टे मृते" आदि पांच आपत्तिकालो पर विवाहिता के पुनर्विवाह की विशेप विधि बनाई गई। सामान्य और विशेप विधि में विशेप-विधि और निपेध ही प्रबल होता है। अर्थात् जिस जगह विशेप विधि अथवा विशेप निपेध रहता है वहां सामान्य विधि और सामान्य निपेध नहीं माना जाता। पहले तो कात्यायन आदि मुनियो ने साधारणत किसी युग का उल्लेख न करके, कई जगह पर विवाहिता के पुनर्विवाह की व्यवस्था दी है। यह विधि साधारणत सभी युगो के लिए हो सकती थी। किन्तु आदिपुराण आदि में कलियुग का उल्लेख करके निपेध किया गया है। अतएव यह निपेध कलियुग के लिए विशेप निपेध हुआ। इसी कारण कात्यायन आदि की सामान्य विधि कलियुग को छोडकर अन्य युगों में माननीय ठहरी और इस प्रकार कलियुग मे सर्वत्र विधवाविवाह का निपेध हो गया। किन्तु पराशर 'नष्टे मृते' आदि पांच प्रकार के अवसरो पर, कलियुग मे, विवाहिता और विधवा के पुनर्विवाह की विधि देते हैं। यह पराशर की विधि विशेप विधि मानी जायगी। इस कारण आदिपुराण आदि का सामान्य निपेध 'नष्टे मृते' आदि पांच अवसरो को छोडकर अन्य स्थलो पर माननीय होगा। अर्थात् पति के लापता, मृत, सन्यस्त, नपुसक और पतित होने पर तो पराशरसंहिता की विशेप विधि के अनुसार पुनर्विवाह होगा और कुल-शील-हीन, यथेच्छाचारी, चिररोगी, मिर्गी का रोगी, सगोत्र, दास या अन्य-जातीय होने पर आदिपुराण के सामान्य निपेध के अनुसार पुनर्विवाह न होगा।

सामान्य और विशेष विधि के निषेध की जगह सर्वत्र ऐसी ही व्यवस्था देख पड़ती है। जैसे—'अहरहः सन्ध्यामुपासीत'। नित्य सन्ध्यावन्दन करे। इस जगह वेद में साधारणतः नित्य सन्ध्या करने की स्पष्ट विधि है। किन्तु—'सन्ध्या पञ्चमहायज्ञान् नैत्यिकं स्मृतिकर्म्म च। तन्मध्ये हापयेत्तेषां दशाहान्ते पुनः क्रिया'॥ अर्थात् अशौच में सन्ध्यावन्दन, पञ्चमहायज्ञ और स्मृति-विहित नित्य कर्म्म करना निषिद्ध है। अशौच के बाद इन कर्मों को करने की विधि है। इस स्थल पर जाबालि अशौच के समय सन्ध्यावन्दन का निषेध करते हैं। देखो वेद में सामान्य रूप से नित्यप्रति सन्ध्यावन्दन की विधि रहने पर भी जाबालि के विशेष निषेध के द्वारा अशौच के समय दस दिन तक सन्ध्यावन्दन बन्द रहने का विधान होता है। अर्थात् यह सिद्ध होता है कि जाबालि के विशेष निषेध के अनुसार अशौच काल के दस दिनों को छोड़ कर सर्वदा सन्ध्यावन्दन करना चाहिए"।

विद्यासागर ने इसी तरह अनेकानेक प्रमाण देकर यह दिखलाया है कि विधवाविवाह की प्रथा सम्पूर्ण रूप से शास्त्र-सम्मत और हिन्दू-आचार के द्वारा अनुमोदित है। पराशरसंहिता के पूर्वोक्त तीनों श्लोकों के विरुद्ध जितनी आपत्तियाँ उठाई गई हैं और और भी जितनी उठाई जासकती हैं उन सबकी शास्त्र-सङ्गत मीमांसा करके विद्यासागर ने पराशर के वचन को प्रबल और अखण्डनीय साबित कर दिखाया है। उनके विधवाविवाह-सम्बन्धी ग्रन्थ को पढ़कर मुझे विश्वास है कि जिस उद्देश से उन्होंने वह पुस्तक लिखी थी वह सिद्ध हो गया। उन्होंने निम्नलिखित बातों के अलग अलग शास्त्रसङ्गत प्रमाण दिये हैं—१ पराशर का वचन विवाहिता के लिए है, वाग्दत्ता के लिए नहीं। २ पराशर का वचन कलियुग के लिए है, अन्य युगों

के लिए नहीं। ३ पराशर की यह पुनर्विवाह-विधि मनुसंहिता के विरुद्ध नहीं है। ४ पराशर की पुनर्विवाह-विधि वेद-विरुद्ध भी नहीं है। ५ यह पुनर्विवाह को सिद्ध करने वाला वचन पराशर का है, शख ऋषि का नहीं। ६ यह विधवाविवाह-विधायक वचन पराशर का है, बनाया हुआ नहीं है। ७ यह पराशर का वचन पुनर्विवाह की विधि देता है, उसका निषेध नहीं करता। ८ दीर्घतमा का नियम स्थापन करना विधवाविवाह के निषेध का बोध नहीं कराता। ९ बृहत्पराशर-संहिता विधवा-विवाह का निषेध नहीं करती। १० पराशरसंहिता में केवल कलियुग के धर्म का निर्णय किया है, अन्य युगो के धर्मों का नहीं। ११ पराशरसंहिता मे आदि से अन्त तक, केवल पहले के दो अध्यायो को छोड कर, कलियुग के धर्मों का ही निर्णय किया गया है। १२ पराशर ने केवल कलियुग का धर्म लिखा है, अन्य युगों का नहीं। १३ पराशरसंहिता मे चारो युगो के धर्मों का उपदेश किया गया है, यह बात साबित नहीं की जासकती। १४ 'कलौ पाराशरी स्मृति' यह पराशर का वाक्य प्रशंसासूचक नहीं है। १५ मनुसंहिता मे चारो युगो के धर्म्मों का अलग अलग निरूपण नहीं किया गया। १६ पराशरसंहिता मे पतिता भार्या के त्याग और पतित पति के प्रति अवज्ञा का निषेध नहीं है। १७ स्मृति-शास्त्र मे अर्थवाद का प्रमाण माना जाता है। १८ वाग्दान के बाद वर के लापता आदि होने पर कन्या का फिर दान निषिद्ध नहीं है। १९ पराशर ने केवल नीच जाति वालो के लिए यह पुनर्विवाह की विधि नहीं दी है। २० पिता विधवा कन्या का फिर दान कर सकता है। २१ विधवा के विवाह के समय पिता के गोत्र का उल्लेख करके दान किया जायगा। २२ प्रथम बार के विवाह-मन्त्र ही द्वितीय बार पढे जायँगे। २३ व्याही हुई स्त्री का पुनर्विवाह व्याहे पुरुष के पुनर्विवाह की तरह

प्रशस्त-कल्प नहीं है । २४ देशाचार शास्त्र की अपेक्षा प्रबल प्रमाण नहीं है ।

विद्यासागर ने इन विषयो की बहुविस्तृत समालोचना करके शास्त्रों से प्रमाण देते हुए यह दिखलाया है कि विधवाविवाह सोलहो आने शास्त्रसम्मत है। केवल मुझ क्षुद्रबुद्धि और थोड़े ज्ञान वाले पुरुष ने ही ऐसा नहीं समझा, शास्त्रज्ञ पण्डितो की राय भी मेरी इस धारणा को पुष्ट करती है। पण्डित रामगति न्यायरत्न अपने "बँगला-भाषा और बँगला-साहित्य-विषयक प्रस्ताव" मे लिखते हैं कि "यह पुस्तक पढ कर हिन्दू-समाज मे एकदम हलचल पड गई। प्राचीन हिन्दू विद्यासागर को नास्तिक, कृस्तान कह कर गालियाँ देने लगे। अनेक भट्टाचार्य महाशय और उनकी सहायता से अनेक धनी लोग विधवाविवाह-निषेधक प्रमाणो को खोज खोज कर विद्यासागर की पुस्तक के उत्तर मे छोटी छोटी पुस्तके और लेख प्रकाशित करने लगे। किसी किसी पुस्तक में शिष्टाचार के विरुद्ध गालियो की वर्षा भी की गई थी। लगभग सभी अखबार विद्यासागर के ऊपर पत्थर बरसाने लगे। किन्तु महामना विद्यासागर के चित्त में कुछ भी विकार नहीं आया, उन्होने वह सब सह लिया। उन्होंने उसी साल विधवाविवाह-सम्बन्धी दूसरी पुस्तक छपा कर प्रकाशित की। इस पुस्तक मे उन्होंने ऐसे पाण्डित्य और गम्भीरता के साथ प्रतिपक्षियो की सब आपत्तियों का खण्डन किया, ऐसी निपुणता के साथ शास्त्रार्थ की मीमासा की और कठिन शास्त्र-सम्बन्धी विचारो को ऐसी सरल मधुर भाषा में प्रकट करके सहज बना दिया कि उसे पढ कर लोग विद्यासागर को अद्वितीय पुरुष समझने लगे। + + + मतलब यह कि विद्यासागर ने इस पुस्तक में विद्या, बुद्धि, कौशल, बहुदर्शिता, सारग्राहिता, मीमांसकता, विनय, गाम्भीर्य आदि सब गुणों की

पराकाष्ठा दिखला दी है। हमारे एक सुविज्ञ आत्मीय कहते थे कि विधवाविवाह पुस्तक के हेडिंग की पङ्क्तियाँ, यथा—'पराशर का वचन विवाहिता के लिए है, वाग्दत्ता के लिए नहीं' इत्यादि इटालिक (अँगरेजी) अक्षरो की तरह टेढे अक्षरो में छपनी चाहिए। कारण पूछने पर उन्होंने कहा—'अँगरेजी जिऑमेट्री की प्रतिज्ञायें इटालिक अक्षरो मे छपी रहती हैं'। इसका अभिप्राय यह है कि ज्यामिति की प्रतिज्ञायें जैसे भ्रान्तिरहित सत्य हैं, अकाट्य युक्तिपरम्पराओ से प्रमाणित की हुई हैं, वैसे ही विधवाविवाह-पुस्तक के ऊपर की पङ्क्तियाँ, परवर्त्ती विचार के द्वारा निश्चितरूप से सिद्ध हो चुकी हैं। अतएव दोनो पुस्तको के ऊपर की प्रतिज्ञायें (मोटो) एक ही तरह के अक्षरो मे छापी जानी चाहिए"।

इसके बाद उस समय की तत्त्वबोधिनी पत्रिका (चतुर्थकल्प, १०४ पृष्ठ) मे उक्त ग्रन्थ के सम्बन्ध में जैसी राय जाहिर की गई है वह भी नीचे उद्धृत की जाती है।—"श्रीयुत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने अब से पहले विधवाविवाह को शास्त्रसम्मत सिद्ध करने वाली जो पुस्तक प्रकाशित की थी, उसके प्रकाशित होने के बाद से हिन्दू-समाज मे घोर हलचल मची हुई है। इस देश के अनेक पण्डितो और गृहस्थो में यह प्रथा अप्रचलित बनाये रखने के लिए बहुत लोगो ने पुस्तके लिखी हैं और विधवाविवाह का विरोध किया है। उनका यह विरोध, उनके सब तर्क बिलकुल ही भ्रमपूर्ण हैं, यह दिखलाने के लिए विद्यासागर ने हाल मे इसी [illegible] पुस्तक का [illegible]

अमूलक आपत्तियाँ उपस्थित करने के लिए ही उद्यत रहते हैं। इस पुस्तक के उपसंहारभाग में यह बात अच्छी तरह बतला दी गई है कि देशाचार और कुसंस्कार इस देश के कैसे भयङ्कर शत्रु बन गये हैं। इस अंश को पढ़ने से पत्थर का हृदय भी मोम बन जाता है।

विधवा स्त्रियों का पुनर्विवाह होना चाहिए, यह बात युक्ति से सिद्ध ही थी। किन्तु अब यह भी निश्चित हो गया कि भारतवर्ष के धर्मशास्त्र में विधवा के पुनर्विवाह का विधान है। अतएव अब विधवाविवाह को प्रचलित करके उनकी असह्य वैधव्य-यन्त्रणा को मिटाने में क्षण भर की देर न करनी चाहिए।

जो लोग विद्वेषबुद्धि को छोड़ कर विद्यासागर महाशय की लिखी बहुविस्तृत गवेषणापूर्ण विधवाविवाह की पुस्तक को पढ़ेंगे वे केवल विधवाविवाह की आवश्यकता और शास्त्रीयता का पूर्ण अनुभव करके तृप्त ही न होंगे, बल्कि उसके साथ ही विद्यासागर की निष्ठा के साथ शास्त्र-सम्बन्धी आलोचना की पद्धति और कटूक्तिपूर्ण प्रतिवाद-पुस्तकों की शान्तिपूर्ण समालोचना देख कर उन्हें असाधारण धैर्य-शाली, क्षमताशाली और अद्वितीय पण्डित समझ कर सिर झुकावेंगे"।

जब विद्यासागर ने अपने मिलने वाले और मित्रों को यह विश्वास करा दिया कि विधवाविवाह सब तरह शास्त्रसिद्ध और सदाचार-सङ्गत है, तब किसकी शक्ति थी जो उस आग्रह और उत्साह के प्रवाह को रोक सकता। विधवाविवाह की तैयारियों की चारों ओर धूम पड़ गई। इसी समय विधवाविवाह करने के पक्ष वाले लोगों के आगे और एक भारी समस्या आकर उपस्थित हुई। समस्या यह थी कि विधवा के पुनर्विवाह के बाद उसके गर्भ के बच्चे शायद वर्तमान दायभाग के अनुसार पैतृकसम्पत्ति के अधिकारी न समझे जायँ।

इस आशङ्का को दूर करने के लिए सबसे पहले गवर्नमेंट के निकट एक आवेदनपत्र भेजना निश्चित हुआ। कलकत्ते के राजा राधाकान्त-देव आदि कई प्रतिष्ठित लोगो के अलावा बहुत से आदमियों ने उस आवेदनपत्र पर हस्ताक्षर किये थे। उस आवेदनपत्र का अनुवाद नीचे दिया जाता है। हस्ताक्षर करने वालो में से कुछ प्रसिद्ध पुरुषो के नाम भी उसके नीचे दिये गये हैं।

> बहुसम्मानास्पद भारतवर्षीय व्यवस्थापक-सभा की सेवा में नीचे हस्ताक्षर करने वाले बङ्गाली हिन्दुओ का विनीत निवेदन यह है —

'१। बहुत दिनो की सामाजिक-प्रथा के द्वारा हिन्दू समाज में विधवाविवाह निषिद्ध समझा जाने लगा है।

२। हम आवेदनपत्र भेजने वालो का मत और दृढ विश्वास यह है कि यह विधवाविवाह न होने की रीति अत्यन्त निष्ठुर और अस्वाभाविक है। समाजनीति का सामञ्जस्य बनाये रखने में यह एक प्रबल विघ्न है और समाज के लिए अन्य कई कारणो से इसका फल विषम विषमय हो रहा है।

३। बहुत ही बचपन में व्याह कर देने की रीति प्रचलित होने के कारण अकसर ऐसी बालिकायें भी विधवा हो जाती हैं जो न चल फिर सकती हैं और न बातचीत कर सकती हैं। इससे विधवा के लिए उसका जीवन विशेष कष्टदायक होता है।

४। हम प्रार्थना करने वालो का मत और दृढ विश्वास यह है कि यह विधवाविवाह के निषेध की चाल हिन्दू-शास्त्र या हिन्दू-व्यवस्था के द्वारा अनुमोदित नहीं है।

५। प्रार्थना करने वाले और अन्य बहुत से हिन्दू विधवाविवाह को धर्म्मविरुद्ध नहीं समझते, और सामाजिक आचार व्यवहार या

हिन्दू-धर्म की भ्रमपूर्ण व्याख्या के कारण यदि किसी प्रकार की आपत्ति हो तो वे बिना किसी बाधा के उसकी उपेक्षा करने के लिए तैयार हैं।

६। ईस्ट इण्डिया कम्पनी और माननीया महारानी के द्वारा स्थापित विचारालयों में इस समय हिन्दुओं के दायभाग की व्याख्या और मीमांसा हुआ करती है। उसके अनुसार ऐसा विधवाविवाह असिद्ध हो सकता है और ऐसे विवाह से उत्पन्न बच्चे अपनी पैतृक-सम्पत्ति का हिस्सा पाने के अधिकारी नहीं समझे जा सकते हैं।

७। जो हिन्दुओं की धर्म्म-बुद्धि इस प्रकार के विधवाविवाह का सम्पूर्ण अनुमोदन करती है और जो लोग धर्म्म और सामाजिक संस्कार से उत्पन्न बाधाओं की उपेक्षा करके इस प्रकार का विधवा-विवाह करने के लिए सम्मत हैं उनके विधवाविवाह में आईन की पूर्वोक्त व्याख्या बाधा डाल रही है।

८। प्रार्थना करने वालों की समझ में यह आता है कि शास्त्र का उलटा अर्थ करने के कारण जो सामाजिक बाधा बड़े भारी रूप में आगे खड़ी है उसे दूर करना व्यवस्थापक-सभा का कर्त्तव्य है।

९। विधवाविवाह में जो यह कानूनी बाधा है उसे दूर करना बहुत से निष्ठावान् और विश्वासी हिन्दुओं की इच्छा और भाव के द्वारा पूर्ण-रूप से अनुमोदित है। और, जो लोग इस कार्य्य को शास्त्रविरुद्ध समझते हैं और इस कारण विधवाविवाह से जिनके प्राचीन संस्कारों में धक्का लग सकता है अथवा जो लोग सामाजिक सुविधा के लिए विधवाविवाह का प्रतिवाद करते हैं, ऐसे लोगों का विधवाविवाह प्रचलित होने से किसी प्रकार का अशुभ नहीं हो सकता।

१०। पृथ्वी पर और कहीं अन्य किसी जाति में विधवाविवाह इस प्रकार के आईन के द्वारा निषिद्ध नहीं है और यह कार्य्य मनुष्यों की साधारण प्रकृति के विरुद्ध भी नहीं जान पड़ता।

११। इन सब कारणों की मौजूदगी में हम आवेदनकारियों की प्रार्थना यह है कि माननीय व्यवस्थापक-सभा शीघ्र ही इस विधवा-विवाह का वैध होना स्वीकार करके निम्नलिखितरूप से एक व्यवस्था बना कर प्रचारित कर कि हिन्दू-विधवा के विवाह की सब बाधायें दूर हो जायँ और विधवाविवाह से उत्पन्न बच्चे वैध-सन्तान माने जायँ।

जयकृष्ण मुखोपाध्याय (उत्तरपाड़ा)	ईश्वरचन्द्र गुप्त (प्रभाकर)
तारानाथ तर्कवाचस्पति	द्वारकानाथ भट्टाचार्य (रायबहादुर)
प्रसन्नकुमार सर्वाधिकारी	तिलकचन्द्र तर्कालङ्कार
श्रीनाथदास	नीलकमल वन्द्यापाध्याय
विमलाचरण दे	राजकृष्ण वन्द्योपाध्याय
हरिश्चन्द्र तर्कालङ्कार	काशीनाथदत्त (हाटखोला)
क्षेत्रमोहन चट्टोपाध्याय	नीलमणि मित्र (इंजिनियर)
देवेन्द्रनाथ ठाकुर (पाथुरिया घाटा)	द्वारकानाथ मित्र (जज)
कालीकुमार मल्लिकराय	देवेन्द्रनाथ ठाकुर (जोड़ासांको)
दक्षिणारञ्जन मुखोपाध्याय	हरचन्द्र घोष (जज)
कालीकृष्णदत्त (निर्माधाई)	सोमनाथ मुखोपा० (स० का०)
अक्षयकुमारदत्त (तत्त्ववोधिनी)	जगन्मोहन शर्म्मा (तर्कालङ्कार)
कैलासचन्द्र मुखोपा० (रायबहादुर)	गिरिशचन्द्र विद्यारत्न (स० का०)
नवीनकृष्ण मुखो० (तत्त्ववोधिनी)	श्यामाचरण वसु (सुकिया स्ट्रीट)
हरिश्चन्द्र शर्म्मा (डाक्टर)	कृष्णचन्द्रराय (हिन्दू स्कूल)
राजेन्द्रनाथ मित्र (रायवहादुर)	रामगोपाल घोष
मुरलीधर सेन (कलूटोला)	ईश्वरचन्द्र घोषाल (हे०, मा०)

माधवचन्द्र तर्कसिद्धान्त	श्यामाचरण लाहा
श्रीशचन्द्र विद्यानिधि	जयगोविन्द लाहा
अन्नदाप्रसाद वन्द्यो० (भवानीपुर)	गौरदास बसाक
रामरत्न विद्यालङ्कार	गोविन्दचन्द्र तर्कालङ्कार
त्रैलोक्यनाथ विद्याभूषण	व्रजमोहन विद्यावागीश
रामचन्द्र विद्यावागीश	प्रियनाथ सिद्धान्तपञ्चानन
ईश्वरचन्द्र शर्म्मा (विद्यासागर)	राममाणिक्य तर्कालङ्कार
दुर्गादास चूड़ामणि	राजनारायण वसु (देवघर)
केशवचन्द्र न्यायरत्न	ईश्वरचन्द्र मित्र (हे० मा०)
राजाराम न्यायरत्न	डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार
हीरालाल शील और उनके भाई	राधाचरण विद्यारत्न
	ईश्वरचन्द्र न्यायरत्न
कन्हाईलाल दे (रायबहादुर)	दिगम्बर न्यायवागीश
भोलानाथ चन्द्र	सीतानाथ सिद्धान्त
प्रेमचांद बडाल (रायबहादुर)	रामशङ्कर वाचस्पति
दुर्गाचरण लाहा (महाराज)	गिरीशचन्द्र चूड़ामणि
तारिणीचरण चट्टोपाध्याय	गणेशचन्द्र विद्यारत्न
श्रीशचन्द्र विद्यारत्न	श्यामाचरण मुखोपाध्याय (उत्तरपाडा स्कूल)
जयगोपाल सिद्धान्तशेखर	
श्यामाचरण दे	गिरीशचन्द्र मित्र (झामापुकुर)

इत्यादि इत्यादि।

इस आवेदनपत्र पर एक हजार से ऊपर आदमियों के हस्ताक्षर थे। उनमें से कुछ प्रसिद्ध प्रतिष्ठित पुरुषों के नाम यहाँ पर दिये गये हैं। यह प्रार्थनापत्र और इसके साथ विधवाविवाह को वैध सिद्ध करने वाला एक मसविदा भारतवर्षीय व्यवस्थापक-सभा में भेजा गया था।

इस तरह के और भी कई आवेदनपत्र अलग अलग भेजे गये थे। हमने जिस प्रार्थनापत्र का अनुवाद यहाँ पर उद्धृत किया है उसमें सब से पहले उत्तरपाडा के सुप्रसिद्ध जमींदार बाबू जयकृष्ण मुखोपाध्याय ने दस्तखत किये थे। प्रसन्नकुमार ठाकुर, प्यारीचरण सरकार, कालीकृष्ण मित्र, राजा प्रतापचन्द्र और राजा ईश्वरचन्द्र आदि बहुत से प्रतिष्ठित महाशयों ने बहुत से हस्ताक्षर करा कर और एक प्रार्थनापत्र भेजा था। इसके सिवा बर्दवान के महाराज महताबचन्द बहादुर ने अलग एक आवेदनपत्र भेजा था। नदिया के महाराज श्रीशचन्द्र, ढाके के जमींदार और अन्यान्य धनी हिन्दुओ ने तथा मयमनसिंह के जमींदारो मे से कई एक ने अलग अलग आवेदनपत्र भेजे थे।

महाराज महताबचन्द बहादुर की सहायता और सहानुभूति का उल्लेख करके विद्यासागर महाशय ने भारतवर्षीय व्यवस्थापक-सभा के सुयोग्य मेम्बर माननीय जे० पी० ग्रान्ट साहब को जो पत्र लिखा था उसका अधिकांश यहाँ पर उद्धृत किया जाता है —

THE HON'BLE J P GRANT

MY DEAR SIR,

You will no doubt be glad to hear that His Highness the Maharaja of Burdwan has promised his assistance to the furtherance of the sacred cause of the marriage of Hindu Widows * * * It is really a matter for congratulation that the first man of Bengal is going to take up the cause * * He entertains such enlightened views that we have every reason to hope for substantial assistance from him The Maharaja is not a hasty man, nor does he consent to be led by others, but always thinks for himself and forms his opinions of things after mature deliberation Now that His Highness is convinced of the goodness of the cause, I have no boubt that he will be its staunch friend and champion

(Sd) ISHVAR CHANDRA SHARMA

अर्थात्—"प्रिय महाशय, आप यह सुन कर अवश्य सुखी होंगे कि वर्द्धवान के राजा महाराज महताबचन्द बहादुर भी विधवाविवाह के पक्ष का समर्थन करने के लिए अग्रसर हुए हैं। + + + यह सच-मुच ही बड़े आनन्द की बात है कि बङ्गाल के एक सर्वप्रधान पुरुष इस कार्य के लिए अग्रसर हुए हैं। + + + महाराज की रुचि परिमार्जित है, इसलिए इस काम में उनसे यथेष्ट सहायता मिलेगी। महाराज चचल-प्रकृति के आदमी नहीं हैं। वह दूसरे की राय पर चलने वाले भी नहीं जान पड़ते। वह स्वतन्त्रता के साथ अपने लिए सोचते हैं। क्या कर्त्तव्य है और क्या नहीं कर्त्तव्य है, इसका निश्चय वह स्वय करते हैं। इस समय महाराज ने विधवाविवाह की आवश्यकता को समझा है। मुझे दृढ विश्वास है कि वह इस कार्य के चिर-सुहृद् और विशेष पक्षपाती होंगे"।

पचीस हजार के लगभग लोगों ने मिल कर उल्लिखित आईन बनाने की प्रार्थना जता कर आवेदन किया था। बङ्गाल में भारी आन्दोलन ने जोर पकड़ा। पहले लिखा जाचुका है कि बङ्गाल भर में बालक-बूढ़े-जवान सब के मुख से विधवाविवाह और विद्यासागर की चर्चा सुन पड़ती थी। ऐसे आदमी, अखबार या पुस्तक को लोग बड़े आग्रह की दृष्टि से देखते थे जो विधवाविवाह की खबर सुनाता था। बङ्गाल के विख्यात गायक दासूराय ने विधवाविवाह के सम्बन्ध में कुछ गान भी बनाये थे। विधवा-विवाह का एक नाटक भी कलकत्ते में खेला गया था। शान्तिपुर के जुलाहों ने बहुमूल्य कपड़ों के किनारों में विधवाविवाह के गान बुन कर खूब रुपया कमाया था। विद्यासागर के चलाये विधवाविवाह के गीत ऐसे बहुव्यापी होगये थे कि अपढ़ लोग भी सर्वत्र उन्हें गाते देख पड़ते थे।

विधवाविवाह का नियम बनने के समय भी खूब आन्दोलन हुआ

था। आईन का मसविदा जिस दिन व्यवस्थापक-सभा मे सुना गया उस दिन आईन का प्रस्ताव करने वाले माननीय ग्रान्ट साहब ने जो युक्ति दिखला कर उसे उपस्थित किया था उसका शेष अंश यहाँ पर उद्धृत किया जाता है—

"The Bill now presented will wipe out that blot in the Municipal Law of India At the same time, it will leave all those Hindus, who do not agree in the opinion of the petitioners, precisely as they are now It does not pretend to say what is the right interpretation of the directions for conduct in respect of marriage in the text-books, or which of the conflicting authorities ought to be followed by a Hindu It will interfere with the tenets of no human being, but it will prevent the tenets of one set of men from inflicting misery and vice upon the families of their neighbours who are of a different and more humane persuasion"

अर्थात् इस आईन के द्वारा भारतवर्ष के हिन्दुओं के स्वाधीन-भाव से सामाजिक जीवन बिताने का विघ्न दूर हो जायगा। किन्तु जो लोग ऐसे आईन की आवश्यकता नहीं समझते वे पहले की तरह अपनी इच्छा के अनुसार काम कर सकेंगे। विवाह के सम्बन्ध मे शास्त्रीय विधि के अनुसार कौन न्याय है, कौन अन्याय है, अथवा हिन्दुओं को ऐसे मतविरोध की जगह क्या ग्रहण करना चाहिए, इस बारे में यह आईन कुछ नहीं कहता। इसके द्वारा किसी व्यक्ति के कामो में बाधा नहीं होगी। केवल जो लोग कुछ भिन्न प्रकार की रीतिनीति और उदार सामाजिक भाव के अनुवर्त्ती हैं उनके सामाजिक जीवन बिताने के मार्ग मे जो कुछ बाधा थी उसे दूर करना ही इस कानून का उद्देश है।

ग्रान्ट साहब की वक्तृता के अन्य स्थान का कुछ अंश यह है—

"After his honourable and learned friend to his right (Sir James Colville) had left Calcutta, Pandit Iswar Chandra

Vidyasagar, the learned and eminent Principal of the Sanskrit College, who was the chief mover in the agitation, out of which the Bill had arisen, and was one of the subscribers to the Petition, which had been presented to the Council a few weeks ago, praying for the measure, called upon him and consulted him on the propriety of asking the Council for such a law as the Bill now brought in"

अर्थात् उनके दक्षिणपार्श्वस्थ माननीय मित्र सर जेम्स कालविली के यहाँ न रहने के कारण इस विधवाविवाह आईन के प्रार्थी और प्रार्थनापत्र पर हस्ताक्षर करने वालो मे प्रधानतम, सस्कृतकालेज के सुयोग्य और सुपरिचित अध्यक्ष पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने खुद मुझ से मिल कर इस आईन के औचित्य या अनौचित्य पर विशेषरूप से विचार करने के लिए अनुरोध किया है।

ग्रान्ट साहब अपनी वक्तृता मे और एक जगह कहते हैं—

"Between three and four hundred years ago, in Bengal, Raghunandan, a very learned and celebrated Pandit, who had written a Digest of the Hindu Law, which formed, he believed, in Bengal, a text-book to this day, made a resolute attempt of this kind He had at one time firmly resolved that his own widowed daughter re-marry, but the attempt failed Raja Rajbullab, of Dacca, about the middle of the last century, made a similar attempt, which seems to have been almost successful He obtained *Vyavastha* or law opinion of a large body of learned Pandits, but finally his attempt also failed About the same time, the Chief of Kotah made a similar attempt, with no better success Sir Thomas Strange, in his work on Hindu Law, alludes to an instance in which a large assembly of Pandits at Poona actually gave permission *to the widow daughter of a Hindu of high caste to re marry*, and the permission was acted upon Several similar attempts by Hindus to alter this inveterate custom had been made of late years He had observed, amongst the papers of the Law

Commission, a paper written by a learned Brahmin of Madras, nearly twenty years ago, praying that a Law to the effect of the present Bill might be passed He had already mentioned the essay of a Maratha Brahmin of Nagpur, published about the same time In Calcutta, there was a great agitation on the subject about ten years ago, which was repeated two years ago It was in consequence of the failure of this last attempt that Iswar Chandra had taken up the subject, and the petition lately presented was the result"

अर्थात् तीन चार सौ वर्ष के लगभग हुए, तब हिन्दू-ला के संग्रह-कार सुप्रसिद्ध रघुनन्दन भट्टाचार्य्य ने अपनी विधवा कन्या का पुन-र्विवाह करने के लिए प्राणपण से प्रयत्न किया था, पर वे उसमें कृत-कार्य्य नहीं हो सके। ढाके के राजा राजवल्लभ ने गत शताब्दी के मध्य भाग मे विधवाविवाह मे बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त कर ली थी। उन्होने भिन्न भिन्न स्थानो के बहुत से पण्डितो से व्यवस्था भी मँगा ली थी। किन्तु अन्त को उनका मनोरथ पूरा नहीं हुआ। कोटा के राजा ने भी विधवाविवाह चलाने का उद्योग किया था, किन्तु अन्त को वह भी इस काम के लिए सुभीता नहीं पा सके। सर टामस स्ट्रेंज ने हिन्दू-दायभाग के विषय का उल्लेख करते समय कहा है कि पूने के एक उच्चजाति के प्रतिष्ठित पुरुष की विधवा कन्या के विवाह मे बहुत से पण्डितो ने व्यवस्था दी थी और उसी के अनुसार उसका पुन-र्विवाह हुआ था। हिन्दू लोग इस कठिन सामाजिक प्रथा को बदलने के लिए इधर बहुत दिनो से चेष्टा करते आते हैं। पूर्वोक्त साहब ने नागपुर के मराठा ब्राह्मण के प्रबन्ध की बात का उल्लेख पहले ही किया है। उन्होने आईन-सम्बन्धी कमीशन के कागज पत्रों में देखा है कि मदरास के एक सुपण्डित ब्राह्मण ने बीस बरस पहले विधवाविवाह के लिए एक ऐसा ही कानून बनाने की प्रार्थना की थी।

विधवाविवाह का क़ानून पास होने के समय भारतगवर्नमेन्ट की व्यवस्थापक-सभा में जो आलोचना हुई थी उसका कोई कोई स्थान पढ़ने से सहृदय पुरुष विधवा-जीवन के दारुण दुःख पर आँसू बहाये विना नहीं रह सकता ? यथा—

The paper from which he was quoting proceeded to say — "All amusements are strictly prohibited to her She is not to be present where there is singing or dancing, or at any family rejoicing, she is not even to witness any festive procession "

अर्थात् जिस प्रबन्ध से उन्होंने कोई कोई स्थान उद्धृत किया है उसी में एक जगह पर लिखा है कि विधवा के लिए सब तरह की ख़ुशी निषिद्ध है। वह नाच देखने या गाना सुनने नहीं जासकती। वह किसी प्रकार के परिवार के शुभ काम में शरीक नहीं हो सकती। किसी उत्सव में बहुत लोगों के जमा होने का आनन्द-दृश्य देखना भी उसके लिए मना है।

इसके बाद और एक स्थान पर ग्रान्ट साहब कहते हैं —

"If he knew certainly that but one little girl would be saved from the horrors of Brahmacharya by the passing of this Act, he would pass it for her sake If he believed, as firmly as he believed the contrary, that the Act would be wholly a dead letter, he would pass it for the sake of the English name"

अर्थात् यदि वह समझ सकें कि इस दुरूह ब्रह्मचर्य के पालन में असमर्थ एक बालिका भी ब्रह्मचर्य्य के बोझे से बच जायगी तो केवल उसी के लिए यह आईन पास करना उचित होगा। यदि उनको यह विश्वास होता कि यह आईन पास होने से किसी काम नहीं आवेगा, योंही पड़ा रहेगा, तो भी केवल अँगरेज नाम के गौरव की रक्षा के लिए यह आईन पास होना उचित है।

बहुत से लोगो के यत्न और चेष्टा से सन् १८५६ की २६ जूलाई को भारतगवर्नमेन्ट की व्यवस्थापक-सभा मे विधवाविवाह का आईन पास हो गया। बङ्गाल गवर्नमेन्ट के गजट से उस आईन का कुछ अंश यहाँ पर उद्धृत किया जाता है —

"Act XV of 1856, dated 26th July, 1856 I—No marriage contracted between Hindoos shall be invalid, and the issue of no such marriage shall be illegitimate by the reason of the woman having been previously married or betrothed to another person, who was dead at the time of such marriage, any custom and any interpretation of Hindoo Law to the contrary notwithstanding"

(१ धारा। स्त्री के पहले व्याह होने के कारण, या विवाह होने के समय जो मर गया है ऐसे अन्य व्यक्ति के साथ पहले वाग्दान होने के कारण, हिन्दुओ में कोई विवाह असिद्ध न समझा जायगा। और ऐसे विवाह होने पर जो सन्तान होगी वह अवैध सन्तान न समझी जायगी। किसी रीति और शास्त्र का चाहे जैसा अर्थ किया जाय वह इस विवाह के विरुद्ध, होने पर भी, न होगा।)

"VI Whatever words spoken, ceremonies performed or engagement smade on the marriage of a Hindoo female, who has not been previously married, are sufficient to constitute a valid marriage, shall have the same effect, if spoken, performed or made on the marriage of a Hindoo widow, and no marriage shall be declared invalid on the ground that such words, ceremonies or engagements are inapplicable to the case of a widow"—*Government Gazette, 1856*

(६ धारा। जिस हिन्दू स्त्री का पहले विवाह नहीं हुआ उसके विवाह के समय जिन बातों का कहना, जिन कामों का करना, जिन नियमो का होना उस विवाह को सिद्ध करता है वे ही सब बातें

हिन्दू-विधवा के विवाह के समय कही जाने, वे ही काम किये जाने और वे ही नियम होने से उनका वही फल होगा। और वे बाते, वे काम या वे नियम विधवा के लिए नहीं काम मे लाये जा सकते, यह कहने से कोई विवाह असिद्ध नहीं किया जा सकेगा।)

राजा राधाकान्त देव आदि हिन्दुओ ने इस विधवाविवाह-विधि के मंज़ूर होने के विरुद्ध एक अलग आवेदन-पत्र भेजा था। इस आवेदन-पत्र मे कलकत्ते के प्रतिष्ठित पुरुषो के उतने हस्ताक्षर न थे। इस पर अन्यान्य स्थानो के कोई ३०००० आदमियो के हस्ताक्षर थे। किन्तु व्यवस्थापक-सभा ने इस आवेदन-पत्र को युक्तियो को उतना प्रवल नहीं समझा। केवल यही नहीं, उसका कोई कोई अंश बहुत ही आमोदजनक और हास्योद्दीपक समझा गया। ग्रान्ट साहब ने कहा था कि "विरोधियो के ३०००० हस्ताक्षरो की तुलना मे विधवा-विवाह का पक्षसमर्थन करने वालों के थोडे हस्ताक्षर होने पर इन्हीं का मूल्य अधिक है। ऐसे संस्कार के मार्ग में साहस करके अग्रसर होना कैसा कठिन काम है, इस पर विचार करने से हर एक आदमी मेरे कहने का तात्पर्य समझ सकता है"। इधर वर्दवान के राजा महताबचन्द बहादुर और नदिया-समाज के अधिपति महाराजा श्रीशचन्द्र की सहायता से विद्यासागर का पक्ष प्रवल और प्रतिष्ठित हो गया था। कानूनन विधवाविवाह सिद्ध हो जाने पर इस आन्दोलन ने देश में और भी जोर पकडा। व्यवस्थापक-सभा के सदस्य माननीय जे पी ग्रान्ट महोदय के विशेष आग्रह और परिश्रम से विधवाविवाह का आईन पास हुआ था। विधवाविवाह के पक्षपाती दल ने मिल कर ग्रान्ट साहब को कृतज्ञतासूचक एक अभिनन्दनपत्र दिया था। उस अभिनन्दनपत्र में कृष्णनगर के राजा श्रीशचन्द्र, राजा प्रतापचन्द्र, बाबू रामगोपाल घोष, पण्डित तारानाथ तर्कवाचस्पति आदि अनेक प्रतिष्ठित लोगो ने हस्ता-

क्षर किये थे। समाजपति महाराज श्रीशचन्द्र ने अपने हाथ से वह अभिनन्दनपत्र ग्रान्ट साहब को दिया था।

विधवाविवाह के मार्ग में दायभाग की जो भारी बाधा थी वह मिट गई। अब विद्यासागर महाशय विधवाविवाह के उद्योग में लग गये। जिस समय वह इस कार्य में लगे हुए थे उस समय उनके पूज-नीय अध्यापक प्रेमचन्द्र तर्कवागीश ने विद्यासागर से मिल कर जो अच्छी सलाह दी थी वह नीचे उद्धृत की जाती है।

पहले विधवाविवाह के अनुष्ठान के समय कुछ दिन ईश्वरचन्द्र विद्यासागर उसी में लगे रहते थे। एक दिन तर्कवागीश महाशय ने विद्यासागर से मिल कर कहा—"ईश्वर, यह खबर बहुत गर्म है कि विधवा के विवाह की तैयारी हो रही है। मालूम नहीं, क्या क्या हो चुका है। अब पूछना यह है कि देश के विज्ञ और वृद्ध लोगों को तुम अपने मत से सहमत बना सके हो या नहीं"? इसके उत्तर में विद्यासागर ने कहा—"आप शायद विज्ञ और वृद्ध कह कर राजा राधाकान्त देव आदि की ओर इशारा कर रहे हैं। मैंने इन लोगों की बड़ी उपासना की है। मैंने सबको हिला-डुला कर देखा है। मुझे ये सब वीर्य-हीन और धर्म का ढोंग रचनेवाले देख पड़े। जिन्होंने पहले मुक्त-कण्ठ होकर सहानुभूति दिखलाई थी, इस समय, उनके आचरण देख कर मेरे विस्मय का ठिकाना नहीं है। मैं अब बहुत आगे बढ़ आया हूँ। मुझे लौटाने की बात न कहिएगा"। तर्क-वागीश ने फिर कहा—"ईश्वर, बचपन से तुम्हारी प्रकृति और अदम्य मानसिक शक्ति की ओर मेरा बराबर ध्यान रहा है। मेरा यह इरादा कभी नहीं है कि मैं तुमको इधर से लौटाऊँ। तुम जिस काम में लोगों की भलाई समझते हो और जिसके लिए दिन-रात सोचा करते हो वह कार्य आरम्भ में ही नष्ट न हो जाय, उसकी जड़ मजबूत हो, यही मेरा

उद्देश्य है। केवल कलकत्ते के कुछ वृद्धों की ही बात मैं नहीं कहता। उत्तर-पश्चिम प्रदेश, बम्बई, मदरास आदि स्थानो में, जहाँ हिन्दू-धर्म प्रचलित है, कोशिशें करनी होगी। जो लोग समझते हैं कि इस कार्य के द्वारा धर्म का नाश और लोक-मर्यादा का उल्लङ्घन किया जाता है उनको अच्छी तरह समझाना होगा। विधवा का लडका पैतृक-सम्पत्ति का अधिकारी होगा, यह कानून ही काफी है। जब तुम राजपुरुषों की सहायता से यह आईन पास करा सके हो तब पूर्वोक्त स्थानो के समाजपतियो की सहायता और सहानुभूति पाना मुझे कुछ कठिन नहीं मालूम होता"।

इस अश को पढने से यह स्पष्ट मालूम होता है कि राजा राधाकान्त देव के परम पूजनीय तर्क-वागीश महाशय भी विधवाविवाह का शास्त्र-सिद्ध होना स्वीकार करते थे और उसके चलन के पक्षपाती थे। उन्होंने ईश्वरचन्द्र को इस उद्योग के लिए उत्साहित किया था कि केवल बङ्गाल में ही नहीं, सारे भारत मे विधवाविवाह प्रचलित हो जाय।

विद्यासागर गरीब ब्राह्मण के लडके थे। पिता ने मामूली लिख-पढ कर कष्ट के साथ गुजर करते हुए ईश्वरचन्द्र को लिखाया-पढाया। ईश्वरचन्द्र के बाबा और परबाबा दोनो ही प्रसिद्ध अध्यापक और विद्वान् थे। ईश्वरचन्द्र बङ्गाल के सस्कृत-व्यवसायी अध्यापक-वश में पैदा हुए थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऋषिवश में, वेद के पढने-वाले पूजनीय गुरुवश में या उसके समान साधु-सज्जन-वश मे जन्म लेना परम गौरव की बात और बडे पुण्य का फल है। किन्तु खेद के साथ कहना पडता है कि बङ्गाल के वर्त्तमान समय के ब्राह्मण-पण्डितों में वैसा तप का प्रभाव नहीं देख पडता। उनके कार्य और आचार और ही तरह के हो गये हैं। पूर्व-पुरुषो का धार्मिक वैभव अब उनके



श्रीश्रीशचन्द्रशर्मण ।

परिचित अपरिचित, उच्च नीच, सब एक से एक भिडे हुए खडे थे। विद्यासागर को पहले ही यह खयाल था कि बडी भीड होगी और प्रबन्ध न किया जायगा तो गडबड हो जायगी, इस लिए पहले ही से पुलीस के पहरे का पूरा प्रबन्ध हो गया था। सुकियास्ट्रीट मे और वर जिस राह से आने वाला था उसमे दो दो हाथ के फासले पर एक एक सिपाही तैनात था। जब बरात सहित वर विवाह-भवन में आ रहा था उस समय उसे देखने के लिए राह में इतनी भीड भिड गई कि वर की पालकी का आगे बढना कठिन हो गया। वर एक नई बात का पथप्रदर्शक होकर आया था। इतनी भीड देख कर उसका घबराना स्वाभाविक ही था। इसलिए रामगोपाल घोष, हरचन्द्र घोष, पण्डित शम्भुनाथ, द्वारकानाथ मित्र आदि विद्यासागर की मित्र-मण्डली वर की पालकी के दाहिने और बायें उसे उत्साहित और प्रसन्न करती जाती थी। ऐसे समारोह और भीड के भीतर होकर बरात के साथ वर विवाह-भवन मे पहुँचा। विवाह की सभा मे संस्कृत-कालेज के अध्यापक सुप्रसिद्ध जयनारायण तर्कपञ्चानन, भरतचन्द्र शिरोमणि, प्रेमचन्द्र तर्कवागीश, तारानाथ तर्कवाचस्पति और अनेक अन्यान्य पाठशालाओं के अध्यापक-पण्डित उपस्थित थे। विवाहसभा, विवाह का निमन्त्रण और तैयारी का वर्णन पुरानी तत्त्वबोधिनी पत्रिका से यहाँ पर उद्धृत किया जाता है—

विधवा-विवाह।

हम बडी प्रसन्नता के साथ सूचित करते हैं कि हमारा चिरवाञ्छित विधवाविवाह अब समाज में प्रचलित हो चला। गत २३ अगहन रविवार को देशविख्यात श्रीयुत रामधन तर्कवागीश महाशय के पुत्र श्रीशचन्द्र विद्यारत्न भट्टाचार्य्य के साथ पलासडांगा गाँव के रहने वाले भद्रवंशोद्भव ब्रह्मानन्द मुखोपाध्याय की दस बरस की विधवा

कन्या का विवाह हो गया। यह कन्या जब चार बरस की थी तब इसका विवाह नदिया के राजा के गुरुकुल मे उत्पन्न रुक्मिणीपति भट्टाचार्य्य के पुत्र हरमोहन भट्टाचार्य्य के साथ हुआ था। विवाह के दो वर्ष बाद, अर्थात् केवल ६ वर्ष की अवस्था मे, यह कन्या विधवा होगई थी। यह कन्या विधवा होने पर भी पति के घर मे रहती थी। कन्या की माता से उसकी असीम वैधव्ययन्त्रणा नहीं देखी गई। उसने अपने आत्मीय लोगो की सम्मति के अनुसार अपनी कन्या का फिर विवाह करने का उद्योग किया। इस कन्या के पिता के मर जाने पर माता लक्ष्मीमणि देवी ने हिन्दू शास्त्र और देशप्रचलित प्रथा के अनुसार उक्त वर को कन्या का पुनर्दान किया है। ब्राह्मण वर्ण के विवाह के अवसर पर इस देश मे वृद्धिश्राद्ध और कुशकण्डिका आदि जो जो कृत्य होते हैं वे सब विधिपूर्वक किये गये। इस विवाह मे ८०० के लगभग निमन्त्रणपत्र छपे थे। इनके सिवा अध्यापक-मण्डली के लिए, संस्कृत कविता मे, अलग निमन्त्रणपत्र छपे थे। पाठको के जानने के लिए दोनो तरह के निमन्त्रणपत्रों की नक़ल नीचे दी जाती है।

(१)

श्रीलक्ष्मीमणिदेव्या विनय निवेदनम्।

२३ अगहन रविवार को मेरी विधवा कन्या का शुभ विवाह होगा। महाशय अनुग्रह करके कलकत्ते के अन्तर्गत सुकिया स्ट्रीट के १२ न० के मकान में अपने शुभागमन से इस शुभ कार्य्य को सम्पन्न करें। पत्र द्वारा निमन्त्रण दिया जाता है। इति। २१ अगहन, शकाब्दा १७७८।

(२)

अन्त्ये भौमे निशान्ते विलसति नितरा पद्मिनीप्राणकान्ते।
स्वाहाकान्ते क्षणागे दिनकिरणदिने शास्त्रमार्गानुसारी॥

भूयो भावीविधानात् परिणयनविधिर्भर्तृहीनात्मजाया ।
पूर्वो वर्य्यार्य्यविज्ञैरिह सदसि गतैर्म्मुक्तपापारतन्त्र्यात् ॥

इसी के दूसरे दिन पानीहाटीग्रामनिवासी प्रसिद्ध कुलीन कायस्थ श्रीयुत बाबू हरकाली घोष के भाई कृष्णकाली घोष के पुत्र मधुसूदन घोष के साथ कलकत्तानिवासी निमाईचरण मित्र के पोते श्रीयुत बाबू ईशानचन्द्र मित्र की बारह बरस की विधवा कन्या का विवाह हुआ। इस कन्या का दान उसके पिता ने ही किया। यह विवाह भी कायस्थों के कुलाचार के अनुसार ही हुआ।

उल्लिखित महान् कार्य्य के अवसर पर बड़ा समारोह हुआ था। विवाह की सभा मे प्राय कलकत्ते के सभी प्रधान प्रधान पुरुष उपस्थित हुए थे। अनेक भले आदमियो ने मन-वाणी-काया से परिश्रम करके इस कार्य मे सहायता की थी। इस अवसर पर इतने लोगो का जमाव हुआ था कि सब लोगो को बैठने के लिए अच्छी तरह स्थान नहीं मिला और विवाहभवन के पास की सड़को मे गाड़ियाँ ही गाड़ियाँ देख पड़ती थीं। विशेष बात यह थी कि अनेक शास्त्रज्ञ पण्डित भी सभा मे उपस्थित थे। यह भारी काम होते देख कर बगाल में भारी आन्दोलन मचा हुआ है। कोई कोई भारी आनन्द से पुलकित होकर प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं। और कोई कोई शोक के मारे लम्बी साँसें लेते हैं। कोई कोई इस घटना को अपने देश के चिर-कल्याण का कारण समझ कर इसके उद्योगियो को हार्दिक साधुवाद देते हैं और कोई कोई इसे भारत का कलङ्क और हिन्दूधर्म के मिटने का कारण समझ कर इसके उद्योगी उत्साही पुरुषो को तरह तरह की गालियाँ देते हैं। जिन ज्ञानी देशहितैषी बुद्धिमान् लोगो का लक्ष्य बहुत दिनो से इस ओर था, जो यह शुभ दिन देखने के लिए दिन गिन रहे थे, जो लोग यह आनन्दमय सुख का दिन पाने के लिए आशा-लता

की जड में यत्न का जल सींच रहे थे, जिन लोगो ने इस विधवा-विवाहरूपी पुण्य-वृक्ष को जन्मभूमि मे रोपने के लिए अनेक प्रकार से शारीरिक और मानसिक परिश्रम करते हुए अनेक स्वदेशी बन्धुबान्धवो के हृदय-क्षेत्र मे इस कार्य का बीज बोया था, उनको आज बडा ही हर्ष है । यह चिरवाञ्छित सुखमय शुभ दिन उपस्थित होने से वे लोग खुशी से फूले नहीं समाते । इस कल्याणकर पुण्य-वृक्ष को सफल देख कर आज वे अपने सारे परिश्रम और यत्न को सार्थक समझते हुए आनन्द के आंसू बहा रहे हैं । वे देख रहे हैं कि जगदीश्वर की अनुपम करुणा के प्रसाद से, भारतवर्ष से, क्रमश अज्ञान का अन्धकार दूर होता जाता है । ज्ञान के प्रकाश के प्रभाव से भारतवर्ष के अनेक सन्तान जननी जन्मभूमि का अधर्म-कण्टक निकालने के लिए अग्रसर देख पडते हैं । वे उसे पुण्यकर्मरूपी शोभनीय अलङ्कार से अलङ्कृत करने के लिए मन-वाणी-काया से यत्न कर रहे हैं । वे देख रहे हैं कि पाप के बोझ से दबी हुई भारतभूमि अनेक साधु पुरुषो के उद्योग से, इतने दिनो के बाद, उस पाप के बोझ से छुटकारा पा रही है, भुवन-प्रसिद्ध हिन्दू जाति का बहुत दिनो का कलङ्क दूर किया जा रहा है और-अवनत मस्तक हिन्दुस्तान फिर अपना महत्त्व प्रकाशित करता हुआ सिर ऊँचा कर रहा है । वे इन सब शुभ चिह्नो को देख कर हिन्दुस्तान की श्रीवृद्धि और हिन्दुओ की गौरव-वृद्धि की आशा से पुलकित हो रहे हैं । किन्तु जो ज्ञानहीन पाण्डित्याभिमानी लोग अपने सुदृढ कुसस्कार के कारण इस शुभकार्य को अकारण निन्दित कर्म समझ कर इसके सुसम्पन्न होने के मार्ग मे तरह तरह की बाधायें डालते हैं, धर्माधर्म का कुछ विचार न कर इस शुभदिन के आने की शङ्का से व्याकुल रहते हैं, इस शुभकार्य के उद्योगियो की कार्यवाही पर पानी फेरने के लिए मन-वाणी-काया से यत्न करते हैं, ज्ञान-दृष्टि

को बिलकुल बंद करके, बुद्धि, युक्ति और विचार को विदा करके, देश-प्रचलित व्यवहार को ही सर्वोपरि समझते हैं और उसके विरुद्ध कुछ होते देख कर कोलाहल मचाने लगते हैं, वे ही इस शुभ सङ्कल्प के सिद्ध होने से शोकसागर में गोते खा रहे हैं और इस सन्तापहारी शीतल धर्म-वृक्ष को सफल होते देख कर हताश और अचेत होकर अनर्थक हाहाकार कर रहे हैं। वे ही समझते हैं कि क्रमश कलियुग के प्रबल होने के कारण धर्म का प्रवाह एकदम बंद हो गया, शास्त्र का मान समाज से उठ गया, भारत में दिन दिन अधर्म का अधिकार अधिक होने लगा। वे कहते हैं कि आज हिन्दुओ का नाम लुप्त हो रहा है और भारत की भूमि अधर्म के बोझ से दबी जा रही है। वे इस प्रकार भ्रमूलक अमङ्गल की आशङ्का करके अपने भावी सौभाग्य की आशा को दिन दिन क्षीण बनाते जा रहे हैं। किन्तु इस विधवा-विवाह की प्रथा के जारी होने से भारत के सौभाग्य का सूर्य चौगुनी चमक से प्रकाशमान हुआ है और हिन्दू-जाति का गौरव बढ गया है। यदि इसी तरह क्रमश भारत की सब कुप्रथाये दूर कर दी जायँ, यहाँ सब सुरीतियाँ प्रचलित हो जायँ तो भारतभूमि फिर सर्वोत्तम धर्मक्षेत्र के नाम से परिचित हो सकती है और हिन्दू-जाति निष्कलङ्क व निष्पाप समझी जा सकती है। जो लोग विधवा-विवाह के जारी होने से मन ही मन उदास होकर देश के भाग्य की अकारण निन्दा करते हैं वे कुछ विचार कर देखे तो उनका वह विषाद दूर हो जाय और वे स्वदेश को सौभाग्यशाली समझे। इस देश में विधवा अनाथ बालिकाओं के पुनर्विवाह की चाल न होने से गर्भपात, स्त्रीहत्या, व्यभिचार आदि अनेक प्रकार के उत्कट पापो का मार्ग खुला हुआ था। अनेक पण्डितो ने बारम्बार अनेक प्रकार की युक्तियो से यह बात प्रमाणित कर दी है, और जिसमे जरा भी समझ है वह

अनायास ही उस बात की सचाई का अनुभव कर सकता है। विधवा-विवाह की प्रथा प्रचलित होने से उस पातक के घट जाने की बात निर्विवाद है। इसके लिए हिन्दू-धर्माभिमानी को उत्साह की जगह विषादवश होना उचित नहीं। हाँ, यदि ऐसा करने वाले लोग केवल अभिमान के वश होकर, यथार्थ धर्म पर ध्यान न देकर, बहुकाल से प्रचलित वंशपरम्परागत देशाचार के उच्छेद और अप्रचलित आधुनिक प्रथा का प्रचार देख कर दुःखित होते हैं तो कोई उपाय नहीं। किन्तु जो लोग मन ही मन बुद्धिमान् होने का अभिमान करते हैं, पण्डित कह कर अपना परिचय देते हैं, धर्मात्मा होने का दावा रखते हैं उन्हें ऐसे माङ्गलिक कार्य्यों में उत्साहित न होकर दुःखित होना कदापि उचित नहीं। बहुत दिनों के बाद शरीर का कोई पुराना रोग आराम हो जाय तो उसके लिए खेद करना जैसे असङ्गत होगा वैसे ही देश-प्रचलित किसी प्राचीन कुप्रथा का मूलोच्छेद देख कर अप्रसन्न होना भी नासमझी है। खैर, जब विरोधी लोगों का चित्त सावधान होगा, द्वेष की आग बुझ जायगी, अभिमान जाता रहेगा, तब वे आप ही देख पावेंगे कि इस देश में विधवा-विवाह जारी होने से बुराई नहीं, भलाई ही हुई है।

इस कार्य को जिन असाधारण पुरुषों ने महान् प्रयत्न करके सुसम्पन्न किया है, जिनके उत्साह से इस चिरवाञ्छित प्रथा का प्रचार हुआ है उनकी शक्ति और दृढ़ता की प्रशंसा करना तो मानो सूर्य्य को दीपक दिखाना है। इस काम में कई एक बुद्धिमान् विद्वान् पुरुषों की सहायता और सहानुभूति से सफलता प्राप्त हुई है। किन्तु उनमें महामान्य और सब के अगुआ श्रीयुत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाशय के नाम को इस देश का हर एक आदमी आदर के साथ स्मरण करता रहेगा। उनका नाम अपनी कीर्त्ति के साथ पृथ्वीतल

पर अमर बना रहेगा। इस काम के लिए उन्होंने अवर्णनीय परिश्रम और यत्न किया है। उनका असाधारण अध्यवसाय, अलौकिक सहनशीलता और प्रखर प्रतिभा ही इस महान् कार्य के सम्पादन का प्रधान कारण है। उन्होंने ही अपनी विशेष बुद्धि के बल से हिन्दुओं के सब धर्म्मशास्त्रों को जाच कर—छानबीन कर—यह निर्णय किया कि हिन्दू विधवा का विवाह धर्म्मविरुद्ध नहीं है। उन्होंने अपने विचारकौशल से सबको यह बात समझा दी। उन्हीं के प्रभाव से हिन्दू-शास्त्र का कलङ्क दूर हुआ, उन्हीं के प्रसाद से हिन्दू-विधवाओं को असह्य यन्त्रणा से छुटकारा मिला। इन्होंने इस शुभसङ्कल्प को सिद्ध करने में निन्दा, अपमान, उपहास और गालीगलौज की पर्वाह नहीं की। उन्होंने जब पहले विधवा-विवाह-सम्बन्धी पुस्तक प्रचारित की तब उनके प्रतिपक्षियों ने गालियाँ सुनाईं, निन्दा की और अनेक महाशय शत्रु बन गये। किन्तु वह हिमाचल के समान अचल अटल बने रहे। वज्र जैसे पहाड पर गिर कर आपही तेजोहीन हो जाता है वैसे ही शत्रुओं और विरोधियों का हर एक काम निष्फल होता गया। विद्यासागर महाशय यदि इन नासमझ लोगों के वैर-व्यवहार से खीझ कर इस शुभ कार्य को छोड बैठते तो भारतवर्ष की विधवाओं के हृदय की आग बुझाने का कोई उपाय न होता और गर्भपात, व्यभिचार आदि पातक दिन दूने रात चौगुने बढते जाते।

भगवन्! जगदीश्वर! इन सब कल्याणकर शुभ कार्यों में हमको तुम्हारी ही महिमा—तुम्हारा ही प्रसाद—देख पडता है। तुम किस उपाय से, किस कौशल से, जीव का कल्याण करते हो, इस रहस्य को कोई नहीं समझ सकता। कौन जानता था कि अन्धकारपूर्ण भारतवर्ष में हिन्दू-विधवा के विवाह की प्रथा प्रचलित होगी—कौन समझता था कि लोग स्त्रियों के भी अधिकार को स्वीकार

करेगे। विधवाओ की दशा का स्मरण करके इस समय भी हमारी आँखो से आँसू टपक पडते हैं। हमको भी यह विश्वास न था कि वे फिर सौभाग्यवती वन सकेंगी। भगवन्! यह सव तुम्हारी ही कृपा है। भारतभूमि सदा से धर्मभूमि कहलाती आती है और भारत-सन्तान धर्मपुत्र कहलाते थे। उनके दारुण देशाचार ने उनको अधर्म की ओर वहका दिया था। आप फिर उन्हे उनकी राह पर ले आये। हम आपको प्रणाम करते है। अन्त मे आपसे हमारी यही प्रार्थना है कि उस महापुरुष की कीर्त्ति पृथ्वी पर सदा आपकी महिमा को बढावे, जिसके प्रयत्न से विधवाओं की दुर्दशा दूर हुई है।

(तत्त्ववोधिनी पत्रिका, ९ पौष, सोमवार, स० १९१३)

इसी अवसर पर वँगला के प्रसिद्ध लेखक अक्षयकुमारदत्त ने प्रयाग से विद्यासागर को जो चिट्ठी लिखी थी वह भी यहाँ पर उद्धृत की जाती है।—

परमश्रद्धास्पदेषु,

सविनयमिद निवेदनम्—

मैं ६ पौष को इलाहाबाद पहुँचा। ९ पौष को कीटगज में लाला वशीधर की सिफारिश से श्रीयुत रामचन्द्र मिश्र के बाग में ठहरा हूँ। मेरे सिर का दर्द तो कुछ कुछ कम जान पडता है। किन्तु पेट की गडबडी किसी तरह नहीं जाती। अम्लरोग (acidity) अत्यन्त प्रबल है। इस कारण अच्छी तरह भोजन आदि नहीं कर सकता। मैं नहीं समझता था कि यहाँ भी मन्दाग्नि और अम्लरोग प्रबल रहेगा।

मुझे यहाँ पहुँचते ही विधवाविवाह का शुभ समाचार प्राप्त हुआ। भारतवर्ष के सर्व-साधारण लोग इस काम के लिए चिरकाल तक आपके ऋणी और कृतज्ञ रहेगे। मैं उस समय वहाँ उपस्थित रह कर आप लोगो के साथ अपने मन के उल्लास को प्रकाशित न कर सका। मेरा

यह दु ख कभी जाने वाला नहीं । यह बात मैंने सुनी थी कि म
महीने मे कई एक विधवाविवाह होने की सम्भावना है । से
हुआ ? कृपा कर लिखिएगा कि इस शुभसवाद में कहाँ तक
है कि प्राट साहब शीघ्र ही विलायत जायँगे और उनकी जग
आप काम करेंगे ? श्रीयुत बाबू श्यामाचरण विश्वास और प्रसन्न
सर्वाधिकारी महाशय से मेरा नमस्कार कहिएगा । इति ।

श्री अक्षयकुमारदत्त

इस विधवाविवाह के मामले मे पडने से विद्यासागर को
विपत्तियो का सामना करना पडा था । किसी किसी ने छिप क
मार डालने तक की चेष्टा की थी । विद्यासागर के वृद्ध पिता ठाकु
ने वीरसिंह (गाँव) मे सुना कि उनके पुत्र ईश्वरचन्द्र को मार
के लिए कुछ लोग लगा दिये गये हैं । इस खबर से वह बहु
घबराये । उन्होंने अपने घर के दरबान श्रीमन्त सरदार को विद्
की रक्षा के लिए कलकत्ते भेज दिया । जिन दिनो बङ्गाल
विधवाविवाह की हलचल मची हुई थी, उन्हीं दिनो एक दिन
रात को, सस्कृत कालेज से घर आते समय, ठनठनिया मे विद्यास
देखा कि कई आदमी उनपर चोट करने के लिए आगे बढ रहे
विद्यासागर उन लवेतडगे शत्रुओ को देख कर न तो डरे और न
हुए, उन्होने केवल एकबार अपने नौकर श्रीमन्त को पुकारा ।
ने पीछे से कहा—तुम चलो न, कौन आता है—यह मैं देख
श्रीमन्त के उत्तर का ढँग देख कर आक्रमण करने की नीयत से
वाले समझ गये कि विद्यासागर अकेले नहीं हैं । वे फिर आगे
बढे, चुप चाप चले गये । इस दिन से रात को विद्यासागर अकेले
नहीं जाते थे। सिपाहीविद्रोह के समय भी श्रीमन्त कलकत्ते में
सागर के पास रहता था । इस समय सस्कृतकालेज में से

ठहरने के लिए स्थान दिया गया था। एक दिन श्रीमन्त दिन को किसी प्रयोजन से विद्यासागर के पास गया। वह कालेज में घुसने लगा। गोरो ने आकर रोका। वे रास्ता रोके खडे थे और श्रीमन्त भीतर जाने के लिए अडा था। श्रीमन्त के शरीर में जैसा जोर था वैसा ही साहस भी था। श्रीमन्त गोरो के बल की परीक्षा लेने के लिए लाठी हाथ मे लिये उसी ओर आगे बढा। गोरो ने पहले मना किया, पीछे पकड कर उसे हटाने चले। किन्तु वे श्रीमन्त को हटा न सके। श्रीमन्त ने दोनो हाथो से दोनो गोरो को इधर उधर हटा दिया और उधर ही से आगे बढा। गोरो ने अपमानित होकर बन्दूक उठाई। श्रीमन्त ने भी लाठी तानी। लकडी से बन्दूक की गोली रोकने के लिए श्रीमन्त तैयार था। इसी समय गोरो का अफसर वहाँ आ गया। वह गोरो को गोली चलाने के लिए तैयार देख कर फौरन बीच मे आकर खड़ा हो गया और बोला—"यह क्या करते हो? यह पण्डित जी का आदमी है"। गोरे सकपका कर हट गये। विद्यासागर इतने मे आगये और श्रीमन्त को डाँटने लगे। तब श्रीमन्त ने गर्व के साथ कहा—"देशी लोगो का बल बहुत बार देखा था, आज गोरो की आजमाइश कर रहा था"। विद्यासागर ने कहा—"अभी तेरी जान गई थी"। श्रीमन्त ने कहा—"मेरे हाथ मे लाठी के रहते कोई भी मेरे बदन मे हाथ नहीं लगा सकता।" विद्यासागर ने कहा—"तेरे बदन मे हाथ लगाने की जरूरत ही क्या थी, गोरे गोली मार देते"। श्रीमन्त ने उत्साह के साथ कहा—"हाथ में लाठी है तो गोली का खटका कैसा? बन्दूक मे गोली भरनी पडती है, और मेरी लाठी बराबर चलती है"। विद्यासागर को श्रीमन्त की वीरता का हाल पहले ही से मालूम था।

बँगला सन् १२६३, ११ फाल्गुन, में २४ परगने के अन्तर्गत बोडाल-ग्राम-निवासी सुप्रसिद्ध राजनारायण वसु के चचेरे भाई दुर्गा-

नारायण वसु और सगे भाई मदनमोहन वसु ने विधवा बालिकाओं से विवाह किये। इन दोनो विवाहों मे भी विद्यासागर का बहुत सा धन खर्च हुआ था। इस प्रकार लगातार रुपया खर्च करने से विद्यासागर को रुपये की कमी का सामना करना पडा। जिनके उत्साह-पूर्ण मुख को देख कर विद्यासागर उत्साहित और इस मार्ग मे अग्रसर हुए थे वे शुक्ल प्रतिपदा के चन्द्रमा की तरह उदय होते ही अदृश्य हो गये। गरीब ईश्वरचन्द्र के सामने निराशा का घना अन्धकार छा गया। बीच बीच में केवल उनके अँगरेज मित्रो में से कोई कोई उन्हे आश्वासन देते रहते थे। स्वदेशी मित्रों में भी कुछ सज्जन ऐसे थे जो उन्हे धन की सहायता करते जाते थे और उसी आमदनी से विद्यासागर का विधवाविवाह कार्य जारी था। विद्यासागर को अपने कष्ट या कमी की चिन्ता कभी नहीं हुई। उन्हे अगर चिन्ता थी तो यह कि विधवाविवाह का काम कहीं अर्थाभाव से बन्द न हो जाय। उस समय विद्यासागर के सबसे बडे सहायक श्रद्धेय राजनारायण वसु थे। विद्यासागर ने राजनारायण बाबू से सहायता पा कर सहानुभूति और कृतज्ञता से भरा जो पत्र लिखा था उसका कुछ अंश यह है—"आप असाधारण साहस दिखला कर विधवाविवाह के मङ्गल कार्य में प्रवृत्त हुए हैं। आपने × × जो पत्र लिखा था उसे जब से पढा है तबसे समय समय पर स्मरण हो आने पर आपको सैकडो ही साधुवाद दिया करता हूँ। वास्तव मे आपने महात्माओ का काम किया है। इस काम में प्रवृत्त होने से आपको जैसा मानसिक क्लेश प्राप्त होता है वैसा और किसी को नहीं"।

हाईकोर्ट के सुप्रसिद्ध वकील स्वर्गीय बाबू दुर्गामोहनदास जब बरीसाल मे थे, तब उन्होंने अपनी बालिका विधवा विमाता के पुनर्विवाह की बहुत कुछ चेष्टा की थी, परन्तु बडे भाई कालीमोहन-

दास वकील के कारण उनकी चेष्टा सफल नहीं हो सकी। उस समय उन्होंने विद्यासागर को पत्र भेजा था। उसके उत्तर में विद्यासागर ने जो सुन्दर सान्त्वनापूर्ण पत्र भेजा था वह नीचे उद्धृत किया जाता है।

अशेषगुणाश्रय—

श्रीयुक्त बाबू दुर्गामोहनदास महाशय

परमकल्याणभाजनेषु,

सादरसम्भाषणमावेदनम्—

मैंने अन्नदाचरण को जिस दिन अन्तिम पत्र लिखा था उसी दिन आपको अलग पत्र लिखने की बड़ी इच्छा थी। किन्तु उस दिन नहीं लिख सका। सोचा कि दूसरे दिन लिख दूँगा। दूसरे दिन कई कय हो जाने से तबीयत बे-चैन हो गई। कई दिन तक कमजोरी नहीं गई। उसके बाद और कई दिनो तक किसी विशेष कारण से ऐसा अवकाश नहीं मिला कि आपको पत्र लिख सकता। इस विलम्ब के लिए क्षमा करना।

आपने इच्छित कार्य्य की सिद्धि के लिए ऐसा आन्तरिक यत्न और परिश्रम किया, लेकिन अन्त को काम पूरा नहीं हुआ। यह खबर पाकर सचमुच ही मुझे बड़ा खेद हुआ। आपको इससे कैसा क्षोभ और मनस्ताप हुआ है, सो मैं खूब समझ रहा हूँ। यह क्षोभ सहसा मिटनेवाला नहीं है। किन्तु दुनिया के कामो का ऐसा ही नियम है। अच्छे कामो मे सदा सफलता नहीं प्राप्त होती। "श्रेयांसि बहुविघ्नानि", शुभकार्यो मे अनेक विघ्न उठ खड़े होते हैं। मुझे जबसे यह खबर मालूम हुई थी तबसे मुझे यही खटका था कि आपके भाई को खबर लग जाने से सब खेल बिगड़ जायगा। अन्त को वही हुआ। जो कुछ हो, इस चेष्टा के विफल होने से बिलकुल उत्साह-हीन न हो जाना। कितने ही कामो के लिए चेष्टा और उद्योग करते

हैं, किन्तु उनमें से अधिकाश काम सिद्ध नहीं होते। इसका प्रधान कारण यह है कि प्रशसनीय और अच्छे इरादे वाले लोग बहुत कम हैं। इसके विरुद्ध शुभ और श्रेयस्कर कामो में बाधा डालने वाले आदमी हजारो देख पडते हैं। ऐसी अवस्था में चेष्टा करके जितनी सफलता प्राप्त हो उसे ही सौभाग्य समझना चाहिए। यह काम पूर्ण होने पर मैं जैसी श्रद्धा और प्रशसा करता वैसी ही श्रद्धा और प्रशसा अब भी करूँगा। क्योंकि काम पूरा हो या न हो, आपने अपने साहस और मानसिक महत्त्व का यथेष्ट परिचय दिया है। यह स्पष्ट है कि अगर आप सर्वथा स्वतन्त्र होते तो यह काम अवश्य हो जाता। आप जिस काम मे प्रवृत्त हुए थे वह काम करने के लिए हर एक का साहस नहीं हो सकता। कहने का तात्पर्य यह है कि मुझे आपके एक सच्चे पुरुष होने पर दृढ विश्वास है। प्रार्थना करता हूँ कि आप दीर्घजीवी हों। आपके दीर्घजीवी होने से आपके द्वारा अनेक लोगो की भलाई होने की सम्भावना है।

मैंने अनेक वार अनेक प्रामाणिक लोगो के मुँह से आपका गुणानुवाद सुना है। मुझे निश्चय है कि आप एक सदाशय, सरल-हृदय, अकुतोभय उदारचरित परहितैषी और परोपकारी व्यक्ति हैं।

मेरा शरीर अभी तक नीरोग नहीं हुआ। बीच बीच मे आपके कुशल-मङ्गल की खबर पाने से मुझे बडा सन्तोष होगा।

भवदीयस्य

श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मण।

जब अनेक लोगो ने पीठ दिखाई, तब विधवाविवाह का होना एक प्रकार से बन्द सा हो गया। चारो ओर लोग यह कह कर हँसी उडाने लगे कि दैवयोग से दो चार व्याह हो गये थे, अब नहीं हो सकते। जिस समय बङ्गाल भर में विधवाविवाह का आन्दोलन मचा

देते ? इस विषय मे यह वक्तव्य है कि यह प्रथा सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के कुछ समय तक प्रचलित थी। स्मृ त और पुराण इस बात के साक्षी हैं। उसके बाद यह प्रथा धीरे धीरे कम होने लगी और अन्त को उठ गई। इसके उठ जाने का यही प्रधान कारण है कि पूर्व युगो की अपेक्षा कलियुग मे सहमरण की प्रथा उत्तरोत्तर जोर पकड़ती गई। अनेक अथवा प्राय सभी विधवाये पति के साथ जलती हुई चिता मे अथवा विदेश से स्वामी के मरने की खबर पाकर अकेले ही चिता पर चढ कर सती हो जाती थी। इस कारण आज कल की तरह उस समय विधवाओ की सख्या अधिक नहीं थी। कन्या, बहन, बहू आदि की दु सह वैधव्य-यन्त्रणा और अनर्थ बहुत कम देखने को मिलते थे। जब विधवाओ की सख्या कम रह गई, वैधव्य-यन्त्रणा और वैधव्य-जनित अनर्थो की मात्रा कम हो गई, तब विधवाविवाह की वैसी आवश्यकता नहीं रही। जान पडता है, इसी कारण धीरे धीरे विधवाविवाह की प्रथा उठ गई। किन्तु इस समय राजा की आज्ञा से सती होने की प्रथा उठा दी गई है। इस कारण व्यभिचार आदि अनर्थो की मात्रा भी बढती ही जाती है। इस समय इस अनर्थ को कम करने और विधवाओ की वेदना दूर करने का यही उपाय था कि विधवाओ का पुनर्विवाह प्रचलित किया जाय। बडे ही आनन्द की बात है कि १२ और २८ आषाढ को हुगली जिले के अन्तर्गत रामजीवनपुर गाँव मे दो विधवाओ के व्याह हुए हैं। कलकत्ते मे अब से पहले पाँच विधवाविवाह हो चुके हैं। देहात मे पहलेपहल ये ही दोनो व्याह हुए हैं।

"बहुतो की धारणा थी कि कलकत्ते मे यह काम शुरू होने पर भी सहसा देहात में किसी तरह नहीं हो सकता। कलकत्ते के अधि-काश लोग सुशिक्षित और ज्ञानी हो चुके हैं, इस कारण वे कुसस्कार

के हाथो से छुटकारा पा गये हैं। ऐसी जगह पर ऐसी रीति का चलन होना अधिकतर सम्भव है। देहात के अधिकाश लोग अभी तक अज्ञान से अन्धे और चिरसञ्चित कुसस्कारो के वशीभूत हैं। ऐसी जगह विधवाविवाह का विरोध ही सम्भव है। यह बात पहले तो अवश्य यथार्थ जान पडती है, किन्तु कुछ मन लगा कर विचारने से बिलकुल इसके विपरीत लक्षण देख पडते हैं। इस समय कलकत्ते के बहुत लोग शिक्षित हो गये हैं, किन्तु उनमें से अधिकाश लोगो को उस शिक्षा का ठीक ठीक फल नहीं प्राप्त हुआ। इस शिक्षा का केवल यही फल देख पडता है कि अनेक शिक्षितो ने स्वदेशी आचार-व्यवहार को निन्दित समझ कर छोड दिया है और यूरोपियनो के आचार-व्यवहार के अनुगामी बन गये हैं। किन्तु जिन गुणो के कारण यूरोप के लोग प्रशसनीय हुए हैं उनका उनमे लेश भी नहीं पाया जाता। आचार-व्यवहार के अनुकरण से कुछ विशेष फल नहीं है। यदि इस देश के सुशिक्षित लोग सहसा देश-हितैपिता आदि सद्गुणो का अनुकरण कर सकते तो इतने दिनो में इस देश की न जाने कितनी श्रीवृद्धि हो जाती। जब तक नौजवान लोग कालेजो में पढते हैं तब तक उनके उस समय के भाव को देख कर सभी समझते हैं कि ये लोग बहुत कुछ देश की दुर्दशा दूर कर सकेंगे। किन्तु वे युवक कालेज छोड कर जब गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं तब उनमे यह बात नहीं देख पडती"।

(त० बो० प०, ४ पौष, शुक, स० १९१४)

यह पहले ही कहा जा चुका है कि विधवाविवाह के मामले मे जिन लोगो ने मन-वाणी-काया से विद्यासागर की सहायता की थी उनमें राजनारायण बाबू एक प्रधान पुरुप थे। अतएव उनके अपने लिखे "आत्मचरित" से कुछ अश यहाँ पर उद्धृत किया जाता है —

"सन् १८५१ में मैं मेदिनीपुर गया। सन् १८५६ में विधवा-विवाह का आन्दोलन उठा। श्रीयुत पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के 'विधवाविवाह उचित है कि नहीं ?' यह छोटी सी पुस्तक लिख कर प्रकाशित करने से इस आन्दोलन की उत्पत्ति हुई। हिन्दू-समाज-रूपी सुविस्तृत सरोवर शान्त था। इस पुस्तक के प्रकाशित होने से समाज-सरोवर तूफान के समय के सागर की तरह अत्यन्त चञ्चल हो उठा, उसमें भयानक लहरे उठने लगीं। जिन्होंने इस आन्दोलन को अपनी आंखो देखा है वे ही इसकी भयानकता का अच्छी तरह अनुभव कर सकते हैं। विद्यासागर ने इसी सम्बन्ध की दूसरी पुस्तक जब प्रकाशित की तब यह आन्दोलन बढ कर चौगुना हो गया। इस पुस्तक के वाग्दान-सम्बन्धी अध्याय को लेकर विशेष आन्दोलन हुआ। विद्यासागर ने अपनी पुस्तक मे बहुत ही सन्तोषजनक रीति से इस विषय पर विचार किया है। इस समय विद्यासागर महाशय संस्कृत-कालेज के प्रिन्सिपल थे। एक दिन बहुत रात गये तक बैठ कर उन्होंने जो कुछ लिखा वह उन्हें पसन्द नहीं आया। कालेज से बहूबाजार के घर जाते समय रास्ते में उन्हे उक्त विषय की सन्तोष-जनक मीमांसा सूझ पडी। वह उसी दम कालेज लौट गये और बैठ कर लिखने लगे। लिखते लिखते सारी रात बीत गई।

अँगरेजी पढे लिखे सब बङ्गाली विद्यासागर के पक्ष मे थे। पुनर्विवाहित विधवा के गर्भ से उत्पन्न बच्चा जिसमें पैतृक सम्पत्ति का उत्तराधिकारी समझा जाय, इस लिए उन लोगो ने गवर्नमेंट के पास प्रार्थनापत्र भेजा था। सर जान पीटर ग्रान्ट साहब ने, जो पीछे से बङ्गाल के लाट हो गये थे, व्यवस्थापक-सभा मे यह प्रस्ताव उपस्थित करते समय जो वक्तृता दी थी उसमे उन्होंने कहा था कि 'दूसरे पक्ष वाले जैसे हिन्दू हैं, वैसे ही ये भी हिन्दू हैं'। + + और इसी वक्तृता मे उन्होंने कहा

था कि 'जब सतीदाह की प्रथा उठा दी गई है तब विधवाविवाह होने देना ही उचित है। चिरकाल तक वैधव्य-यन्त्रणा भोगने की अपेक्षा एकदम जल कर मर जाना ही अच्छा था'। जैसे ही विधवाविवाह का आईन पास हुआ वैसे ही काम शुरू हो गया। + + + जिस दिन विधवाविवाह हुआ उस दिन कलकत्ते में लोग ऐसे चौंके कि मानो युग पलटने की ऐसी कोई विशेष घटना हुई हो। महात्मा रामगोपाल घोष आदि कलकत्ते के अधिकांश अँगरेजी पढ़े-लिखे लोग वर की पालकी के साथ पैदल गये थे। दूसरा विधवाविवाह पानीहाटी के मधुसूदन घोष ने किया। तीसरा और चौथा विधवाविवाह मेरे चचेरे भाई दुर्गानारायण वसु और मेरे सहोदर मदनमोहन वसु ने किया। इस विधवाविवाह के होने पर मेरे चाचा ने बोडाल से मुझे लिखा कि तुम्हारी करनी से हमें जातिच्युत होना पड़ा। दुर्गानारायण जिस समय विधवाविवाह करने जा रहे थे उस समय गाँव के मुखिया ईश्वरचन्द्र मुखोपाध्याय ने भी पालकी के भीतर सिर डाल कर कहा—'दुर्गा, तेरे मन में यही था, एकदम सब डुबा दिया'। मेदिनीपुर में भी कम आन्दोलन नहीं हुआ था। मेदिनीपुर के तत्कालीन सरकारी वकील हरनारायण दत्त ने कहा था कि 'राजनारायण बाबू नहीं जानते कि वह बँगले में रहते हैं'। इसका मतलब यह था कि वह बँगले में रहते हैं और बँगला अनायास ही जला दिया जा सकता है। मैं और स्कूल के सेकिंडमास्टर उत्तरपाड़ा-निवासी बाबू यदुनाथ मुखोपाध्याय, जो पीछे से संस्कृत-कालेज के हेडमास्टर हो गये थे, दोनों एक दिन जङ्गल में जाकर दो मोटी लाठियाँ इस नीयत से काट लाये थे कि अगर दंगाफसाद होगा तो हम लोग इन लाठियों से अपनी रक्षा करेंगे। बोडाल गाँव के लोग कहते थे कि 'राजनारायण बाबू गाँव में आवेंगे तो हम ईंटे मारेंगे'।

इस पर मैंने कहा था कि 'अगर दगा होगा तो मुझे ख़ुशी होगी। मैं बङ्गालियों की जाति को एक उदासीन जाति समझता हूँ। ऐसी घटना होगी तो मुझे विश्वास होगा कि इस समय विधवाविवाह से वे जैसे चिढे हुए हैं वैसे ही जब विधवाविवाह को अच्छा समझेंगे तब उसके लिए प्रबल चेष्टा भी करेंगे'।

इस समय महर्षि देवेन्द्रनाथ पछाँह में थे। मैंने उन्हें विधवा-विवाह की खबर दी तो उन्होंने मुझे लिखा कि "इस विधवाविवाह-रूपी समुद्रमन्थन से जो विष उठेगा वह तुम्हारे कोमल हृदय को अस्थिर कर देगा। किन्तु कुछ चिन्ता नहीं है, जिसका इरादा अच्छा है उसकी सहायता ईश्वर करता है"।

जब किसी विधवा का विवाह होता था तब विद्यासागरजी प्राय: कन्या की ओर से खूब समारोह के साथ सब काम करते थे। उनके इस काम को सब लोग जान भी न सकते थे। वह स्वयं तो एक धोती पहनते और एक मोटी चादर ओढे हुए बिलकुल गरीब या सयमी पुरुष की तरह गुजारा करते थे, किन्तु और के लिए यह बात न थी। विधवाविवाह के अवसर पर कन्या को बहुमूल्य वस्त्रालङ्कार पहना कर दान करने के लिए विवाह-मण्डप मे उपस्थित करते थे। इसमें और विवाह की और और तैयारियों मे उनका भला चगा रुपया ख़र्च हो जाता था। विधवाविवाह के लिए जिन्होंने सहायता देना शुरू किया था उनमे से अधिकाश लोग एक एक करके अदृश्य होने लगे। इस कारण सारे खर्च का बोझ विद्यासागर के सिर पडा। जिस समय इस काम में उन्होंने अपना सर्वस्व लगा दिया उस समय उनके परम मित्र सुप्रसिद्ध मधुसूदन स्मृतिरत्न ने एक दिन दिल्लगी के तौर पर विद्यासागर से कहा—"अच्छा विद्यासागर, देश मे इतने आदमियों के रहते अकेले तुम ही क्यों इस कार्य के लिए अग्रसर

हुए ?" विद्यासागर ने इस दिल्लगी का बहुत ही आमोदजनक और सरल उत्तर दिया। उन्होने कहा—"जब काम शुरू किया था तब मैं ही अकेला न था। अनेक लोगो ने मिल जुल कर इस काम मे हाथ डाला था। किन्तु जो मा के बेटे थे वे चुपके चुपके घर खिसक गये, मा के लडके मा की गोद मे गये। और मैं बाप का बेटा हूँ, इस कारण नहीं फिर सका"। विद्यासागर का सारा धन बहुत शीघ्र खर्च हो जाने से उन्हे फिर गरीबी का सामना करना पडा। किन्तु वह तो 'बाप के बेटे' थे, इसलिए शुरू किये हुए काम को छोड कर पश्चात्पद नहीं हो सके। उनकी धर्मबुद्धि बहुत ही प्रबल थी। न्याय-कार्य में वह बडी ही निष्ठा के साथ तत्पर रहते थे। उन्होने अपमान या गालीगलौज का खयाल न करके इस काम मे सर्वस्व लगा दिया और वह प्राणनाश की सम्भावना से भी विचलित नहीं हुए।

प्रसिद्ध वक्ता श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के पिता प्रसिद्ध डाक्टर दुर्गाचरण बनर्जी विद्यासागर के बडे भारी मित्र थे। विद्यासागर ने विधवाविवाह के खर्च के लिए उनसे कुछ रुपया उधार लिया था। कुछ दिन बाद दुर्गाचरण बाबू ने अर्थाभाव से कष्ट पाने पर विद्यासागर को एक पत्र लिखा था। उसका कुछ अश यह है —

"You will learn from the same that my debt-affair is about to come to a crisis which does not admit of further delay++."

अर्थात्, तुम इसके साथ भेजे हुए पत्र से जान सकोगे कि मेरे ऋण ने कैसा विपत्ति का आकार धारण किया है। और विलम्ब होने से काम नहीं चल सकता।

इस पत्र के उत्तर में विद्यासागर ने जो पत्र लिखा था उसकी नकल नीचे दी जाती है। उसे पढ कर पाठको को मालूम हो जायगा कि विद्यासागर को ऋण के मारे कैसी विपत्ति का सामना करना

further co-operation with you in this respect should cease, and I trust the reasons, I have mentioned, will plead for my excuse

Yours sincerely,

* ० *

अर्थात्, आपने जो चन्दे के बारे में लिखा सो अब तक मैं उसे भेज देता, मुझमे और मेरे भाइयो मे मत-विरोध होने के कारण वह भेजा नहीं जा सका। वे कहते हैं कि विधवाविवाह की जैसी मन्द गति है उससे किसी प्रकार के सुफल की प्रत्याशा नहीं की जा सकती। यद्यपि मैंने उनको यह समझाने की चेष्टा की कि ऐसे कामो मे बहुत दिनो तक लगे रहने की जरूरत होती है, किन्तु उसका कुछ फल नहीं हुआ। इस विषय मे मैं अपनी इच्छा के अनुसार चलने नहीं पाता, और उनको छोड कर अकेले इस कार्य्य मे अग्रसर होने में प्रवृत्ति नहीं होती। इस कारण से मैंने भारी दुःख के साथ विधवा-विवाह के मामले से हाथ खींच लिया है। आशा है, मेरी युक्तियाँ यथेष्ट समझी जायँगी।

इस पत्र के उत्तर मे विद्यासागर ने जो बहु-विस्तृत पत्र लिखा था उसकी कुछ पङ्क्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं —

"As the intimation came too late, I naturally counted upon receiving your donation, and I made arrangements accordingly. I have, in consequence, been placed in a very difficult position"

अर्थात् इस विधवाविवाह के मामले में सहायता देने के बारे में आपके इरादा बदलने की खबर [illegible] के प [illegible]
इस सहायता के ऊपर पूरा भरोसा था [illegible]
सहायता की सम्भावना रहने पर [illegible]
भी कर चुका था। [illegible]
मे पडा हूँ।

विधवाविवाह के मामले मे विद्यासागर को कैसी मुसीबत का सामना करना पडा था, इसका कुछ आभास पाठको को मिल गया होगा। इस मुसीबत का भारीपन और भी अनेक प्रमाणो से प्रमाणित किया जा सकता है। कृष्णनगराधिपति महाराज सतीशचन्द्र विद्यासागर को लिखते हैं —

"My dear Vidyasagar Mohashya, I have received through my dewan, Kartic Chunder Roy, the eighteen hundred rupees (Rs 1,800), which my late father deposited in your care in his lifetime, and for which I am much obliged Hoping you are quite well"

I remain, sincerely yours,
Satish Chunder Roy

अर्थात् मेरे परलोकगत पिता ने आपके पास जो १८००) रुपये अमानत के तौर पर रक्खे थे उन्हें अपने दीवान कार्त्तिकचन्द्र राय की मार्फत पाकर मैं अत्यन्त अनुगृहीत हुआ। आशा है, आप कुशलपूर्वक होगे।

आपका विश्वासपात्र
सतीशचन्द्र राय।

विद्यासागर के परम मित्र प्रसन्नकुमार सर्वाधिकारी महाशय और उनके भाई इस काम मे विद्यासागर की सदा सहायता करते रहे। सर्वाधिकारी महाशय के छोटे भाई पेट्रियट-सम्पादक रायबहादुर श्रीयुत राजकुमार सर्वाधिकारी जब लखनऊ के कैनिङ्ग कालेज में अध्यापक का काम करते थे तब उन्होंने विद्यासागर को जो पत्र लिखा था उसकी नकल नीचे दी जाती है —

"महाशय, १० वीं अपरेल का आज्ञापत्र अभी मिला। यह सुन कर मुझे बडा ही दु ख हुआ कि आप विधवाविवाह के कारण ऋण-

ग्रस्त हो गये हैं। मुझे खयाल था कि अनेक धनी लोग इस मामले में आपकी सहायता करते हैं। मुझे स्वप्न मे भी यह खयाल न था कि सब खर्च आप ही के मत्थे है। मैं इस समय एक सौ रुपये का नोट भेजता हूँ। इससे अगर कुछ भी काम निकलेगा तो मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा। जहाँ तक हो सकेगा वहाँ तक सहायता देने में कसर न होगी। किन्तु प्रति मास मुझको क्या देना होगा, इसका निश्चय मुझ पर न रखिएगा। दादा से सलाह करके आप जो मुझे आज्ञा देगे उसे ही मैं शिरोधार्य समझूँगा। हम लोगो से किसी बात मे सङ्कोच करना उचित नहीं है।

आशीर्वादाकाङ्क्षी—

श्रीराजकुमार सर्वाधिकारी।

इसके बाद राजकुमार बाबू ने दूसरा पत्र अँगरेजी मे लिखा था। वह यह है —

"My dear Sir,—

"Dada's letter of the 18th September just reached me. I am glad to hear, that first half of the currency note of Rs 100 has reached you, I enclose the second half

"Dada tells me to send you Rs 15 every month, as my contribution to the widow marriage fund If you have no objection, I will send my subscription in advance for six months, this will be more convenient to me than sending it every month * * * As I shall remain very anxious till I hear from you, kindly let me know of the safe delivery of this letter enclosing the second half of the currency note

"I remain, yours affectionately,

"Raj Kumar Sarbadhikary"

अर्थात्, दादा का १८ तारीख का पत्र मिला। उससे मालूम हुआ कि सौ रुपये के नोट का पहला अद्धा आपको मिल गया। अब

उसका दूसरा अद्धा भेजता हूँ। दादा ने मुझको लिखा है कि मुझे हर महीने विधवाविवाह-फण्ड में पन्द्रह रुपये देने पड़ेंगे। आपको यदि कुछ आपत्ति न हो तो मैं पन्द्रह रुपये महीने के हिसाब से छ महीने का चन्दा पेशगी भेज सकता हूँ। महीने महीने भेजने की अपेक्षा इस तरह भेजने में मुझे सुभीता होगा। + + + दूसरे अद्धे के साथ यह पत्र भेजता हूँ। पहुँच लिखिएगा।

आपका स्नेहपात्र

राजकुमार सर्वाधिकारी।

विद्यासागरजी मित्रों से सहायता न पाने के कारण इतने लाचार हो गये कि उन्होंने फिर सरकारी नौकरी करने का विचार किया। हम जिस समय की बात लिख रहे हैं उस समय सर सिसिल बीडन बङ्गाल के छोटे लाट थे। वह विद्यासागर पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। विद्यासागर के सब कामों से बीडन साहब को सहानुभूति थी। इसी समय एक दिन बातों बातों में बीडन साहब को मालूम हुआ कि धन की कमी से विद्यासागर को बड़ा कष्ट मिल रहा है। बीडन साहब ने उसी प्रसङ्ग में विद्यासागर से पूछा कि उनके योग्य अगर कोई नौकरी हो तो उसे स्वीकार करने के लिए वह तैयार हैं या नहीं? इसके उत्तर में विद्यासागर ने कहा कि अभी तक नौकरी करने का विचार तो नहीं किया। किन्तु सोच कर इस बारे में मैं कुछ कह सकता हूँ। लाट साहब को ऐसा उत्तर देकर उस समय तो विद्यासागर ने टाल दिया, किन्तु अन्त को उन्हें अर्थाभाव से ऐसी असुविधा का सामना करना पड़ा कि छोटे लाट के कहने पर विशेष-रूप से विचार करना पड़ा। अन्त को सोच विचार कर उन्होंने छोटे लाट साहब को यह पत्र लिखा —

"Hon'ble Cecil Beadon,"

My dear Sir,—

A change in circumstances compels me to trouble you with a request to do something for me if possible I am in difficulties, and I find it almost impossible for me to put over them without a fresh source of income About this time, in the last year, you were pleased to ask me, whether I was willing to re-enter the public service, I think, I expressed my unwillingness at the time, but what was then a matter of choice, has now become a matter of necessity

Trusting to be excused for the trouble

I remain, etc ,
Iswar Chandra Sharma'

अर्थात्, प्रिय महाशय, अपनी अवस्था के परिवर्त्तन के कारण अपने लिए कुछ करने के वास्ते, लाचार होकर, आपको विरक्त करता हूँ। मैं भारी विपत्ति मे पडा हूँ और कोई नई आमदनी की सूरत हुए बिना मेरी इन असुविधाओ का दूर होना असम्भव सा हो पडा है। आपने अनुग्रह करके गत वर्ष इसी समय मुझसे पूछा था कि मैं फिर सरकारी नौकरी करने के लिए तैयार हूँ या नहीं। मुझे जान पडता है कि उस समय मैंने अनिच्छा प्रकट की थी। किन्तु उस समय जिसे स्वीकार या अस्वीकार करना मेरी रुचि पर निर्भर था वही इस समय मेरे लिए अत्यन्त आवश्यक हो गया है। आशा है, इस प्रकार कष्ट देने के लिए आप क्षमा करेंगे।

इस बारे में बीडन साहब और विद्यासागर से जो पत्र-व्यवहार हुआ था सो सिलसिलेवार नीचे उद्धृत किया जाता है।

"My dear Pundit,

I will bear your wishes in mind But I do not, at present, see any way in which I could find you suitable employment in public service

Yours truly,
C Beadon"

अर्थात्, प्रिय पण्डित महाशय, मैं आपके अनुरोध को स्मरण रक्खूँगा। किन्तु इस समय आपको नियुक्त करने के लायक किसी काम का सुभीता नहीं देख पड़ता।

"The Hon ble Sir Cecil Beadon,

"About three years ago, I communicated to you my willingness to re-enter the public service on account of the difficulty I was in, and solicited you to do something for me if practicable, you were pleased to say in reply, that you would bear my wishes in mind Since that time my difficulty have gradually assumed a far more serious aspect, and I am compelled, though most unwillingly, to trouble you again with the request for doing something for me if practicable

"In March last, you expressed, in the course of conversation, a wish for appointing a professor of Sanskrit in the Presidency College If you still entertain that wish, and if you see no objection to my being selected for the appointment, kindly give it to me But I must say candidly, that notwithstanding the serious nature of the difficulties I am in, my vanity would not permit me to serve, if the salary, which European Professors of that Institution draw, is not allowed to me, the grant of such an indulgence would not be an altogether unprecedented one The native Judge of the High Court can be pointed out as an instance With every sentiment of respect and esteem

Yours sincerely,
Isvar Chandra Sharma"

अर्थात्, प्रिय महाशय, तीन साल के लगभग हुए, जब मैंने दुरवस्था के फेर मे पड कर आपसे फिर नौकरी करने का इरादा जाहिर किया था। इस सम्बन्ध में आपसे कुछ करने के लिए अनुरोध भी किया था। आपने मेरे पत्र के उत्तर में कहा था कि आप मेरे अनुरोध का ख्याल रक्खेंगे। तब से मेरी सासारिक असुविधाये इतनी बढ गई हैं कि बिलकुल इच्छा न रहने पर भी फिर मैं आपसे

यह कहने के लिए लाचार हुआ हूँ कि आप मेरे लिए कुछ उपाय कीजिए।

गत मार्च मास मे एक दिन बातचीत के समय आपने कहा था कि प्रेसीडेन्सी कालेज मे आप एक संस्कृत का अध्यापक रक्खेंगे। यदि आपकी यह इच्छा अभी तक हो और उस जगह मुझे रखने में कुछ बाधा न हो तो आप वह जगह मुझको ही दीजिएगा। किन्तु यह बात मैं स्पष्ट करके कहे देता हूँ कि यद्यपि मुझे इस समय धनाभाव से भारी कष्ट है, तथापि यदि मुझे उक्त कालेज के अँगरेज प्रोफेसरो के बराबर तनख्वाह न मिलेगी तो मैं आत्मसम्मान के अनुरोध से नौकरी न करूँगा। यह व्यवस्था बिलकुल नई नहीं है। दृष्टान्त के तौर पर हाईकोर्ट मे देशी जज का पद और उसकी अँगरेज जजो के बराबर तनख्वाह का उल्लेख किया जा सकता है।

"My dear Pundit,

I should be glad if I could in any way forward your wishes, but I see great difficulty in the matter I am sure, the Government of India would not listen to a proposal for founding a Sanskrit Professorship in the Presidency College on so high a salary But I shall consult Mr Atkinson on the general question without mentioning your name

Yours truly,
C Beadon"

अर्थात्, प्रिय पण्डित महाशय, मैं किसी प्रकार आपकी इच्छा पूर्ण होने में सहायता कर सकता तो मुझे बडा आनन्द होता। किन्तु उसके सुसिद्ध होने मे भारी बाधा देख पडती है। मुझे दृढ विश्वास है कि प्रेसीडेन्सी कालेज मे इतने अधिक वेतन का संस्कृत-अध्यापक का पद भारत-गवर्नमेन्ट को स्वीकृत न होगा। मैं आपके नाम का

उल्लेख न करके साधारण भाव से मिस्टर एटकिन्सन से इस बारे में सलाह करूँगा।

"When I wrote to you about the Sanskrit Professorship, I was under the impression that the creation of such an appointment had been settled, and that the place was entirely in your gift But as it appears from your favour of the 9th ultimo that there is likely to be a great difficulty in the matter, and as it is farthest from my wish to put you to any sort of inconvenience on my personal account, I most gladly withdraw my request You need not trouble yourself any further on the subject"

अर्थात्, प्रिय महाशय, प्रेसीडेन्सी कालेज के संस्कृत-अध्यापक के पद के बारे मे जिस समय मैंने आपको लिखा था उस समय मेरी यह धारणा थी कि इस पद के बारे में भारत-गवर्नमेन्ट की मंजूरी हो चुकी है और उस पद पर किसी आदमी को रखने का काम आपके हाथ में है, किन्तु आपका पत्र मिलने से मालूम हुआ कि इस बारे मे विशेष असुविधा की सम्भावना है। मेरे व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए आप ऐसी असुविधा भोगें, यह मैं बिलकुल नहीं चाहता। मैं खुशी के साथ अपने प्रस्ताव को वापस लेता हूँ। इस मामले के लिए अब आप अपने को कष्ट न दें।

बीडन साहब के प्रस्तावानुसार फिर विद्यासागर ने नौकरी-चाकरी की चिन्ता की थी। जान पड़ता है, उन्होंने यह आशा भी की थी कि उनके लिए गवर्नमेन्ट कुछ कर सकती है। किन्तु आत्मसम्मान के खयाल ने उनको, ऐसे अर्थाभाव के समय में भी, सम्मानशून्य थोड़ी तनख्वाह की नौकरी नहीं करने दी।

छल और स्वार्थपरता आदि को विद्यासागर हृदय से घृणा करते थे। इन्हीं का पग पग पर सामना होने पर भी विधवाविवाह के

मामले में कभी उनका उत्साह कम नहीं हुआ। केवल यही नहीं, वह दिन दिन अधिक आग्रह के साथ अभीष्टसिद्धि के लिए प्रयत्न करते रहे। विद्यासागर के इकलौते पुत्र श्रीयुत नारायणचन्द्र विद्यारत्न ने भी विधवा से विवाह किया था। यह काम उन्होंने विद्यासागर की प्रेरणा से नहीं, बल्कि अपनी इच्छा से किया था।

पहले लोग कहते थे कि पराई विधवा लडकी का व्याह करा कर पराये लडके जातिभ्रष्ट करके समाजसस्कार करना सहज काम है। इसी से विद्यासागर "पराये सिर पर कटहल फोड कर" नाम कमा रहे हैं। असार लोग अगर महापुरुष को अपने समान असार समझें तो उसमे आश्चर्य ही क्या है। चन्दन की सुवास दूसरी चीज मे बस सकती है, किन्तु बाँस कभी चन्दन की सुवास नहीं प्राप्त कर सकता। इसका कारण यही है कि वह पोला है। इसी तरह विद्यासागर की ऊँचे दर्जे की नीति समझने की सामर्थ्य जिनमे नहीं थी वे अपनी ही तरह उन्हे भी समझते थे। विद्यासागर के कार्यों का यथार्थ तात्पर्य समझने की योग्यता उनमे नहीं थी, इसी से वे लोग उनकी अकारण निन्दा करने को ही अपना परम कर्त्तव्य समझे हुए थे। विद्यासागर के पुत्र नारायणचन्द्र ने बँगला सन् १२७७ के २७ सावन को इक्कीस वर्ष की अवस्था मे थानाकुल, कृष्णनगर, के रहने वाले शम्भुचन्द्र मुखोपाध्याय की ग्यारह वर्ष की विधवा कन्या के साथ विवाह किया। विद्यासागर के बडे दामाद गोपालचन्द्र समाजपति महाशय ने विद्यासागर के निकट इस विवाह का प्रसङ्ग चलाया तो पुत्र के इस सत्सङ्कल्प की खबर से प्रसन्न होकर विद्यासागर ने कहा—"मेरे लिए इससे बढ कर सौभाग्य की बात और कोई नहीं [illegible] सकती। तुम इसमें मेरी सम्मति की बात [illegible] हो [illegible] के समय नारायणचन्द्र ने पिता से [illegible] विधवा-

विवाह के पक्ष में हैं। वह और माताजी क्या नहीं आवेगी ?"। इसके उत्तर मे विद्यासागर ने कहा—"पुत्र के ऊपर पिता की अपेक्षा माता का अधिक अधिकार होता है। तुम्हारी माता की अगर इस विवाह में सम्मति न होगी तो मैं इसमे शामिल न हो सकूँगा"। इस विवाह मे विद्यासागर की माता और स्त्री की सम्पूर्ण सहानुभूति थी। नारायणचन्द्र के इस विवाह से विद्यासागर कितने सुखी हुए थे, वह विधवाविवाह के कैसे पक्षपाती थे, उनकी बात और काम मे कैसा मेल था, ये सब बाते उस पत्र से अच्छी तरह प्रकट होती हैं जो उन्होंने उल्लिखित विवाह के उपरान्त अपने तीसरे भाई शम्भुचन्द्र विद्यारत्न को लिखा था। उस पत्र की नकल नीचे दी जाती है —

श्री श्री हरि शरणम्।

शुभाशिष सन्तु।

मातांजी वगैरह को इस शुभ सवाद की सूचना देना कि २७ सावन बृहस्पतिवार को भवसुन्दरी के साथ नारायण का विवाह हो गया।

इसके पहले तुमने लिखा था कि नारायण अगर यह व्याह करेगा कि तो हम लोगो के कुटुम्ब के लोग आहार-व्यवहार छोड देगे, अतएव नारायण का यह व्याह रोकना आवश्यक है। इस बारे में मेरा वक्तव्य यह है कि नारायण ने अपनी इच्छा से यह व्याह किया है। इसमें मेरी इच्छा या अनुरोध से कोई काम नहीं हुआ। जब मैंने सुना कि उसने विवाह पक्का कर लिया है और कन्या भी मौजूद है तब उस मामले में सम्मति न देकर, रुकावट डालना किसी तरह उचित काम न होता। मैं विधवाविवाह का प्रवर्त्तक हूँ। हम लोगों ने उद्योग करके अनेक विधवाओं के विवाह कराये हैं। ऐसी अवस्था में मेरा पुत्र अगर विधवाविवाह न करके कुमारी-विवाह करता तो मैं

लोगो को मुँह न दिखा सकता, भद्रसमाज के लोग मुझे बिलकुल अश्रद्धेय और हेय समझते । नारायण ने स्वय प्रवृत्त होकर यह विवाह किया है, इससे मेरा मुँह उजियाला हो गया । उसने लोगो के निकट यह कह कर अपना परिचय देने का द्वार खोल दिया है कि मैं विद्यासागर का लडका हूँ । विधवाविवाह जारी करना मेरे जीवन का सबसे बढ कर सत्कर्म है । इस जन्म मे इससे बढ कर शुभकर्म होने की मुझे सम्भावना नहीं है । इसके लिए मैंने सर्वस्व अर्पण कर दिया है और आवश्यक होने पर प्राण देने मे भी मुझे इनकार न होगा । इसके आगे कुटुम्बियो को छोड देना महज मामूली बात है । कुटुम्बियो के खानपान छोड देने के भय से अगर मैं पुत्र को उसके अभीष्ट विधवाविवाह से निवृत्त करता तो मुझसे बढ कर नराधम और कौन होता । अधिक क्या कहूँ, उसने स्वत प्रवृत्त होकर यह विवाह किया है, इससे मैं अपने को कृतार्थ समझता हूँ । मैं देशाचार का गुलाम नहीं हूँ । अपने या समाज के कल्याण के लिए जो उचित या आवश्यक जान पडेगा वह करूँगा । उसके करने मे ससार या कुटुम्ब के लोगो का मुझे कुछ भी सकोच न होगा ।

अन्त को मेरा वक्तव्य यह है कि खानपान बनाये रखने का जिन्हें साहस या प्रवृत्ति न हो वे खुशी से उसे छोड दे । इसके लिए शायद नारायण को कुछ भी दु ख न होगा और उसके लिए मैं भी असन्तुष्ट न होऊँगा । मेरी समझ मे, ऐसी बातो मे हर एक को अपनी इच्छा के अनुसार चलना चाहिए । मेरी इच्छा के अनुसार या अनुरोध के वशवर्ती होकर चलना किसी के लिए उचित नहीं । इति । ३१ सावन ।

शुभाकाक्षी
श्रीईश्वरचन्द्र शर्म्मा ।

इस पत्र में विद्यासागर महाशय के हृदय और मन का स्पष्ट आभास मिलता है । इस पत्र के हर एक अक्षर में यह बात अङ्कित है कि विद्यासागर विधवाविवाह को किस दृष्टि से देखते थे, उसकी सिद्धि के लिए उन्होंने कितना स्वार्थत्याग स्वीकार किया था और उसके लिए और भी कितना स्वार्थत्याग कर सकते थे। तीसरे भाई शम्भुचन्द्र विद्यारत्न ही विद्यासागर को विशेष प्यारे थे। इस बात को विद्यासागर और विद्यारत्न दोनो ने सबके आगे सदा स्वीकार किया है। विद्यारत्न महाशय बहुत दिनो तक विद्यासागर के अनुष्ठान में शरीक रहे और विद्यासागर के जीवन का बहुत कुछ हाल उनको मालूम था। लेकिन बडे ही खेद की बात है कि वह उन्हे पहचान नहीं सके। यदि वह पहचान सकते तो पहले विद्यासागर महाशय के विधवाविवाह के उद्योग में सहकारिता करके अन्त को नारायणचन्द्र का विवाह रोकने के लिए विद्यासागर को क्यों लिखते ? जब बहुत दिनो तक विद्यासागर के साथ रह कर भी विद्यारत्न उनको नहीं पहचान सके तब देश के और लोग विद्यासागर की मर्य्यादा को न जाने, अथवा तरह तरह से उनकी निन्दा करे तो आश्चर्य्य ही क्या है ?

विधवाविवाह के मामले में भी कई आदमियो ने विद्यासागर के साथ छल का व्यवहार किया। विद्यासागरजी बहुविवाह के बडे विरोधी थे। किन्तु किसी किसी ने दगा करके, विद्यासागर को धोखा देकर, एक से अधिक विधवाविवाह करने में भी सङ्कोच नहीं किया। ऐसे लोगों के आचरण से समय समय पर विद्यासागर को बडा क्लेश हुआ। लोगो के ऐसे कपट-व्यवहार से विद्यासागर को कैसा क्लेश होता था और उसके रोकने के लिए वह कितने चिन्तित रहते थे, यह बात निम्नलिखित वर्णन से स्पष्ट मालूम पड जायगी।

विद्यासागर बहुविवाह को घृणा की दृष्टि से देखते थे। लोभ के कारण किसी किसी ने एक से अधिक विधवा के साथ व्याह कर लिया। यह जान कर उनको बड़ा ही क्षोभ हुआ। जिसमे लोग ऐसा न कर सके इसके लिए उन्होंने बहुत कुछ सोचा था। निम्नलिखित पत्र की कुछ पंक्तियां और इकरारनामे का कुछ अंश इस बात के प्रमाण मे यहां पर उद्धृत किया जाता है। —

"दूसरे दिन यदुनाथ मुझे एक सूने घर में ले गया और कुछ देर चुपके खड़े रह कर, आंखों मे आंसू भर कर, उसने मुझ से कहा—मुझे क्षमा कीजिए। मैंने बहुत बुरा काम किया है। यों कह कर व्याकुल भाव से वह रोने लगा। थोड़ी देर बाद कुछ स्वस्थ होकर उसने कहा—मैंने बहुत बुरा काम किया है, क्या आप मुझे क्षमा करेंगे? मैं इस मामले को कुछ भी समझ न सका। मैंने उसे धीरज दिलाते हुए कहा—तुमने क्या किया है, कहो तो सही। सुन कर सोच कर मैं कुछ कह सकता हूँ। तब उसने कहा—गत अगहन के महीने मे + + + मैंने और एक विधवा से व्याह किया है। + + + विशेष रूप से सब सुन कर और उसकी व्याकुलता देख कर मैंने कहा—इसमे तो कोई सन्देह नहीं कि काम तुमने बहुत बुरा किया है। दुःख की बात तो यह है कि जो तुम कर चुके वह अन्यथा नहीं हो सकता। और, इसी कारण अब कोई उपाय नहीं है"।

विद्यासागर ने यह स्वप्न मे भी नहीं सोचा था कि लोग ऐसे समाज-संस्कार के काम मे शामिल होकर ठगविद्या से काम लेंगे। जब उन्होने देखा कि लोग धोखा देने लगे हैं तब से वह विधवाविवाह करने वाले से इस प्रकार का एक इकरारनामा [illegible] लगे —

"विधवाविवाह शास्त्रसिद्ध और सर[illegible] अनुकूल काम है, यह जान कर अपनी इच्छा से [illegible]

मैं तुम से व्याह करता हूँ। आज से हम दोनों मे परस्पर स्त्री और पति का सम्बन्ध स्थापित हो गया। अर्थात् तुम मेरी स्त्री और मैं तुम्हारा पति हुआ। मैं धर्म्म को साक्षी देकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उचित रूप से पति के धर्म्म का पालन करूँगा। अर्थात् तुम्हें जिन्दगी भर, अपनी शक्ति भर, सुख और आराम से रक्खूँगा। तुम से कभी अनादर या अपमान का व्यवहार न करूँगा। यह भी अङ्गीकार करता हूँ कि तुम्हारे जीते जी और विवाह न करूँगा। यदि अपनी दुर्बुद्धि से अथवा दूसरे की बुरी सलाह से तुम्हारी जिन्दगी मे दूसरा व्याह करूँ तो तुमको दण्डस्वरूप एक हजार रुपये दूँगा। और यदि मेरे फिर व्याह करने से असन्तुष्ट होकर या अन्य बुरे व्यवहार से खीझ कर तुम मेरे पास रहना न चाहो तो दूसरी जगह भी रह सकोगी। मैं हर महीने के आरम्भ में तुम्हारे खाने-कपड़े के लिए १०) रु० मासिक देता रहूँगा। + + + मेरे न रहने पर तुम्हारे लडकी-लडके प्रचलित शास्त्रविधि के अनुसार मेरी और मेरी पैतृक सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होगे। इसमे कोई किसी तरह की रुकावट न डाल सकेगा। और, यदि मैं तुमको या तुम्हारे लडकी-लडको को धोखा देने के इरादे से वसीयतनामे आदि के द्वारा अपनी सम्पत्ति की और तरह की व्यवस्था करूँ तो वह नाजायज और नामंजूर होगी। इसके लिए अपनी इच्छा से, होशहवास की हालत में, मैंने यह इकरारनामा लिख दिया है"।

एक रुपये के स्टैम्प पर यह इकरारनामा लिखा है और उस पर चार प्रतिष्ठित लोगो की गवाहियाँ हैं। उनमे बारासात-निवासी सुप्रसिद्ध कालीकृष्ण मित्र और शम्भुचन्द्र विद्यारत्न की भी गवाहियाँ हैं।

विद्यासागरजी बहुविवाह के ऐसे विरोधी थे कि उनका बहुमूल्य जीवन जब थोडा ही बाकी था तब उन्होंने बहुविवाह का प्रतीकार

करने के विचार से मुझे बुला भेजा था। उनके चरणों के दर्शन के लिए जब मैं उनके पास गया तब उन्होंने मुझ से कहा—"सुनता हूँ, सन् १८७२ का ३ नं० आईन संशोधित और परिवर्त्तित होगा"। मैंने कहा—"गवर्नमेंट ने ब्रह्मसमाज के लीडरों से पूछा है कि सन् १८७२ के ३ नं० आईन के द्वारा कैसा काम हो रहा है और उसमें किसी प्रकार के परिवर्त्तन की आवश्यकता है या नहीं ?" इस पर विद्यासागर ने कहा—"मैंने इसी लिए तुमको बुलाया है। तुम मेरा नाम लेकर शिवनाथ और आनन्दमोहन बाबू आदि सब से कहना कि इस आईन मे ऐसा परिवर्त्तन होना चाहिए जिसमें उससे ब्राह्मसमाज की सुविधा के साथ साथ विधवाविवाह-प्रार्थी हिन्दुओं को भी सहायता प्राप्त हो। इस आईन से बहुविवाह रोका गया है, इसी से मैं इससे बहुत प्रसन्न हूँ। किन्तु इसका 'किम्भूत-किमाकार' भाव यदि मिट जाय तो मैं फिर धोखेबाजों के हाथ से छुटकारा पाजाऊँ"। मैंने यह विद्यासागर की इच्छा उस समय प० शिवनाथ शास्त्री, आनन्द-मोहन बसु, उमेशचन्द्र दत्त आदि अनेक महाशयों के आगे प्रकट की थी। किन्तु अब तक उक्त आईन के संशोधन की चेष्टा सफल नहीं हुई।

बहुत से लोग यह गुरुतर प्रश्न किया करते हैं कि विद्यासागर की सबसे बड़ी कीर्त्ति विधवाविवाह चलाने की चेष्टा अच्छी तरह सफल क्यों नहीं हुई ? इस प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर देना तो बहुत कठिन काम है, तथापि यथासम्भव इसका उत्तर देने की चेष्टा की जायगी। वह उत्तर विद्यासागर के ही शब्दों में यह है—"मैंने आशा की थी कि किसी सामाजिक कार्य को शास्त्रसिद्ध साबित कर देने से ही इस देश के लोग उसे शिरोधार्य्य समझेंगे। किन्तु अब मेरा वह विश्वास जाता रहा। इस देश मे शास्त्र और देशाचार की एक राह नहीं है। दोनों की परस्पर विरुद्ध राहें हैं"। शास्त्रविरुद्ध होने

से क्या होता है, सोलहो आने शास्त्र पर विश्वास और उसके अनुरूप समाजशासन न होने से ही समाज मे शास्त्रविरुद्ध काम बिना किसी बाधा के जारी हैं। वीर्य-विक्रय या मोल-तोल करके लड़के का व्याह करना निन्दनीय कार्य है । धर्म्म-शास्त्रों मे कहीं इसका अनुमोदन नहीं किया गया। किन्तु यह भयानक अनीति ऐसे चुपके चुपके समाज की तह तक घुस गई है कि समाज को कुछ भी खबर नहीं हुई और अब वह शरीर में चुभे काँटे की तरह खटक रही है। जिस समाज में शास्त्र की उपेक्षा करके पुत्र का पिता, विवाह-सम्बन्ध उपस्थित होते ही, कन्या के पिता को कङ्गाल बनाने की कोशिश मे लग जाता है, जिस समाज मे दो एक कन्या हो जाने से घोर चिन्ता का सामना करना पड़ता है और ऋण लेते लेते कन्या के पिता का सर्वस्व स्वाहा हो जाता है, जिस समाज मे नातेदारी के माने सर्वस्व हड़प जाना और नातेदार को सदा के लिए दुखी बनाना है, वह समाज शास्त्रसम्मत समझ कर विधवाविवाह के प्रचार में कैसे अग्रसर हो सकता है ? मदिरा पीने का शास्त्र मे निषेध है। अच्छा, मदिरा पीने वाले चरित्रहीन पुरुष की अपेक्षा बालिका विधवा से विवाह करने वाला सज्जन क्या लाख गुना आदर का पात्र नहीं है ? किन्तु समाज क्या करे ? गले मे जिसका दम अटका हुआ है ऐसे समाज की स्थिति-शीलता और उदासीनता का यही स्वाभाविक परिणाम है कि वह ऐसे बुरे कामो को आश्रय दे और शास्त्रसम्मत परिवर्त्तन मे बाधा डाले। विधवाविवाह-प्रचार के मार्ग मे देशाचार ही प्रबल बाधा है। इस बारे मे सुप्रसिद्ध संस्कारक श्रद्धेय शिवनाथ शास्त्री के कुछ वाक्य यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।—

"इस देश के एक भद्र पुरुष ने एक बार मुझ से यह प्रश्न किया था कि राममोहन राय ने जब बङ्गाल में ब्राह्मधर्म का प्रचार किया

था तब उन्होने सम्पूर्ण रूप से प्राचीन शास्त्र की सहायता ली थी। वेद वेदान्त आदि का अनुवाद करके और बहुत से शास्त्रीय वचन उद्धृत करके उन्होने यह सिद्ध किया था कि एकेश्वरवाद इस देश के प्राचीन शास्त्रों से विरुद्ध नहीं है। आप लोगो ने क्यो वह राह छोड दी? आप लोग शास्त्रीय वचन उद्धृत करके अपने मत के प्रचार की चेष्टा क्यो नहीं करते? उस समय मैंने उनको यह उत्तर दिया था कि शास्त्र का अर्थ विचारने में जितने समय और परिश्रम का प्रयोजन है उतना समय लगाने और परिश्रम करने को जी नहीं चाहता। क्योकि अगर मैं यह जानता कि देश के लोग शास्त्रीय वचनो की अपेक्षा में बैठे हुए हैं, शास्त्रीय वचन पाते ही वे अपने पुराने भ्रम को छोड कर नवीन सत्य ग्रहण कर लेंगे तो मैं क्लेश स्वीकार करके शास्त्र-सागर को मथता और अनेकानेक ब्रह्मज्ञान-प्रतिपादक वचन निकाल कर उनके आगे रखता। किन्तु जब देखता हूँ कि लोग विचार के समय चाहे जितनी शास्त्र की दोहाई दे और चाहे जो करे, मगर काम के समय देशाचार को ही मान कर चलते हैं तब शास्त्रीय वचनो की खोज करने के लिए प्रवृत्ति नहीं होती। मेरे इस कथन का प्रमाण विद्यासागर महाशय हैं। विधवा के पुनर्विवाह को शास्त्रसिद्ध साबित करने के लिए उन्होंने कितना परिश्रम किया और क्लेश उठाया! उनकी लिखी विधवाविवाह की पुस्तक उनके असाधारण परिश्रम और अद्भुत शास्त्र-विचार की शक्ति का सजीव प्रमाण है। ऐसी शास्त्रीय छानवीन राममोहन राय के बाद और किसी ने नहीं की। विद्यासागर ने आशा की थी कि उनके देश के लोगो को प्राचीन शास्त्रों पर बडा अनुराग है, इसलिए वे शास्त्रीय वचनो के द्वारा विधवाविवाह के वैध सिद्ध कर देने पर बिना किसी सङ्कोच के उनकी दिखलाई राह पर चलेंगे। किन्तु उनकी यह आशा पूर्ण नहीं हुई। तर्क-युद्ध में प्रबल

प्रतिद्वन्द्वी पण्डितो को उन्होंने परास्त कर दिया, इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु कार्य के समय बहुत कम लोग ही उनके दिखाये मार्ग में अग्रसर हो सके। इससे देख पडता है कि केवल शास्त्र के वचन उद्धृत कर देने से काम नहीं चल सकता। और भी कुछ ऐसी युक्ति होनी चाहिए जिससे लोग देशाचार का भय छोड कर कर्त्तव्य-पालन की ओर अग्रसर हों।

इस बातचीत के बाद अनेक बार मैंने इस बारे में विचार किया है। एक दिन विद्यासागर महाशय के लिखे विधवाविवाह-ग्रन्थ के उपसहार की निम्नलिखित कई पंक्तियाँ मैंने देखीं—'धन्य रे देशाचार! तेरी कैसी अनिर्वचनीय महिमा है! तू अपने अनुगत भक्तो को दुरछेद्य दासत्व-शृङ्खला में बांधे हुए एकाधिपत्य कर रहा है। + + +'

देशाचार के प्रति विद्यासागर महाशय के इस गम्भीर मर्म्मभेदी आक्रोश का कारण यही है कि उन्हे थोडे ही दिनो में इस बात का अनुभव हो गया कि देशाचार ही उनके समाज-सस्कार के मार्ग में पत्थर की दीवार बना खडा है"।

यह तो हुआ एक कारण। दूसरा कारण यह है कि किसी समाज में कोई परिवर्त्तन करने के समय समाज के बह रहे प्रवाह में अपनी चेष्टा को छोड देने से वह बह जाती हैं। क्योकि जिस बहुत दिनो के अभ्यास से उत्पन्न प्रकृतिगत आलस्य और अनुदारता ने समाज-शरीर की अस्थिमज्जा में प्रवेश करके उसे जड बना दिया है उसे दूर किये बिना—समाज-शरीर मे आग्रह और उत्साह का ताजा खून दौडाये बिना—उस समाज मे नवीन विचारो की प्रबल बढ़िया लाये बिना—किसी प्रकार सफलता की सम्भावना नहीं की जा सकती। इस प्रकार की नये विचारो की बढ़िया लाने के लिए केवल शास्त्र के वचनो की सहायता लेना ही यथेष्ट नहीं है। सूक्ष्म, किन्तु सुदृढ,

तांबे की सलाई बिजली के तीव्र प्रकाश के सञ्चालन का कार्य करती है। वैसे ही धर्म को मध्य-बिन्दु बना कर, धर्म को प्राण-रूप से स्थापित कर, समाजसंस्कार का काम शुरू करना चाहिए। धर्म की नींव पर जो समाजसंस्कार स्थापित हो वही सुसिद्ध होता है। विद्यासागर का समाजसंस्कार सर्वथा शास्त्रसम्मत और शास्त्रकथित धर्म-व्याख्या के अनुकूल हुआ, इस बारे में कोई त्रुटि नहीं हुई। किन्तु उनका समाजसंस्कार धर्म-संस्कार से उत्पन्न न था और इसी कारण वह विशेष भाव से स्थायी नहीं हो सका। इस सम्बन्ध में बम्बई-हाईकोर्ट के माननीय जज महादेव गोविन्द रानाडे ने मलाबारी महाशय को जो पत्र लिखा था उसका कुछ अंश, प्रमाण के तौर पर, यहाँ उद्धृत किया जाता है —

"Our deliberate conviction, however, has grown upon us with every effort, that it is only a religious revival that can furnish sufficient moral strength to work out the complex social problems which demand our attention Mere consideration of expediency or economical calculations of gains or losses can never nerve a community to undertake and carry through social reforms, specially with a community like ours, so spell-bound by custom and authority. The truth is, the Orthodox Society has lost its power of life, it can initiate no reform, nor sympathise with it Only a religious revival, a revival not of forms, but of sincere earnestness which constitute true religion, can effect the desired end"—The Hon'ble Justice M G Ranade of Bombay High Court, wrote in reply to Mr Malabari's note

अर्थात् इतने दिनों तक काम करने से मुझे यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि जिसमें मन लगाना हमारा सब प्रकार से कर्त्तव्य है उस जटिल सामाजिक प्रश्न की सम्पूर्ण रूप से सुन्दर मीमांसा धर्म-सम्बन्धी आन्दोलन की सहायता के बिना कभी नहीं हो सकती। सुविधा

या लाभ-हानि का विचार समाज-शरीर में संस्कार करने के लायक़ बल नहीं ला सकता। हमारा समाज शास्त्र की आज्ञा और देशाचार का सोलहो आने गुलाम हो रहा है। + + असल बात यह है कि रक्षणशील समाज की जीवनी शक्ति लुप्त हो गई है। इसके द्वारा कोई संस्कार का कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकता और वैसे कार्य्य मे इसकी सहानुभूति भी नहीं है। बाहरी अनुष्ठानो और कार्यो से परिवर्त्तन सुसिद्ध नहीं होता। सजीव अनुराग-रञ्जित नवीन धर्म-जीवन के प्रवाह मे ये सब संस्कार के काम सुसिद्ध हो सकते हैं।

इस देश में एक कहावत प्रचलित है कि "चार जने मिल कीजै काज। हारें जीवे न आवे लाज॥" किन्तु हिल मिल कर काम करना हमारे देश में सम्भव नहीं है। धर्मशास्त्र के जानने वाले महापुरुष एक दूसरे से हेलमेल नहीं रखते थे, इसीसे एक एक करके बीस धर्मशास्त्र* यहाँ बने और उनका प्रचार हुआ। इनके सिवा और भी कई धर्मशास्त्र यहां मौजूद हैं। इन धर्मशास्त्रों की विधि ने साधारणतः लोकव्यवहार के काम में सहायता करने पर भी परस्पर मे भारी भेद की सृष्टि करके भारतवर्षीय हिन्दुओ के छोटे छोटे अनेक दल बना दिये हैं। इसमे कोई सन्देह नहीं कि समाजशृङ्खला बनाये रखने के काम मे यह मतभेद भारी विघ्न है। भारत मे शाक्त शैव, वैष्णव, गाणपत्य तथा नानकपन्थी, कबीरपन्थी आदि छोटे छोटे दलो ने उत्पन्न होकर सामाजिक जीवन को क्षीण कर डाला है। "चार जने मिलि कीजै काज। हारे जीते न आवै लाज॥" वाली

---

* मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिरा।
यमापस्तम्बसंवर्त्ताः कात्यायनबृहस्पती॥
पराशरव्यासशङ्खलिखिता दक्षगौतमौ।
शातातपो वसिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः॥

कहावत का चरितार्थ होना हमारे भाग्य मे वदा ही नही है। अनेक मुनियो के अनेक मतो ने ही हमारे देश का सर्वनाश किया है। राजा राजवल्लभ ने विधवाविवाह की चेष्टा की थी तब राजा कृष्णचन्द्र ने बाधा डाली। स्मार्त्त भवशङ्कर विद्यारत्न और मुक्ताराम विद्यावागीश आदि ने पहले विधवाविवाह के अनुकूल व्यवस्था दी और पीछे उससे विमुख होकर विरोधियो के दल मे मिल गये। इस प्रकार विद्यासागर की प्राणपण-चेष्टा को विपत्तियो के विरोध ने बहुत कुछ निष्फल कर दिया। विधवाविवाह का प्रचार कम होने का यह तीसरा कारण है।

चौथा कारण यह है कि वह जैसे आग्रह के साथ जीवन की अन्तिम घडी तक इस काम मे लगे रहे वैसे उनके बाद इस काम को करते रहने वाला दूसरा आदमी नहीं था। हाँ, प्रेमचन्द्र तर्कवागीश के कहने के अनुसार कि "पश्चिमोत्तर प्रदेश, बम्बई, मदरास आदि स्थानो मे, जहाँ हिन्दू-धर्म प्रचलित है, दौड लगानी पडेगी" उन्होंने विधवाविवाह-पुस्तक का जो अँगरेजी-संस्करण निकाला उससे अवश्य कुछ सफलता प्राप्त हुई। विद्यासागर के मरने पर भी बङ्गाल के बाहर भारत के अन्य अनेक स्थानो मे विधवाविवाह प्रचलित करने की चेष्टा मे लगे हुए लोगो की संख्या कम नही है। बङ्गालियो का सौभाग्य तो यह है कि सब प्रकार के सामाजिक शुभ कार्य्यो का सूत्रपात बङ्गाल में ही होता है। और, दुर्भाग्य यह है कि उनका प्रचार या विस्तार अन्य स्थानो में होता है, यहाँ नहीं होता। निम्न-लिखित विवरण इस बात का साक्षी है कि पश्चिमोत्तर प्रदेश, पञ्जाब, बम्बई और मदरास मे विधवाविवाह का विशेष प्रचार करने के लिए इस समय भी खूब चेष्टा की जा रही है। बरोदा के राजा महाराज सयाजी राव गायकवार ने सन् १८८६ की १५ वीं जूलाई के पत्र में मलाबारी महाशय को लिखा था —

"I think there has already been too much writing and lecturing on the subject and that such activity, however useful and necessary must have a limit Evils like these call loudly for action, and action alone can remedy them It is not very pleasant to reflect that so many of our learned young men, who have such ample opportunities of doing good to their country, do not, when occasion offers, show the truth of the old adage "example is better than precept, by boldly coming forward may be, at some personal sacrifice, to respond to what they, from their otherwise secure position would lend weight and like to be recognised as the *aristocracy of intelligence* *Nothing is rarer in this world than the courage which accepts all personal responsibilities and carries its burden unbending to the end* Maharaja Gaekwar of Baroda

अर्थात्, "मुझे जान पडता है कि लेखो और वक्तृताओ के द्वारा इस विषय की यथेष्ट आलोचना हो चुकी और इस तरह की आलोचना के लिए एक सीमा का रहना आवश्यक है। ये सामाजिक दुर्नीतियाँ ज्यो की त्यों मौजूद रह कर हम से काम में लगने के लिए कहती हैं। कार्य के द्वारा इन मामलो में अग्रसर हुए बिना इनका प्रतीकार नहीं होगा। सुशिक्षित युवक लोग सब तरह का सुभीता रहते भी कार्य के समय यदि ऐसे शुभ कार्य मे अग्रसर न हो—उपदेश देना छोड कर आप लोग कुछ हानि स्वीकार करते हुए इन सस्कारो को कार्य्य-रूप में परिणत करने की चेष्टा न करे—और, इन सब कार्यो मे सहायता न करके निर्लिप्त भाव से विचार के विषय मे समाज के शिरोमणि बनने का प्रयास करे, तो समाज की उस अवस्था को सोचने से हृदय मे आनन्द का उदय नहीं होता। जीवन के अन्तिम दिन तक सत्साहस के अनुगत होकर पूर्णरूप से जीवन की सब तरह की जिम्मेदारियो को अदा करने से बढ कर ससार में श्रेष्ठ सम्पत्ति और क्या हो सकती है?"

"धन्य रे देशाचार ! तेरी कैसी अनिर्वचनीय महिमा है ! तू अपने अनुगत भक्तों को दुश्च्छेद्य दासत्व की शृङ्खला मे बाँध कर कैसा एकाधिपत्य कर रहा है ! तूने क्रमश अपना आधिपत्य फैला कर शास्त्र के सिर पर पदार्पण किया है, धर्म के मर्म पर चोट पहुँचाई है, हिताहित-बोध का गतिरोध कर दिया है, न्याय अन्याय के विचार का मार्ग रूँध दिया है । तेरे प्रभाव से शास्त्र को भी लोग अशास्त्र समझते हैं और अशास्त्र को भी शास्त्र मानते हैं, लोग धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म समझने लगते हैं । किसी भी धर्म को न मानने वाले, स्वेच्छाचारी, कुचरित्र लोग भी तेरे अनुगत रह कर केवल लोकाचार के हिमायती होने के कारण सर्वत्र आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं—पुजते हैं । जो लोग जाति-बहिष्कृत धर्मनाशक कार्य करके भी लोकाचार का दम भरते हैं उनके साथ खान-पान बनाये रखने में धर्म नहीं जाता, किन्तु यदि कोई निरन्तर अच्छे आचरण से रह कर भी केवल लोकाचार की पर्वाह नही करता उसके साथ, खाना-पीना कैसा, बात करने मे भी पातक लग जाता है ।

"हा धर्म ! तुम्हारा मर्म समझना कठिन है ! किस तरह तुम्हारी रक्षा होती है और किस तरह लोप, सो तुम ही जान सकते हो !

"हा शास्त्र ! तुम्हारी कैसी दुर्दशा देख पडती है ! तुम जिन कर्मों को वारम्वार धर्म और जाति से भ्रष्ट करने वाला बतलाते हो उन्ही कर्मों के करने वाले सर्वत्र साधुपुरुष और धर्मपरायण कहला कर आदर पाते हैं, और तुम जिन कर्मों को विधेय बतलाते हो उनको करना कैसा, उनकी चर्चा उठाने वाला भी पुरुष बडा भारी नास्तिक, अधार्मिक और नीच समझा जाता है ! इस पुण्यभूमि में अनेक अनिवार्य पापो का प्रवाह क्यो उमड रहा है, इसकी खोज

करने से यही जान पड़ता है कि तुम्हारे प्रति अनादर और लोकाचार के प्रति आस्था ही उसका मूल-कारण है।

"हा भारतवर्ष! तुम कैसे अभागे हो! तुम अपने पहले के सपूतो के कारण पुण्यभूमि कह कर पृथ्वी पर परिचित थे, किन्तु तुम्हारे इस समय के सन्तानो ने स्वेच्छाचार करके तुमको जैसी पुण्यभूमि बना दिया है उस पर ध्यान देने से सारे शरीर का खून सूख जाता है। नहीं मालूम कितने दिनो में तुम्हारी यह अवस्था दूर होगी।

"हा भारतवर्ष के मनुष्यो! और कितने दिनों तक तुम आलस्य के पलँग पर मोहनिद्रा से अचेत पड़े रहोगे! एक बार ज्ञान की आँखें खोल कर देखो, तुम्हारी पुण्यभूमि भारतवर्ष में व्यभिचार और गर्भहत्या का पाप कैसे वेग से बढ़ रहा है। बस, अब यथेष्ट हो गया। अब एकाग्र होकर शास्त्र के यथार्थ तात्पर्य और मर्म को समझने में मन लगाओ और उसके अनुसार काम करो। ऐसा करने ही से अपने देश का कलङ्क दूर कर सकोगे। किन्तु दुर्भाग्यवश तुम चिरसञ्चित कुसंस्कार के ऐसे वशीभूत हो रहे हो, देशाचार के ऐसे दास हो रहे हो, लौकिक आचार की रक्षा में ऐसे दृढ हो रहे हो कि सहसा तुम से यह आशा नहीं की जा सकती कि तुम कुसंस्कार और देशाचार का अनुसरण छोड़ कर यथार्थ सन्मार्ग के पथिक बन सकोगे। अभ्यास के दोष से तुम्हारी बुद्धि और धर्म-प्रवृत्ति ऐसी कलुषित हो गई है कि अभागिनी विधवाओ की दुर्दशा देख तुम्हारे चिरशुष्क हृदय में कारुण्यरस का सञ्चार होना कठिन है। देश में व्यभिचार और भ्रूणहत्या का प्रबल प्रवाह देख कर भी तुम्हारे हृदय में उस पर घृणा का होना असम्भव सा है। तुम प्राणप्यारी कन्याओ को वैधव्य की आग में जलाने के लिए राजी हो, वे अजेय इन्द्रियो के वशीभूत

होकर व्यभिचार-दोष से दूषित हो तो उसमें तुम्हे लज्जा नहीं आवेगी। धर्मलोप के भय को तिलाञ्जलि देकर केवल लोकलज्जा के भय से उनकी भ्रूणहत्या मे सहायता करके स्वय सपरिवार पापपङ्क मे कलङ्कित होना तुमको पसन्द है। किन्तु कैसे आश्चर्य की बात है, शास्त्रविधि के अनुसार बालिका विधवा का पुनर्विवाह करके उसे वैधव्ययन्त्रणा से बचाना और आप भी सब आपत्तियो से छुटकारा पाना तुमको पसन्द नहीं। तुम समझते हो कि पति के मरते ही स्त्रियो का शरीर पत्थर का हो जाता है, उन पर दु ख और यन्त्रणा का प्रभाव नही पडता, उनके अजेय शत्रु इन्द्रिय एकदम निर्मूल हो जाते हैं। किन्तु तुम्हारा यह सिद्धान्त बिलकुल भ्रान्त है। इस बात के प्रमाण तुमको पग पग पर प्राप्त होते हैं। सोच कर देखो, इसी ध्यान न देने के कारण कैसा विषमय फल भोग रहे हो। हाय, कैसे खेद की बात है। जिस देश के पुरुषो मे दया नहीं है, धर्म नहीं है, न्याय-अन्याय का विचार नहीं है, हिताहित की समझ नहीं है, सत् विवेचना नहीं है, और वे लोकाचार की रक्षा को ही प्रधान कर्म और परम धर्म समझते हैं, उस देश मे, हे ईश्वर, अबला स्त्रियो को पैदा ही मत करो।

"हा अबलाओ। तुम किस पाप से भारतवर्ष मे जन्म ग्रहण करती हो।"

विधवाविवाह और उसके सम्बन्ध में सरकारी आईन पास होने के आन्दोलन से जिस समय सारा बङ्गाल व्याप्त हो रहा था, कोई विद्यासागर के पक्ष मे था और कोई विपक्ष मे, ठीक उसी समय विद्यासागर एक और शुभ कार्य मे लगे हुए थे। बङ्गाल के कुलीन ब्राह्मण एक साथ बहुत से विवाह कर लिया करते थे, एक प्रकार से यही उनकी जीविका थी। इस बहुविवाह-प्रथा को रोकने के लिए,

बहुत लोगों के हस्ताक्षर करा कर, विद्यासागर ने एक प्रार्थनापत्र गवर्नमेंट के पास भेजा। बङ्गाल के कुलीन ब्राह्मणों में जिस प्रकार बहुविवाह की प्रथा प्रचलित है उस (निष्ठुर कार्य) का अनुमोदन हिन्दू-शास्त्रों में कहीं नहीं है। शास्त्र में कुछ विशेष अवस्थायें बतलाई गई हैं, जिनमें पुरुष एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह कर सकता है। किन्तु वैसी विशेष आवश्यकता विरले ही को होती है। वैसे बहु-विवाह से बहुविस्तृत हिन्दूसमाज की विशेष क्षति नहीं हो सकती थी। उस विशेष आवश्यकता के अवसर पर मनुष्य दस, बीस, तीस, या इनसे भी अधिक ब्याह नहीं कर सकता। इस प्रकार बहुत से विवाह करना निन्दनीय और युक्ति और धर्म्म के विरुद्ध है। विद्यासागर ने अपने बहुविवाह-विषयक बहुविस्तृत ग्रन्थ में इस बात को बहुत साफ तौर से दिखलाया है कि युक्ति और धर्म के विरुद्ध निन्दनीय बहुविवाह की चाल ने बङ्गाल के कुलीन ब्राह्मणों में कहाँ तक जोर पकड़ा था और उसके द्वारा देश का कैसा सर्वनाश हुआ है। उन्होंने उक्त पुस्तक में बङ्गाल के ब्राह्मणों की उत्पत्ति, उन्नति और अवनति का धारावाहिक ऐतिहासिक विवरण लिखा है और यह भी प्रमाणित कर दिखाया है कि मध्यकाल में बङ्गाल के कुलीन ब्राह्मण अपने परिवार की स्त्रियों को पलाऊ पशुओं से अधिक नहीं समझते थे। किसी किसी जगह इससे भी अधिक हीन दशा में स्त्रियों को अपनी जिन्दगी के दिन बिताने पड़ते थे और इस समय भी यह विश्वास नहीं होता कि स्त्रियों को इस दुःख से छुटकारा मिल गया है।

सर्वश्रेष्ठ संहिताकार महात्मा मनु ने जो दूसरी स्त्री से ब्याह करने की व्यवस्था दी है उसके द्वारा इस प्रकार के दुराचार का समर्थन कदापि नहीं होता। मनु लिखते हैं —

मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत् ।
व्याधिता वाऽधिवेत्तव्या हिंस्राऽर्थघ्नी च सर्वदा ॥

स्त्री यदि मद्य पीने वाली, व्यभिचारिणी, स्वामी के प्रतिकूल काम करने वाली, चिररोगिणी, अत्यन्त क्रूर स्वभाव की और धन का नाश करने वाली हो तो अधिवेदन अर्थात् दूसरा व्याह कर लेना चाहिए ।

वन्ध्याऽष्टमेऽधिवेद्याऽब्दे दशमे तु मृतप्रजा ।
एकादशे स्त्रीजननी मद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥

स्त्री वन्ध्या हो तो व्याह के आठवे वर्ष, पुत्र हो होकर मर जाते हो तो दसवे वर्ष, केवल कन्या ही पैदा होती हो तो ग्यारहवे वर्ष और अगर स्त्री कर्कशा हो तो तुरन्त दूसरा व्याह करना चाहिए ।

ऊपर लिखे कारणो मे से कोई भी कारण उपस्थित होने पर एक स्त्री के रहते भी दूसरी स्त्री से व्याह करने की व्यवस्था इन दोनो श्लोको मे दी गई है ।

यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि मनु के समय मे बङ्गाल के कुलीन थे ही नहीं । अतएव मनुसहिता में उनके लिए उक्त विषय की व्यवस्था नहीं है, बङ्गाल के कुलीनो के लिए यह व्यवस्था लागू नहीं हो सकती । यह हो सकता है, किन्तु गृहस्थी के निर्वाह के लिए साधारणत जो अवस्थाये असुविधाजनक हो सकती हैं उन सब का उल्लेख करके मनु ने उन अवसरो पर समाजहित के लिए दूसरा व्याह करने की विधि बना दी है । इसके सिवा और एक बात यह है कि मनुप्रणीत सनातन सुव्यवस्था के अनुगामी होकर चलते चलते समाज की धारा विपथगामिनी हो गई है । यह न होता तो बल्लाल सेन की कौलीन्यप्रथा और देवीवर घटक का मेल-बन्धन किस तरह

ब्राह्मण-धर्म और आचार-व्यवहार के ऊपर आधिपत्य कर सका? मनु-संहिता आदि के निर्देश को नांघ कर यह प्रथा बङ्गाल में प्रचलित हुई है। यह प्रथा सारे अमङ्गल, अनाचार और अन्याय का कारण है। इसी से स्त्रीजाति के हितैषी कोमल-हृदय विद्यासागर जीवन के अन्तिम समय तक विधवाविवाह-प्रचार की तरह बहुविवाह-निवारण की भी चेष्टा करते रहे। वह बहुविवाह-निषेध के ग्रन्थ की भूमिका में लिखते हैं —

"स्त्रीजाति पुरुषजाति की अपेक्षा निर्बल और सामाजिक नियम के दोष से पुरुषजाति के बिलकुल अधीन है। इस दुर्बलता और अधीनता के कारण स्त्रियों को पुरुषों के आगे अवनत और अपदस्थ होकर जीवन बिताना पड रहा है। प्रभुत्व को प्राप्त प्रबल पुरुषगण स्त्रियों के साथ मनमाना अत्याचार और अविचार किया करते हैं और स्त्रियाँ निपट निरुपाय होने के कारण उन सब अत्याचारों को चुपचाप सहती हुई अपनी जिन्दगी काटती हैं। पृथ्वी के प्रायः सभी देशों में स्त्रियों का यही हाल है कि उन्हें पुरुषों की इच्छा के अनुसार जिन्दगी बितानी पडती है। किन्तु इस अभागे देश में पुरुषों की निर्दयता, स्वार्थपरता और बेसमझे काम करने की आदत इतनी बढी चढी है कि यहाँ की स्त्रियों की बहुत ही बुरी हालत है। अन्य किसी देश की स्त्रियों को ऐसी दुर्दशा का सामना नहीं करना पडता। यहाँ के पुरुष कई एक अत्यन्त निन्दित प्रथाओं को जारी रख कर अभागिनी स्त्रियों को सब प्रकार कष्ट दे रहे हैं। उन प्रथाओं में से बहुविवाह की प्रथा इस समय यहाँ बडा भारी अनर्थ कर रही है। इस निन्द-नीय नृशंस प्रथा के प्रचलित रहने के कारण स्त्रियों की असीम दुर्दशा हो रही है। इस प्रथा की प्रबलता के कारण यहाँ की स्त्रियों को जैसे क्लेश और यातनायें भोगनी पडती हैं उन पर विचार करने से हृदय फट

जाता है। मतलब यह कि बहुविवाह का अत्याचार बङ्गाल मे इतना अधिक और असह्य हो उठा है कि जिसको कुछ भी हिताहित का बोध और सत् असत् की विवेचना-शक्ति है वही इस प्रथा का भारी शत्रु बन बैठा है। ऐसे लोगो की आन्तरिक इच्छा है कि इसी घडी यह प्रथा उठा दी जाय। आज कल इस देश की ऐसी अवस्था हो गई है, यहा का समाजशासन ऐसा शिथिल हो गया है कि राजा की आज्ञा के बिना ऐसे देशव्यापी दोष को रोकने का दूसरा उपाय नही देख पडता। इसलिए अनेक लोगो ने उद्योग करके सम्पूर्ण दोषो की खान इस बहुविवाह की प्रथा को रोकने के लिए सरकार मे आवेदनपत्र भेजा है। इस बारे मे कुछ लोग कुछ आपत्तियाँ उठाते हैं। यथाशक्ति उन सब आपत्तियो का उत्तर दिया जाता है।"

विद्यासागर ने इस बहुविवाह-सम्बन्धी पुस्तक मे अत्यन्त विस्तृत-भाव से बङ्गाली ब्राह्मणो का इतिहास और कौलीन्य-प्रथा के कारण होने वाली दुर्घटनाओ का हाल लिखा है। साथ ही यह भी दिखलाया है कि इस अनाचार को सदाचार बनाने के कारण समाज मे कितनी कमजोरी और ओछापन आ गया है। इस ग्रन्थ मे भी विद्यासागर का शास्त्रज्ञान, सूक्ष्मदृष्टि और लोकहितैषणा का पूरा परिचय प्राप्त होता है। उन्होने पूर्वबङ्ग और पश्चिमबङ्ग के बहुविवाह करने वाले कुलीनो की लिस्ट बनाई थी। उसे देखने से हृदय पर गहरे विषाद की छाया छा जाती है। बहुविवाह-निवारण का पहला उद्योग विधवा-विवाह के पहले आन्दोलन मे दब गया। उस समय गवर्नमेंट ने भी विधवाविवाह की बाधा दूर करके ही चुप रहना उचित समझा। विद्यासागर के भेजे बहुविवाह-निवारण के आवेदनपत्र का समर्थन करने के लिए कई और आवेदनपत्र भेजे गये थे। उनमे बर्दवान के

राजा महताबचन्द बहादुर और कृष्णनगर के महाराज श्रीशचन्द्र और उनके बाद उनके पुत्र सतीशचन्द्र का आवेदनपत्र ही विशेष भाव से उल्लेख के योग्य है। महाराज महताबचन्द बहादुर के सुतीव्र-समालोचना-पूर्ण और बहुविस्तृत आवेदनपत्र का थोड़ा सा अंश यहाँ पर उद्धृत किया जाता है —

"The Coolins marry solely for money and with no intention to fulfil any of the duties which marriage involves The women who are thus nominally married, without the hope of ever enjoying the happiness which marriage is calculated to confer particularly on them, either pine away for want of object on which to place the affections which spontaneously arise in the heart or are betrayed by the violence of their passions and their defective education into immorality * * *

"That the remedy, though obvious and perfectly consistent with the Hindu law, cannot, in the present disorganised state of Hindu Society, be applied by the force of public opinion, or any other power than that derived from the Legislature"—27th December, 1855

अर्थात् कुलीन लोग रुपये के लोभ से ब्याह करते हैं। वैवाहिक जीवन के किसी कर्त्तव्य को सम्पन्न करने के इरादे से वे ब्याह नहीं करते। दाम्पत्य-सुख की आशा को तिलाञ्जलि देकर जिन स्त्रियों को इस नाममात्र के विवाह-बन्धन में अपना गला फँसाना पड़ता है वे अपने हृदय की प्रीति को अर्पण करने का पात्र न पाकर या तो धीरे धीरे सूख कर मुर्दा सी हो जाती हैं और या सुशिक्षा के अभाव से प्रवृत्ति की प्रबल उत्तेजना के वशीभूत होकर पाप के मार्ग में पैर रखती हैं। + + +

इस सामाजिक व्याधि का प्रतीकार यद्यपि सहज समझ में आ जाने वाला और शास्त्रसम्मत है, तथापि हिन्दू-समाज की वर्त्तमान

विश्रृङ्खला के कारण आईन की सहायता के विना सर्वसाधारण की इस दुर्नीति को रोकने की इच्छा या अन्य कोई उपाय किसी तरह सफल नहीं हो सकता ।

बहुविवाह की प्रथा को उठा देने के लिए नदिया के राजा, दिनाज-पुर के महाराज और कलकत्ता, हुगली, मेदिनीपुर, बर्दवान, नदिया, यशोहर आदि अनेक स्थानो के बहुत से प्रतिष्ठित पुरुषो ने गवर्नमेंट के निकट प्रार्थना की थी । ढाके के जमींदार बाबू राजमोहन राय ने खास कर बहुविवाह और साधारणत विवाह-सम्बन्धी अनेक प्रकार के कुसस्कार मिटाने के लिए जो आवेदन-पत्र भेजा था उस पर बहुत से विद्वानो और पण्डितो ने हस्ताक्षर किये थे । इस आवेदनपत्र मे एक जगह पर लिखा है —

"That female children, married under the circumstances, commonly continue after marriage to live with their parents, their nominal husbands generally taking no notice of them and having no communication with them, but that, in the event of the death of their husbands, they are subject to all the disabilities which law and custom impose upon Hindu widows "--22nd July, 1856

अर्थात् बालिकाये उल्लिखित प्रकार के वृद्ध, असमर्थ, जीविका-हीन और हीन-चरित्र के आदमियो के साथ विवाह-बन्धन में बँध कर अन्त को जन्म भर क्लेश सहती हुई पिता के घर रहती हैं । इन्हे केवल पति का नाम सुन लेने का ही सौभाग्य प्राप्त होता है । वे पति इनके साथ न कोई सम्बन्ध रखते हैं और न इनकी खबर ही लेते हैं । किन्तु इस प्रकार लोगो के मुँह से सुने हुए अपरिचित स्वामी के मरने पर इन स्त्रियो को आईन और समाज-शासन के भय से वैधव्य-जीवन के सब प्रकार के दु ख-कष्ट भोगने के लिए लाचार होना पडता है ।

विद्यासागर ने अपने बहुविवाह-विषयक ग्रन्थ मे हुगली जिले के रहने वाले बहुविवाह करने वाले कुलीन ब्राह्मणो की जो सूची दी है उसे देखने से जान पडता है कि ८६ गांवो के १९७ कुलीन-सन्तानों ने उस समय बहुविवाह किये थे। इन्होंने सब मिला कर १२८८ स्त्रियो से विवाह करके उनमे से अधिकांश को सदा के लिए दुःख की आग मे जलने के लिए लाचार कर दिया था। हुगली जिले मे एक जनाई गाँव है। उसमे बहुत से प्रतिष्ठित प्रसिद्ध भद्रपुरुष रहते हैं। वहाँ के ६४ कुलीनो ने १६२ व्याह किये थे। इनमे सबसे अधिक व्याह करने वाले दो महात्मा थे। उन्होंने दस दस विवाह किये थे। सारे हुगली जिले में बहुविवाह से विपन्न स्त्रियो का हिसाब लगाने से हर एक महात्मा के हिस्से में ग्यारह से अधिक स्त्रियो की औसत पडती है। इनमे सबसे अधिक विवाह करके जिन महाशय ने अपने कौलीन्य की रक्षा की थी वह जब ५५ वर्ष के थे तब बीस विवाह कर चुके थे। मालूम नहीं, जीवन के अवशिष्ट भाग में शेष अस्सी विवाह करके वह अपने पौरुष का परम परिचय देने मे समर्थ हुए या नहीं। विद्यासागर महाशय की उक्त पुस्तक के अन्तर्गत यह सूची देखने से जान पडता है कि ऐसे बहुविवाह करने वालो में जो अवस्था में सबसे छोटे महापुरुष थे वह अट्ठारह वर्ष की अवस्था मे ग्यारह स्त्रियो के सौभाग्य का कारण बन चुके थे। ऐसे ही अन्य एक महात्मा ने बीस वर्ष की अवस्था मे सोलह स्त्रियो को सनाथ करने का पुरुषार्थ दिखाया था। विद्यासागर ने विक्रमपुर-प्रान्त के बहुविवाह की दो सूचियाँ बड़े परिश्रम से बनाई थीं। वे अभी छपी नहीं हैं। उनको पढने से पाठको को बडा ही विस्मय होता। यहाँ पर उन अप्रकाशित सूचियो से कई एक विस्मयमयी घटनाओ का हाल उद्धृत किया जाता है। ढाका, बरीसाल और फरीदपुर जिलो के १७७

गाँवों की ये सूचियाँ हैं। इन गाँवो के बहुविवाह करने वाले महाशयों की संख्या ६५७ है। इन्होंने सब मिला कर ३५८८ विवाह किये। हर एक के हिस्से मे साढे पाँच पाँच औरत की औसत पडती है। इनमे सबसे अधिक कौलीन्य-मर्यादा की रक्षा करके बङ्गाल के सामाजिक इतिहास मे अक्षय-कीर्त्ति की घोषणा करने वाले महाशय का नाम ईश्वरचन्द्र मुखोपाध्याय है। यह बरीसाल जिले के अन्तर्गत कलसकाटी गाँव में रहते थे। जिस समय उल्लिखित सूचियाँ बनी थीं उस समय इनकी पचपन वर्ष की अवस्था थी और यह केवल १०७ ब्याह कर चुके थे। उसके बाद जीवन की अन्तिम घडी तक इन्होंने और कितनी स्त्रियो को सनाथ किया होगा, सो परमेश्वर ही जाने।

एक बार, जब मैं लखनऊ मे था, वाजिदअली शाह का राजभवन कैसरबाग देखने गया। मैंने चारो ओर अनेक दो-मंजिले मकानो का सिलसिला देख कर अपने साथियों से पूछा—इतने सुगठित सुन्दर मकान एक ही सिलसिले मे क्यो बने हैं? उत्तर मिला कि इनमे बादशाह की बेगमें रहती थी। बादशाह के सैकडों स्त्रियाँ सुन कर उस नई जवानी की अवस्था मे जो विषाद हुआ था वह आज तक मुझे नहीं भूला। किन्तु आज अधेड अवस्था मे, अपने देश मे, अपने समाज मे, आत्मीय स्वजनो के द्वारा इस निन्दनीय कर्म्म (बहुविवाह) का होना देखना पडता है। जिसको देख कर आश्चर्य्य तो होता ही है, किन्तु उसके साथ ही इस दुष्कर्म्म के परिणाम को सोच कर गहरी ग्लानि और क्षोभ से हृदय हिल उठता है। आज मेरी समझ में यह बात आती है कि नवाब को सब माफ है, क्योंकि वह नवाब ही थे। नवाबी मामले ही जुदे होते हैं। उनके सुखभोग के माफिक उनका ऐश्वर्य और सम्पत्ति थी। फिर उनकी बेगमें जो चाहे सो कर सकती थीं, मनमाना खा-पी-पहन सकती

थीं।' किन्तु जिनको पग पग पर पराया मुँह ताकना पडता हो, ऐसी स्त्रियों को व्याह कर जो लोग धर्म, कर्म या सुखभोग की लालसा से किसी दिन भूल कर भी उस स्त्री के घर जाने वाले नहीं, उनको क्या अधिकार है कि वे सुकोमल बालिकाओं के सुख के सपने को मिटा कर उन्हें दारुण मानसिक ताप और यन्त्रणा के अग्निकुण्ड में डाल कर जन्म भर जलावें ? स्त्री या उसके आत्मीय स्वजनों के सञ्चित धन को पैर धुलाने की दक्षिणा में लेना और धन मिलने की आशा न होने पर प्रतिपदा के चन्द्र की तरह अदृश्य होना जिनका काम है उन पाषाण-हृदय मनुष्यों को क्या अधिकार है कि वे सहिष्णुता की साक्षात् मूर्त्ति स्त्रियों के हृदय पर निराशा का दारुण वज्र चलावें ? इस अमानुषिक निष्ठुर आचरण को अपनी आँखों से देख कर अबलाओं के सुहृद् विद्यासागर ने बङ्गाल-व्यापी आन्दोलन में शामिल होकर यह प्रश्न किया था कि जिन्हें जीवन भर में एक दिन के लिए भी पतिदर्शन का सौभाग्य प्राप्त करना असम्भव है उनकी दुःख-दुर्दशा बढाने का तुमको क्या अधिकार है ? यदि दैवसंयोग से केवल एक ही आदमी १०७ व्याह करता तो वह दूसरी बात थी। किन्तु जब देखते हैं कि और एक आदमी ने पचास वर्ष की अवस्था तक ५० व्याह किये, एक आदमी ने पैंतीस वर्ष की अवस्था तक ४० व्याह किये, एक आदमी ने पैंतीस वर्ष की अवस्था तक ३५ व्याह किये तथा और एक आदमी ने सत्ताईस वर्ष की अवस्था तक १४ व्याह किये तब आश्चर्य्य का ठिकाना नहीं रहता। किन्तु यदि इतना ही होता तो चाहे मन के क्लेश को मन में ही रख कर इस सामाजिक नीति की सहस्रमुख होकर स्तुति भी करते। परन्तु हाय ! यहीं पर इस निष्ठुर आचरण की इतिश्री नहीं हुई। और भी जो कुछ है वह लिखते लज्जा लगती है। एक बारह वर्ष का बालक कुलमर्य्यादा की

रक्षा के लिए दो विवाह कर चुका था। आशा है, इतने से पाठको को देशाचार की शक्ति मालूम हो गई होगी। विद्यासागर की इस उक्ति का मतलब उनकी समझ में अच्छी तरह आ गया होगा कि "हा अबलाओ! किस पाप से तुम भारतवर्ष में पैदा होती हो!" सूची देखने से ज्ञात होता है कि और एक बारह वर्ष के लडके के पाँच व्याह और एक दूसरे बारह वर्ष के लडके के छ व्याह हो चुके थे। एक पाँच वर्ष के बालक के दो व्याहो की बात सुन कर पाठको को शायद विश्वास न होगा, किन्तु उक्त सूची मे नाम-धाम सहित स्पष्ट अक्षरो मे उल्लिखित बालक का परिचय दिया हुआ है। इतनी थोडी अवस्था में जनेऊ होना भी कठिन है, किन्तु धन्य है वङ्गदेश की कौलीन्य-प्रथा कि उसके दो दो व्याह भी हो गये! बङ्गाल के कुलीन ब्राह्मणो ने धन के लोभ से ऐसे धर्मविरुद्ध और नीति-निन्दित कार्य किये हैं कि उनका खयाल आते ही शरीर मे रोमाञ्च हो आता है, क्षोभ और ग्लानि से हृदय हिल उठता है और ससार के आगे मुख दिखाने को जी नहीं चाहता। देव-भूमि भारत में ऐसे दारुण निर्मम व्यवहार का होना देख कर किस समझदार की छाती न फटने लगेगी? जहाँ मनु के इस वचन को मानने वाले लोग रहते हो कि "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।" वहाँ स्त्रियो की ऐसी दुर्दशा! स्त्रियो के इस अपमान और दुर्दशा पर ध्यान देने से लज्जा के मारे सिर नीचा हो जाता है, घूमने-फिरने और हँसने-बोलने को जी नहीं चाहता। इसी से शायद विद्यासागर ने अपना जीवन इस स्त्रियो के ऊपर घोर अत्याचार को रोकने में ही लगा दिया। उन्होंने स्वय जिस घटना का उल्लेख करके अपने हृदय के आर्त्तभाव का परिचय दिया है वह घटना, उन्हीं के शब्दों में, यहाँ पर पाठको को सुनाई जाती है।

"भगकुलीन (जिनका कौलीन्य घट गया है) के चरित्र के सम्बन्ध मे यहाँ पर एक अपूर्व घटना का वर्णन किया जाता है। एक व्यक्ति* दोपहर को अपने घर मे भोजन करने गया। उसने देखा कि भोजन के चौके के पास दो अपरिचित स्त्रियाँ बैठी हुई हैं। उनमे एक ६० वर्ष के लगभग और दूसरी १८। १९ वर्ष की होगी। उनके आकार और कपडे से उनकी दुर्दशा का दृश्य स्पष्ट झलक रहा था। उस आदमी ने अपनी मा से पूछा—अम्मा, ये कौन हैं? किस लिए यहाँ आई हैं? माता ने बुढिया की ओर उँगली उठा कर कहा कि यह चटर्जी की स्त्री है और वह उनकी लडकी है। ये तुमसे अपना दुःख कहने आई हैं और इसी से यहाँ बैठी हैं।

"चटर्जी दो पुरत के भगकुलीन हैं। ५। ६ ब्याह कर चुके हैं। वह अमुक स्त्री के मायके से मासिक वृत्ति पाते हैं, इस लिए उसका यथेष्ट आदर करते हैं। चटर्जी के यहाँ उनकी बहन, भाजे और भाजियाँ रहते हैं। कोई स्त्री कभी उनके घर नहीं आई।

"उन दोनो स्त्रियो के आकार और कपडे देख कर उस व्यक्ति को बडा दुःख हुआ। उसने खाना छोड कर उन स्त्रियो की राम-कहानी सुनना शुरू कर दिया। बुढिया ने कहा—मैं चटर्जी की स्त्री हूँ। यह उनकी कन्या मेरे पेट से पैदा हुई है। मैं मायके में रहती थी। कुछ दिन हुए, मेरे लडके ने कहा—मा, मैं अब तुम दोनो को खाना-कपडा न दे सकूँगा। मैंने कहा—बेटा, कहते क्या हो? मैं तुम्हारी मा हूँ और यह तुम्हारी बहन है। तुम खाने पहनने को न दोगे तो हम किसके पास भीख माँगने जायँगी? तुम एक (स्त्री) को अन्न दोगे और एक को न दोगे, इसका क्या कारण है? बेटा, पृथ्वी

---

* यह एक व्यक्ति स्वयं विद्यासागर ही थे।

पर हमको भोजन-वस्त्र देने वाला और कौन है ? यह सुन कर पुत्र ने कहा—तुम मा हो, तुमको, जिस तरह होगा, मैं खाना-कपड़ा दे सकता हूँ। किन्तु उस (बहन) के भरण-पोषण का भार मैं नहीं उठा सकता। मैंने क्रोध करके कहा—तो क्या तुम उसे + + + हो जाने के लिए कहते हो ? पुत्र ने कहा—मैं यह नहीं जानता, तुम उसका अलग प्रबन्ध करो। इसी कारण पुत्र के साथ दिन दिन खटकती गई और अन्त को लाचार होकर लड़की को साथ लेकर मुझे वहाँ से निकल जाना पड़ा।

"कुछ दिन पहले सुना था कि मेरी मौसेरी बहन के यहाँ एक रसोई बनाने वाली की जरूरत है। वही काम करने के इरादे से हम मा-बेटियाँ वहाँ पहुँचीं। किन्तु हमारे अभाग्य से दो चार दिन पहले ही उनके यहाँ एक महराजिन नौकर हो चुकी थी। तब तो बड़ी मुशकिल का सामना हुआ। क्या करें, कहाँ जायँ, इसी सोच में पड़ गई। मैंने सोचा कि अमुक गाँव में मेरे पति की एक स्त्री हैं। उनके गर्भ से उत्पन्न लड़के के पास खूब धन हैं। वह खुद कारोबारी है। वह दयालु और धर्मात्मा भी है। मैंने अपने मन में कहा कि यद्यपि मैं विमाता हूँ और यह वैमात्र बहन है, तथापि उसकी शरण में जाकर अपना दुःख सुनाने से अवश्य वह सहायता करेगा। यह सोच कर अन्त को मैं उसके पास गई। सब हाल सुना कर रोते रोते मैंने कहा—बेटा, तुम दया न करोगे तो फिर हमको और कहीं ठिकाना नहीं है।

"मेरा दुःख देख कर उस सौत के लड़के को दया आ गई। उसने बड़े स्नेह और दया के साथ कहा—जब तक तुम जिओगी, मैं तुम्हारा भरण-पोषण करूँगा। इस धीरज बँधाने से मैं प्रसन्नता से गद्गद हो गई। मेरी आँखो से आँसुओ की धारा बह चली। यथोचित

आदर से उसने हमें रक्खा। किन्तु उस लड़के के घर की औरतें वैसे मिजाज की न थीं। वे हर घड़ी 'यह आफत कहाँ से आ गई ?' कह कर हमारा अनादर और अपमान करने लगीं। उस लड़के को धीरे धीरे सब हाल मालूम हो गया मगर वह किसी तरह उन स्त्रियों के अत्याचार को न रोक सका। एक दिन मैंने उसके पास जाकर सब हाल कहा। उसने कहा—मा, मैं सब जानता हूँ, किन्तु इसका कोई उपाय मुझे नहीं सूझता। आप किसी और जगह जाकर रहें। महीने महीने मेरे पास आदमी भेज देना, मैं आपको कुछ सहायता दिया करूँगा।

"इस प्रकार जवाब मिलने पर मैं लड़की को लेकर वहाँ से भी चल दी। पृथ्वी पर अन्धकार ही अन्धकार सूझने लगा। अन्त को सोचा, स्वामी मौजूद हैं, उनके पास चलूँ, शायद वह दया करें। यह सोच कर ५।७ दिन हुए, यहाँ आई हूँ। आज उन्होंने साफ जवाब दे दिया कि मैं तुमको न तो यहाँ रख सकता हूँ और न भोजन-वस्त्र ही दे सकता हूँ। कई आदमियों ने कहा कि तुम्हारे पास आकर दुख रोने से कोई उपाय हो सकता है। इसलिए हम यहाँ आई हैं।

" उक्त व्यक्ति यह सुन कर क्रोध और दुःख से अत्यन्त अधीर हो कर आँसू बहाने लगे। कुछ देर बाद वह चटर्जी के घर गये और उन्हें खूब फटकार कर कहा कि आपका यह आचरण देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है ? आप क्या समझ कर इन अबलाओं को घर के बाहर निकाले देते हैं ? स्पष्ट बतलाइए कि आप इन्हें रक्खेंगे या नहीं ? इस व्यक्ति के रँग-ढँग देख कर चटर्जी कुछ डरे। उन्होंने कहा—तुम घर चलो, मैं सोच-विचार कर तुम्हारे पास आता हूँ।

"तीसरे पहर चटर्जी ने उस व्यक्ति के पास आकर कहा कि अगर तुम हर महीने इनके लिए कुछ वृत्ति दो तो मैं इन्हें रख सकता हूँ। उस व्यक्ति ने उसी समय चटर्जी का कहना मान लिया और तीन

महीने की वृत्ति उसी समय चटर्जी के हाथ में रख कर कहा कि इसी तरह तिमाही तिमाही पर आप पेशगी वृत्ति ले लिया कीजिए। इसके सिवा इनके पहनने के लिए कपड़े मैं देता रहूँगा। चटर्जी अब कुछ उज्र न कर सके। लाचार उन्हें स्त्री और कन्या को घर ले जाना पड़ा। चटर्जी खुद बुरे मिज़ाज के आदमी न थे, किन्तु उनकी बहनें भारी डकैत थीं। उन्हीं के डर और सलाह से उन्होंने पहले स्त्री और कन्या को सूखा जवाब दे दिया था। जब बहनों ने यह सुना कि जिस पुरुष से कुछ वृत्ति मिलती है वह खफ़ा हुए हैं और उन्हीं से मासिक कुछ और बढ़ा दिया है तब वे भी लाचार राजी हो गईं। चटर्जी अगर कभी किसी स्त्री को घर में लाकर रखने का इरादा जाहिर भी करते थे तो बहनें नाराज होती थीं। इस कारण वह कभी अपना इरादा पूरा नहीं कर सके। भगकुलीनों के यहां बहनें, भाजे और भाजियाँ परिवार में गिने जाते हैं और स्त्री, पुत्र, कन्या आदि के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

"जो कुछ हो, उक्त व्यक्ति उन दोनों मा-बेटियों की इस प्रकार व्यवस्था करके दूसरी जगह चले गये, और समय समय पर मासिक सहायता भेजने लगे। कुछ दिनों बाद घर जाने पर उक्त व्यक्ति ने उन दोनों स्त्रियों के बारे में जांच की तो मालूम हुआ कि चटर्जी और उनकी बहनों ने यह निश्चय किया कि वृत्तिदाता ने जो नई सहायता शुरू की है वह पुरानी सहायता में शामिल हो गई। इसलिए अब वह किसी तरह बन्द नहीं हो सकती। इसी निश्चय के अनुसार बहनों के उपदेश से चटर्जी ने फिर स्त्री और कन्या को घर के बाहर कर दिया है। वे और कोई उपाय न देख कर दूसरी जगह रहती हैं। कन्या सुन्दर और सयानी है + + + + ॥ और माता के साथ मजे में रहती है"।

इन बातों पर विचार करने से यह प्रश्न आप ही होता है कि इतनी दुर्दशा क्यों हुई ? विद्यासागर महाशय ने स्वयं ही इसका कारण दिखाया है। वह अंश यहाँ पर उद्धृत किया जाता है —

"कौलीन्य-मर्यादा स्थापित होने के बाद, दस पीढ़ी गुजर जाने पर, देवीवर घटक ने कुलीनो में तरह तरह की विशृङ्खलायें उपस्थित होते देख कर 'मेलबन्धन' के द्वारा नई प्रणाली स्थापित की। अब मेलबन्धन के समय से दस पीढ़ियां गुजर गई हैं। अतएव फिर कोई नई प्रणाली स्थापित करने का समय उपस्थित हुआ है। पहले ब्राह्मणों में विशृङ्खला उपस्थित देख कर बल्लालसेन ने उसे ठीक करने के इरादे से कौलीन्य-मर्यादा स्थापित की थी। उसके बाद कुलीनो में विशृङ्खला उपस्थित देख कर देवीवर ने उसे ठीक करने के लिए मेल-बन्धन की सृष्टि की। इस समय कुलीनो में जो तरह तरह की विशृङ्खलायें उपस्थित हो गई हैं उन्हे ठीक करने का सिर्फ एक ही उपाय है कि सब लोग व्यर्थ का कुलाभिमान छोड दे । यदि वे अपने को सुबोध, धर्म से डरनेवाला और अपना मङ्गल चाहनेवाला समझते हो तो उन्हें चाहिए कि तुच्छ कुलाभिमान को छोड कर कुलीन नाम के कलङ्क को मिटा दे । और, यदि वे कुलाभिमान के छोडने को असाध्य या अविधेय समझते हो तो उनके लिए कोई नई व्यवस्था करना आवश्यक है। इस अवस्था में, शायद फिर 'सर्व्वद्वारी' विवाह प्रचलित होने के सिवा कुलीनो की बचत का और कोई उपाय न होगा। ऐसा हो तो फिर किसी कुलीन को अकारण अनेक विवाह करने की आवश्यकता नहीं रहेगी, कोई कुलीन-कन्या जन्म भर या बहुत दिनों तक कुमारी रह कर पिता को नरकगामी न बनावेगी । साथ ही सरकारी नियम बनवा कर बहुविवाह की प्रथा बन्द कर दी जायगी तो कोई हानि या असुविधा न होगी। इस बारे में कुलीनो और उनके पक्षपातियों को

ध्यान देकर यत्न करना चाहिए । अनर्थ और अधर्म की जड ऐसे कुलाभिमान की रक्षा के लिए अन्धे और अबोध की तरह सहायता करने की अपेक्षा, जिनके द्वारा कुलीनो का धर्मनाश और घोर अनर्थ होता है उन दोषों को दूर करने की चेष्टा करना बुद्धि, विवेचना और धर्म्म का काम होगा" ।

यह तो सब पाठको ने सुना, लेकिन अभी इससे भी बढ कर कुछ सुनना बाकी है । किसी को विश्वास ही न होगा कि मनुष्य से ऐसा काम हो सकता है । किन्तु निम्नलिखित, बाते बिलकुल सच हैं ।

दूध पीना भी जिसने शायद न छोडा होगा ऐसे चार वर्ष के बालक का व्याह हो चुका था । ऐसे ही एक बालक के दो व्याह हो चुके थे ।। और एक बालक ऐसा भाग्यशाली था कि चार वर्ष की अवस्था मे पाँच बालिकाओ का स्वामी बन चुका था ।।। पहले बहुत सी अपूर्व कहानियां सुनी थी, किन्तु ऐसी विचित्र कहानी भी कभी नहीं सुनी । इस बात पर विचार करने से क्या अपनी उदासीनता पर घृणा और समाज की स्वार्थपरता पर क्रोध हुए बिना कभी नहीं रह सकता । जी चाहता है कि ऐसे देशाचार का मूलोच्छेद किये बिना जल-ग्रहण न करे । पाठक जरा अपने मन मे सोच कर देखिए, सौन्दर्य की कान्ति से सुशोभित नौजवान सुन्दरी ने जब घृणा और सन्ताप के आँसुओ से वक्ष स्थल को भिगोते हुए पाँच वर्ष के बालक के साथ भौरी फिरी होंगी तब उसकी गर्म साँसो से समाज का कल्याण नष्ट हुआ होगा या नहीं ? कौन कह सकता है कि पांच वर्ष के बालक की पांचवीं स्त्री जवानी में चूर न थी और उसके सन्तप्त हृदय की आग से गर्म आँसुओ से विवाहमण्डप की भूमि नहीं भीगी थी ? देशाचार के गुलाम बङ्गाली क्या नहीं जानते कि नारी-हृदय-

सुलभ संसार-सुख भोगने की कामना के कुसुम जिस समय पूर्ण-रूप से खिले होते हैं, उस समय उस सुखस्मृति के मलयपवन के झकोरों से विषाद की आग सुलगा कर पूर्णयौवना बङ्गललनायें अस्सी बरस के बुड्ढे की मृत्युशय्या को अपनी विवाहशय्या बनाती हैं। वृद्ध कुलीन महाशय मृत्यु के मुख में जाते जाते अनेक कन्याओं की आशा पर पानी फेर जाते हैं। स्त्रियों के हृदय से निकली हुई इस दारुण मर्मवेदना ने विद्यासागर के हृदय में सहानुभूति का सञ्चार किया था। इसीसे उन्होंने स्त्रियों पर होनेवाले अत्याचार को रोकने में अपना जीवन लगा दिया। धन्य हैं विद्यासागर!

अनेक लोग यह कह सकते हैं कि जिस समय यह सूची बनाई गई थी तबसे तो बहुत दिन बीत गये। उसे भूल जाना ही अच्छा है। ऐसे पुराने आचारों की आलोचना करने से कोई लाभ नहीं। इसके उत्तर मे हमारा वक्तव्य यह है कि विद्यासागर की बनाई सूची को जाने दीजिए। वह बे-शक पुरानी है। लेकिन बहुविवाह की एक नई सूची भी है, उससे यह मालूम होता है कि यह दुराचार अभी तक वैसा ही बना हुआ है। बहुत थोड़े दिन हुए, बँगला सन् १२९८ में, सञ्जीवनी पत्रिका में असंख्य बङ्ग-रमणियों की दुःख-कहानी लगातार कई अङ्कों में प्रकाशित हुई थी। हम यहाँ पर उसका सारांश उद्धृत किये देते हैं। वर्द्धवान, बांकुड़ा, वीरभूम, हुगली, मेदिनीपुर, चौबीस परगना, कलकत्ता, नदिया, यशोहर, बरीसाल, फरीदपुर, ढाका आदि बङ्गाल के प्रायः सभी जिलों के ७७६ गांवों के बहुविवाह करने वाले महाशयों की जो सूची इस लेख में दी गई है उसे देखने से जान पड़ता है कि इन गांवों के १०१३ कुलीनों ने ४३२३ कुलीन-कन्याओं के साथ विवाह किया है। हर एक के हिस्से में साढ़े चार चार स्त्री की औसत पड़ती है। उल्लिखित ईश्वरचन्द्र मुखोपाध्याय को छोड़ देने

से भी १०,१२,१५,२०,२५,३०,३५,४०,४५,५० व्याह करनेवालों की कमी नहीं है। ६०,६५,६७ व्याह करने वाले महापुरुप भी हैं। ऐसे लोगो के नाम-धाम का उल्लेख करने के लिए स्थानाभाव है। केवल इतना ही मैं कहना चाहता हूँ कि इस समय भी ऊपर लिखे हुए विवाहो की तरह छोटे छोटे वच्चो के कई कई विवाह होते चले जाते हैं। इस वारे में लोगो की रुचि मे विशेप परिवर्त्तन नहीं देखा जाता। एक महाशय ने ३४ वर्ष की अवस्था मे ३५ स्त्रियो को सनाथ करने की वहादुरी दिखलाई है। २७ वर्ष की अवस्था के एक पुरुप ने १२, २५ वर्ष की अवस्था के एक पुरुप ने ७, २२ वर्ष की अवस्था के एक पुरुप ने ८, और २० वर्ष की अवस्था के एक पुरुप ने ८ व्याह किये हैं। तव कैसे कहा जा सकता है कि इस वारे मे लोगो ने विशेप ध्यान दिया या कुछ प्रतीकार किया है? अच्छा, अगर इतना ही होता तो कहते कि कुछ परिवर्त्तन हुआ है। किन्तु इतना ही नहीं है, इससे भी अधिक चिन्ता की एक वात है। वह चिन्ता की वात यह है कि वर्त्तमान समय के सामाजिक नेता लोग विद्यासागर के स्वर्गवास के वाद यदि उनके आदर्श पर दयापूर्वक इन वातो की खोज करते और इस दुर्नीति को दूर करने का कुछ उपाय सोचते तो आशा की जाती कि किसी समय यह कुप्रथा निर्मूल हो जायगी। किन्तु यहाँ तो धडाधड वहुविवाह हो रहे हैं, और कोई चूँ तक नहीं करता, स्त्रियो का दुःख दूर करने के लिए, उनके आसू पोछने के लिए कोई भी कुछ यत्न नहीं करता। आज विद्यासागर नहीं हैं तो क्या यह सूची देख कर आँसू वहानेवाला कोई भी नहीं है? इस समय भी देख पडता है कि १४,१५,१६ वर्ष के वालक अनेक स्त्रिया के साथ व्याह करके प्राचीन पद्धति की रक्षा करते जाते हैं। एक सोलह वर्ष के वालक के ३, एक पन्द्रह वर्ष के वालक के २ और एक दूसरे वालक के ३

विवाह हो चुके हैं। एक चौदह वर्ष के बालक ने दूसरा व्याह किया है। सजीवनी में प्रकाशित तालिका में भी चार वर्ष के बालक के तीन विवाहों का उल्लेख पाया जाता है। हम समझते हैं कि हमारे लम्बे-चौड़े लेक्चरों और लेखों से देश की और समाज की दिनदूनी रात चौगुनी उन्नति होती जाती है। किन्तु हमको यह नहीं सूझता कि देश के सर्वनाश का कारण जो इस प्रकार की कुप्रथायें हैं वे उसी तरह जारी हैं। स्त्रियों की दुःख-कहानी सुन कर दुःखित होनेवाला भी कोई नहीं देख पड़ता, कुछ यत्न करने की बात तो बड़ी दूर है। क्या राममोहनराय या विद्यासागर फिर बङ्गाल में न पैदा होंगे? विद्यासागर की ओजस्विनी भाषा क्या बङ्गालियों के हृदय को इन कुप्रथाओं के विरुद्ध उत्तेजित न करेगी? भाइयो, आओ, हम सब मिल कर इन अनीतियों को समाज से उठा देने की चेष्टा करें। विद्यासागर महाशय का परलोकवासी पवित्र आत्मा हमारे उद्यम और आग्रह को देख कर आशीर्वाद देगा।

सबसे बढ़ कर दुःख की बात तो यह है कि इस बहुविवाह की अनीति को आश्रय देनेवाले लोगों की सूची में १०।१२ उच्च शिक्षित पुरुषों के नाम भी पाये जाते हैं। इनमें ३ एम० ए० बी० एल०, १ बी० एल० और बी० ए० हैं। ये ही अगर ऐसी कुरीति को आश्रय देंगे तो फिर प्रतीकार की आशा कहाँ? यह देख कर जी चाहता है कि खूब जी खोल कर रोवें और कहें—माता जन्मभूमि, तुम्हारे भाग्य में अभी और भी दुःख भोगना बदा है। तुम्हीं अपने किसी सपूत को पुकार कर इस अन्याय को मिटाने के काम में अग्रसर करो। हम सहज में उठ कर खड़े होनेवाले नहीं हैं। तुम्हारे पुकारने से शायद हमें कुछ चेत हो।

बल्लालसेन ने अपना अभीष्ट सिद्ध करने के लिए कौलीन्यप्रथा

घलाई थी। देश के दुर्भाग्य से उनकी वह आशा सफल नहीं हुई। जिस ढँग से काम करने पर कौलीन्य-मर्यादा सुरक्षित रहती और कल्याणकारिणी होती उसकी आलोचना का प्रयोजन नहीं है। जैसा कुछ हुआ है, उसी का उल्लेख करना हमारा उद्देश्य है। देवीवर घटक ने मेलबन्धन स्थापित करके बङ्गाल के कुलीन ब्राह्मणो का और भी सर्वनाश कर डाला। कौलीन्यप्रथा की देवीवर के हाथो और भी अधोगति हो गई। कुलीनो मे सर्वद्वारी विवाह की प्रथा उठजाने से ये तरह तरह के अनिष्ट हुए हैं। विद्यासागर इस कौलीन्य की सकीर्णता को दूर करने के लिए बहुत दिनो तक आन्दोलन करते रहे। सन् १८५६ ई० मे उन्होने बहुविवाह-सम्बन्धी आन्दोलन शुरू किया था। यह आन्दोलन अनेक प्रकार से बीस वर्ष तक जारी रहा। गवर्नमेंट के निकट दुबारा आवेदनपत्र भेजने के समय भी २१००० के लगभग हस्ताक्षर हुए थे। यह आवेदन कौलीन्यप्रथा उठा देने के लिए किया गया था। इस प्रार्थनापत्र मे कृष्णनगर के महाराज सतीशचन्द्र राय आदि बहुत से प्रतिष्ठित पुरुषो ने हस्ताक्षर किये थे। उनमें से कुछ प्रतिष्ठित और सुपरिचित लोगो के नाम नीचे दिये जाते हैं। यथा— महाराज सतीशचन्द्र, रायबहादुर, नदिया। सत्यशरण घोषाल, भूकैलास। प्रतापचन्द्रसिंह, कान्दी। जयकृष्ण मुखोपाध्याय, उत्तरपाडा। पूर्णचन्द्र राय, सेवडापुरी। शारदाप्रसाद राय, चकदीघी। यज्ञेश्वरसिंह, भास्ताडा। राजकुमारराय चौधरी, बारीपुर। शिवनारायण राय, जाडा। उमाचरण राय चौधरी, राधानगर। राय प्रियनाथ चौधरी, ढाका। विजयकृष्ण मुखोपाध्याय, उत्तरपाडा। पण्डित शम्भुनाथ। देवेन्द्रनाथ ठाकुर। रामगोपाल घोष। हीरालाल शील। श्यामाचरण मल्लिक। राजा राजेन्द्र मल्लिक। राजेन्द्र दत्त। नरसिंह दत्त। कालीप्रसन्नसिंह। कालिदास दत्त। राजेन्द्र दत्त। गोविन्दचन्द्र सेन। हरिमोहन सेन।

रामचन्द्र घोषाल । माधवेन्द्र सेन । ईश्वरचन्द्र घोषाल । कृष्णकिशोर घोष । जगदानन्द मुखोपाध्याय । द्वारकानाथ मित्र । अन्नदाप्रसाद वन्द्योपाध्याय । दयालचन्द मित्र । डा० राजेन्द्रलाल मित्र । प्यारीचाँद मित्र । महाराज दुर्गाचरण लाहा । द्वारकानाथ मल्लिक । चन्द्रमोहन चट्टोपाध्याय । शिवचन्द्र देव । गिरीशचन्द्र घोष । भरतचन्द्र शिरोमणि, संस्कृत-कालेज । तारानाथ तर्कवाचस्पति, संस्कृत-कालेज । व्रजनाथ विद्यारत्न, नदिया । प्रसन्नचन्द्र तर्करत्न । श्यामाचरण सरकार । देवेन्द्र मल्लिक । मुरलीधर सेन । रामनाथ लाहा । माधवकृष्ण सेठ । श्यामाचरण दे । प्रियनाथ सेठ । कालीकृष्ण मित्र । प्यारीचरण सरकार । प्रसन्नकुमार सर्वाधिकारी । कृष्णदास पाल । कृष्णकमल भट्टाचार्य्य । ईश्वरचन्द्र विद्यासागर । इत्यादि ।

सन् १८६६ की १६ वीं मार्च को तत्कालीन बङ्गाल के लाट सर सिसिल बीडन के पास यह आवेदनपत्र ले जाने के लिए जो मण्डली बनी थी उसके मेम्बरों के कथन का सारांश यहाँ पर लिखा जाता है । यथा—"इस अत्यन्त घृणित और अनिष्टकारी बहुविवाह की प्रथा को उठा देने के लिए नव बरस पहले २५००० आदमियों के हस्ताक्षर करा कर एक आवेदनपत्र व्यवस्थापक सभा में भेजा गया था । इस बुरी प्रथा के अनिष्टकारी होने के बारे में नये सिरे से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है । इससे पहले जो आवेदनपत्र भेजा गया था उसमें अत्यन्त विस्तार के साथ इन बातों की आलोचना की जा चुकी है और हम हस्ताक्षर करनेवालों में से अनेक लोगों ने उस आवेदनपत्र पर हस्ताक्षर किये थे । सुयुक्ति और धर्म-शास्त्र इस सामाजिक कुरीति के उठा देने का अनुमोदन करते हैं । आप भी इसे उठा देने का यत्न करेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है । खास कर ऐसे संस्कार के काम के गौरव का अनुभव करके जब इतने लोग प्रार्थना कर रहे हैं

तब इसकी आवश्यकता और इसमें हस्तक्षेप करने का युक्तियुक्त होना और भी प्रबलरूप से प्रमाणित होता है"।

राजा सत्यशरण घोषाल ने यह आवेदनपत्र और महाराज महतावचन्द्र बहादुर ने एक और आवेदनपत्र लाट साहब को दिया था। बङ्गाल के चुने हुए बीस बाईस आदमी और भी साथ में थे। उनमें पण्डित भरतचन्द्र शिरोमणि, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, द्वारकानाथ मित्र, प्यारीचरण सरकार, प्रसन्नकुमार सर्वाधिकारी, कृष्णदास पाल, जगदानन्द मुखोपाध्याय, महाराज दुर्गाचरण लाहा आदि के नामों का उल्लेख देख पड़ता है।

राजा सत्यशरण घोषाल इस डेप्यूटेशन के मुखिया थे। उनके आवेदनपत्र पढ़ने के बाद छोटे लाट सर सिसिल बीडन ने उसके उत्तर में आशाप्रद वाक्य सुना कर कहा था कि "सन् १८५७ में सिपाहीविद्रोह न होता तो सर जान ग्रान्ट साहब ही इस काम को पूरा कर जाते। मैंने उस समय भी इसके लिए यथाशक्ति चेष्टा की थी, और अब भी करूँगा"। किन्तु खेद की बात है कि इस बार भी, विद्यासागर के बहुत चेष्टा करने पर भी, बहुविवाह की प्रथा नष्ट नहीं हुई। तब उन्होंने अन्य उपाय से यह कार्य सिद्ध करने का उद्योग किया। विद्यासागर ने यह पता लगाना शुरू किया कि कुलीन लोग इस प्रथा का मूलोच्छेद करने के लिए सहमत होते हैं कि नहीं। विद्यासागर की चेष्टा से सब होना सम्भव था और उन्होंने चेष्टा करने में कुछ कसर नहीं रक्खी। तारापाशा-निवासी बाबू रासबिहारी मुखोपाध्याय देवीवर के मेलवन्धन को तोड़ कर सर्वद्वारी विवाह प्रचलित करने के लिए सहमत हो गये थे। विद्यासागर ने उस समय के प्रतिष्ठित समाज के मुखियों को जो पत्र भेजा था उसकी नकल नीचे दी जाती है।

"नानागुणालङ्कृत— जयदेवपुर, भावाल, ढाका।

श्रीयुक्त राजा कालीनारायण रायबहादुर महाशय

मदनुग्राहकेषु—

विनयबहुमाननमस्कारपुरस्सर निवेदनमिदम्। तारापाशानिवासी श्रीयुत रासविहारी मुखोपाध्याय कलकत्ते में आये हैं। उनसे सुना कि कुलीनों में सर्वद्वारी विवाह प्रचलित करने के लिए वह उद्योग कर रहे हैं। उन्होंने स्वयं सबसे पहले इस प्रथा से ब्याह करना-कराना अङ्गीकार किया है। वह कहते हैं कि इस मामले में महाशय का पूरा यत्न, उत्साह और मनोयोग है। इस काम को पूर्ण करने के लिए महाशय विशेष यत्न करेंगे। इसमें मुझे रत्ती भर सन्देह नहीं है। मुखोपाध्याय महाशय की इच्छा है कि उल्लिखित कार्य्य सम्पन्न होने के समय मैं उपस्थित रहूँ। मैं उनके इस अनुरोध को मानने के लिए राजी हूँ। किन्तु महाशय का पत्र पाये विना मुझे वहाँ जाने का साहस न होगा। महाशय अनुग्रह-पूर्वक इस मामले में जैसा कहेंगे वैसा ही मैं करूँगा। मैं और दस-बारह दिन कलकत्ते में हूँ। उसके बाद एक काम से अन्यत्र जाऊँगा। मेरी अभिलाषा यह है कि यहाँ से जाने के पहले मुझे महाशय का पत्र मिल जाय।

मैं आषाढ में बहुत बीमार था। अब तब की अपेक्षा अच्छा हूँ। अपने कुशल-समाचार लिखने की कृपा कीजिएगा। किमधिकमिति १९ पौष, सन् १२८७ (बँगला)।

अनुग्रहाकाङ्क्षिणः

श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मणः।

जाजिपाडानिवासी बाबू ताराप्रसन्न राय, माहुतटोली-ढाका के रहने वाले बाबू रासविहारी राय और कालीपाडा ढाका के रहने वाले बाबू श्यामाकान्त वन्द्योपाध्याय चौधरी महाशय को भी विद्यासागर ने

इस पत्र की एक एक प्रतिलिपि भेजी थी। इन सब पत्रों की इबारत और अक्षर एक हैं। नहीं कहा जा सकता कि कुलीन ब्राह्मणों में यह सर्वद्वारी विवाह की प्रथा प्रचलित करने का उद्योग कार्य में परिणत हुआ था या नहीं। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस समय भी अनेक स्थानो मे कुलीनों की कन्याये पूर्वोक्त अवस्था में पड कर दु ख और कष्ट भोग रही हैं। फिर यदि कोई पुण्यात्मा सहृदय पुरुष अगर प्रकट होकर विद्यासागर के पदाङ्क का अनुसरण करे और दु खदायक बहुविवाह के प्रवाह को रोक सके तो इसमे कोई सन्देह नहीं कि बङ्गाल की असख्य वालिकाये अपनी जवानी का सुख भोगती हुई उस महापुरुष की पूजा करेंगी और अपने हृदय की कृतज्ञता के जल से स्नान करा कर उसे भक्ति की पुष्पाञ्जलि चढायेंगी।

इन सब सामाजिक विषमताओ और इनके द्वारा होने वाले स्त्री-जाति के क्लेशो को दूर करने के लिए विद्यासागर का हृदय क्यों व्याकुल रहता था, इसका गूढ कारण उन्होने खुद अपने लिखे अस-माप्त और अप्रकाशित आत्मचरित में इस तरह लिखा है—"जिस व्यक्ति ने राईमणि की दया, सौजन्य आदि को देखा है और उनके इन सद्गुणो का सुख उठाया है वह यदि स्त्री-जाति का पक्षपाती न हो तो उसके बराबर कृतघ्न और नीच पृथ्वीमण्डल भर में और नहीं हो सकता"। विद्यासागर बचपन में स्त्रियो का सहिष्णुता, कोमलता और दया आदि गुणो का अनुभव प्राप्त कर चुके थे, इसीसे वह जन्म-भर सारी स्त्री-जाति के कृतज्ञ और हितैषी रहे। जहां जितना स्त्री-जाति पर अत्याचार उन्होंने देखा वहां उतना ही पराक्रम प्रकट करते हुए उन्होंने स्त्री-जाति की हिमायत और दु ख दूर करने की चेष्टा की। वह अबलाओ का बल थे। उन्होंने अपने बहुविवाह-सम्बन्धी ग्रन्थ में एक जगह पर भारी खेद के साथ स्त्रियो के कष्ट का करुण

चित्र खींचा है। उसका कुछ अंश यहां पर उद्धृत किया जाता है —

"ऐसा सुना जाता है कि भारत के भूतपूर्व गवर्नर जनरल महात्मा लार्ड बेंटिक ने सती की चाल उठाने के लिए दृढ-सङ्कल्प होकर उस बारे में प्रधान प्रधान राज-पुरुषों से उनकी राय मांगी थी। सब राज-पुरुषों ने स्पष्ट कह दिया कि इस मामले में हाथ डालने से भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक सब लोग नाराज होंगे और निस्सन्देह विद्रोह मचा देंगे। महामति महापराक्रमी बडे लाट यह सुन कर न तो डरे और न अपने उत्साह को ही कम किया। उन्होंने कहा—यदि इस प्रथा को उठा देने के बाद एक दिन भी हम लोगों का राज्य रहे तो भी अँगरेज जाति के नाम का यथार्थ गौरव और राज्याधिकार सार्थक हो जायगा। लाट साहब ने प्रजा का दुःख देख कर दया के मारे आप ही से यह महान् कार्य्य पूरा कर डाला। इस समय भी हम उसी अँगरेज-जाति के राज्य में बसते हैं। किन्तु अवस्था में कितना परिवर्त्तन हो गया है। जिस अँगरेज-जाति ने आपसे प्रवृत्त होकर, राज्य न रहने के भय को अग्राह्य करके प्रजा का दुःख दूर किया था वह इस समय आप से प्रवृत्त होना कैसा, प्रजा के बार बार पुकारने पर भी ध्यान नहीं देती। हाय! 'ते हि नो दिवसा गता', वे दिन चले गये।

"जो कुछ हो, इस भय से कि आवेदनकारी लोगों की इच्छा के अनुसार नियम बनाने से गवर्नमेंट इस प्रदेश के मुसलमान अथवा अन्यान्य प्रदेश के हिन्दू-मुसलमान दोनों तरह की प्रजा के निकट अपराधी होगी, या प्रजागण असन्तुष्ट होंगे, गवर्नमेंट का उक्त विषय में विमुख रहना कदापि माननीय नहीं हो सकता। अँगरेज-जाति इतनी निर्बोध, इतनी असार, इतनी कायर नहीं है। सुना जाता है कि

उन लोगो ने राज्यभोग के लोभ से इस देश पर अधिकार नहीं जमाया। इस देश की सर्वाङ्गीन उन्नति ही उनके यहाँ अधिकार जमाने का प्रधान उद्देश्य है।

"यहाँ पर एक कुलीन महिला के खेदपूर्ण वचनो का उल्लेख किये बिना जी नहीं मानता। इस कुलीन महिला के एक छोटी बहन भी थी। दोनो बहनों से मुझसे मुलाकात हुई तो बड़ी ने पूछा—क्या फिर बहुविवाह की चाल उठा देने की चेष्टा हो रही है? मैंने कहा—केवल चेष्टा ही नहीं हो रही है। इस बार अगर तुम्हारी तकदीर ने जोर मारा तो हम लोगो को अवश्य सफलता प्राप्त होगी। उस रमणी ने कहा—यदि और कोई जोर न हुआ तो तुम लोग कृत-कार्य्य न हो सकोगे। कुलीनो की लड़कियों की तकदीर बहुत बुरी है। उस तक़दीर के जोर से जितनी सफलता हो सकती है उसे हम खूब जानती हैं। यह कह कर वह स्त्री कुछ देर तक चुपचाप अपनी गोद में लेटी हुई लड़की का मुख निहारती रही। उसके बाद आँसू-भरी आँखो से मेरी ओर देख कर उसने कहा—बहुविवाह की चाल उठा दी जाय तो भी हम लोगो को कोई लाभ नहीं है। हम इस समय जो सुख भोग रही हैं वही सुख उस समय भी भोगेंगी। हाँ, जो अभागिनी लड़कियाँ हम लोगो के गर्भ से पैदा हुई हैं या पैदा होगी वे अगर हमारी तरह सदा के लिए दुखिया न बनें तो भी हम लोगो का कष्ट और दुःख बहुत कुछ कम हो जायगा। इस प्रकार खेद प्रकट करके उस कुलीन स्त्री ने फिर कहा—सब कहते हैं कि हमारे देश का राज्य एक स्त्री के हाथ में है। किन्तु हमें इस बात पर विश्वास नहीं होता। स्त्री के राज्य में स्त्रियों की दुर्दशा क्यों है? यह बात कहते समय उसके मलिन चेहरे पर विषाद और निराशा की झलक ऐसी स्पष्ट देख पड़ने लगी कि उसे देख कर शोक

के मारे मैं अधीर हो उठा और मेरी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

"हाय विधाता, तुम क्या कुलीन-कन्याओं के कपाल में लगातार क्लेश भोगने के सिवा और कुछ लिखना जानते ही नहीं? उल्लिखित कुलीन-कन्या के हार्दिक खेद से भरे हृदय-विदारक वचन अगर हमारी महारानी करुणामयी विक्टोरिया के कानों तक पहुँचते तो वह अवश्य ही अत्यन्त लज्जित और दुःखित होती।

"इन दोनों कुलीन महिलाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है। ये दो पीढ़ी के भंग कुलीन की कन्या और अपने ही डौल से भंगकुलीन की स्त्री हैं। बड़ी २०। २१ वर्ष की और छोटी १६। १७ वर्ष की होगी। बड़ी के स्वामी की अवस्था ३० वर्ष की और छोटी के स्वामी की अवस्था २५। २६ वर्ष की होगी। बड़ी के पति ने अब तक केवल १२ व्याह किये थे और छोटी के पति ने २५ व्याह तक नम्बर पहुँचाया था"।

सुना जाता है, विद्यासागर का यह इरादा था कि बहुविवाह-विषयक ग्रन्थ का अँगरेजी में अनुवाद किया जाय और वह एक बार इँगलैंड जाकर करोड़ों प्रजा की माता महारानी विक्टोरिया के सामने उपस्थित होकर उनको बङ्गाल की असंख्य दुखिया स्त्रियों के दुख का हाल सुनावें। भारतेश्वरी से यह बात पूछने की भी उनको बड़ी इच्छा थी कि जिस देश में महारानी ऐसी रमणी-रत्न का राज्य है वहाँ स्त्री-जाति की इतनी दुर्दशा क्यों है? किन्तु विधाता को ऐसा मञ्जूर ही न था। यह सब बङ्ग-देश का दुर्भाग्य है। बङ्गाली समाज कितने दिनों तक इस विषम-बुद्धि के विभ्राट् में पड़ कर पीड़ित होगा, इसका कुछ निश्चय नहीं है। असंख्य बङ्गबालाओं के दुर्भाग्य से ऐसे सुव्रत साधना-निरत पराक्रमशाली महात्मा पुरुष का सत्सङ्कल्प पूरा होने के

पहले ही निठुर काल उनको ससार से उठा ले गया । यह शुभ सङ्कल्प कल्पना के रूप में ही रह गया, कली खिलने के पहले ही मुरझा कर गिर गई । आँसू बहाते हुए सहृदय पुरुष कहते हैं कि जब तक विधाता की कृपा न हो—जब तक और किसी महापुरुष का अभ्युदय न हो तब तक हे वङ्गबालाओ, तुम अपने दु ख के गीत बन्द करो, हृदय का सन्ताप हृदय मे ही लुका रक्खो, अपने सारे क्लेशो को अन्त पुर के निर्जन कोने मे कूडे की तरह ढेर रक्खो । जिनके हृदय नहीं है, जो तुम्हारे मर्म की वेदना को कुछ नहीं समझ सकते, बल्कि गला साफ कर करके अपनी सत्कीर्ति और तुम्हारी सुख-समृद्धि की घोषणा करने ही मे लगे रहते हैं उनके आगे अपने दु ख की कहानी मत कहो ।

विद्यासागरजी केवल विधवाविवाह के प्रचार और बहुविवाह के रोकने की चेष्टा करके ही चुप नही रहे । वह समाज की सर्वाङ्गीन उन्नति करना चाहते थे । उन्होने समाजसस्कार और सामाजिक उन्नति के लिए एक प्रतिज्ञापत्र बनाया था । वह नीचे उद्धृत किया जाता है । उससे उनके उद्देश्य और इच्छा का पूरा परिचय प्राप्त होता है ।

प्रतिज्ञापत्र ।

हम धर्म्म को साक्षी करके प्रतिज्ञा करते हैं कि—

(१) कन्या को लिखावें-पढावेंगे ।

(२) ग्यारह वर्ष पूरे हुए बिना कन्या का ब्याह न करेंगे ।

(३) कुलीन, वशज, श्रोत्रिय अथवा मौलिक इत्यादि का खयाल न करके अपनी जाति के सत् पात्र को कन्या देंगे ।

(४) कन्या के विधवा होने पर, उसकी सम्मति होने पर, उसका पुनर्विवाह करेंगे ।

(५) अट्ठारह वर्ष पूरे हुए बिना पुत्र का ब्याह न करेंगे ।

(६) एक स्त्री के रहते दूसरा व्याह न करेंगे।

(७) जिसके एक स्त्री मौजूद है उसे कन्या न देंगे।

(८) जिस काम से इन प्रतिज्ञाओं में विघ्न पड सकता है उसे न करेंगे।

(९) महीने महीने अपनी मासिक आमदनी का पचासवाँ हिस्सा बराबर देते रहेंगे।

(१०) इस प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करने के बाद किसी भी कारण से इन प्रतिज्ञाओं से विमुख न होंगे।

इस प्रतिज्ञापत्र पर १२५ लोगों के नाम लिखे हैं। उनमें कोई कोई बङ्गाल के प्रसिद्ध लोग हैं। उनमें से कोई कोई स्वर्गवासी हो गये हैं और कोई कोई अभी जीवित हैं। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें से किस किसने इन प्रतिज्ञाओं का पालन किया था। हाँ, विद्यासागर महाशय ने जीवन के अन्तिम दिन तक इन प्रतिज्ञाओं का पूर्णरूप से पालन किया, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अँगरेजी अमलदारी के सूत्रपात के साथ साथ बङ्गाली भद्रपुरुषों ने धीरे धीरे मद्यपान करना सीखा। जब इस विष के पीने से नशे के अलीक आमोद में लोग उन्मत्त होने लगे और उस आमोद के प्रलोभन में पड कर इस बुरे व्यसन की ओर लोग दिन दिन अधिक आकृष्ट होने लगे, जब मदिरा पीने से लोगों के धन, मान, प्रतिष्ठा और अन्त को जीवन का नाश होने लगा, जब वङ्ग-भूमि के पुत्ररत्न अकाल ही में अतीत के अन्धकार मे छिपने लगे, तब बङ्गाली समाज के और एक हितैषी प्यारीचरण सरकार महाशय मदिरा-सेवन को रोकने के लिए अग्रसर हुए। वह बुद्धिमान् ज्ञानी और विद्वान् पुरुष थे। उनके उद्योग से सन् १८६४ ई० के आरम्भ में "वङ्गदेशीय मादक-सेवन-निवारिणी सभा" (Bengal Temperance Society) की स्थापना

हुई। इस सभा की स्थापना के काम मे देश के अनेक बड़े आदमियों ने सहायता की थी। राजा राधाकान्त देव ने सभा के सेक्रेटरी को लिखा था —

"Hailed with joy the inauguration of their Society, promised to take the deepest interest in its progress, and to give his cordial concurrence to all measures it may adopt for the eradication of the dreadful vice, and the reclaiming of those who have succumbed to its influence" Taken from Raja Radhacanta Deb's letter to the Secretary, Bengal Temperance Society

अर्थात् ऐसी सभा की स्थापना के लिए मैं गहरा आनन्द प्रकाशित करता हूँ मैं। इसकी उन्नति की कामना करता हूँ। इस भयङ्कर पापो के आश्रय स्वरूप मद्यपान' को रोकने की चेष्टा मे—इस विष का सेवन करके जो लोग अपना नाश कर रहे हैं उनको इस विषम विपत्ति से छुडाने मे—मैं सदा सब तरह सहायता करने को तैयार हूँ।

इस मादक-सेवन-निवारिणी सभा की पहली बैठक के दिन बहुत से सुशिक्षित बङ्गाली और अनेक प्रतिष्ठित अँगरेज उपस्थित हुए थे। उस आरंभ के दिन से लेकर जन्म भर विद्यासागर महाशय इस सभा के एक पृष्ठ-पोषक रहे। पहली बैठक के दिन पादरी डाल साहब और इन्स्पेक्टर उड्रो आदि लोग भी उपस्थित थे। अनेक व्याख्यान होने के बाद प्यारीचरण सरकार महाशय ने चुपके से विद्यासागर से कुछ कहने के लिए अनुरोध किया। विद्यासागर ने इशारे से अपनी अनिच्छा प्रकट की। अन्त को डाल साहब, उड्रो साहब, शम्भुनाथ पण्डित आदि माननीय पुरुषो ने भी विद्यासागर से कुछ कहने के लिए अनुरोध किया, लेकिन स्थिर-प्रतिज्ञ विद्यासागर का विचार नहीं बदला। सबके आगे हाथ जोड कर हँसते हँसते विद्यासागर ने उनका कहना न मानने के लिए माफी माँग ली। कोई उन्हें व्याख्यान देने के लिए



प्यारीचरण सरकार ।

उठा न सका। इतने लोग अनुरोध करके भी उनको उठा न सके, इसका कारण यह था कि और लोग उन्हें जितना समझते थे उससे कहीं अधिक विद्यासागर अपने को पहचानते थे। यह बात विद्यासागर को अच्छी तरह मालूम थी कि सभा में खड़े होकर व्याख्यान देना मेरा काम नहीं है। अपनी क्षमता जानबूझ कर भी किसी क्षमता के बाहर कार्य मे अग्रसर होने का उन्हें अभ्यास न था। उनके जीवन की विशेषता ही यह है कि वह जिस काम को समझते थे कि मैं न कर सकूँगा उस काम को करने के लिए आगे बढ कर अपने को हँसाने का अभ्यास उन्हे नहीं था। उस काम के लिए उपयुक्त अन्य पुरुष की व्यर्थ बराबरी करने का मर्ज उनको नहीं था। जो जिस लायक होता था उसे उसके लायक स्थान पर स्थापित करना उनको बहुत पसन्द था। इसी नीति के कारण विद्यासागर ने माइकेल मधुसूदन दत्त की सैकडा त्रुटियो की उपेक्षा की और रायबहादुर कृष्णदास पाल को हिन्दू-पेट्रियट का सम्पादक बनाया। उनकी इस सद्विवेचना के कारण बङ्गाल में आज भी अनेक उपयुक्त पुरुषों को सम्मान और सम्पत्ति प्राप्त है।

विद्यासागर और प्यारीचरण सरकार, दोनो मित्र, जन्म भर मिल कर समाजसंस्कार के कार्य्य में लगे रहे। प्यारी बाबू ने उस समय जब विद्यासागर पर बडा ऋण हो गया था, उन्हें ऋण से छुटकारा दिलाने के लिए अपने द्वारा सम्पादित होने वाले एज्यूकेशन-गजट में एक अपील की थी। प्यारी बाबू स्वयं धनी नहीं थे। किन्तु उनके पास जो था उसीसे विद्यासागर की सेवा और सहायता करने के लिए वह तैयार थे। वह विद्वान् थे, उनका समाज मे मान और प्रतिष्ठा थी। वह उसी की सहायता से धन-सञ्चय के लिए अग्रसर हुए। किन्तु दृढ-प्रतिज्ञ और सबल-शरीर विद्यासागर यह कब देख

सकते थे कि उनका ऋण चुकाने के लिए देश के लोग चन्दा दे एज्यूकेशन गजट मे अपील प्रकाशित होने पर विद्यासागर ने अपने मि प्यारी बाबू को लिख भेजा कि विद्यासागर का ऋण चुकाने के लि देशवासियो को चिन्ता न करनी पडेगी । मेरा ऋण धीरे धीरे कम होता जाता है, उसके लिए सहायता की आवश्यकता नहीं । हाँ, विधवाविवाह के बारे में जो कोई जितनी सहायता करेगा वह सादर स्वीकृत होगी । इस प्रकार अनिच्छा प्रकट करने पर लाचार होकर प्यारी बाबू ने अपना इरादा छोड दिया । महात्मा प्यारीचरण के मरने पर, रोग-शय्या पर पडे रहने की अवस्था मे भी, व्याकुल होकर विद्यासागर ने डाक्टर भुवनमोहन सरकार को जो पत्र लिखा था वह नीचे उद्धृत किया जाता है —

"My dear Bhooban Mohun,

I regret exceedingly that in the present state of my health, of which you are aware, I am unable to attend this evening's meeting of the Bengal Temperance Society. None knows better than yourself the profound grief with which the lamented death of my beloved friend, Babu Pyari Charan Sircar, has filled me. We knew each other from early youth, and we were so closely attached that in him I have lost a dear and affectionate brother. To the public the loss cannot be easily replaced. His great ability, high character and single-minded zeal in works of humanity rendered him highly useful to society at large, while his devotedness to the cause of temperance, which was manifested in the Bengal Temperance Society, in the publication of very many valuable tracts in English and Bengali and in other acts, will doubtless be long cherished in greatful remembrance by all lovers and promoters of temperance in this country.

I remain, yours affectionately,
(Sd.) Iswar Chandra Sarma

27th November, 1875

अर्थात्, प्रिय भुवनमोहन, मुझे भारी दुःख यही है कि शारीरिक अस्वस्थता के कारण मैं आज बङ्गाल-टेम्परेन्स-सोसायटी के अधिवेशन में उपस्थित न हो सकूँगा। मेरे अभिन्न-हृदय मित्र की शोक-पूर्ण मृत्यु से मेरे हृदय में जो दारुण क्षोभ उत्पन्न हुआ है उसका अनुभव तुम्हारे सिवा और कोई नहीं कर सकता। हम दोनो मित्र जवानी के आरम्भ से ही एक दूसरे को जानते थे। हम दोनो में ऐसी निगूढ़ घनिष्ठता हो गई थी कि प्यारी बाबू के मरने से मुझे यह मालूम पड़ता है, मेरा कोई सगा भाई नहीं रहा। उनके मरने से सर्वसाधारण की जो क्षति हुई है वह सहज में पूरी होनेवाली नहीं। उनकी योग्यता, आदर्श-चरित्र, समाज का हित करने में निष्ठा-पूर्ण एकाग्रता और मद्यपान निवारण की चेष्टा बुद्धिमान् नीतिज्ञ पुरुषों की मण्डली मे चिरस्मरणीय बनी रहेगी। बङ्गाल टेम्परन्स सोसायटी उन्हीं के परिश्रम का फल है। अँगरेजी और बँगला की बहुत सी छोटी छोटी पुस्तकें आदि अनेक अनुष्ठान विद्यमान रह कर उनकी कीर्त्ति का परिचय देंगे। तुम्हारा स्नेहशील—ईश्वरचन्द्र शर्म्मा।

विद्यासागर सदा समाजसंस्कार के पक्षपाती रहे। समाज की उन्नति और कल्याण करना उनके जीवन का महाव्रत था। उनके स्वर्गवास के कुछ दिन पहले सारे बङ्गाल में व्याप्त हो रहे आन्दोलन से जब हिन्दूसमाज में हलचल मच गई थी, जब लोगों ने उस बारे में आईन बनने की आवश्यकता का अनुभव करके भी नासमझी के कारण लाट साहब के द्वार पर 'आईन न चाहिए, आईन न चाहिए' कह कर चिल्लाहट मचाई थी, तब शरीर के अस्वस्थ और कमजोर तथा मन के शिथिल होने पर भी धर्म्मबुद्धि और बहुत लोगों के अनुरोध की उपेक्षा न कर सकने के कारण विद्यासागर सर फिलिप हाचिन्स से मिलने गये और सम्मति-आईन के बारे में उन्होने जो

छोटा सा मन्तव्य लिखा था उसके अनुसार कार्य्य करने के लिए विशेष रूप से अनुरोध किया। उस अनुरोध का कुछ फल नहीं हुआ, इस कारण आधुनिक समय की भारतीय राजकार्य-सञ्चालन की व्यवस्था पर उन्हें अश्रद्धा भी हो गई थी। विद्यासागर ने भारतीय दण्डविधि आईन के नवीन परिवर्त्तन के सम्बन्ध में सुयुक्ति और धर्म्मबुद्धि के द्वारा सम्पूर्ण-रूप से अनुमोदित मन्तव्य प्रकाशित किया था। समाज का कल्याण करनेवाली उक्तियों से पूर्ण और असहाय स्त्री-जाति के साथ सहानुभूति का परिचय देनेवाले उनके उक्त अन्तिम व्यवस्थापत्र का कुछ अंश यहाँ पर उद्धृत किया जाता है —

"Though on these grounds I cannot support the Bill as it is, I should like the measure to be so framed as to give something like an adequate protection to child-wives, without in any way conflicting with any religious usage. I would propose that it should be an offence for a man to consummate marriage before his wife has had her first menses. As the majority of girls do not exhibit that symptom before they are thirteen, fourteen or fifteen, the measure I suggest would give larger, more real, and more extensive protection than the Bill. At the same time, such a measure could not be objected to on the ground of interfering with a religious observance.

अर्थात् इन सब कारणों के रहते वर्त्तमान आकार में उपस्थित आईन का समर्थन मैं नहीं कर सकता। मैं चाहता हूँ कि हिन्दू के धर्म-कर्म में हस्तक्षेप भी न हो और बालिकायें उपयुक्त रूप से निरापद की जा सकें, इस प्रकार यह आईन बनाया जाय। मैं प्रस्ताव करना चाहता हूँ कि द्वितीयसंस्कारकाल (मासिक धर्म) उपस्थित होने के पहले किसी स्वामी का बालिका स्त्री से सहवास आईन के अनुसार दण्डनीय हो। अधिकतर १३।१४ या १५ वर्ष के पहले

बालिकाओं का द्वितीय संस्कार काल उपस्थित नहीं होगा। ऐसे प्रस्ताव के अनुसार आईन बनाने से, इसके द्वारा, अधिकांश बालिकायें दुर्गति से बचाई जा सकेंगी। और, धर्म-नीति का सहारा लेकर कोई आपत्ति न कर सकेगा।

इसके बाद शास्त्रीय प्रमाण आदि दिखला कर अन्त में विद्यासागर लिखते हैं —

"I am very strongly of opinion therefore that the only suitable remedy appears to me to make a law declaring it penal for a man to have intercourse with his wife before she has first menses * *

"Such a law would not only serve the interests of humanity by giving reasonable protection to child wives, but would, so far from interfering with religious usage, enforce a rule laid down in the Sastras. The punishment, which the Sastras prescribe for violation of the rule is of a spiritual character, and is liable to be disregarded. The religious prohibition would be made more effective if it was embodied in a penal law. I may be permitted to press this consideration most earnestly on the attention of the Government." * * *

Note on the Bill to amend the Indian Penal Code and the Code of Criminal Procedure 1882

अर्थात् सब ओर दृष्टि कर विचार करने पर बालिकाओं का द्वितीय संस्कार काल उपस्थित होने से पहले के सहवास का अपराध गिना जाना सर्वथा संगत ही जान पड़ता है।

इस प्रकार का आईन बनाने से केवल बालिकाओं को अन्याय अत्याचार से बचा कर समाज का कल्याण ही न किया जायगा, बल्कि शास्त्र में इस बारे में जो आज्ञा है उसकी फिर से स्थापना भी की जायगी। शास्त्र में ऐसे अन्याय के लिए जो दण्ड की व्यवस्था है वह शारीरिक नहीं, आध्यात्मिक है। इस कारण सहज ही लोग

उसकी परवा नहीं करते। मेरे प्रस्ताव के अनुसार व्यवस्था करने से दण्डविधि आईन के द्वारा धर्म का निर्देश अधिकतर फलप्रद होगा। मैं गवर्नमेंट से इस विषय मे विशेषभाव से विचार करने के लिए प्रार्थना करता हूँ।

विद्यासागर ने इस सम्बन्ध मे और भी बहुत सी बाते कही हैं किन्तु यहां पर उन सबके उल्लेख का प्रयोजन नहीं है। जान पडता है, इस समय के राजकर्मचारी विद्यासागर को अच्छी तरह जानते न थे। अगर वे विद्यासागर के दीर्घकालव्यापी समाजसस्कार और लोकसेवा के गौरव और विस्तार को जानते होते तो केवल विद्यासागर के आग्रह और सलाह से ही अपने इरादे को कुछ बदल कर आईन की उपकारिता और उपयोगिता प्रमाणित कर सकते। उस प्रकार की व्यवस्था न करने से आईन बनाने का उद्देश्य अच्छी तरह सिद्ध नहीं हुआ। इस आईन के बारे में विद्यासागर की सहानुभूति के पूर्ण अभाव और परिवर्तित आकार मे इस आईन को विधिबद्ध करने की प्रार्थना से प्रकट होता है कि विद्यासागर महाशय, जब तब, एसे वैसे परिवर्त्तन की प्रार्थना लेकर सर्वसाधारण या सरकार की सेवा मे उपस्थित नहीं हुए। सुयुक्ति और समाज-धर्म्म की सीमा के भीतर रह कर जहा तक परिवर्त्तन होना सम्भव है, उन्होने उतना ही समाज-सस्कार करने की जन्म भर चेष्टा की। उनके जीवन के इस अन्तिम सस्कार करने की प्रार्थना से भी यही बात झलकती है। सन् १८६१ ई० को २९वीं जुलाई को विद्यासागर की मृत्यु हुई और इसी सन् की १६ वीं फरवरी को उल्लिखित प्रार्थनापत्र लॉट साहब की सेवा में भेजा गया था। इससे यह बात स्पष्ट मालूम पडती है कि परलोक-गमन के समय तक वह लोकहित करने में लगे रहे।

कोई कोई कहते हैं कि विद्यासागर की बुद्धि विकृत हो गई थी।

वह सनातन हिन्दू-धर्म्म को न मानते थे। ऐसा हुआ था या नहीं, इसका सबसे बढ़ कर प्रमाण यह व्यवस्थापत्र है। हिन्दूभाव और हिन्दू-धर्म्म की रक्षा करने में वह अन्य किसी आस्थावान् हिन्दू से कम न थे। कोई कोई महाशय दयापूर्वक उन्हें 'भ्रान्त हिन्दू' कहते हैं। इससे बढ़ कर जातीय असारता और अधोगति का परिचय क्या हो सकता है? जातीय अधःपात की पराकाष्ठा न हो गई होती तो देश के आदमी ऐसी लज्जा की बात कभी न लिखते और कहते। हमारे अभाग्य हैं कि हम ऐसे महापुरुष का महत्त्व और उसके कार्य्यों का गौरव समझ नहीं पाते, या समझने की चेष्टा नहीं करते। उन्होंने खान-पान और चाल-चलन में बराबर हिन्दूपन का निर्वाह किया, भूल कर भी अखाद्य नहीं खाया और अपेय नहीं पिया। जो लोग न खाने पीने लायक चीजें खा-पीकर पले हैं या जो जान-बूझ कर अपनी खुशी से ऐसा करते हैं उन हिन्दुओं से क्या विद्यासागर लाख दर्जे अच्छे नहीं हैं? जिस देश के विद्वान् बुद्धिमान् लोग बाग की तितली की तरह तरह तरह के फैशन बना कर निकलते हैं, जिस देश के अध्यापक पण्डित भी टसर, गर्दा आदि रेशमी और शाल-दुशाले आदि ऊनी वस्त्रों के व्यवहार का अभ्यास रखते हैं उस देश में सदा धोती और मोटी चादर पहन कर गुजर करने वाले विद्यासागर का क्या मनु, पराशर, वशिष्ठ, विश्वामित्र, वाल्मीकि और व्यास की तरह सम्मान और पूजन न होना चाहिए? इस समय जिनको संसार में सम्मान और सम्पत्ति प्राप्त है उनके दर्शन मिलना ही दुर्लभ हो जाता है। उनके दर्शन करना चाहे तो बहुत से विघ्नों और बाधाओं का सामना करने में जान ओठों पर आ जाती है। किन्तु असंख्य जन-समूह से परिपूर्ण महानगरी कलकत्ते में रहने पर भी विद्यासागर के दर्शन सबको सुलभ थे। वह निर्जन जङ्गल के छोर पर स्थित तपोवन की पर्णकुटी में रहने

वाले तपस्वी की तरह रहते थे। वह आडम्बरशून्य एकान्त एक छोटे से कमरे मे रहते थे। कमरे के आस पास फूलो के चमन थे। जब जो कोई उनसे मिलने गया वह लौटाया नहीं गया। चाहे आरोग्य हो चाहे बीमार, चाहे छुट्टी हो और चाहे न हो, वह आनेवाले से अवश्य मिलते थे। सम्पत्ति और सम्मान पाकर उन्होने अपना जातीय भाव या ब्राह्मण-पण्डित के लक्षण खो नही दिये थे। मैंने उनके पास उपस्थित रह कर अपनी आँखो से देखा है कि मामूली आदमी भी, चाहे जिस समय, विना रोक-टोक के, विद्यासागर के पास पहुँच सकता था। वह आदमी भी, जो कभी उनके पास नहीं आया, पूर्व-परिचित की तरह उनके पास जाकर अपने सुख-दुख की बात कहने लगता था और उसे वह आग्रह के साथ सुनते थे। उस न-जाने कहाँ के रहनेवाले के सन्ताप की आग को विद्यासागर अपने आँसुओ से बुझा देते थे। वह उसके दु ख दूर करने का उपाय भी यथासाध्य करते थे। इस तरह की घटनाये मैंने सैकडो बार देखी हैं। इस समय हिन्दू-सन्तान के जीवन का ऐसा उच्च आदर्श बहुत कम देखने को मिलता है। एक बार एक अध्यापक, जो बङ्ग-देशीय अध्यापक-मण्डली मे मुख्य माने जाते थे, किसी एक सामाजिक कार्य की व्यवस्था लेकर विद्यासागर के पास गये। विद्यासागर ने सुन रक्खा था कि इन महाशय ने दोनो दल के लोगो को व्यवस्था दी है, और इस तरह दोनो पक्षों को शास्त्र-सम्मत बतलाया है। विद्यासागर ने वज्र-गम्भीर स्वर में उनसे कहा—"आप क्या चाहते हैं? आप तो बडे मजे के आदमी हैं। पहले जिस व्यवस्था पर आप अपनी सम्मति दे चुके हैं उसी को आज शास्त्र-विरुद्ध बतलाने बैठे हैं। आपने भी कुछ लिखा-पढा है, और मैंने भी कुछ लिखा-पढा है। आप यदि अपने को पण्डित कह सकते हैं तो मैं भी कह सकता हूँ। किन्तु

पण्डित कह कर परिचय देना कैसा, यदि मुझे कोई केवल ब्राह्मण समझता है तो उसे भी मैं अपना भारी अपमान समझता हूँ। आप लोगो के आचरण से ब्राह्मण जाति का मान नहीं रहा"। ब्राह्मण का प्रधान गुण है स्वाधीन-प्रकृति और उदारता, विद्यासागर में ये दोनो बातें पूर्ण-रूप से थीं। विद्यासागर के द्वारा लुप्त सम्पत्ति का उद्धार होते देख कर वङ्ग-देश की अध्यापक-मण्डली को क्या प्रसन्न न होना चाहिए? उन्हें क्या विद्यासागर की जीवनी से इस उच्च नीति की शिक्षा न प्राप्त करनी चाहिए? जो हिन्दूपन उच्च आदर्श का मेरुदण्ड है वह विद्यासागर मे पूर्ण मात्रा से मौजूद था। आज कल के लोग उस हिन्दूपन का आदर न कर सके तो यह उनकी अयोग्यता है।

विद्यासागर का समाजसंस्कार सर्वथा धर्म-शास्त्र के अनुकूल था। इस बात का अनुभव प्राप्त करने के लिए ब्राह्मणोचित शास्त्रचर्चा की आवश्यकता है। जो लोग इस प्रकार शास्त्र-चर्चा न करके केवल प्रचलित आचार-विचार के अनुसार आचरण करते हैं और जो लोग उस अवस्था को वैसी ही बनाये रखने का प्रयास करते हैं वे ही देश का भारी अनिष्ट कर रहे हैं और वे विद्यासागर के महान् और उदार उद्देश्य को कभी नहीं समझ सकते।

चाहे कोई कुछ कहे, विचारशील आस्थावान् हिन्दू सदा सम्मान के साथ विद्यासागर को सिर झुकाते रहे हैं। सामाजिक कार्य या शास्त्रसम्बन्धी कोई जटिल प्रश्न उपस्थित होने पर विद्यासागर की दी हुई व्यवस्था ही श्रेष्ठ समझी जाती थी। पाइकपाड़ा के राजपरिवार में एक श्राद्ध बड़ी धूम से हुआ था। उसके अध्यक्ष विद्यासागर ही बनाये गये थे। उन्हीं की व्यवस्था के अनुसार तारानाथ तर्कवाचस्पति आदि को विशेष विशेष कार्य सौंपे गये थे। वङ्गदेशीय अध्यापक-मण्डली वहाँ यथायोग्य सम्मान पाकर परम सन्तुष्ट हुई थी। इस कार्य में उनकी

प्रधानता का प्रमाण-स्वरूप एक पत्र यहाँ पर उद्धृत किया जाता है —

श्रीयुक्त बाबू रामेश्वर मालिया,

विनयनमस्कारपुरस्कृत निवेदनमिदम्—

इस समय श्रीयुक्त भुवनमोहन विद्यारत्न महाशय नदिया के प्रधान नैयायिक पण्डित हैं। इस बारे में मुझे रत्ती भर सन्देह नहीं है। कृष्णनगर के राजभवन मे इस विषय का आन्दोलन हुआ था। वहाँ उन्हीं की प्रधानता निर्विवाद-रूप से स्वीकृत हो चुकी है। अतएव आपके यहाँ से नदिया के प्रधान नैयायिक को जो वार्षिक वृत्ति दी जाती है वह वृत्ति श्रीयुक्त भुवनमोहन विद्यारत्न महाशय को ही मिलनी चाहिए। मैं बीमारी के मारे रोगशय्या पर पडा हुआ हूँ, इसीसे उत्तर देने मे विलम्ब हुआ। इति २६ आश्विन, सन् १२६० ।

श्रीईश्वरचन्द्र शर्म्मा।

सातचीरा के जमींदार बाबू प्राणनाथ चौधरी के श्राद्ध के अवसर पर एक यह प्रश्न उपस्थित हुआ था कि वृद्ध के दो पोतो में कौन श्राद्ध का अधिकारी है? वृद्ध के दो पुत्र थे और दोनो मर चुके थे। एक पुत्र के खास लडका था और दूसरे पुत्र के गोद लिया हुआ लडका था। कुलगुरु जानकीजीवन न्यायरत्न ने बडे और गोद लिये हुए लडके को श्राद्ध का अधिकारी बतलाया। दूसरे पक्ष ने व्रजनाथ विद्यारत्न से अपने अनुकूल व्यवस्था प्राप्त करके उस पर आपत्ति उपस्थित की। इसके विचार का भार विद्यासागर के ऊपर आ पडा। विद्यासागर ने कुलगुरु जानकीजीवन की व्यवस्था को ही श्रेष्ठ बतलाया। उसी के अनुसार कार्य्य हुआ।

विद्यासागर के स्वर्गवास के समय माननीय श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्त

सी० एस० सी० आई० ई० महाशय ने एक शोकोच्छ्वास-पूर्ण लेख लिखा था। उसका कुछ अश यहाँ पर उद्धृत किया जाता है —

"आज तक कुसस्कार जब इतना प्रबल है तब तीस बरस पहले उसका कैसा बल होगा, यह सहज ही समझ में आ सकता है। साधारण आदमी होता तो ऐसी अवस्था मे हताश हो जाता, किन्तु दृढ-सङ्कल्प ईश्वरचन्द्र हताश होनेवाले आदमी नहीं थे। एक ओर स्वार्थपरता, जडता और मूर्खता थी, और दूसरी ओर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर थे। एक ओर विधवाओ पर समाज का अत्याचार, पुरुषों की हृदयहीनता और निर्जीव जाति की निश्चलता थी और दूसरी ओर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर थे। एक ओर सैकडो वर्षो के कुसस्कार और कुरीति का फल था और दूसरी ओर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर थे। एक ओर निश्चल निर्जीव तेजोहीन वङ्ग-समाज था और दूसरी ओर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर थे।

"हमारे निर्जीव वङ्ग-समाज में ऐसी घटनाये बहुत कम देखने को मिलती हैं। पवित्रात्मा राममोहन राय के बाद ऐसा तीव्र युद्ध, ऐसा सामाजिक आन्दोलन, ऐसा सङ्कल्प, ऐसा अनुष्ठान, ऐसा सिंह का ऐसा पराक्रम नहीं देखा गया। पुरुष-सिंह के सामने समाज की मूर्खता और स्वार्थपरता न टिक सकी। सामाजिक सुभट खड्ग हाथ में लिये रास्ता साफ करता हुआ आगे बढता गया, विधवाविवाह का आईन पास करा लिया। विद्यासागर के गौरव से देश परिपूर्ण हो गया। विद्यासागर के विजय से सच्चे हिन्दुओ का उपकार हुआ"।

इतने प्रमाण मौजूद रहते भी उनके एक जीवनी-लेखक ने उन्हें अहिन्दू साबित करने की चेष्टा करके अपने सिर कलङ्क की गठरी लादी है।

आज समाज-सस्कार का मैदान सूनसान पडा हुआ है। जिसमें

घोड़े जुते हुए हो ऐसा रथ जैसे सारथी के विना कुपथ मे जाता है, सञ्चालक-हीन सेना जैसे परस्पर शस्त्र चला कर अपना विनाश और जातीय बल का क्षय करती है वैसे ही आज वङ्ग-समाज राममोहन ऐसे सुयोग्य सारथि के न होने से इधर उधर कुपथगामी होकर भटक रहा है—समाजसंस्कारक लोग ईश्वरचन्द्र ऐसे महापराक्रमी सेनापति के न होने से उच्छृङ्खल सेना की तरह तितरवितर हो रहे हैं। देवेन्द्र-नाथ ठाकुर और केशवचन्द्र सेन के समान प्रतिभाशाली सञ्चालक के न होने से, छोटे छोटे दलों मे बँट कर, ब्राह्म-समाज भी धीरे धीरे क्षीण और हीन-बल होता जाता है। बंगाल की धर्म्म-चिन्ता, धर्म-तृष्णा, समाजसंस्कार और लोगों की अन्यान्य भलाइयाँ करने का प्रवाह जैसे धीरे धीरे शिथिल होता जाता है। यह सच है कि गुणी और कर्म्मनिष्ठ लोगों की संख्या अधिक न होने पर भी कुछ लोग ऐसे मौजूद हैं जो अपने जीवन का बूँद बूँद रक्त देकर समाज के बुझ रहे दीपक को किसी तरह बनाये हुए हैं। किन्तु यह भी सच है कि राजा का काम प्रजा करे तो जैसे वह अच्छा नहीं मालूम पड़ता और काम भी ठीक नहीं होता वैसे वही हाल हमारे काम का है। वीर का काम अगर कायर करे तो उसमे जैसे वीरता नहीं रहती, शेर का काम अगर सियार करे तो उसमे जैसे चतुरता ही केवल प्रकट होती है वैसे वही इस समय हो रहा है। धर्म, कर्म, समाजसंस्कार और अन्यान्य सभी अच्छे कामो मे अपने को लगा कर कृतार्थ सम-झने वाले लोग बहुत ही कम हैं। आत्मोत्सर्ग करके अन्तिम घड़ी तक जीवन के महाव्रत को निबाहनेवाले ईश्वरचन्द्र के अनुगामी सबल तेजस्वी पुरुष के सहसा आने की सम्भावना नहीं है। हमको सुमार्ग मे चलानेवाला विद्यासागर-सदृश महापुरुष न-जाने कब समाज मे देख पड़ेगा। सब जीवो के आश्रय-स्वरूप भगवान् ने राममोहनराय के बाद

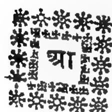
जैसे ईश्वरचन्द्र को भेज कर हमें सच्चा आदर्श और उत्तम मार्ग दिखलाया था वैसे ही क्या ईश्वरचन्द्र के बाद वह किसी ऐसे पुरुष-सिंह को न भेजेंगे जो आश्रय, अवलम्ब और पथ-प्रदर्शक बन कर समाज के आगे विजयपताका हाथ में लिये वीरवेश से कर्त्तव्य की ओर हमें ले चले? सङ्कीर्णता और स्थिर-भाव की रक्षा करने में समाज का जीवन नष्ट हो जाता है। घर का सामान पात्र आदि सदा धोये-मांजे जाते हैं, कपड़े धोये जाते हैं, देह को सबल सुस्थ और सुन्दर बनाये रखने के लिए सफाई करनी पड़ती है, वैसे ही समाज की सफाई भी यथासमय होती रहनी चाहिए। यह कैसे हो सकता है कि सामाजिक-जीवन के मार्ग में कूड़ा जमा होता रहे और समाज भी दिन दिन उन्नति के मार्ग में अग्रसर होता रहे। संस्कार ही सबको उन्नति के मार्ग में अग्रसर करता है। बिना संस्कार के समाज का उन्नति से विमुख हो रहना—जहाँ के तहाँ डँटे रहना—कभी श्रेयस्कर नहीं हो सकता। समाज के कूड़े के ढेर में आग लगा दो, मैल जल जायगा। समाज तपे हुए खरे सोने की तरह चमक कर सबके मन को मोह लेगा। विद्यासागर जीवन के अन्तिम दिन तक इसी काम में लगे रहे। जिनके ऋण को वङ्ग-समाज कभी चुका नहीं सकता उन महापुरुषों में विद्यासागर को पहला स्थान दिया जा सकता है। देशवासियों का दुख दूर करके उन्हें सुखी बनाने में अपना सारा समय, अपनी सारी आमदनी, अपनी सारी विद्या-बुद्धि और परिश्रम लगा कर वह मनुष्य-जीवन का महान् आदर्श दिखला गये हैं। अब हम समाजसंस्कार के मैदान में उनके सच्चे उत्तराधिकारी के शुभागमन की आशा लगाये हुए बैठे हैं।

विद्यासागर महाशय की विधवाविवाह चलाने की चेष्टा का समर्थन करते हुए अनेक गण्य मान्य अध्यापकों ने ग्रन्थ और

लेख लिखे हैं। उनमें महामहोपाध्याय पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न का प्रबन्ध ही विशेष रूप से उल्लेख के योग्य है। उस प्रबन्ध का साराश इस पुस्तक के परिशिष्ट में पाठको को पढने को मिलेगा।

नवम अध्याय।

विद्यासागर और ज्ञान व शिक्षा का प्रचार।



ज बङ्गाल में बहुत सी ब्राह्मणेतर जातियाँ हिन्दू-धर्म, हिन्दू-शास्त्र और समाजतत्त्व की आलोचना करके अपने अपने आत्मा का कल्याण करती हुई मानसिक तृप्ति प्राप्त करती हैं और ज्ञानोपार्जन करके कृतार्थ हो रही हैं। इसकी सूचना और श्रीवृद्धि का श्रेय महात्मा राममोहन राय के बाद विद्यासागर को ही प्राप्त हो सकता है। बङ्गाल का गौरव बढानेवाले राममोहन ने अपना सर्वस्व खर्च करके वैदिक धर्म—उपनिषद् के धर्म, परम-पूजनीय ऋषियों की साधना से प्राप्त ब्रह्मज्ञान के प्रचार में अपना जीवन अर्पण कर दिया। उन्होंने सबसे पहले वेदान्त सूत्र का बँगला अनुवाद प्रकाशित किया। उन्होंने शास्त्र का रोजगार करनेवाले ब्राह्मणों के लिए धर्म शास्त्रों का बँगला अनुवाद नहीं प्रकाशित किया। उन्होंने सर्वसाधारण का ज्ञान बढाने के लिए ही इन ग्रन्थों के अनुवाद को प्रकाशित किया था। इस काम में अपना सर्वस्व लगा देने के कारण अन्त को धनाभाव से इँगलेंड में अत्यन्त कष्ट पाकर प्राण त्याग किया। राममोहन राय की मृत्यु के बाद पूज्य-पाद महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने भी जन्म भर उन्हीं महापुरुष के अभीष्ट को सिद्ध करने की चेष्टा की। विद्यासागर महाशय ने भी

उसी मार्ग मे चल कर लोक-शिक्षा बढाने मे अपना जीवन अर्पण कर दिया। लोक-शिक्षा के लिए ही उन्होंने विधवाविवाह और बहुविवाह के सम्बन्ध की पुस्तके लिखीं। वे उनकी अक्षय कीर्त्ति बन कर सदैव बँगला के साहित्य की शोभा बढावेंगी। किन्तु लोक-शिक्षा के लिए वह इतना ही करके चुप नहीं हो गये। वह बहुत अधिक ज्ञान फैलाना चाहते थे। शिक्षाप्रचार के लिए यत्न करनेवाला उनके समान और कोई हुआ ही नहीं, यह कहना भी अनुचित न होगा। वह सर्वसाधारण मे शिक्षा-प्रचार के कैसे पक्षपाती थे, पहले पहल नौकरी करने के समय ही उन्होंने इस बात का बहुत अच्छा परिचय दिया था। उन्होने गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंज से अनुरोध करके १०१ बङ्ग-विद्यालय स्थापित कराये। उन्होंने बहुत से विरोधियो के सामने अकेले खडे होकर सस्कृत-कालेज मे सर्वसाधारण के लिए सस्कृत पढने का द्वार खोल दिया। विरोधियों के सब तर्कों का ठीक उत्तर दे कर उन्हे चुप कर देना और ब्राह्मणेतर जातियो के लडको को धर्म-शास्त्र छोड कर और सब सस्कृत-ग्रन्थों के पढने का अधिकार दिलाना विद्यासागर ऐसे मनस्वी पुरुष का ही काम था। वह जब मेदिनीपुर, हुगली, बर्दवान और नदिया, इन चार जिलों के अतिरिक्त इन्स्पेक्टर थे तब छोटे लाट हालिडे साहब की जबानी आज्ञा पर उन्होंने एक सौ से अधिक लडकियो के स्कूल खोले थे। अन्त को यही शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर के साथ मनोमालिन्य का कारण हुआ। इसी के कारण उन्हे पराधीनता की बेडियो से छुटकारा भी मिला। विद्यासागर ने अपनी अवस्था सुधारने के साथ ही अपनी जन्मभूमि वीरसिंह गाँव में लोगों को शिक्षा देने की व्यवस्था कर दी थी। वह एक बार स्कूलों का मोआयना करने के लिए अनेक स्थानो में घूमते हुए अपनी जन्म-भूमि वीरसिंह गाँव मे पहुँचे। घर में उपस्थित होकर उन्होंने सबसे

पहले पिता और माता के चरण छू कर उनको एक सुसमाचार सुनाया। पहले किसी अध्याय में कहा जा चुका है कि बाल्यकाल में पढने की अवस्था में ही विद्यासागर ने छात्रवृत्ति के रुपये से गाँव की पाठशाला के लिए कुछ लिखित संस्कृत-पुस्तकें और कुछ सम्पत्ति खरीदी थी। अब तक अच्छी तरह हाथ-पैर न चलने के कारण उस इरादे के माफिक काम नहीं हो सकता था। घर में पहुँचते ही विद्यासागर ने पिता से कहा —"वीरसिंह और उसके आस पास के गाँवों के लड़को को सुशिक्षा प्राप्त करने का सुभीता कर देने के लिए अपने गाँव में एक अँगरेजी स्कूल खोलने का मेरा इरादा है"। ईश्वरचन्द्र के पिता-माता दोनों पुत्र के इस प्रस्ताव से बहुत प्रसन्न हुए। जिस दिन शाम को यह बात-चीत हुई उसके दूसरे ही दिन विद्यालय के लिए जगह भी ठीक हो गई और शीघ्र ही विद्यालय का काम भी शुरू हो गया। स्कूल का घर बनाने का आरम्भ जिस दिन होने वाला था उस दिन कोई मजदूर नहीं मिला। अच्छे कामों में विद्यासागर को ऐसा अनु-राग था कि मजदूर न मिलने से काम रुका नहीं रहा। विद्यासागर अपने भाइयों के साथ खुद मिट्टी खोदने का काम करने लगे। वीर-सिंह-विद्यालय का यह परम सौभाग्य है कि किसी शुभकार्य के के अवसर पर जिस महात्मा की उपस्थिति और शुभ-दृष्टि पाने के लिए कितने ही देश-विदेश के आदमी अनेक चेष्टायें करते थे उसी महात्मा के हाथों उसके भवन की नींव पड़ी। इधर घर बनने लगा उधर दूसरे स्थान में विद्यालय का कार्य्य शुरू हो गया। उस स्कूल में गाँव के और आसपास के गाँवों के बालक पढने आने लगे और इस प्रकार उन्हें अपनी उन्नति करने का सुअवसर सुलभ हो गया। विद्या-सागर ने वीरसिंह में एक स्कूल लड़कों के लिए और एक स्कूल लड़कियों के लिए खोला। इतना ही करके वह चुप नहीं रहे। उन्होंने

वीरसिंह और निकटवर्त्ती अन्य ग्रामो के श्रमजीवियो, चरवाहों और किसानों (बालको) के पढने के लिए एक रात का स्कूल भी खोल दिया। इस स्कूल के गरीब विद्यार्थी दिन को खेत में काम करते, और पशुओ को चराते थे, और रात को स्कूल मे आकर लिखना पढना सीखते थे। इन तीनो स्कूलो मे विद्यार्थिया से फीस नहीं ली जाती थी। इन स्कूलो मे अमीर गरीब सबके लडके बिना किसी खर्च के विद्योपार्जन करने लगे। इन स्कूलो के विद्यार्थिया को पुस्तक, कागज, कलम, स्लेट, पेंसिल आदि लेने-देने मे हर महीने ३००) से अधिक खर्च होते थे। विद्यासागर के मित्र प्यारीचरण सरकार महाशय अपनी बनाई पुस्तके वीरसिंह-स्कूल को मुफ्त देते थे। इसके सिवा इन स्कूलों के मास्टरों की तनख्वाह और अन्यान्य खर्च मिला कर तीन चार सौ रुपये के लगभग खर्च था। पहले यह सब खर्च विद्यासागर खुद करते थे। उसके बाद जब उन्हीं के उद्योग से एडेड् स्कूलो (Grant-in-Aid) की सृष्टि हुई तब कुछ दिनो के लिए वीरसिंह-स्कूल को भी गवर्नमेंट से सहायता मिली थी। यह स्कूल इस समय प्रात स्मरणीया विद्यासागर की माता भगवती देवी के नाम से प्रसिद्ध है। विद्यासागर के द्वारा स्थापित वह विद्यालय इस समय भी "भगवती-विद्यालय" के नाम से मौजूद है और वीरसिंह की तरफ के बालको को विद्योपार्जन मे सहायता कर रहा है। विद्यासागर के सुयोग्य पुत्र नारायण बाबू इस स्कूल की उन्नति के लिए बराबर यत्न करते रहते हैं।

विद्यासागर अपनी जन्मभूमि में स्कूल खोल कर और उनमे लडकी-लडको को मुफ्त शिक्षा देने की व्यवस्था करके ही चुप नहीं रहे। उनका कोई भी कार्य किसी तरह असम्पूर्ण या अङ्गहीन नहीं रहता था। वह जब जो करना चाहते थे उसे करके ही छोडते थे और जो कुछ करते थे वह सर्वाङ्ग-सुन्दर ही करते थे। उन्होंने स्कूल खोला,

और उसमें मुफ़ लडकों के पढने की व्यवस्था कर दी। पुस्तक आदि की जरुरत होती थी तो अपने खर्च से खरीद देते थे। अगर किसी लडके के भोजन का ठीक न होता था तो उसे अपने घर में रख कर भोजन भी देते थे। विद्यासागर के पिता ठाकुरदास घर में ही रहते थे। माता भगवती देवी अन्नपूर्णा की तरह अपने हाथ से रसोई करके सबको स्नेहपूर्वक भोजन कराती थीं। घर में सबको एक ही तरह का भोजन मिलता था। नारायण बाबू के मुँह से सुना है कि वह बाबा और दादी के बडे दुलारे थे, मगर जो आश्रित दीन बालक उनके यहाँ रहते थे वह भी उनके ही ऐसे वस्त्र और भोजन पाते थे। हे बङ्गाली गृहस्थो! जरा सोच कर देखो, विद्यासागर के एकलौते लडके—घर भर के दुलारे लडके—का लालन पालन उन्हीं लडको के समान होता था जो पराये लडके थे और गरीबी के कारण विद्योपार्जन के लिए विद्यासागर के घर में भोजन करते और रहते थे। तुम ऐसा कर सकते हो? अगर नहीं कर सकते, तो ईश्वरचन्द्र को स्वदेशीय स्वजातीय कहने का तुमको अधिकार नहीं है। नारायण बाबू ने जब गौरव-भरे स्वर में कहा था कि दोनो वक्त बहुत से गरीब बालकों के साथ मामूली भोजन से पेट भर कर बडे सुख से मैं बाबा की गोद में सोता था, तब उनके उत्साहपूर्ण मुख की शोभा देख कर और हिन्दू के घर का निःस्वार्थ परोपकार स्मरण कर सच मुच ही मेरी आँखों से आनन्द के आँसू बह चले थे।

वीरसिंह की तरफ कोई डाक्टर न था। विद्यासागर ने विद्यालय की परीक्षा में पास हुए श्रेष्ठ बालकों को अपने खर्च से कलकत्ते में रख कर डाक्टरी पढाई। इस प्रकार डाक्टर तैयार करके उन्होंने अपनी जन्मभूमि के इस भारी अभाव को भी दूर कर दिया। इस स्कूल के अनेक अच्छे विद्यार्थी विद्यासागर की सहायता से उच्च शिक्षा पाकर

इस समय सम्मान और सम्पत्ति प्राप्त करके सुख से गुजर करते हैं।

किन्तु आज कल के लोग ऐसे असार हैं कि विद्यासागर सरीखे पुरुष से उत्साह और सहायता पाना स्वीकार करने में उनको लज्जा लगती है। अनेक लोगों को अगर आपत्ति न होती और उनका नाम धाम प्रकाशित करने में उनके खफा होने का खटका न होता तो यह अच्छी तरह दिखलाया जा सकता कि केवल वीरसिंह और उसके निकटवर्ती स्थानों के ही नहीं, बल्कि बङ्गाल भर के अनेक प्रतिष्ठित पुरुष विद्यासागर से स्नेहपूर्ण उत्साह पाकर उनके अर्थ साहाय्य और उपदेशों से उपकृत और कृतार्थ हुए हैं और इस समय गण्य-मान्य लोगों की सूची बढा कर अपने को कृतकृत्य समझ रहे हैं। इस देश की शिक्षित-मण्डली पर विद्यादान और ज्ञान-प्रचार के मामले में विद्यासागर का ऐसा भारी ऋण है कि वह चुकाया नहीं जा सकता। इस बात को साधारण बुद्धि का आदमी समझ ही नहीं सकता। विद्यासागर ने केवल अपनी जन्मभूमि (वीरसिंह) की ही सब तरह की श्रीवृद्धि पर ध्यान नहीं दिया। वह जब जहाँ गये तब वहाँ के धनी लोगों के द्वारा कुछ न कुछ अच्छा काम उन्होंने कराया। स्कूलों की देख-भाल के लिए घूमते घूमते एक बार विद्यासागर बैंची गाँव में पहुँचे। वहाँ एक कन्या-पाठशाला स्थापित कराई और उसके बाद वहाँ के प्रतिष्ठित जमींदार बाबू राखालदास मुखोपाध्याय और बाबू बिहारी-लाल मुखोपाध्याय को लडकों के लिए एक अँगरेजी स्कूल खोलने पर राजी कर लिया। विद्यासागर के अनुरोध से वहाँ जो स्कूल खुला, वह अब तक बिहारी बाबू के खर्च से चल रहा है और उसके द्वारा वहाँ के गाँवों का बहुत कुछ उपकार हो रहा है।

विद्यासागर को कुछ दिन राजा ईश्वरचन्द्र और प्रतापचन्द्र की

जन्मभूमि कांदी-गांव में, उनकी मित्रता के कारण, रहना पड़ा था। उस समय उन्होंने वहां राजा के खर्च से एक अँगरेज़ी स्कूल खुलवाया। इसी तरह जहाँ वह गये और जहाँ उन्हें सुभीता मिला वहाँ उन्होंने ज्ञान-प्रचार की चेष्टा करके अपनी स्वाभाविक उदारता का परिचय दिया। इन सब छोटे छोटे कामों से भी इस बात का पता लगता है कि उनमें लोकहित की प्रवृत्ति और लोगों का अज्ञान दूर करने की कामना कितनी प्रबल थी। वह मनुष्य के उच्च अधिकार पाने के पूर्ण पक्षपाती और सहायक थे। विद्यासागर महाशय इस बात का आदर्श हैं कि ब्राह्मण कैसा संयमी निर्लोभ परोपकारी और लोकवत्सल होता हमारे अध पात को सहज में रोक सकता है। विद्यासागर ज्ञान-प्रचार को ही कुसंस्कार दूर करने का एकमात्र उपाय समझते थे। उन्होंने सब जगह सब कामों में ज्ञान-प्रचार की ही चेष्टा की है। उन्होंने संस्कृतकालेज के प्रिन्सिपल का पद छोड़ते समय कहा था कि "स्वदेशी लोगों के सुशिक्षालाभ और उनमें ज्ञान-प्रचार के साथ यद्यपि मेरा साक्षात् सम्बन्ध छूटा जाता है", उस समय वह न जानते थे कि स्वदेशियों में शिक्षा-प्रचार करने का काम उन्हें कितना करना पड़ेगा। वह उस समय यह न समझ सके थे कि विधाता उनके द्वारा एक बड़ा भारी काम कराने वाले हैं। इसी कारण सरकारी नौकरी से—पराई ताबेदारी से—वह अलग होते हैं। और वह समझ ही कैसे सकते थे? बच्चा कहीं जवानी के बल-वीर्य की धारणा कर सकता है? वर्णपरिचय पढ़ने वाला बालक कहीं कालेज की सर्वोच्च परीक्षा के पुरस्कार पाने की तृप्ति का अनुभव कर सकता है? विद्यासागर ने जब नौकरी छोड़ी थी तब उनकी समझ में बङ्गला-साहित्य की सेवा ही एक बड़ा भारी काम था। इस कारण उस समय वही उनका खास काम था। उस समय उनको इसका खयाल भी न था कि वह 'मेट्रोपोलिटन' के स्थापक

और इस तरह के असख्य स्वदेशी स्कूलो के व्यवस्थापक होंगे। यह सोचने का उस समय अवसर भी न था। उस समय उन्होंने अज्ञात-भाव से जो बात कही थी कि "मैं जीवन का बचा हुआ सारा समय इसी पवित्र कार्य मे लगाऊँगा और मेरा यह व्रत जीवन के अन्तिम दिन, मेरी चिता की राख में सम्पूर्ण होगा।" सो उनके जीवन में अक्षर अक्षर सच हुई। इस पर जो कोई विचार करेगा उसी को आश्चर्य हुए बिना न रहेगा।

सन् १८४८—४६ ई० मे विद्यासागर और मदनमोहन तर्कालङ्कार ने मिलकर 'सस्कृत प्रेस' नाम से एक छापाखाना खोला। इस समय दोनो आदमी सस्कृत कालेज मे नौकर थे। विद्यासागर ने यह प्रेस इस लिए खोला था कि अपने बनाये ग्रन्थ इसी में छापेंगे। साथ ही अपनी पसन्द के और ग्रन्थ भी प्रकाशित करेंगे। इस सम्बन्ध में विद्यासागर ने स्वय लिखा है —

"जिस समय मैं और मदनमोहन तर्कालङ्कार दोनो सस्कृत कालेज में नौकर थे, उस समय तर्कालङ्कार के उद्योग से सस्कृत प्रेस नाम से एक छापाखाना खोला गया। इस छापेखाने मे मेरा और उनका बराबर का हिस्सा था"।

इस सस्कृत प्रेस के स्थापित करने मे विद्यासागर को खूब असुविधाओ का सामना करना पड़ा था। विद्यासागर ने सुना कि उनके मतलब का एक प्रेस बिकाऊ है। वह उसे देखने गये। पसन्द आगया। लेकिन रुपया न था। विद्यासागर या तर्कालङ्कार किसी के पास रुपया न था। बहुत दिनो तक अपेक्षा करके अन्त को विद्यासागर ने अपने मित्र नीलमाधव मुखोपाध्याय से ६००) रुपये उधार लेकर प्रेस खरीद लिया। नीलमाधव बाबू को जिस समय रुपये देने के लिए कहा था उस समय रुपये न पहुँच सकने के कारण विद्यासागर को बड़ी चिन्ता

हुई। इसी समय एक दिन बातचीत में मार्शेल साहब को कर्ज लेकर प्रेस खरीदने की बात मालूम हुई तो उन्होंने विद्यासागर से कहा कि फोर्टविलियम कालेज के छात्रों के लिए यदि तुम भारतचन्द्र के अन्नदा-मङ्गल का एक शुद्ध एडीशन अच्छे कागज पर निकाल सको तो मैं उसकी १०० कापी खरीद कर तुम्हारा ६००) का ऋण चुका दे सकता हूँ। यह आशा पाकर विद्यासागर ने कृष्णनगर के राजभवन से मूल अन्नदामङ्गल की पुरानी प्रति मँगा कर उसका एक नया संस्करण निकाला। उसकी १०० कापियों की बिक्री से प्रेस का ऋण चुकता कर दिया गया। इस प्रकार संस्कृत प्रेस के ऋण से छुट्टी मिली। बाकी पुस्तकों की बिक्री का जो रुपया आया उसके द्वारा प्रेस की तरक्की की जाने लगी। विद्यासागर और तर्कालङ्कार के उद्योग से थोड़े ही दिनों में संस्कृत प्रेस ने अच्छी तरक्की कर ली और वह शीघ्र ही गरीबी से छुटकारा पा गया।

कुछ दिन इस प्रकार उद्योग करने से जब प्रेस अच्छी तरह चलने लगा तब, ठीक उसी समय, पेट के रोग से लाचार होकर तर्कालङ्कार को कलकत्ता छोड़ जाना पड़ा। उनके कलकत्ते से चले जाने पर भी बहुत दिनों तक प्रेस की हालत अच्छी रही, किन्तु अन्त को प्रेस के मामले में विद्यासागर और तर्कालङ्कार के बीच मनोमालिन्य के छोटे छोटे कारण उपस्थित होने लगे। विद्यासागर इस बारे में खुद लिखते हैं—

"धीरे धीरे ऐसे कुछ कारण उपस्थित हुए कि तर्कालङ्कार के साथ कुछ भी सम्बन्ध रखना उचित न जान पड़ा। इस लिए मैंने हम दोनों के आत्मीय पटल डाँगा-निवासी बाबू श्यामाचरण दे के द्वारा तर्कालङ्कार महाशय के पास कहला भेजा कि या तो वह मेरा हिस्सा चुका कर सारा प्रेस खुद लेलें और या अपने हिस्से का हिसाब लेकर प्रेस मुझको दे दें। अथवा हम दोनों छापेखाने की चीजों को आपस में बाँट लें।

तर्कालङ्कार न यह निश्चय किया कि मैं अपने हिस्से का रुपया लेकर प्रेस दे दूँगा। दोनो की राय से बाबू श्यामाचरण दे, पण्डित तारानाथ तर्कवाचस्पति और बाबू राजकृष्ण वन्द्योपाध्याय ये तीनो पच बनाये गये। इन्होने हिसाब किताब देख कर यह निश्चित कर दिया कि तर्कालङ्कार को कितना रुपया मिलना चाहिए। हिसाब की नकल तर्कालङ्कार के पास भेजी गई। उन्होंने बाबू श्यामाचरण दे को पत्र लिखा कि इस समय मैं न आ सकूँगा। अदालत बन्द होने पर कलकत्ते आ कर अपना हिसाब समझ लूँगा। कुछ दिन बाद तर्कालङ्कार का स्वर्गवास हो जाने पर उनकी स्त्री कलकत्ते आकर अपने पति के हिस्से का रुपया ले गई।

मित्रो के फैसले के अनुसार आधे हिस्से की कीमत देकर विद्यासागर ने सब प्रेस पर अपना अधिकार कर लिया और उसका काम अपनी रुचि के अनुसार चलाने लगे।

सस्कृत प्रेस की छपी पुस्तको की बिक्री मे सुगमता के लिए विद्यासागर ने एक सस्कृत प्रेस का पुस्तकालय भी खोल दिया। इसका अँगरेजी नाम है सस्कृत प्रेस डिपोजिटरी। बहुत दिनो तक प्रेस और पुस्तकालय विद्यासागर की ही सम्पत्ति रहा। ये दोनो चीजे किस तरह दूसरे के हाथ मे चली गई, इसका विस्तृत विवरण आगे पढने को मिलेगा। यहाँ केवल इतना ही कहना है कि विद्यासागर केवल पाठ्यपुस्तको की रचना करके या जगह जगह रईस लोगो के द्वारा स्कूल खुलवा करके ही सन्तुष्ट नही हो गये। उन्होने इस उद्देश्य से कि पाठ्य पुस्तके अच्छी तरह छपें, उन पुस्तको को मँगाने मे लोगो को किसी प्रकार की असुविधा न हो और उनके साथ ही कुछ लोगो का पालन-पोषण भी हो, सस्कृत प्रेस और सस्कृत प्रेस डिपोजिटरी स्थापित की थी।

विद्यासागर ने जिस समय नौकरी छोड़कर स्वाधीनभाव से गुजर की व्यवस्था की थी उस समय भी देश में अँगरेजी शिक्षा का अधिक प्रचार नहीं हुआ था। अँगरेजी शिक्षा के सु-प्रचार की सूचना मात्र हुई थी। उस समय गवर्नमेंट ने जो अँगरेजी स्कूल स्थापित किये थे उनमें लड़कों को पढ़ाने के मार्ग में दो बाधायें थीं। इन स्कूलों में बहुत खर्च होने के कारण लड़कों से फीस बड़ी कड़ी ली जाती थी। इतनी अधिक फीस थी कि गरीब किसी तरह वह शिक्षा पाने की आशा न कर सकता था। मध्यवित्त श्रेणी के लोग भी अधिक खर्च के कारण अपने लड़कों को यह शिक्षा नहीं दिला सकते थे। अतएव यह कहना चाहिए कि गवर्नमेन्ट के ये स्कूल होने पर भी गरीबों और मध्यवित्तों के लिए न होने के बराबर ही थे। दूसरी बाधा यह थी कि गवर्नमेन्ट के स्कूलों में सदा से धर्म-हीन शिक्षा दी जाती है। अर्थात् धर्म-सम्बन्धी शिक्षा नहीं दी जाती। भिन्नधर्मावलम्बी राजा के लिए धर्म-शिक्षा देने के बारे में निरपेक्ष रहना ही अच्छा है। किन्तु यह निरपेक्षता और सारी प्रजा-मण्डली की धार्मिक उन्नति के बारे में उदासीनता एक ही बात है। जन-समाज अगर शिक्षा-प्रेमी बालकों का बचपन और बाल्यकाल में धर्मोपदेश से वञ्चित रक्खे, परमेश्वर की प्रीति और गुरुजन की भक्ति न सिखलावे, आगे चलकर अनेक प्रकार के पाप के प्रलोभनों में आत्मरक्षा करने की सामर्थ्य देनेवाली शिक्षा देने के बारे में चुप रहे, तो शीघ्र ही उसका विषमय फल देख पड़ने लगता है। इस समय के बाल्यजीवन की विशृङ्खलता और बालकों की ढिठाई से इसका पूर्ण परिचय प्राप्त होता है।

एक ओर इस देश के लोगों के जातीय धर्म की उन्नति के मामले में गवर्नमेन्ट कोई चेष्टा नहीं करती, दूसरी ओर अँगरेजी जाति के गौरव ईसाई मिशनरी अँगरेज राज्य फैलने के साथ साथ इस देश में

तर्कालङ्कार ने यह निश्चय किया कि मैं अपने हिस्से का रुपया लेकर प्रेस दे दूँगा । दोनो की राय से बाबू श्यामाचरण द, पण्डित तारानाथ तर्कवाचस्पति और बाबू राजकृष्ण वन्द्योपाध्याय ये तीनो पच बनाये गये । इन्होने हिसाब किताब देख कर यह निश्चित कर दिया कि तर्कालङ्कार को कितना रुपया मिलना चाहिए । हिसाब की नकल तर्कालङ्कार के पास भेजी गई । उन्होंने बाबू श्यामाचरण दे को पत्र लिखा कि इस समय मैं न आ सकूँगा । अदालत बन्द होने पर कलकत्ते आ कर अपना हिसाब समझ लूँगा । कुछ दिन बाद तर्कालङ्कार का स्वर्गवास हो जाने पर उनकी स्त्री कलकत्ते आकर अपने पति के हिस्से का रुपया ले गई ।

मित्रो के फैसले के अनुसार आधे हिस्से की कीमत देकर विद्यासागर ने सब प्रेस पर अपना अधिकार कर लिया और उसका काम अपनी रुचि के अनुसार चलाने लगे ।

सस्कृत प्रेस की छपी पुस्तको की बिक्री में सुगमता के लिए विद्यासागर ने एक सस्कृत प्रेस का पुस्तकालय भी खोल दिया । इसका अँगरेजी नाम है सस्कृत प्रेस डिपोजिटरी । बहुत दिनो तक प्रेस और पुस्तकालय विद्यासागर की ही सम्पत्ति रहा । ये दोनो चीजे किस तरह दूसरे के हाथ मे चली गई, इसका विस्तृत विवरण आगे पढने को मिलेगा । यहाँ केवल इतना ही कहना है कि विद्यासागर केवल पाठ्यपुस्तको की रचना करके या जगह जगह रईस लोगो के द्वारा स्कूल खुलवा करके ही सन्तुष्ट नहीं हो गये । उन्होने इस उद्देश्य से कि पाठ्य पुस्तकें अच्छी तरह छपे, उन पुस्तको को मँगाने मे लोगो को किसी प्रकार की असुविधा न हो, और उनके साथ ही कुछ लोगो का पालन-पोषण भी हो, सस्कृत प्रेस और सस्कृत प्रेस डिपोजिटरी स्थापित की थी ।

विद्यासागर ने जिस समय नौकरी छोड़कर स्वाधीनभाव से गुजर की व्यवस्था की थी उस समय भी देश में अँगरेजी शिक्षा का अधिक प्रचार नहीं हुआ था। अँगरेजी शिक्षा के सु-प्रचार की सूचना मात्र हुई थी। उस समय गवर्नमेंट ने जो अँगरेजी स्कूल स्थापित किये थे उनमें लड़कों को पढ़ाने के मार्ग में दो बाधायें थीं। इन स्कूलों में बहुत खर्च होने के कारण लड़कों से फीस बड़ी कड़ी ली जाती थी। इतनी अधिक फीस थी कि गरीब किसी तरह वह शिक्षा पाने की आशा न कर सकता था। मध्यवित्त श्रेणी के लोग भी अधिक खर्च के कारण अपने लड़कों को यह शिक्षा नहीं दिला सकते थे। अतएव यह कहना चाहिए कि गवर्नमेन्ट के ये स्कूल होने पर भी गरीबों और मध्यवित्तों के लिए न होने के बराबर ही थे। दूसरी बाधा यह थी कि गवर्नमेन्ट के स्कूलों में सदा से धर्म-हीन शिक्षा दी जाती है। अर्थात् धर्म-सम्बन्धी शिक्षा नहीं दी जाती। भिन्नधर्मावलम्बी राजा के लिए धर्म-शिक्षा देने के बारे में निरपेक्ष रहना ही अच्छा है। किन्तु यह निरपेक्षता और सारी प्रजा-मण्डली की धार्मिक उन्नति के बारे में उदासीनता एक ही बात है। जन-समाज अगर शिक्षा-प्रेमी बालकों को बचपन और बाल्यकाल में धर्मोपदेश से वञ्चित रक्खे, परमेश्वर की प्रीति और गुरुजन की भक्ति न सिखलावे, आगे चलकर अनेक प्रकार के पाप के प्रलोभनों में आत्मरक्षा करने की सामर्थ्य देनेवाली शिक्षा देने के बारे में चुप रहे, तो शीघ्र ही उसका विषमय फल देख पड़ने लगता है। इस समय के बाल्यजीवन की विशृङ्खलता और बालकों की ढिठाई से उसका पूर्ण परिचय प्राप्त होता है।

एक ओर इस देश के लोगों के जातीय धर्म की उन्नति के मामले में गवर्नमेन्ट कोई चेष्टा नहीं करती, दूसरी ओर अँगरेजी जाति के गौरव ईसाई मिशनरी अँगरेज राज्य फैलने के साथ साथ इस देश में

जगह जगह धर्म-प्रचार और जन-साधारण की भलाई के लिए बहुत से शुभ कार्यों का सूत्रपात करते जाते हैं। मिशनरियो के कामो में दो काम सब से बढ कर हैं। एक तो देशी भाषाओ की चर्चा और श्रीवृद्धि, दूसरे अँगरेजी स्कूल खोल कर इस देश के लोगो मे पाश्चात्य ज्ञान का प्रचार। पश्चिमी शिक्षा को फैलाने के लिए उन्होंने बङ्गाल में सब जगह स्कूल खोलकर अँगरेजी की शिक्षा देना शुरू कर दिया। कलकत्ते मे ऐसे मिशनरी स्कूल की पहले पहल स्थापना करनेवाले डाक्टर डफ साहब थे। वह स्कूल उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है। इन मिशनरी स्कूलों मे थोडी फीस लेकर या मुफ्त ही सुशिक्षा दी जाती थी। किन्तु मिशनरियो की ओर से लोगो के कुसंस्कार होने के कारण विघ्न और बाधायें भी बहुत थी। जो विदेशी राजा भिन्न-जातीय प्रजा की धार्मिक उन्नति के बारे मे बिलकुल निश्चेष्ट है उसी की जाति के पुरोहित और धर्मयाजक ईसाई धर्म के भाव का सोलहो आना प्रचार करने की कामना से यहाँ आये और उन्होंने अपना काम शुरू कर दिया। इस पर लोगो को शङ्का होना स्वाभाविक ही था। इस देश के सर्व-साधारण लोगो को अपन बालको को अँगरेजी सिखलाने का सुभीता कहीं न देख पडा। लोगो की ऐसी धारणा हो गई कि गवर्नमेन्ट स्कूल मे पढने से लडके नास्तिक और मिशनरी स्कूलों मे पढने से ईसाई हो जाते हैं।

बङ्गालियो के चलाये स्कूलों में स्वर्गीय गौरमोहन आढ्य के स्कूल की ही विशेष प्रसिद्धि हुई। उस समय इस स्कूल में बालको को लिखना-पढना सिखाना विशेष सम्मान की बात समझी जाती थी। किन्तु अब धीरे धीरे उसका वह पहले का गौरव कम हो गया है। इस प्रकार भाव-विकार और सुशिक्षा पाने मे तरह तरह की असुविधायें जब दिन दिन बढ रही थीं, उसी समय, सन १८५९ ई० में, कलकत्ते के कई

प्रतिष्ठित पुरुषो (बाबू ठाकुरदास चक्रवर्त्ती, बाबू माधवचन्द्र धर, बाबू पतितपावन सेन, बाबू गङ्गाचरण सेन, बाबू यादवचन्द्र पालित और बाबू वैष्णवचरण आढ्य) ने शिमला की शङ्करघोष-लेन मे "कलकत्ता-ट्रेनिङ्ग-स्कूल" नाम से एक स्कूल खोला। इस स्कूल की उन्नति के लिए इन लोगो ने और अन्य कई धनी पुरुषों ने काफी रुपया खर्च किया था। बाबू श्यामाचरण मल्लिक इसके पृष्ठ-पोषक थे। उन्होंने बहुत सा रुपया खर्च करके इस स्कूल के लिए जरूरी पुस्तकें खरीद दी थीं। स्कूल खुलने के बाद कुछ दिनो तक उल्लिखित महाशयो ने अपना रुपया खर्च करके स्कूल चलाया। दो साल के बाद सन् १८६१ मे स्कूल के सञ्चालको ने पण्डितवर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और बाबू राजकृष्ण बन्द्योपाध्याय से स्कूल की देख-भाल करने और उसकी उन्नति की ओर ध्यान देने के लिए अनुरोध किया। उनका खयाल था कि विद्यासागर और राजकृष्ण बाबू को यह काम सौंपने से स्कूल की विशेष उन्नति होगी। विद्यासागर उस समय नौकरी छोड चुके थे। विद्यासागर संस्कृत-कालेज की प्रिन्सिपली और इन्स्पेकृरी का काम कर चुके थे, इस कारण उन्हें स्कूल चलाने की बडी अच्छी जानकारी थी। इसीसे उक्त स्कूल के सञ्चालकों ने इस काम के लिए विद्यासागर को चुना था। विद्यासागर और राजकृष्ण बाबू को शरीक करके कलकत्ता-ट्रेनिङ्ग-स्कूल के सञ्चालको ने एक कार्य-कारिणी समिति बनाई। इस सभा की देखरेख मे कई महीने तक खूब अच्छी तरह काम चलता रहा। सहसा एक अयोग्य मास्टर को निकाल देने के कारण कमेटी के मेम्बरों में घोर मत-भेद होगया। इस विरोध के कारण इस स्कूल के दो भाग होगये। बाबू ताराचन्द्र चक्रवर्त्ती और बाबू माधवचन्द्र धर ने अलग "ट्रेनिङ्ग एकाडेमी" नाम से और एक स्कूल खोला। यह स्कूल भी अभी तक मौजूद है। "कलकत्ता-ट्रेनिङ्ग-

स्कूल" का वही पहला नाम रहा। स्कूल के सञ्चालकों में ऐसा मनोमालिन्य और विरोध देख कर विद्यासागर को बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने भी स्कूल की देखरेख का काम छोड़ दिया। अनेक कारणों से उनको यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि इस देश के आदमियों ने अभी तक स्वार्थ भूल कर दूसरे की सेवा करने में कुछ भी असुविधा भोगना या हानि उठाना नहीं सीखा। इस देश में चार जनों के मिल कर काम करने का समय अभी नहीं आया। बहुत थोड़ी ही अवस्था में उन की यह धारणा होगई थी। जीवन में बहुत सी घटनाओं के द्वारा उन्हें निश्चय होगया कि उनकी यह धारणा बहुत ठीक है। इसीसे जीवन के अन्तिम दिन तक वह इसी धारणा के अनुसार चलते रहे। धीरे धीरे यह हाल होगया था कि चार आदमियों के साथ मिल कर काम करना उन्हें बिलकुल नापसन्द होगया था।

इस प्रकार की धारणा के वशवर्त्ती होकर जब विद्यासागर ने स्कूल की देख-भाल का काम छोड़ दिया, तब स्वत्वाधिकारियों में से अवशिष्ट कई आदमी कुछ दिन तक मिल कर काम चलाते रहे। अन्त को अवसर और अभिज्ञता के अभाव से और विद्यासागर का सम्बन्ध न रहने के कारण स्कूल का काम पहले तो शिथिल पड़ गया और पीछे से उसका चलना कठिन हो गया। तब उसके सञ्चालकों को अपनी अयोग्यता का अनुभव हुआ। उन्होंने स्कूल का सारा काम विद्यासागर को सौंप देना चाहा। विद्यासागर ने बहुत सोच-विचार के बाद यह बात मान ली। पूर्व-सञ्चालकों ने सदा के लिए अपना सम्बन्ध छोड़ दिया। पूर्व-सञ्चालकों ने स्कूल का काम विद्यासागर को सौंपते समय इस बात के लिए विशेष अनुरोध किया था कि स्कूल का काम चलाने के लिए एक कमेटी बना ली जाय। उन लोगों का स्कूल से कोई सम्बन्ध न रहने पर विद्यासागर ने कार्य्य-भार ग्रहण

किया *। विद्यासागर ने स्कूल का सारा काम अपने हाथ में लेते ही सबसे पहले स्कूल की नेकनामी और उन्नति के लिए एक कमेटी बना दी। उस कमेटी के सभापति राजा प्रतापचन्द्रसिंह बनाये गये। राजा रमानाथ ठाकुर, बाबू हीरालाल शील, बाबू रामगोपाल घोष और हरचन्द्र घोष रायबहादुर आदि मेम्बर हुए। विद्यासागर उसके मन्त्री बने †।

इस प्रकार व्यवस्था करके स्कूल का काम चलाने पर उसकी दिन-दूनी उन्नति होने लगी। विद्यासागर की एकाग्रता, निष्ठा और अनुराग के प्रभाव से जैसे और सब काम सिद्ध होते थे वैसे ही यह काय भी सफलता की ओर अग्रसर होने लगा। विद्यासागर के कार्य-भार ग्रहण करने पर इस स्कूल के लड़के बहुतायत से पास होने लगे।

विद्यासागर हर एक काम निःस्वार्थ-भाव से करते थे। इसके लिए प्रमाण खोजने की जरूरत नहीं है। उन्होंने पराये उपकार के इतने काम किये हैं कि उनके किसी भी कार्य का आर्योचित औदार्य्य प्रमाणित करने के लिए अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं है। तथापि हर एक बात का प्रमाण देना आवश्यक होता है। विद्यासागर ने स्कूल का काम चलाने के लिए एक कमेटी ही नहीं बनाई, बल्कि स्कूल के चलाने के लिए कुछ नियम भी बना कर कमेटी से पास करा

* After the said disruption the remaining founders namely Patitpabun Sen, Ganga Charan Sen, Jadav Chandra Palit and Vaishnava Charan Adhya who had other works to do having found by experience that Pandit Iswar Chandra Vidyasagar was highly public spirited and thoroughly disinterested and was competent to manage the School entrusted the management thereof to the said Pandit.

† In April 1861 * * a Committee of Management of which Raja Pratap Chandra Singha was the President and Ramanath Tagore, Hira Lal Sil, Ram Gopal Ghose and Rai Hara Chandra Ghose Bahadur were members and the Pandit its Secretary was formed.

लिये। उस नियमावली में कुल ३५ नियमो का उल्लेख है। उनमें तीसरा, तीसवाँ, इकतीसवाँ, वत्तीसवाँ और तेंतीसवाँ नियम विशेष रूप से उल्लेख के योग्य है। यथा—

३। हिन्दू बालक अँगरेजी और बँगला के साहित्य की प्राथमिक शिक्षा मे विशेष भाव से व्युत्पत्ति प्राप्त करें, इसके लिए इस स्कूल की स्थापना की गई है।

३०। छुट्टी के समय बालकों के खेलने की जगहो पर कम से कम एक मास्टर उपस्थित रह कर उनकी रीति-नीति की देख-रेख करेगा। †

३१। प्रवेशिका परीक्षा मे जो विद्यार्थी पास होगे उनमे सर्वोत्कृष्ट तीन बालकों को दो साल तक दस दस रुपये की तीन छात्र-वृत्तियाँ इसलिए दी जायँगी कि वे प्रेसीडेन्सी कालेज, मेडिकेल कालेज या इञ्जीनियरिङ्ग कालेज मे पढने के लिए उत्साहित हो। ‡

३२। स्कूल के खर्च से बचा हुआ धन बङ्गाल-बैंक में या और किसी भी बैंक मे मन्त्री या और किसी एक मेम्बर के नाम से जमा रहेगा। §

३३। बचा हुआ धन स्कूल की उन्नति मे ही लगाया जायगा। ||

* The object of the Institution is to give an efficient elementary education to Hindu youths in the English as well as the Bengali language and literature

† One teacher at least shall be present on each play-ground during the time of recreation to watch over the conduct of the pupils

‡ Scholarships of ten rupees each shall be awarded to three of the most meritorious pupils for two years to enable them to prosecute their studies in a higher educational institution such as the Presidency, the Medical or the Civil Engineering College

§ The funds of the School shall be deposited in the Bank of Bengal or in any other Bank in the name of a member and the Secretary

|| Surplus assets shall be appropriated to the benefit of the Institution in such manner as the Committee of Management may decide upon

सन् १८६८ के पहले तक विद्यालय का नाम था—कलकत्ता ट्रेनिङ्ग-स्कूल। इस साल के आरम्भ से ही इसका नाम बदल कर हिन्दू-मेट्रोपोलीटन-इन्स्टीट्यूशन (Hindu Metropoliton Instituton) रख दिया गया। इसके बाद विश्वविद्यालय को एक आवेदन-पत्र भेजा गया। उसमें प्रार्थना की गई कि इस स्कूल से ही यहाँ के विद्यार्थी प्रवेशिका परीक्षा के बाद की परीक्षा दे सकें। इस आवेदन-पत्र में राजा प्रतापचन्द्रसिंह, हरचन्द्र घोष रायबहादुर और पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने हस्ताक्षर किये थे। इन लोगों ने इस आवेदन-पत्र में यह सूचित किया था कि कम से कम पाँच वर्ष के लिए एफ० ए० और बी० ए० की पढ़ाई का खर्च और अन्यान्य प्रकार की जिम्मेदारी हम अपने ऊपर लेते हैं। विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठित मेम्बर राजा रमानाथ ठाकुर और रामगोपाल घोष ने इस आवेदन-पत्र में सेनेट के मेम्बर की हैसियत से दस्तख़त किये थे। इसके कुछ दिन बाद स्कूल जिस किराये के मकान में था उसके मालिक ने मकान का किराया बढ़ा कर एक मामला चला दिया। मालिक-मकान ने पचास रुपये की जगह सौ रुपया मासिक माँगा। विद्यासागर ने मंज़ूर नहीं किया। इस पर मुक़द्दमेबाज़ी हुई। इस अवसर पर विद्यासागर के सिवा और सब कमेटी के मेम्बर उत्साह-रहित हो गये। अन्त को स्कूल की भलाई-बुराई की सब जिम्मेदारी विद्यासागर के सिर छोड़ कर सब अलग हो गये। पिछले समय, सब जिम्मेदारी अपने सिर आ पड़ने पर स्कूल की उन्नति के लिए विद्यासागर ने बड़ा परिश्रम किया।

पहले, जब अँगरेज़ी-शिक्षा का प्रचार बहुत कम था, तालाब खुदवाने और धर्म्मशाला बनवाने के समान स्कूल की स्थापना भी एक पुण्य का काम समझा जाता था। थोड़े खर्च में या मुफ़्त ही बालकों को ज्ञान प्राप्त करने का मौका मिलेगा, इसी विचार से लोग स्कूल

स्थापित करते थे। विद्यासागर आदि ने भी इसी खयाल से इस बड़े खर्च के काम में हाथ डाला था। किन्तु आज कल स्कूल खोलना एक तरह का रोजगार हो गया है। अपने देश के बालकों को विद्या-दान करना पैसा कमाने का जरिया हो गया है। रोजगार में गड़बड़ होना जैसे अनिवार्य्य है वैसे वही हाल यहाँ भी हुआ। सन् १८६४ ई० में, जब विद्यासागर ने अपने स्कूल से उच्च परीक्षाओं में छात्रों के उपस्थित हो सकने के लिए प्रार्थना-पत्र भेजा था तब उन्होंने यह कभी नहीं सोचा था कि लोग इससे धनोपार्जन करके धनी बनने की चेष्टा करेंगे। विद्यासागर की जिन्दगी में ही विद्यादान रोजगार के रूप में बदल चला था। इस समय भी यह रोजगार खूब चल रहा है। विद्यासागर ने इस काम में सर्वस्व लगा दिया था और आज कल लोग उस उपाय से अपनी सम्पत्ति बढ़ाने की चेष्टा कर रहे हैं। विद्यासागर ने विश्वविद्यालय में प्रार्थना-पत्र भेजने के बाद किसी किसी धनी मेम्बर से सहायता मिलने की यथेष्ट आशा पाकर बिना फीस के कालेज-क्लास खोल दिये थे। काम भी शुरू हो गया था। किन्तु बड़े ही खेद की बात है कि विश्वविद्यालय ने प्रार्थना नामञ्जूर कर दी। इस प्रकार चेष्टा विफल होने पर भी विद्यासागर ने अपना इरादा नहीं छोड़ा। प्रवेशिका परीक्षा का फल हर साल आशा से कहीं अधिक अच्छा होने के कारण कालेज खोल कर बालकों को उच्च शिक्षा सुलभ बना देने की आकांक्षा उनके मन में बनी ही रही। वह काम करते समय और विश्राम करते समय, स्वजन-मण्डली में बैठने के समय और एकान्त में रहने के समय, सर्वदा इसी का उपाय सोचने लगे।

इसके बाद सन् १८६६ ई० में राजा प्रतापचन्द्रसिंह और हरचन्द्र घोष रायबहादुर का देहान्त होने पर मेट्रोपॉलीटन इन्स्टीट्यूशन की सारी जिम्मेदारी विद्यासागर के ऊपर आ पड़ी। सन् १८६८ से

मेट्रोपालीटन का सारा खर्च विद्यासागर को उठाना पड़ता था। इस स्कूल में लड़कों की संख्या और परीक्षा का फल सदा सन्तोष-जनक रहा। तथापि उसकी श्रीवृद्धि करने में विद्यासागर को सदा अपने पास से रुपया लगाना पड़ता था। स्कूल के कोष में इतना अधिक रुपया हमेशा रहता न था कि विद्यासागर के मन के माफिक सब काम हो सके। मेट्रोपालीटन के मास्टरों को अन्य स्कूलों के मास्टरों की अपेक्षा अच्छी तनख्वाह मिलती थी। विद्यासागर स्कूल के लिए जो सामान बनवाते या खरीदते थे वह उनके मन के माफिक होता था। इसीसे उसमें खर्च भी अधिक होता था। उन्होंने पहले और इधर भी अकसर अपना रुपया खर्च करके स्कूल की श्रीवृद्धि की, किन्तु कभी स्कूल का एक पैसा भी अपने काम में लाने की नियत नहीं की। वह कैसे लोभशून्य ब्राह्मण थे, इस बात का यह एक अत्यन्त उज्ज्वल उदाहरण है।

सन् १८७२ ई० की २५ जनवरी को विद्यासागर ने खुद स्कूल के काम में सुभीता करने के लिए माननीय जज द्वारकानाथ मित्र, रायबहादुर कृष्णदास पाल और आप मिल कर एक मैनेजिङ्ग कमेटी सङ्गठित की। एफ ए, बी ए परीक्षा देने का अधिकार पाने के लिए पूर्वोक्त तीनों सज्जनों ने हस्ताक्षर करके दुबारा एक प्रार्थनापत्र भेजा। इस बार भी विश्वविद्यालय के दो सुपरिचित मेम्बरों राजा रमानाथ ठाकुर और डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र, ने उस प्रार्थनापत्र पर हस्ताक्षर किये थे। यह आवेदनपत्र (इस मामले के कागजपत्र परिशिष्ट में मिलेंगे) भेज कर विद्यासागर बिलकुल निश्चिन्त नहीं हो गये। इसका

---

* The present authorities say in their printed declaration that —He (the Pandit) never made any profit out of the income of the Institution He did however, take loans occasionally from the fund of the Institution but the same was always repaid

एक कारण यह था कि उनकी इस चेष्टा के विरुद्ध अँगरेज और बङ्गाली दोनो थे । विद्यासागर ने विश्वविद्यालय के तत्कालीन वाइस चैन्सलर (Vice Chancellor) ई सी बेली साहब को जो पत्र लिखा था उसे देखने से यह बात स्पष्ट मालूम पड जाती है कि विश्वविद्यालय के अँगरेज मेम्बर इस उद्योग के कितने विरोधी थे । वह पत्र यह है —

ई सी बेली महोदय की सेवा मे—

प्रिय महाशय,

आपको विनीत भाव से सूचित करता हूँ कि अपने स्कूल से एफ ए और बी ए परीक्षा देने का अधिकार पाने का प्रार्थनापत्र सिंडिकेट की आज की बैठक मे उपस्थित करने के लिए भेजा है । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अगर आपकी सहायता मिलने की सम्भावना न होती तो मैं कभी इस काम मे अग्रसर न होता । गत वर्ष मैं आपसे मुलाकात नहीं कर सका, इसीसे इस काम के लिए कोई चेष्टा भी नहीं की । मुझे नहीं मालूम कि सेनेट के अन्यान्य मेम्बरो की इस बारे में क्या राय है । किन्तु आपको यह जता देना मैं उचित समझता हूँ कि मेरे पक्ष के एक सज्जन ने मिस्टर साटक्लिफ और मिस्टर एटकिन्सन साहब से मुलाकात की थी । एटकिन्सन साहब ने उनसे कहा था कि यद्यपि प्रस्तावित ढङ्ग से उच्च शिक्षा देने की व्यवस्था के बारे में उन्हे आपत्ति है, तथापि वह हम लोगो के प्रार्थनापत्र की मंजूरी मे बाधा न डालेंगे । यदि मेम्बर लोग उच्च शिक्षा देने के बारे मे देशी अध्यापको के ऊपर पूरा भरोसा रखने मे असम्मति प्रकट करे तो उस दशा मे मैं आपको यह स्मरण करा देना चाहता हूँ कि संस्कृत कालेज में बी ए तक की पढाई होती है । लेकिन वहाँ सदा से सब अध्यापक देसी ही हैं । हम लोग भी अपने स्कूल मे सदा

उसी श्रेणी के अध्यापक रखने की चेष्टा करेंगे। मुझे यह विश्वास है कि सुविवेचना और सावधानता के साथ चुन कर अध्यापक नियुक्त करने से देसी अध्यापक उच्चशिक्षा देने के लिए सम्पूर्ण योग्य ठहरेंगे। किन्तु कुछ दिनो की जानकारी से अगर यह जान पडेगा कि अँगरेजी का साहित्य पढाने के लिए अँगरेज प्रोफेसर रक्खे बिना काम न चलेगा तो हम अवश्य ही वैसा कोई लायक अँगरेज प्रोफेसर नौकर रख लेंगे। स्कूल की सर्वाङ्गीन उन्नति का होना ही हमारा उद्देश्य है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए कोई भी उपाय उठा न रक्खा जायगा। मुझे जान पडता है, कुछ लोग यह जानने के लिए व्यग्र हैं कि स्कूल के अध्यापकों को कैसी और कितनी तनख्वाह दी जायगी। किन्तु मेरी समझ से विश्वविद्यालय की नियमावली के अनुसार इन सब भीतरी छोटे छोटे मामलो मे विश्वविद्यालय की नजर रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसका विचार नोकर और नौकर रखने वाले ही कर लेंगे, और यही उचित भी है। शिक्षकों की योग्यता और स्कूल के रुपये के सद्व्यय पर दृष्टि रख कर हम लोग काम करेंगे। मेरी जिन्दगी का गुजरा हुआ सारा समय स्कूलो के चलाने के काम मे ही बीता है। ऐसी अवस्था मे, आशा करता हूँ, अध्यापकों को नियुक्त करने और उनकी तनख्वाह नियत करने का भार मेरे ऊपर रहने से ही अच्छा होगा।

अपने इस स्कूल को हाई स्कूल बनाने की जरूरत के बारे मे अधिक क्या कहूँ। बिचले दर्जे के गृहस्थ लोग १२) रु० महीना फीस देकर अपने लडको को प्रेसीडेन्सी कालेज मे पढा नहीं सकते। उधर मिशनरी स्कूलों मे भी इस आशङ्का से वे लडको को भेज नहीं सकते कि वे वहां जाकर ईसाई न हो जायँ। ऐसी अवस्था में अधिकांश बालक प्रवेशिका परीक्षा पास करने के बाद, कालेज मे पढने की सोलहो

आने इच्छा रहन पर भी, पढना बन्द कर देते हैं । यह स्कूल उनका बडा उपकार करेगा ।

जज द्वारकानाथ मित्र, बाबू कृष्णदास पाल और मैं, ये तीन इस स्कूल के सञ्चालक हैं । उच्च शिक्षा देने की सुव्यवस्था हम लोग कर सकते हैं । इसका हमे पूरा सुभीता है । लेकिन तो भी अगर किसी तरह का अभाव उपस्थित होगा तो हम आप ही उसकी पूर्त्ति कर लेंगे । हम तीनो आदमी पाँच वर्ष के लिए स्कूल के चलाने की सब तरह की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते हैं । मुझे विश्वास है कि इससे सन्तुष्ट होकर विश्वविद्यालय कालेज-क्लास खोलने की अनुमति देगा । इति तारीख २७ जनवरी, १८७२ ।

आपका विश्वासपात्र
ईश्वरचन्द्र शर्म्मा ।

इस प्रकार बहुत वाद-विवाद के बाद इसी वर्ष से मेट्रोपालिटन इन्स्टीट्यूशन विश्वविद्यालय से शामिल होकर एफ ए की परीक्षा में विद्यार्थी भेजने की अनुमति पा गया । सन् १८७३—७४ दो साल में कालेज की पढाई समाप्त हुई । विश्वविद्यालय की अनुमति पाकर कालेज-क्लास खोला गया, विद्यार्थी भी बहुत से जुट गये । किन्तु विद्यासागर को पग पग पर बाधाओ का सामना करना पडा । पहली बाधा तो सर्वसाधारण का यह खयाल होना था कि इस चेष्टा से कोई फल न होगा । इसका कारण यह था कि मेट्रोपेलिटन का उद्देश्य सिद्ध होने के लायक शिक्षको का मिलना उस समय कठिन था । विद्यासागर के ऐसे उद्योगी पुरुष की चेष्टा से भी मेट्रो-पेलिटन के प्रबल होन पर उनके मित्रो को भी विश्वास न था । ऐसी दशा में विद्यार्थियो का उत्साह घट जाना अनिवार्य था । विद्यार्थियो

के मन में कृतकार्य होने के बारे में सन्देह होने के कारण वे आप ही कालेज से निकल जाने की चेष्टा करने लगे। परीक्षा में पास होने की आशा बहुत कम होने की अफवाह उड़ने के कारण बालकों के माता-पिता भी चिन्तित हो उठे। अनेक लोगों ने समय समय पर विद्यासागर के पास आकर अपनी आशङ्का का हाल कह भी दिया। विद्यासागर को अफवाह की कोई पर्वा न थी, उसकी वह उपेक्षा कर सकते थे। किन्तु स्वार्थ के कारण कोई आकर अपनी चिन्ता प्रकट करता था तो वह भी चिन्तित हो उठते थे। सबको धीरज बँधा कर वह विदा कर देते थे। किन्तु उनको यह खटका लगा था कि कहीं लोगों की उड़ाई अफवाह ही॰ सच न हो जाय, और इस कारण वह तन-मन-धन से स्कूल की उन्नति में लगे हुए थे। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए उनको बड़ा परिश्रम करना पड़ा। स्वार्थ-त्याग भी उन्होंने कम नहीं किया। वह बड़े ही आग्रह के साथ नित्य की कारगुजारी की जाँच करते थे। इसके ऊपर उन्हें नित्य अनेक निरा-शाभरी बातें सुननी पड़ती थीं। इस प्रकार तरह तरह की विपत्तियों और विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए धीरे धीरे लक्ष्य की ओर अग्रसर होना उनके सिवा दूसरे आदमी के लिए सर्वथा असम्भव ही था। ऊपर शून्य में टँगे हुए मच्छ की आँख वेधने के लिए अनेक वीर-वेषधारी राजपुत्र उठ खड़े हुए थे, किन्तु ब्राह्मण-वेषधारी अर्जुन ही उस कठिन कार्य में सफलता प्राप्त करके द्रौपदी के हाथ से जय-माला पाने के अधिकारी हुए थे। उन्होंने ही बहुत से विरोधी राज-कुमारों को परास्त करके दुर्लभ स्त्रीरत्न द्रौपदी को प्राप्त किया था। वैसे ही विद्यासागर ने भी भविष्यत् के अज्ञात अन्धकारमय आकाश-मार्ग में स्थित लक्ष्य को वेध कर—बहुत से प्रबल पक्षों के विरोध की उपेक्षा कर—बहुत लोगों के भिड़ाव में विजय प्राप्त कर कीर्ति और

विजयलक्ष्मी पाई। सन् १८७५ ई० की ८ जनवरी को विजयलक्ष्मी के लाभ से परम सन्तुष्ट विद्यासागर ने जो प्रीति-उपहार दिया था उसका हाल नीचे लिखा जाता है। सन् १८७४ ई० के शेष भाग में जो परीक्षा ली गई थी उसमें गुण के अनुसार विद्यासागर के स्कूल का दूसरा नम्बर रहा था। सन् १८७४ ई० की एफ ए परीक्षा का फल जब प्रकाशित हुआ तब विद्यासागर कलकत्ते में न थे। स्वास्थ्य ठीक करने के लिए वह खडमाटाड के विश्रामभवन में थे। गजट में परीक्षा का फल देखते ही आनन्द से विह्वल विद्यासागर शीघ्र ही कलकत्ते को रवाना हुए। वह पहले अपने घर बादुडबागान में न जाकर झामापुकुर में परीक्षोत्तीर्ण गुणी युवक के पिता के पास गये। युवक और उसके पिता को बुलवाया। स्नेहपूर्वक योगेन्द्र बाबू (परीक्षोत्तीर्ण युवक) से विद्यासागर ने कहा—"क्यों रे, तू तो डरता था"। इसके बाद उन्होंने योगेन्द्र बाबू को अपने घर बुलाया। योगेन्द्रचन्द्र वसु के घर आने पर उनको सामने खडे करके विद्यासागर ने अपनी बहुमूल्य पुस्तकों की आलमारी खोली। बहुत कीमती सुवर्णवर्णाङ्कित जिल्द वाली सर वाल्टर स्काट की सारी "वेवर्ली उपन्यासावली" योगेन्द्र बाबू को उपहार में दे दी। ग्रन्थावली की प्रथम पुस्तक वेवर्ली के पहले सफे में उन्होंने जो शब्द अपने हाथों से लिख दिये थे वे भी उनके हार्दिक आनन्द का परिचय देने वाले थे। वह जिस काम को करते थे उसे हृदय से करते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपने लिए अपनी पसन्द से बँधाई हुई स्काट की बहुमूल्य ग्रन्थावली पुस्तकालय से निकाल कर योगेन्द्र बाबू को उपहार में दे डाली। बाबू योगेन्द्रचन्द्र ने सिर झुका कर उस पुरस्कार को स्वीकार कर लिया। योगेन्द्र बाबू के मुँह से ही सुना है कि कालेज-क्लास खोलने के बाद विद्यासागर को पग पग पर बाधाओं का सामना करना पडा था।

Awarded

to Jagindra Chandra Bose

at the close of his brilliant

Career as a Student

in the Metropolitan Institution

Iswarachandra Sarma

8th January 1875

फलस्वरूप विद्यासागर ने एक बार बहुत ही खीझ कर कालेज के सब लड़कों को बुला कर कहा—"देखो, रोज रोज गोलमाल करने की जरूरत नहीं है। बतलाओ तुममें से कौन कौन जाना चाहता है? वह अभी चला जाय। मैं कालेज-फ्राम नहीं चाहता। कोई न रहे वह भी अच्छा, लेकिन यह गोलमाल मुझे पसन्द नहीं। आज बतलाओ, कौन कौन जायगा?" सब बालक चुपचाप खड़े रहे। किसी ने कुछ नहीं कहा। तब विद्यासागर ने एक एक बालक को बुला कर पूछना शुरू किया। पहले बालक से पूछने पर उसने कहा—"मैं और कहीं न जाऊँगा"। एक एक करके सभी बालकों ने अन्यत्र जाना अस्वीकार कर दिया। तब विद्यासागर ने खुश होकर कहा—तुम लोगों के लिए क्या मुझे चिन्ता नहीं है। अन्य कालेजों की ऐसी पढ़ाई यहाँ भी हो, इसके लिए मैं कोई बात उठा न रक्खूँगा। तुम किसी के बहकाने में न आओ।

साटक्लिफ साहब ने विद्यासागर के मेट्रोपोलीटन की अद्भुत सफलता देख कर अवाक् होकर कहा था—Pundit has done wonders. कालेज के पहले साल की परीक्षा का फल ऐसा सतोष-जनक हुआ कि मेट्रोपोलीटन बहुत शीघ्रता के साथ उन्नति के मार्ग में अग्रसर होने लगा। जिससे मेट्रोपोलीटन की अक्षय कीर्त्ति का सत्रपात हुआ, जिससे बंगदेशीय युवकमण्डली में शिक्षा का अच्छा प्रचार हुआ, जिस कार्य को पूरा करके विद्यासागर ने वर्त्तमान शिक्षा-प्रवाह को बहु विस्तृत आकार में बहुत दूर तक अग्रसर कर दिया, वह मेट्रोपोलीटन का उच्च शिक्षा पाने का सबसे ऊँचा द्वार सन् १८७९ ई० में खुला था। सन् १८८१ ई० में मेट्रोपोलीटन-कालेज से बी० ए० की परीक्षा में पहले पहल विद्यार्थी भेजे गये। इस परीक्षा में विद्यासागर के कालेज से जिन विद्यार्थियों ने परीक्षा दी थी उनकी सख्या और परीक्षा का फल विशेष सतोषजनक

हुआ था। सब मिला कर सोलह आदमी परीक्षा में पास हुए थे। परीक्षा का फल अच्छा होने के साथ ही साथ विद्यासागर का आग्रह और उत्साह सौगुना बढ गया। इससे पहले विद्यासागर ने अपने खर्च से मेट्रोपोलीटन इन्स्टीट्यूशन की लाइब्रेरी स्थापित कर दी थी। इस समय विद्यासागर बचे हुए रुपये से बहुमूल्य और जरूरी ग्रन्थ खरीदने लगे। विद्यालय का पुस्तकालय, और विद्यालय की अन्यान्य सामग्री यथा-सम्भव सुन्दर और बहुमूल्य ही खरीदी जाती थी। शिक्षकों को ऐसी आज्ञा थी कि वे बालकों को मारें नहीं। मीठी बातों से, शान्त भाव से, सब लडकों को समझा कर पढाने और राह पर लाने की आज्ञा थी। किन्तु खेद के साथ कहना पडता है कि सब शिक्षक इस नियम का पालन न करते थे। मेरे एक श्रद्धेय मित्र उस समय विद्यासागर के स्कूल में मास्टर थे। अन्य मास्टर विद्यासागर की इस आज्ञा का पालन नहीं करते थे वह भी नहीं करते थे। जरूरत के माफिक बालकों को वह भी मारते थे। विद्यासागर ने अनुसन्धान किया तो उन्होंने यह बात स्वीकार करली। इस अपराध के कारण उनकी नौकरी छूट गई। मालूम नहीं, अन्यान्य शिक्षक क्या कह कर छुटकारा पागये थे।

शिक्षकों की तनख्वाह में विद्यासागर जी खोल कर खर्च करते थे। इसका प्रधान कारण यह था कि मेट्रोपोलीटन इन्स्टीट्यूशन से वह अपनी जीविका नहीं चलाते थे। उन्होंने स्कूल की उन्नति के लिए मेहनत की और रुपया भी खर्च किया। पर उन्होंने उसका एक पैसा भी कभी नहीं लिया। स्कूल की उन्नति और उसके द्वारा अपने देश के

---

* बन्द्योपाध्याय—श्यामाप्रसाद कालीपद, कुमुदनाथ नन्दलाल। भट्टाचार्य—अक्षयकुमार शिवाप्रसन्न। चक्रवर्त्ती—यदुनाथ कुञ्जविहारी, पूर्णचन्द्र। चट्टोपाध्याय—गोपालचन्द्र। दत्त—योगेन्द्रनाथ, नवीनचन्द्र। मण्डल—प्राणकृष्ण। मैत्र—हेमचन्द्र। राय—यज्ञेश्वर। रायचौधरी—आशुतोष।

युवकों और बालकों को सुशिक्षा प्राप्त करने के लिए सुभीता कर देने में उन्होंने बहुत कुछ रुपया खर्च किया। स्कूल के काम में उनका विशेष महत्त्व यह था कि उन्होंने उससे एक पैसा भी नहीं लिया। उससे भी बढ कर महत्त्व की बात यह थी कि उसकी उन्नति के लिए अनेक अवसरों पर उन्होंने अपना रुपया खर्च कर डाला और फिर उसके पाने की प्रत्याशा नहीं रक्खी। इसीसे वह शिक्षकों के ऊपर सदा अनुग्रह की दृष्टि रख सकते थे। शिक्षकों में से कभी कोई बीमार होकर अगर छुट्टी लेता था, और वह गरीब होता था, तो विद्यासागर उसे चार चार पाँच पाँच महीने की तनख्वाह देने में भी हिचकते न थे। कभी किसी के काम से वह खुश होते थे तो पुरस्कार में उसका वेतन बढा देते थे।

स्कूल चलाने के काम में उन्हें खूब जानकारी थी। कैसे आदमी को नौकर रखने से, किसे क्या काम सौंपने से कैसा काम होगा, यह वह खूब जानते थे। कैसे योग्य आदमी को कैसी तनख्वाह देने से काम ठीक होगा, यह वह खूब समझते थे। उनमें एक प्रधान गुण या प्रधान दोष यह था कि वह जब जिस पर विश्वास करते थे तब उस पर पूरा विश्वास करते थे, विश्वासी पुरुष का उन पर सोलहो आने प्रभुत्व रहता था। ऐसे लोगों के कारण कभी कभी बिना जाने किसी किसी के साथ उन्होंने थोडा बहुत अविचार भी किया। किन्तु ऐसे अविचार के अवसर पर दण्डित व्यक्तियों में से किसी किसी ने उन पर अत्यन्त भक्ति और प्रीति के कारण द्विरुक्ति न करके चुपचाप दण्ड भोग कर लिया और किसी किसी ने स्पष्ट शब्दों में उनके विचार का दोष दिखला कर नौकरी छोड दी। विद्यासागर के स्वर्गवास के थोड़े ही दिन पहले उन्होंने एक विशेष घटना के अवसर पर मन्तव्य में यह बात जाहिर की है। विश्वस्त लोगों पर

के कारण उनके कहने से उन्होने अनेक प्रतिष्ठित पुरुषो को थोडे अप-राध पर भारी दण्ड देने की या बिना अपराध के दोषी ठहराने की भूल की है। यह हमारे लिए बडे खेद की बात है। किन्तु उनका स्वभाव ही ऐसा था। उन्होने खुद मुझसे कहा है —

"पहले मैं सब आदमियों को भला आदमी समझता था। किन्तु सरल भाव से लोगो पर विश्वास करने के कारण इस जीवन मे मैंने पग पग पर धोखा खाया है। अन्त को मैंने देखा 'ठग पकडने मे गाँव उजाड' वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। सभी दगाबाज देख पडे। मैं पहले मोतीलाल शील था, किन्तु अब द्वारकानाथ ठाकुर हो गया हूँ"।

मोतीलाल शील अपरिचित आदमी को अच्छा ही समझते थे। और द्वारकानाथ ठाकुर का इसके विपरीत मत था। वह पहले हर एक आदमी को अच्छा न समझ लेते थे। जो अच्छा साबित होता था उसी को अच्छा समझ कर उस पर विश्वास करते थे। विद्यासागर की ऊपर की उक्ति से यह स्पष्ट मालूम पडता है कि विश्वास करके उन्होने बार बार धोखा खाया। किन्तु आश्चर्य तो यह है कि विश्वस्त लोगो के द्वारा बार बार ठगे जाने पर भी वह सहज ही लोगो पर विश्वास कर लेते थे। इसका प्रधान कारण यही है कि वह सहृदय पुरुष थे। लोगो की चुपडी चिकनी बातो मे सहज ही फँस जाते थे। इसीसे जन्म भर उन्हे क्लेश ही भोगना पडा। किसी दिन उनको दुख से विश्राम नहीं मिला।

इस प्रकार निःस्वार्थभाव से कालेज का काम करके विद्यासागर ने उसे धीरे धीरे उन्नति के मार्ग मे अग्रसर कर दिया। कई एक पढाने मे निपुण पण्डितो और प्रतिष्ठा-पात्र शिक्षको की सहायता से विद्या-सागर को इस काम मे सफलता प्राप्त हुई थी। इनमे स्वर्गीय प्रसन्न-कुमार लाहिडी का नाम विशेष भाव से उल्लेख के योग्य है। उनके

अध्यवसाय और परिश्रम के फल से झुण्ड के झुण्ड लडके भर्ती होने आते थे। इससे स्कूल की आर्थिक दशा भी अच्छी थी और उसकी प्रतिष्ठा भी खूब थी। हम विद्यालय की स्थापना से सन् १८९२ ई० तक (जब तक विद्यासागर ने विद्यालय का काम किया) विद्यालय की सफलता की सूची यहाँ पर देते हैं। सन् १८८१ ई० में मेट्रोपोलीटन से बी० ए० परीक्षा के लिए पहले पहल विद्यार्थी भेजे गये। इस विद्यालय से, बी० ए० परीक्षा में, १२ वर्ष में ४९८ लडके पास हुए। एम० ए० परीक्षा में भी ३३ युवक पास हुए। यह सूची देखने से जान पडता है कि हर साल औसत हिसाब से बी० ए० में ४१½ और एम० ए० में २¾ लडके पास हुए।

सन् १८८५ ई० से एम० ए० परीक्षा की जगह बी० ए० परीक्षा में ही आनर्स (honours) देने की व्यवस्था हुई। इसके अनुसार १८८५ से १८९२ तक आठ वर्ष में मेट्रोपोलीटन से सब मिला कर ८६ विद्यार्थी आनर-परीक्षा में पास हुए। गुण के अनुसार इस कालेज ने अँगरजी में एक बार तीसरा, एक बार चौथा और आठवाँ, एक बार पाँचवाँ और सातवाँ और एक बार पाँचवाँ नम्बर पाया था। इसी तरह गणित में एक बार दूसरा, एक बार चौथा और एक बार पाँचवाँ नम्बर पाया था। मनोविज्ञान और दर्शन-शास्त्र में एक बार चौथा और एक बार पाँचवाँ नम्बर पाया था। इतिहास में एक बार अव्वल नम्बर पाया था। सन् १८८२ ई० में विश्व-विद्यालय ने बी० एल० परीक्षा देने के अधिकार की प्रार्थना मञ्जूर कर ली। उसके अनुसार सन् १८९२ तक दस वर्षों में मेट्रोपोलीटन से ४१३ विद्यार्थी बी० एल० परीक्षा में पास हुए। हर साल पास होनेवाले विद्यार्थियों की औसत ४१¾ पडी। इनमें से (सन् १८८३, ८५ और ८६ ई० में) तीन विद्यार्थियों ने सर्वोत्तम स्थान प्राप्त किया। उन्हें सौ सौ रुपये का

पुरस्कार भी मिला । इस कालेज की परीक्षा का फल देखने से मालूम पड़ता है कि साधारणतः गवर्नमेन्ट-कालेज को छोड़ कर और किसी भी कालेज को ऐसी सन्तोष-जनक सफलता नहीं प्राप्त हुई । आज विद्यासागर इस लोक में नहीं हैं । इस कारण मेट्रोपोलीटन के लिए वैसा यत्न और परिश्रम करनेवाला कोई आदमी नहीं है । उक्त विद्यालय के तत्कालीन अध्यापक नगेन्द्रनाथ घोष ने विद्यासागर के स्वर्गवास के अवसर पर शोक प्रकाश के लिए होनेवाली सभा में कहा था कि "वह इन दिनों अक्सर बीमारी के कारण पलँग पर पड़े रहते थे । किन्तु यदि कभी उन्हें उठने की ताकत होती थी तो उनके दोनों दुर्बल पैर सब से पहले कालेज की ओर उन्हें ले जाते थे" । स्कूल-कालेज को ऐसी प्यारी चीज समझ कर अपने देश के हित के लिए उसकी सेवा कितने आदमी कर सकते हैं ? हम लोगों के हृदय में ईर्ष्या के कारण अपने देश का हित करने की इच्छा का अङ्कुर ही नहीं उगता । पूर्ण रूप से स्वार्थ को भूल कर परोपकार में तत्पर होने से ही ऐसे सुफल की आशा की जा सकती है । सर रमेशचन्द्र विद्यासागर के उक्त कालेज के वर्त्तमान सञ्चालकों के अगुआ हैं । उनको विद्यासागर के प्रति गहरी श्रद्धा और अनुराग है । उन्हें अवसर भी है । वह बङ्ग-जननी के योग्य पुत्र हैं । वह यदि सुपुत्र की तरह माता के एक सुपुत्र के शुरू किये काम की प्रतिष्ठा और श्रीवृद्धि के लिए यत्न करें तो मेट्रोपोलीटन पहले की तरह गौरव के साथ संसार को अपना परिचय दे सकेगा ।

विद्यालय के सम्बन्ध में केवल कुछ ही बातें हमें और कहनी हैं । जब से विद्यासागर ने इस विद्यालय का काम अपने हाथ में लिया तब से बराबर उत्साह और ममता के साथ उसकी उन्नति करते रहे । अपने इस कार्य में विशेष सुविधा होने के खयाल से

उन्होंने सन १८७६ ई० में तीसरे दामाद बाबू सूर्यकुमार अधिकारी बी० ए० को मेट्रोपालीटन का सेक्रेटरी बना दिया। इसके बाद धीरे धीरे उनके काम से खुश होकर उन्हें विद्यासागर ने कालेज का प्रिन्सिपल बना दिया। सूर्यकुमार बाबू ने १३ वर्ष तक मेट्रोपोलीटन की उन्नति में लगे रह कर सन १८८८ ई० में कालेज से सम्बन्ध छोड़ दिया। इतने दिनों के पुराने कर्मचारी और दामाद के कालेज से अलग होने के समय जैसा व्यवहार करना चाहिए था वैसा व्यवहार विद्यासागर नहीं कर सके। उन्होंने यह काम इच्छापूर्वक किया था। उन्होंने इस काम में भी अपनी स्वतन्त्र प्रकृति का पूर्ण परिचय दिया। वह किसी कारण से अगर नाखुश होते थे तो पुत्र, कन्या, बहन भाई, दामाद या अपने पराये का ख्याल न करते थे। वह सबको एक सा दण्ड देते या सबसे एक सा व्यवहार करते थे। अन्य कोई आदमी अगर कालेज का प्रिन्सिपल होकर नाराजगी का काम करता तो उसके साथ विद्यासागर जैसा व्यवहार करते वैसा ही व्यवहार उन्होंने अपने दामाद के साथ भी किया। यह भी इस बात का श्रेष्ठ प्रमाण है कि वह एक असाधारण पुरुष थे।

विद्यासागर की मृत्यु के बाद कुछ लोगों ने यह कह कर गड़बड़ मचाना शुरू किया कि मेट्रोपोलीटन और उसकी सारी सम्पत्ति विद्यासागर के पुत्र नारायणचन्द्र की नहीं है और न उस पर उनका अधिकार होना चाहिए। इस गड़बड़ के निर्णय के लिए गड़बड़ मचाने वाले लोग अदालत तक जाने को तैयार थे। किन्तु नारायण बाबू की समझदारी से ऐसा होने की नौबत नहीं आई। नारायण बाबू ने सर रमेशचन्द्र मित्र आदि बहुत से गण्य-मान्य पुरुषों के हाथ में विद्यालय का प्रबन्ध दे दिया है। किन्तु इस समय प्रश्न यह है कि विद्यासागर मेट्रोपोलीटन को अपनी सम्पत्ति समझते थे या नहीं? उन्होंने जिस

तरह अपनी और और सम्पत्तियों का उपयोग किया है उससे यह जान पड़ता है कि वह अपनी किसी भी सम्पत्ति को खास अपनी नहीं समझते थे। जिस तरह अन्यान्य सम्पत्तियों को वह अपनी चीज समझते थे वैसेही मेट्रोपालीटन को भी। अन्तर इतना ही था कि अन्यान्य सम्पत्तियों से प्राप्त धन को वह अपने और अपने परिवार के काम में लाते थे, और मेट्रोपोलीटन की सम्पत्ति से उन्होंने कभी एक पैसा भी नहीं लिया। मेट्रोपोलीटन को अपनी सम्पत्ति जान कर भी उन्होंने उससे अन्य दस आदमियों को लाभ पहुँचाया है। जो लोग मेट्रोपोलीटन के और दस स्वत्वाधिकारी खड़े करके विद्यासागर के उत्तराधिकारी को उसके अधिकार से वञ्चित करने के लिए उद्यत हुए थे उन्होंने ही अपने छपे हुए नोटिस में लिखा था कि 'मेट्रोपोलीटन की बड़ी भारी इमारत बनने के समय विद्यासागर ने जो ढेर के ढेर रुपये कर्ज लिये थे उनकी अदाई के लिए उन्होंने स्टाम्प में लिख दिया था कि यह ऋण अदा होने के पहले मैं मर जाऊँ तो मेट्रोपालीटन की जमीन और अन्यान्य सब सम्पत्ति बेच कर ऋण चुका दिया जायगा। मैं और मेरे उत्तराधिकारी इस लिखा-पढ़ी के अनुसार कार्य्य करने के लिए बाध्य हैं"।

एक विद्यासागर थे, जिन्होने देशवासियों की भलाई के लिए स्कूल खोला और उसका मकान बनाने मे रुपया ऋण लेकर उसकी अदाई के लिए अपने को और अपने उत्तराधिकारियों को जिम्मेदार बना दिया। एक वे पुरुष थे, जिन्होने उस रुपये की अदाई के लिए

"In this deed the Pandit says that he had not created any other encumbrance upon the land that he is the absolute proprietor of the same and that the creditor will be entitled to realise the debt from the land pledged and from any other property belonging to him, and that he and his heirs will be bound by the deed —Extract taken from the statement published by the present authorities

विद्यासागर के उत्तराधिकारियों को अदालत में जाकर जेरबार करना चाहा था। जिस समय शरीर का बूँद बूँद रुधिर देकर—अपनी विद्याबुद्धि और कमाई का कण कण जोडकर विद्यासागर ने मेट्रो-पोलीटन को खडा किया और उसकी उन्नति के लिए प्रयत्न करते रहे उस समय कोई भी हितू बन कर पास नहीं खडा हुआ। जब स्टाम्प लिख कर उन्होंने अपने को और अपने उत्तराधिकारियों को महाजन के हाथ बेचा उस समय किसी ने बात नहीं पूछी। उस समय मेट्रोपोलीटन के नवीन उत्तराधिकारी लोग लाख रुपया चन्दा जमा करके विद्यासागर का ऋण चुकाने के लिए अग्रसर नहीं हो सके। यदि सारी सम्पत्ति विद्यासागर और उनके उत्तराधिकारी की नही है तो नारायण बाबू को मेट्रोपोलीटन की भारी इमारत और जमीन का स्वत्वाधिकारी स्वीकार करके कालेज के बाबत हमेशा के लिए १००) महीने की वृत्ति देने की क्या आवश्यकता थी? असल बात यह है कि कई एक नये स्वत्वाधिकारियों के उपस्थित होने पर भी भद्र पुरुषों की मण्डली को उनका दावा उतना जबर्दस्त नहीं जान पडा। इसमे जरा भी सन्देह नहीं कि विद्यासागर महाशय मेट्रोपोलीटन को अपनी सम्पत्ति समझते थे। उनकी इच्छा थी कि मृत्यु के पहले एक कमेटी बना कर उसे कालेज के चलाने का काम सौंप दे। किन्तु अधिक अस्वस्थ हो जाने के कारण वह अपनी इस इच्छा को पूरा नहीं कर सके। मेट्रोपोलीटन के वर्त्तमान सञ्चालकों ने अपनी रिपोर्ट मे इस बात का उल्लेख भी किया है। अगर वह कमेटी बन जाती और अगर उसके मेम्बर धर्म का ध्यान रख कर काम करते तो इन नवीन स्वत्वाधिकारियों का आविर्भाव कभी न होता। उस कमेटी के आगे कोई भी इस कार्य मे अग्रसर होने का साहस न करता, और अगर कोई अग्रसर भी होता तो उसका कुछ फल न होता। इस घटना से

यह बात स्पष्ट मालूम पड जाती है कि यह विद्यालय विद्यासागर की ही सम्पत्ति था और यह बात विद्यासागर खुद समझते थे। किन्तु उन्होने अपनी यह सम्पत्ति पराये काम मे आने के लिए रख छोडी थी।

इस देश के युवको को शिक्षा देने के बारे मे जैसी व्यवस्था करने मे अधिक सुफल की आशा की जा सकती है वैसी व्यवस्था करने मे विद्यासागर ने कोई कसर नहीं रक्खी। किन्तु वह सदा यही कहा करते थे कि "बालको को सुशिक्षा पिता, माता और घर के आदमियो से ही मिलती है"। इस बारे मे एक बार एक जगह बात-चीत हो रही थी। प्रसङ्ग-वश एक आदमी ने कहा—"जेनरल एसेम्बिली मे आज कल खूब अच्छी पढाई होती है"। विद्यासागर ने सिर हिला कर कहा—"ऊँ—हूँ, यह बात ठीक नहीं है"। दूसरे आदमी ने कहा—"क्या महाशय?" विद्यासागर ने कहा—"मैं जिस समय इन्स्पेकटरी का काम करता था उस समय एक बार मेदिनीपुर जिले म जाते जाते रास्ते मे एक नदी मिली। वहाँ नदी के उस पार जाने की व्यवस्था बहुत अच्छी थी। किनारे एक डोंगी बँधी रहती है। उसमे लग्गी रक्खी रहती है। आप उतराई का पैसा मल्लाह को देकर डोंगी पर बैठ लीजिए। लग्गी चला कर ठलत-ठालत हुए डोंगी उस पार ले जाइए और वहाँ फिर उसी तरह उसे बाँध दीजिए। उधर से जो कोई आवेगा वह भी इसी तरह चला आवेगा। हमारे देश के इन सब कालेजो का भी यही हाल है। यहा भी ठीक उसी तरह पैसा फेक दो और आप लग्गी चला कर पार चले जाओ"।

एक बार और इसी तरह कालेज की परीक्षाय पास किये हुए उपाधिधारियो के बारे मे बात-चीत हो रही थी कि वे कितनी शिक्षा प्राप्त करते हैं और उन्हे इस पढाई मे क्या लाभ और क्या हानि होती है। इस अवसर पर विद्यासागर ने बडे दुःख के साथ कहा था कि

'देश में शिक्षा का प्रचार कुछ भी नहीं हुआ ' ज्ञान का हाल तो कुछ पूछो ही नहीं । एक बार मैंने सुना था कि विलायत में एक मेशीन आई है । उसमें एक ओर बछिया को खड़ा कर दो और दूसरी ओर कुछ ऊँखें रख दो। उसके बाद एक ओर ऊँख से रस, रस से गुड़ और गुड़ से चीनी बन जायगी और दूसरी ओर बछिया से गऊ हो कर उससे दूध और दूध से खोया बन जायगा। इस प्रकार कुछ ही समय में उस मशीन की सहायता से मीठे मलाई के लड्डू बन जाते हैं । दूकानों पर कुछ आदमी बैठे हुए तरह तरह की मिठाइयाँ तैयार कर रहे हैं । मिठाइयों के रङ्ग और छाप देख कर लोग मोहित हो जाते हैं । मिठाइयों के ढँग भी अनेक प्रकार के हैं । कोई बर्फी, कोई पेड़ा, कोई गुलाब-जामुन और कोई हलवासोहन है। मगर चख कर देखो, सबकी एक ही चाशनी—सबका एक ही स्वाद होगा ! यही हाल विश्वविद्यालय की शिक्षा का है। यहाँ के भी किसी माल में एम० ए० की किसी माल में बी० ए० की किसी में एफ० ए०, की और किसी में एन्ट्रेन्स की छाप लगी हुई है। जब चख कर देखते हैं तो सब एक ही तरह की चीज देख पड़ती है" । जिस शिक्षा को पा कर हमारे देश के लोग खुशी के मारे फूले नहीं समाते, गौरव के गर्व से जमीन पर पैर नहीं रखते उस शिक्षा की असारता का उन्हें यथेष्ट अनुभव हो गया था। इस शिक्षा में परिवर्तन असम्भव होने के कारण उसके लिए कभी कभी वह बहुत ही दुःख प्रकट किया करते थे।

इन सब त्रुटियों के रहने पर भी विद्यासागर को विश्वास था कि इसी शिक्षा के प्रचार से देश का कुछ कल्याण होने की सम्भावना है। लोक-समाज के कल्याण का खयाल करके ही वह निरन्तर इस शिक्षा की उन्नति में लगे रहते थे। वह बिलकुल निःस्वार्थ-भाव से देश में सुशिक्षा का प्रचार कर रहे थे। इस बात का अन्तिम और सबसे

यह बात स्पष्ट मालूम पड जाती है कि यह विद्यालय विद्यासागर की ही सम्पत्ति था और यह बात विद्यासागर खुद समझते थे। किन्तु उन्होंने अपनी यह सम्पत्ति पराये काम मे आने के लिए रख छोडी थी।

इस देश के युवको को शिक्षा देने के बारे में जैसी व्यवस्था करने मे अधिक सुफल की आशा की जा सकती है वैसी व्यवस्था करने मे विद्यासागर ने कोई कसर नहीं रक्खी। किन्तु वह सदा यही कहा करते थे कि "बालको को सुशिक्षा पिता, माता और घर के आदमियो से ही मिलती है"। इस बारे मे एक बार एक जगह बात-चीत हो रही थी। प्रसङ्ग-वश एक आदमी ने कहा—"जेनरल एसेम्बिली मे आज कल खूब अच्छी पढाई होती है"। विद्यासागर ने सिर हिला कर कहा—"ऊँ—हूँ, यह बात ठीक नही है"। दूसरे आदमी ने कहा—"क्यो महाशय?" विद्यासागर ने कहा—"मैं जिस समय इन्स्पेकटरी का काम करता था उस समय एक बार मेदिनीपुर जिले में जाते जाते रास्ते मे एक नदी मिली। वहाँ नदी के उस पार जाने की व्यवस्था बहुत अच्छी थी। किनारे एक डोगी बँधी रहती है। उसमे लग्गी रक्खी रहती है। आप उतराई का पैसा मल्लाह को देकर डोंगी पर बैठ लीजिए। लग्गी चला कर ठेलते-ठालते हुए डोगी उस पार ले जाइए और वहां फिर उसी तरह उसे बाँध दीजिए। उधर से जो कोई आवेगा वह भी इसी तरह चला आवेगा। हमारे देश के इन सब कालेजों का भी यही हाल है। यहा भी ठीक उसी तरह पैसा फेंक दो और आप लग्गी चला कर पार चले जाओ"।

एक बार और इसी तरह कालेज की परीक्षाय पास किये हुए उपाधिधारियो के बारे मे बात-चीत हो रही थी कि वे कितनी शिक्षा प्राप्त करते हैं और उन्हे इस पढाई मे क्या लाभ और क्या हानि होती है। इस अवसर पर विद्यासागर ने बडे ढंग के साथ कहा था कि

'देश में शिक्षा का प्रचार कुछ भी नहीं हुआ ! ज्ञान का हाल तो कुछ पूछो ही नहीं । एक बार मैंने सुना था कि विलायत में एक मेशीन आई है। उसमें एक ओर बछिया को खड़ा कर दो और दूसरी ओर कुछ ऊँखे रख दो। उसके बाद एक ओर ऊँख से रस, रस से गुड़ और गुड़ से चीनी बन जायगी और दूसरी ओर बछिया से गऊ हो कर उससे दूध और दूध से खोया बन जायगा। इस प्रकार कुछ ही समय में उस मेशीन की सहायता से सोंठ मलाई के लड्डू बन जाते हैं। दूकानों पर कुछ आदमी बैठे हुए तरह तरह की मिठाइयाँ तैयार कर रहे हैं। मिठाइयों के रङ्ग और छाप देख कर लोग मोहित हो जाते हैं। मिठाइयों के ढँग भी अनेक प्रकार के हैं। कोई बर्फी, कोई पेड़ा, कोई गुलाब-जामुन और कोई हलवासोहन है। मगर चख कर देखो, सबकी एक ही चाशनी—सबका एक ही स्वाद होगा ! यही हाल विश्वविद्यालय की शिक्षा का है। यहाँ के भी किसी माल में एम० ए० की किसी माल में बी० ए० की किसी में एफ० ए०, की और किसी में एन्ट्रेन्स की छाप लगी हुई है। जब चख कर देखते हैं तो सब एक ही तरह की चीज देख पड़ती है"। जिस शिक्षा को पा कर हमारे देश के लोग खुशी के मारे फूले नहीं समाते, गौरव के गर्व से जमीन पर पैर नहीं रखते उस शिक्षा की असारता का उन्हें यथेष्ट अनुभव हो गया था। इस शिक्षा में परिवर्त्तन असम्भव होने के कारण उसके लिए कभी कभी वह बहुत ही दुःख प्रकट किया करते थे।

इन सब त्रुटियों के रहने पर भी विद्यासागर को विश्वास था कि इसी शिक्षा के प्रचार में देश का कुछ कल्याण होने की सम्भावना है। लोक-समाज के कल्याण का खयाल करके ही वह निरन्तर इस शिक्षा की उन्नति में लगे रहते थे। वह बिलकुल निःस्वार्थ-भाव से देश में सुशिक्षा का प्रचार कर रहे थे। इस बात का अन्तिम और सबसे

श्रेष्ठ प्रमाण देकर हम अब दूसरे विषय को उठावेंगे। बँगला-साहित्य के सगठन और बालकों को बँगला की शिक्षा देने के लायक ग्रन्थ बनाने के लिए उत्साहित करने और अच्छी पुस्तकों को चुनने के इरादे से गवर्नमेंट ने जब सबसे पहले सेन्ट्रल टेक्सबुक कमेटी (Central Text Book Committee) बनाई थी तब उस समय के शिक्षा-विभाग के डाइरक्टर एटकिन्सन साहब ने विद्यासागर को एक पत्र लिखा था। विद्यासागर ने भी उसके उत्तर में एक पत्र लिखा था। दोनों पत्र यहाँ पर उद्धृत किये जाते हैं —

श्रीयुत पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर,

प्रिय-पण्डित महाशय,

विद्यालय की पाठ्य पुस्तकें चुनने के लिए जो कमेटी बनाई जा रही है उसमें अपना नाम रखने के लिए क्या आप अपनी अनुमति देंगे? बँगला और अँगरेजी की पाठ्य पुस्तकों की जाँच और परीक्षा करना ही कमेटी का काम होगा। इस कारण इस कमेटी में योग्य देसी पण्डितों की सहायता बहुत जरूरी है। इस कारण आप हमारे इस कार्य में सहायता करने के लिए राजी होंगे तो मैं आपका अत्यन्त अनुगृहीत होऊँगा।

११ जुलाई, १८७३ — आपका विश्वास-पात्र—
डब्लू० एस० एटकिन्सन।

July 11, 187"

* To—PUNDIT ISVAR CHANDRA SARMA

MY DEAR PUNDIT,

Will you allow me to add your name to the Committee upon School books? The enquiries of the Committee are to be extended to Vernacular School books as well as English, and it is therefore necessary to secure the help of the best native scholars

I shall be much obliged if you will give us the benefit of your service

Sincerely yours,
(Sd) W. S. ATKINSON

डब्लू० एस० एटकिन्सन साहब की सेवा मे।

प्रिय महाशय,

आपके ११ तारीख के पत्र के उत्तर मे निवेदन यह है कि विद्यालय की पाठ्य-पुस्तकें चुननेवाली कमेटी मे मैं खुशी से शरीक होता। लेकिन दो कारणो से मैं आपके इस अनुरोध को स्वीकार करने में असमर्थ हूँ। यह कमेटी जिन पुस्तकों के गुणो और दोषों पर विचार करेगी उनके ग्रन्थकार की हैसियत से उनसे मेरा लाभ-हानि का सम्बन्ध है। ऐसी अवस्था मे विचारक की हैसियत से इस कमेटी मे मेरा शरीक होना उचित नहीं है। इसके सिवा मेरा यह भी ख्याल है कि मैं कमेटी में मेम्बर की हैसियत से उपस्थित रहूँगा तो लोग मेरी पुस्तकों के बारे में खुल कर अपनी राय न दे सकेंगे। ऐसी अवस्था मे मैं किसी तरह अपने को उस कमेटी का मेम्बर बनाने के लिए सम्मति नहीं दे सकता। मेरा यह अनुरोध है कि आप दया करके इसके लिए मुझको क्षमा करें *।

कलकत्ता, १३ जुलाई, १८७३	आपका विश्वासपात्र श्रीईश्वरचन्द्र शर्म्मा।

यह पत्र ही इस बात का बड़ा भारी प्रमाण है कि देश के लोगों

* To—W S Atkinson, Esq , M A

My dear Sir

In reply to yours of the 11th instant, I beg to inform you that I would have gladly accepted your invitation to serve on the School Book Committee, but on two considerations I feel constrained to decline it As an author, I am directly interested in the decision of the Committee and I do not therefore think it right to take a part in their deliberations Besides I am inclined to think that my presence in the Committee may interfere with a free and unreserved discussion of the merits and demerits of the books I hope you will therefore kindly excuse me if I cannot persuade myself to comply with your request

Yours sincerely

(Sd) ISVAR CHANDRA SARMA

को शिक्षा देने और उनका ज्ञान बढ़ाने के लिए विद्यासागर ने कैसे निःस्वार्थ-भाव से परिश्रम किया था। उन्होंने मेट्रोपोलिटन से तो एक पैसा लिया ही नहीं बल्कि टेक्स-बुक कमेटी मे शरीक होने के लिए डाइरेक्टर साहब के कहने पर भी उसे इस खयाल से नामञ्जूर कर दिया कि कहीं कोई यह कह कर स्वार्थी न बनावे कि विद्यासागर अपनी पुस्तके मञ्जूर कराने के लिए ही टेक्स-बुक कमेटी के मेम्बर हुए हैं। हमारी समझ मे वह वर्त्तमान पूर्वी और पश्चिमी नीति को नीचा दिखा कर न्याय और निष्ठा की विजय-वैजयन्ती फहरा गये हैं। क्या वर्त्तमान पीढ़ी के बङ्गाली युवक विद्यासागर के आदर्श पर स्वार्थ-शून्य होकर देश-सेवा और समाज-सेवा के काम करना न सीखेंगे? अगर वे विद्यासागर के चरित्र से ये बाते न सीख सके तो फिर और कहाँ सीखेंगे? सचमुच यह हमारे अभाग्य ही की बात है कि ऐसा उच्च आदर्श सामने रहने पर भी स्वदेश-हित की अनेक चेष्टाये आरम्भ मे ही समाप्त हो जाती है। सबसे बढ कर दुःख तो इस बात का है कि बँगला-साहित्य इस समय स्वार्थपरता से कलुषित हो रहा है। सहृदय साहित्य-सेवक लोग यदि दया करके विद्यासागर के दिखलाये रास्ते पर धीरे धीरे अग्रसर होने की चेष्टा करे तो वर्त्तमान साहित्य का कूडा न देख पडे और विद्यासागर की इच्छा के अनुसार लोगो को शिक्षा और ज्ञान प्राप्त करने मे सत्साहित्य से सहायता मिले।

विद्यासागर के उद्योग से स्थापित मेट्रोपोलीटन इन्स्टीट्यूशन की देखा-देखी उस तरह के अनेक विद्यालय स्थापित हुए थे। विद्यासागर के अनुकरण पर सबसे पहले साधारण ब्राह्म-समाज के मुखियों

* श्रीयुत आनन्दमोहन वसु, श्रीयुत दुर्गामोहन दास, श्रीयुत शिवनाथ शास्त्री, श्रीयुत उमेशचन्द्र दत्त, श्रीयुत द्वारकानाथ गंगोपाध्याय आदि महाशयो के उद्योग और परिश्रम से सिटी कालेज की स्थापना और उन्नति हुई है।

ने सिटी-कालेज की नींव डाली। उनके असीम आग्रह और उत्साह से सिटी-कालेज बहुत शीघ्र अपना काम चला लेने लायक अवस्था को पहुँच गया। क्रमशः रिपन-कालेज और अन्यान्य प्रथम श्रेणी तथा द्वितीय श्रेणी के कालेजों * का अभ्युदय और उन्नति सहज-साध्य होती गई।

आज कलकत्ते के बाहर भी अनेक स्थानों में यूनिवर्सिटी में शामिल बहुत से कालेज स्थापित हो गये हैं। उन्होंने बहुत से गरीब बङ्गाली विद्यार्थियों के उच्च-शिक्षा प्राप्त करने और ज्ञानोपार्जन से अपना जन्म सफल बनाने का मार्ग साफ और सहज बना दिया है। इन सब कामों का श्रेय विद्यासागर को दिया जा सकता है, क्योंकि इस मार्ग में सबसे पहले अनेक असुविधाओं का खयाल न करके विद्यासागर ही अग्रसर हुए थे। बङ्गाल के अनेक स्थानों में स्थापित और देशी आदमियों के द्वारा सञ्चालित कालेजों † के सञ्चालक लोग इस बात के लिए विद्यासागर के निकट ऋणी हैं। इन विद्यालयों के सञ्चालकों में विद्यासागर के लिए कुछ करने की आशा करना

* रिपन कालेज अकेले सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की चेष्टा और अध्यवसाय का फल है। स्वर्गीय केशवचन्द्र के अलबर्ट-कालेज, विलायत से लौटे हुए गिरीशचन्द्र वसु के द्वारा सञ्चालित बङ्गवासी कालेज, मेट्रोपोलीटन के भूतपूर्व अध्यापक बाबू क्षुदीराम वसु के स्थापित सेन्ट्रल इन्स्टीट्यूशन आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेख के योग्य है।

† महारानी स्वर्णमयी सी० आई० द्वारा सञ्चालित बहरामपुर कालेज, महाराजा कूचविहार का विक्टोरिया कालेज, बर्दवान के महाराज का राज कालेज, ढाके का जगन्नाथ कालेज, उत्तर पाड़ा-कालेज, बरीसाल का ब्रजमोहन-कालेज भागलपुर का तेजनारायण कालेज, बिहार नेशनल कालेज, नाड़ाइल का विक्टोरिया-कालेज, सिराहट का एम० सी० कालेज कुमिल्ले का विक्टोरिया कालेज और पबना-कालेज इत्यादि।

क्या अनुचित होगा ? विद्यासागर का स्मारक स्थापित करने के लिए सर रमेशचन्द्र मित्र जुट धन-संग्रह की चेष्टा कर रहे हैं। इससे बढ़ कर सुख की बात और क्या हो सकती है ? आधुनिक बङ्गाल के सर्व-श्रेष्ठ हितैषी ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का स्मारक बनाने के लिए जो सज्जन चेष्टा कर रहे हैं वे इस कार्य से इस लोक में सन्तोष और अमरपद पा कर कृतार्थ होंगे। विद्यासागर के कृतज्ञ और ऋणी लोग कम नहीं हैं। वे चाहें तो स्वदेश-प्रेमी धर्मवीर विद्यासागर का स्मारक स्थापित होना बहुत ही सहज है।

दसवाँ अध्याय ।

विद्यासागर का पारिवारिक और सामाजिक जीवन ।



न १८३५ ई० के आरम्भ में, पन्द्रह वर्ष की अवस्था में, ईश्वरचन्द्र का विवाह हुआ था । उनके वचपन और वाल्यजीवन का पूरा वर्णन पहले किया जा चुका है । अब उनके पारिवारिक और सामाजिक जीवन का हाल लिखा जाता है । विवाह की रात को ही विद्यासागर ने आगे चल कर अपने रसिक होने का परिचय दिया था । कलकत्ते में जब ईश्वरचन्द्र थे उस समय एक मित्र के यहां विवाह के दिन निमन्त्रण मे उन्हे जाना पडा । तरह तरह के हँसी मजाक करके सब लोग आनन्द भोग कर रहे थे । उस समय विद्यासागर ने कहा—"आज कल विवाह में वैसा मजा नहीं आता और वर को भी वैसी विषम परीक्षा नहीं देनी पडती" । ईश्वरचन्द्र के कई मित्रों ने उनसे पुराने जमाने के ब्याह का मजा सुनाने के लिए अनुरोध किया । ईश्वरचन्द्र ने कहा—"इस समय क्या है ? उस समय वर को पहले दिन सोने के कमरे में जाकर अनेक वालिकाओ में से अपनी स्त्री खोजनी पडती थी । मण्डप के नीचे, शुभ दृष्टि के समय, एक वार स्त्री को देख कर अनेक वालिकाओ मे से उसे खोज निकालना वडा ही कठिन काम है । मुझे भी यह परीक्षा देनी पडी थी । घर के भीतर पैर रखते

ही स्त्रियो ने कहा—अपनी स्त्री को खोज लो। मैंने देखा कि उस औरतो के दङ्गल से अपनी अपरिचिता अर्धाङ्गिनी को खोज निकालना मेरा काम नहीं है। मैंने सोच विचार कर अन्त को एक अपनी हमजोली की गोरी गोरी खूबसूरत लडकी का हाथ पकड कर कह दिया—यही मेरी स्त्री है। उसका हाथ पकडते ही बडा गोलमाल मच गया। एक दूसरी के ऊपर गिर पडी, कोई किसी ओर से भागा। किसी को भागने के लिए जगह ही नहीं मिली। मैंने जिसे पकडा था उसे खूब मजबूत पकडा था। भाग जाना उसके लिए असम्भव था। मैंने उसका हाथ पकड कर कहा—तुम मेरी स्त्री हो। मैं और स्त्री नहीं चाहता। वह लडकी 'बाप रे! दैया रे!' कह कर चिल्लाने लगी। दो एक बडी बूढी अधेड औरतें भी आ गई। उन्होंने पास आकर कहा—वह तुम्हारी स्त्री नहीं है, उसे छोड दो। मैंने कहा—क्यों छोड दूँ? तुमने कहा था कि अपनी स्त्री खोज लो। मैंने खोज लिया। यही मुझे पसन्द है। तब वह लडकी मेरे पैरों पर पड कर कहने लगी—अच्छा मुझे छोड दो। मैं तुम्हारी स्त्री को खोजे लाती हूँ। उसके बाद आपसे आप कन्या हाजिर कर दी गई"। विद्यासागर ने ऐसा छकाया कि फिर किसी को उनसे दिल्लगी करने की हिम्मत न हुई।

ईश्वरचन्द्र मे रसिकता की मात्रा बचपन से ही थी। कालेज में काव्यशास्त्र के अध्यापक जयगोपाल तर्कालङ्कार ने एक दिन सब लडको को 'गोपालाय नमोऽस्तु मे' यह समस्या देकर श्लोक बनाने के लिए कहा। विद्यासागर ने अध्यापक महाशय से कहा—गुरुजी, किस गोपाल के पक्ष मे इस श्लोक की पूर्त्ति करूँ? एक गोपाल तो आप हैं और एक गोपाल वृन्दावनविहारी थे। गुरुजी ने भी इस सुयुक्तिपूर्ण प्रश्न पर हँस कर कहा—वृन्दावनविहारी गोपाल का वर्णन करो।

विद्यासागर के विवाह के बाद चौदह वर्ष तो बड़ी ही अशान्ति से बीते। इसका कारण यही था कि बाईस वर्ष की अवस्था तक बहू के कोई सन्तान न होने के कारण परिवार के सब लोगों को बड़ी चिन्ता थी। जो आदमी जो दवा खिलाने को कहता था वही दवा बहू को खिलाई जाती थी। अन्त को सन् १८४९ ई० के कार्तिक की पूर्णिमा को विद्यासागर के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यही नारायणचन्द्र विद्यारत्न (बनर्जी) हैं। इनके बाद लगातार चार लड़कियाँ हुई। हेमलता, कुमुदिनी, विनोदिनी और शरत्कुमारी।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	१	पुत्र, श्रीयुत नारायणचन्द्र (विद्यारत्न) | इनके एक पुत्र और तीन कन्या हैं।
	२	बड़ी कन्या, हेमलता देवी। और, दामाद, गोपालचन्द्र समाजपति। | सुरेशचन्द्र समाजपति, और ज्योतिपचन्द्र समाजपति।
	३	दूसरी कन्या कुमुदिनी देवी। और, दामाद, अघोरनाथ मुखोपाध्याय। | तीन पुत्र, चार कन्या।
	४	तीसरी कन्या, विनोदिनी देवी। और, दामाद, बाबू सूर्यकुमार अधिकारी। | तीन पुत्र, चार कन्या।
	५	चौथी कन्या, शरत्कुमारी देवी। और दामाद, बाबू कार्त्तिकचन्द्र चट्टोपाध्याय। | दो पुत्र, एक कन्या।

विद्यासागर माता पिता को बहुत चाहते थे। उनकी पितृभक्ति और मातृपूजा का कुछ परिचय पहले दिया जा चुका है। किन्तु उनकी माता पिता पर जितनी भक्ति और श्रद्धा थी उसका वर्णन शब्दों के द्वारा किया ही नहीं जा सकता। पिता माता को सुखी रखना उनके जीवन का प्रधान लक्ष्य था। वह माता पिता की प्रसन्नता के आगे अपने सुख दुख की कुछ भी पर्वा न करते थे। बचपन से ही वह इस तरह पले थे कि अपने सुख की ओर ध्यान देने का अवसर ही उन्हें नहीं मिला। सदा उन्हें आत्मनिग्रह और आत्मशासन के अधीन होकर चलना पड़ता था। किन्तु अगर कहीं कुछ अपने सुख का कारण मौजूद होता तो वह उसे भी माता पिता के लिए छोड़ने को तैयार थे। इस कारण प्राय उनके पारिवारिक सुख को धक्का पहुँचता था। उन्होंने सदा अपने माता पिता को देवता की तरह माना। उनके समान माता पिता के भक्त पुरुष आज कल बहुत ही कम देखने को मिलते हैं। देवता की आज्ञा से उसका सेवक जैसे आत्मदमन कर सकता है वैसे ही वह माता पिता की आज्ञा से मन मारने के लिए तैयार रहते थे।

ईश्वरचन्द्र के बहुत पीछे पड़ जाने पर उनके पिता ठाकुरदास ने नौकरी छोड़ दी। वह गांव मे अपने घर मे सुख के तौर पर रहने लगे। वह पासपरोस का भी खयाल रखते थे। विद्यासागर की माता भी अन्नपूर्णा की तरह गृहस्थी के काम करके छुट्टी मिलने पर परोसियों के काम आती थीं। रोगी को दवा देना, दुखी को धीरज बँधाना, भूखे को अन्न देना उनके नित्य के काम थे। विद्यासागर कलकत्ते में रहते थे। घर के सब आदमी एक ही में थे। सबके खाने पीने आदि का खर्च विद्यासागर को ही भेजना पड़ता था। बहुत जरूरत पड़ने पर कभी कभी माता, पत्नी और पुत्र कन्याओं को कलकत्ते

मे बुला लेते थे। जब तक मा-बाप जीते रहे तब तक और उनके बाद भी विद्यासागर अकेले ही कलकत्ते मे रहे। उनकी स्त्री और लड़की लड़के गाँव मे ही रहते थे। विद्यासागर ने अपनी स्त्री और पुत्र-कन्या की अपेक्षा सर्वसाधारण की सेवा का ही अधिक ध्यान रक्खा। विद्यासागर किसी जरूरत से या किसी काम-काज के मौके पर जब घर जाते थे तब घर वालों की अपेक्षा पास-परोसी और अन्यान्य अपरिचित आदमी ही अधिक प्रसन्न होते थे। क्योंकि विद्यासागर की सहायता से उनकी इच्छाये पूर्ण होती थीं और वे दुःख या सङ्कट से छुटकारा पाते थे। वह जब जहाँ रहते थे वहाँ, उनके पास, दवाओ का 'बक्स, नये कपड़े के थान, रुपया, अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी और पैसे मौजूद रहते थे। गरीबो को तीन ही बातो का कष्ट होता है। औषध का, अन्न का और वस्त्र का। इन तीनो कष्टों को दूर करने के लिए विद्यासागर सदा तैयार रहते थे। गाँव मे और आसपास के स्थानो मे इस तरह धन बाँटने की खबर फैल गई। एक बार जिस समय विद्यासागर वीरसिंह गाँव मे ही थे उस समय कुछ दुष्ट लोगो ने मिल कर उनके यहाँ डाका डाला। डकैतो को यह विश्वास था कि विद्यासागर के यहाँ बहुत रुपया हाथ लगेगा। उस समय विद्यासागर के घर मे बहुत आदमी टिके हुए थे। आधी रात के समय दलबन्द डाकुओ के आने से सब डर गये। लोगो ने देखा कि ४०।५० डाकू सदर दरवाजा तोड़ कर भीतर घुस आये। तब सब लोग पीछे के दरवाजे से निकल कर भागने के लिए लाचार हुए। माता-पिता और परिवार-परिजनसहित विद्यासागर ने भाग कर अपनी जान बचाई। डकैतो न उनकी बहुत खोज की थी। पा जाते तो उनसे कुछ रुपया वसूल करते। विद्यासागर को न पाकर अन्त को डकैत घर की सब चीजे उठा ले गये। विपन्न विद्यासागर ने उसी रात को थाने मे खबर भेजी। सबेरे पुलिस-इन्स्पे-

क्टर साहब पधारे। सबसे पहले दक्षिणा की व्यवस्था न देख कर इन्स्पेक्टर साहब का मिजाज कुछ गरम हो आया। ठाकुरदास ने इन्स्पेक्टर साहब से कहा—'आप कुलीन ब्राह्मण के लड़के हैं या आप आते तो आपको दक्षिणा के तौर कुछ दे सकता था। इस मामले में तो एक कौड़ी भी न दूँगा'। यों कह कर ठाकुरदास तो बाजार में थाली-लोटा वगैरह जरूरी सामान खरीदने चल दिये और ईश्वरचन्द्र महल्ले के जवानों और भाइयों के साथ मैदान में गेंद खेलने लगे। कैसा निश्चिन्त-भाव है। गृहस्थी का सब बोझा सिर पर, उस पर ऐसी विपत्ति का अवसर, और उस पर यह लड़कों की ऐसी सरलता। क्या यह कुछ विचित्रता नहीं है? ईश्वरचन्द्र की यह ढिठाई देख कर दारोगा साहब जल उठे। उन्होंने कहा—इस ब्राह्मण (ठाकुरदास) की ऐसी मजाल कि मेरे मुँह पर इस तरह कहे। इसके बाद विद्यासागर की ओर उँगली उठा कर कहा—यह लौंडा भी किस तरह का आदमी है। कल डकैती हुई है और आज गेंद खेल रहा है।

पास ही चौकीदार खड़ा था। उसने कहा—"हुजूर ये मामूली आदमी नहीं है। इनके घर आने पर जहानाबाद के डिप्टी बाबू इनसे मिलने आते हैं। सुन पड़ता है कि छोटे लाट और बड़े लाट से भी इनका हेलमेल है।"। इतना सुनते ही दारोगा साहब का मिजाज ठीक हो गया। उनके मुँह से बात निकलना कठिन हो गया, माथे पर पसीने की बूँदें झलक आईं। असल बात यह है कि जो कायर नहीं होता वह अवसर पा कर दुर्बल पर अत्याचार करने के लिए कभी खड़ा ही नहीं होता। दुर्बल को सतानेवाले कायर का दूसरे की शक्ति की कल्पना से भी यों शिथिल हो जाना ही स्वाभाविक बात है। इसी डकैती के बाद पूर्वोक्त श्रीमन्त सरदार को विद्यासागर के पिता ने नौकर रख लिया।

इस घटना के बाद कलकत्ते आकर एक दिन विद्यासागरजी छोटे लाट हालिडे साहब से मिलने के लिए गये । प्रसग छिडने पर वीरसिंह की डकैती का जिक्र चला । छोटे लाट सब हाल सुन कर सन्नाटे में आ गये । उन्होने कहा—"आप के यहाँ डकैती हुई और आपने उनको रोका नहीं, पीछे के दरवाजे से भाग गये ? यह तो बडे ही कायरपन का काम है ।" विद्यासागर ने कहा—"आप तो बडे मजे के आदमी हैं । जान लेकर भागा तो आप ने उसे कायरपन बताया, और अगर मैं ४० । ५० डाकुओ से अकेले भिड कर जान दे देता तो आप ही कहते बडा अहमक था । इतने आदमियो का सामना करके व्यर्थ ही प्राण दे दिये । आप लोगों के मन के माफिक काम होना बडा कठिन है" ।

वीरसिंह गाँव मे मुफ्त शिक्षा देने वाला अँगरेजी स्कूल खुलने पर कई पाठशालायें उठ गई । इन पाठशालाओ के अध्यापको (ईश्वरचन्द्र चट्टोपाध्याय, हरचन्द्र आचार्य, उमाचरण चट्टोपाध्याय, मधुसूदन चट्टोपाध्याय, कालीकान्त चट्टोपाध्याय) ने रोजी न रहने पर विद्यासागर से जाकर अपने कष्ट का हाल कहा । विद्यासागर ने अपने बचपन के गुरु को अपने स्कूल मे निम्न श्रेणी के बालको को वर्णपरिचय पढाने के लिए नौकर रख दिया । अन्य अध्यापको को पहले की अपेक्षा कुछ अधिक वेतन की व्यवस्था करके अन्यान्य स्थानो मे नौकर रख दिया । और अपने भाई शम्भुचन्द्र विद्यारत्न से कह दिया कि इन लोगों को उपक्रमणिका से लेकर पञ्चतन्त्र, रामायण आदि पढा दो । इन ग्रन्थो को पढ लेने पर अधिक वेतन पर ये लोग स्कूलो मे नौकर रखा दिये जायँगे ।

चाहे किसी कारण से किसी पर विपत्ति आपडी हो उसका हाल सुनते ही विद्यासागर का कोमल हृद[illegible] ।द से [illegible] था ।

पराया दुःख दूर करने की प्रवृत्ति उनमें भरी पडी थी। इसी कारण माम्य-गुरुओं के कष्ट को दूर किये बिना उनसे नहीं रहा गया।

एकान्नवर्त्ती बडे परिवार में सदा जिन असुविधाओं के होने की सम्भावना होती है उनकी विद्यासागर के यहाँ कमी न थी। किन्तु विद्यासागर के पिता ठाकुरदास की सुविवेचना से वे सब असुविधायें कुछ कम हो जाया करती थीं। जब तक विद्यासागर के माता-पिता जीते रहे तब तक गृहस्थी का सब भार उन्हीं के ऊपर छोड कर विद्यासागर निश्चिन्त रहे। हर एक मामले में माता-पिता जैसी व्यवस्था करते थे उसी को विद्यासागर शिरोधार्य समझते थे। किन्तु माता-पिता प्राय पुत्र की इच्छा समझ कर ही हर एक काम की व्यवस्था करते थे। इस प्रकार अगर माता-पिता लडके का खयाल करें और लडके माता-पिता का खयाल करें तो गृहस्थी के या ससार के कामों में कोई असुविधा नहीं हो सकती।

ठाकुरदास और भगवती देवी बहुत दिनों तक जीकर ससार का सुख भोगते रहे। कभी कभी उनमें मीठी छेडछाड भी हुआ करती थी। ठाकुरदास जरा रूखे मिजाज के आदमी थे और उनकी स्त्री भी जरा जल्द ही कलह करने के लिए तैयार हो जाती थीं। इस कारण पुरखा पुरखिन में अक्सर मुँह फूलने की नौबत आजाया करती थी। किन्तु यह हालत देर तक न रहती थी। खास कर पुरखिन जब खीझ कर लडती लडती कोठरी में जाकर भीतर से किवाडे बन्द कर लेती थीं तब उनको मनाने का एक बडा अच्छा और सहज उपाय ठाकुरदास जानते थे। पाठक, आप यह न समझें कि ठाकुरदास इस मानलीला में कृष्ण का अनुकरण करते थे। मान करके भगवती देवी जब कोठरी के किले में चली जाती थीं तब ठाकुरदास उस किले को फते करने का सामान खोजने के लिए बाहर निकलते थे। ठाकुरदास खोज खाज कर एक बडी रोहू

या और कोई मछली खरीद कर घर लाते थे। उस मछली को लाकर उस कोठरी के दर्वाजे पर या पास ही और कहीं जोर से पटक देते थे। मछली के गिरने का शब्द सुनते ही पुरखिन आँसू पोंछती हुई मौजूद होती थीं और हँसिया लेकर मछली की ओर बढ़ती थीं। ठाकुरदास मछली फेंक कर गम्भीर भाव से खड़े रहते थे और पुरखिन के उधर बढ़ने पर कहते थे—"खबरदार, मछली में हाथ न लगाना"। पुरखिन इस पर ध्यान न देकर आगे बढ़ती ही जाती थीं। ठाकुरदास रोक कर कहते थे—"मेरे हुकुम बिना जो कोई मेरी मछली में हाथ लगावेगा वह पछतायगा"। आँखों में आँसू, मुख में हँसी, इस तरह पुरखिन निडर भाव से मछली उठा लेती थीं और ठाकुरदास उस मान-भञ्जन की लीला के बाद दूसरे काम के लिए चले जाते थे। बहुएँ आड़ से इस सुखसम्मिलन को देखकर घूँघट में मुँह छिपा कर हँसने लगती थीं। यह हाल मैंने विद्यासागर के पुत्र नारायणचन्द्र विद्यारत्न के मुख से सुना है। वह कहते थे कि मेरी दादी को मछली बनाना बहुत पसन्द था। बड़ी मछली मिलने पर उसे काटना, बनाना और लोगों को खिलाना उन्हें बहुत रुचता था।

भगवतीदेवी एक विचित्र धातु की बनी हुई थीं। मेहनत करके तो वह कभी थकती ही न थीं। दिन को, रात को, घर में परिवार की सेवा करनी हो या अतिथि-अभ्यागत का सत्कार करना हो, अथवा गाँव में किसी का कुछ काम करना हो वह मेहनत से मुँह न मोड़ती थीं। दोपहर के समय सब को भोजन करा चुकने पर भी उसी समय वह भोजन न करती थीं। इस प्रकार कुछ ठहर जाने से उनका अभिप्राय यह था कि कहीं कोई भूखा अतिथि या ग़रीब दुखी आदमी न द्वार पर आ जाय। वह जिस समय भोजन करने बैठती थीं उस समय भी अगर कोई भूखा आदमी आ जाता था तो

वह उस अन्न से उसे तृप्त कर देती थीं और आप या तो उस दिन उपवास कर जाती थीं और या बहुओं में से किसी के फिर कुछ बना देने पर तीसरे पहर भोजन करती थीं। दोपहर के समय द्वार पर खड़े होकर वह देखती थीं कि बाजार में कोई बिना नहाये खाये तो नहीं लौटा जा रहा है अगर द्वार पर कोई ऐसा आदमी जाता देख पड़ता था तो उसे बुला कर नहाने खाने के लिए आग्रह करती थीं। जब वह नहा चुकता था तो उसे भोजन कराती थीं, और नहीं तो कम से कम कुछ जलपान के लिए अवश्य दे देती थीं। ऐसी पराये दुख में दुखी होनेवाली पर-सेवा-परायणा गृहलक्ष्मी जिस घर में विराजमान हो उस घर के परिवार पर परमेश्वर का प्रसन्न होना कोई विचित्र बात नहीं है। भगवती देवी जब तक जीती रहीं तब तक ठाकुरदास के सारे परिवार पर भगवान् की शुभ दृष्टि रही।

भगवती देवी केवल पति, पुत्र, कन्या, पोते, पोती आदि परिवार की ही सेवा-सुश्रूषा में नहीं लगी रहती थीं। वह केवल दरवाजे पर आनेवाले दीन दुखी की सहायता कर लेने के लिए तैयार नहीं रहती थीं। वह दूसरों का दुख दूर करने के लिए महल्ले महल्ले घूमती थीं। सब के घरों की खबर लेने और सब की सहायता करने का उन्हें अभ्यास सा हो गया था। उनका यह स्वभाव पूर्णरूप से ईश्वरचन्द्र में मौजूद था। किन्तु प्रसङ्गवश जब कभी उनकी माता की चर्चा उठती थी तब मातृभक्त ईश्वरचन्द्र यही कहते थे कि "मैं अगर अपनी माता के गुणों का हजारवाँ हिस्सा भी पाता तो कृतार्थ हो जाता। मैं ऐसी माता का पुत्र हूँ, इसे मैं (Glory) गौरव की बात समझता हूँ"।

भगवती देवी बहुत ही सरल स्वभाव की स्त्री थीं। किसी के दुःख या कष्ट की खबर सुन कर उनसे रहा नहीं जाता था। खासकर अगर गरीब का दुख देखती या सुन पाती थीं कि अमुक असहाय पुरुष या

की सहायता के बिना क्लेश पा रही है तो वह व्याकुल हो उठती थीं। वह निरन्तर दूसरों का उपकार या सेवा किया करती थीं। वीरसिंह गांव के अनेक गरीब आदमी इस समय भी इस बात की साक्षी देते हैं कि वह नीच ऊँच का खयाल न करके चमारों और डोमों के यहां जाती और बीमारों को दवा खिलाने और पथ्य देने का प्रबन्ध कर आती थीं। अक्सर देखा जाता था कि वह किसी अस्पृश्य जाति के दरवाजे पर बैठी हुई उस घर के रोगी को दवा या पथ्य देने की व्यवस्था कर रही हैं। अक्सर सागूदाना और मिसरी उनके पास रहती थी। जिसके यहां पथ्य देने वाला कोई आदमी न होता था उसके लिए अपने घर से पथ्य बना ले जाती थी। इस तरह अतिथि-अभ्यागतों और गरीब बीमारों की सेवा करने में ही उनका अधिकांश समय बीत जाता था।

एक बार घर के लिए विद्यासागर ने ६ लिहाफ बनवा कर भेजे। विद्यासागर की माता लिहाफों को देख कर बहुत प्रसन्न हुई। उनके लिए और घर के अन्य कई आदमियों के लिए वे लिहाफ बन कर आये थे। परोसियों के घर जा कर भगवती देवी ने देखा कि कई आदमी जाड़े से बड़ा क्लेश पा रहे हैं—उनके पास इतना द्रव्य भी नहीं है कि कुछ कपड़े बनवा सकें। भगवती देवी ने सब लिहाफ ऐसे लोगों को बांट दिये और फिर विद्यासागर को पत्र लिखा—"ईश्वर, तुम्हारे भेजे हुए लिहाफ मैंने जाड़ा खा रहे गरीबों को बांट दिये। हम लोगों के लिए और लिहाफ भेज देना"।

इसके उत्तर में पुत्र ने माता को लिख भेजा—"ऐसे लोगों के लिए, घर के लिए और तुम्हारे लिए कितने लिहाफ चाहिए? तुम्हारा पत्र पाने पर उतने लिहाफ भेज दूँगा"। भगवती देवी की दया और परोपकार के ऐसे अनेक उदाहरण स्थानाभाव से यहां पर नहीं दिये जा सके।

इस एक ही उदाहरण से पाठक-गण समझ जायँगे कि वह किस ढँग की स्त्री थीं।

हैरिसन साहब जब इन्कमटैक्स का काम करने के लिए मेदिनीपुर जिले में गये थे तब वीरसिंह और उसके आस पास के गावों में भी उन्हे जाना पड़ा था। उस समय विद्यासागर घर मे ही थे। उन्होंने कमसिन सिविलियन हैरिसन साहब के आने की खबर माता को दी। माता ने कहा—"तो फिर उस लड़के को जरा घर में न बुलाओगे? यहां बुला कर कुछ जलपान करा देना अच्छी बात होगी"। विद्यासागर ने हैरिसन साहब से जाकर अपनी माता की इच्छा प्रकट की। साहब ने कहा—"वह खुद निमन्त्रण न देंगी तो मैं न जा सकूँगा"। तब विद्यासागर की माता न अपने नाम से साहब को निमन्त्रण दिया। उस पत्र की नकल नीचे दी जाती है —

श्री श्रीहरि

शरणम्—

अशेषगुणाश्रय

श्रीयुत एच० एल० हैरिसन महोदय

परमकल्याणभाजनेषु—

सस्नेहसम्भाषणमावेदनमिदम्।

अपने बड़े लड़के ईश्वरचन्द्र से मैंने सुना है कि आप शीघ्र ही कलकत्ते लौट जायँगे। मेरी बड़ी इच्छा है कि दया करके उसके पहले एक बार वीरसिंह के घर में आप आइए। मुझे बड़ी खुशी होगी। आशा है, आप मेरी इच्छा अवश्य पूर्ण करेंगे। इति ७ फाल्गुन, सन् १२७५।

शुभाकाङ्क्षिण्या

श्रीभगवतीदेव्या।

साहब विद्यासागर के घर गये। यह सुन कर विद्यासागर की माता बहुत प्रसन्न हुईं कि साहब बँगला समझ सकते हैं। भगवती देवी ने बहुत तरह का खाने का सामान अपने हाथ से बनाया और अपने हाथ से परस कर साहब को खिलाने बैठीं। साहब ने आकर बङ्गाल की प्रथा के अनुसार पृथ्वी पर झुक कर प्रणाम किया। भगवती देवी ने भी माता की तरह आशीर्वाद दिया। भगवती देवी ने पास बैठ कर साहब का खाने की विधि बतलाई और उसी तरह साहब ने भोजन किया। भगवती देवी की उदारता, स्नेह और ममता पर मुग्ध होकर हैरिसन साहब ने विद्यासागर से कहा—"यहाँ आकर, भोजन कर, और सबसे बढ कर आपकी माता के करुण स्वभाव और आदर से ऐसा सन्तुष्ट हुआ हूँ कि इस दिन की याद मुझको कभी न भूलेगी"।

बाते करते करते प्रसगवश हैरिसन साहब ने भगवती देवी से पूछा—"तुम्हारे कितने घड धन है ?"। भगवती देवी ने अपने चारो पुत्रों को दिखला कर कहा—"मेरे ये धन के चार घडे हैं। मुझे और धन की क्या जरूरत है"। यह ठीक उत्तर सुन कर हैरिसन साहब बहुत खुश हुए और उन्होंने विद्यासागर से कहा—"यह साधारण स्त्री नहीं हैं। ऐसी माता के बिना ऐसे लडके का होना कभी सम्भव नहीं"। हमारा भी यही खयाल है कि जैसे माता-पिता होते हैं वैसे ही पुत्र-कन्या होते हैं।

वीरसिंह गाँव की तरफ एक तरह का मिट्टी का दो-मजिला मकान बनाया जाता है। अनेक लोग इस घर का सौन्दर्य और शोभा बढाने के लिए बहुत रुपया खर्च करते हैं। विद्यासागर का जितना बडा परिवार था उतना ही बडा घर था। उस घर के बीच मे एक ऐसा ही सर्वाङ्ग-सुन्दर दो-मजिला घर बना हुआ था। इस घर की बनावट

और सौन्दर्य देख कर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने विद्यासागर से कहा—पक्का मकान भी इसके आगे शरमा जायगा।

भोजन कराने के बाद विद्यासागर की माता ने साहब से कहा—देखो बेटा, तुम जिस काम के लिए आये हो उसे खूब सावधान होकर करना। गरीब दुखी लोगों को तुमसे कुछ कष्ट न पहुँचे और वे तुमको अपना आदमी समझ कर सुखी हो सके। तुम सदा सबकी बाते मन लगा कर सुनना। लोगों का दुःख-कष्ट दूर करने के लिए प्राणपण से चेष्टा करना। तुम यहाँ इस तरह काम करना कि तुम्हारे चले जाने पर लोग हमेशा तुम्हारा नाम लिया करे। तुम यहाँ दुखी दीन के हितैषी होने की सदा चेष्टा करना"।

हैरिसन साहब जब तक मेदिनीपुर मे रहे तब तक उन्होंने भगवती देवी के उपदेश के अनुसार चलने की चेष्टा की। इसी से मेदिनीपुर के लोग आज भी भक्ति के साथ उनका नाम लेते हैं।

भगवती देवी की शान्तिमयी मूर्त्ति का सौन्दर्य दर्शनीय था। पाठको के देखने के लिए उनका एक चित्र इस पुस्तक मे दिया गया है। इस चित्र के बनने का एक छोटा सा इतिहास है। पाइकपाडा के राजभवन मे हडसन नामक एक फोटोग्राफर अँगरेज राजभवन का काम करने के लिए आया था। विद्यासागर सदा वहाँ आते जाते रहते थे। राजवंश के लोग गुरु के समान उन्हे मानते और उनका आदर करते थे। यह बात पहले ही लिखी जा चुकी है कि विद्यासागर का स्वरूप उस समय बहुत ही सुन्दर और मनोहर था। उस समय प्रतिभा की प्रभा से पूर्ण उस मुखमण्डल का चित्र लेने के लिए हडसन साहब ने बडी कोशिश की। पहले तो विद्यासागर राजी नहीं हुए। अन्त को साहब के बहुत अनुरोध करने पर लाचार होकर उन्हें राजी होना पडा। पुस्तक के आरम्भ में पाठकों ने उस चित्र के दर्शन



জননী ভগবতী দেবী।

जननी भगवती देवी।

और सौन्दर्य देख कर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने विद्यासागर से कहा—पक्का मकान भी इसके आगे शरमा जायगा।

भोजन कराने के बाद विद्यासागर की माता ने साहब से कहा—देखो बेटा, तुम जिस काम के लिए आये हो उसे खूब सावधान होकर करना। गरीब दुखी लोगो को तुमसे कुछ कष्ट न पहुँचे और वे तुमको अपना आदमी समझ कर सुखी हो सके। तुम सदा सबकी बाते मन लगा कर सुनना। लोगों का दुःख-कष्ट दूर करने के लिए प्राणपण से चेष्टा करना। तुम यहाँ इस तरह काम करना कि तुम्हारे चले जाने पर लोग हमेशा तुम्हारा नाम लिया करें। तुम यहाँ दुखी दीन के हितैषी होने की सदा चेष्टा करना"।

हैरिसन साहब जब तक मेदिनीपुर मे रहे तब तक उन्होने भगवती देवी के उपदेश के अनुसार चलने की चेष्टा की। इसी से मेदिनीपुर के लोग आज भी भक्ति के साथ उनका नाम लेते हैं।

भगवती देवी की शान्तिमयी मूर्त्ति का सौन्दर्य दर्शनीय था। पाठकों के देखने के लिए उनका एक चित्र इस पुस्तक में दिया गया है। इस चित्र के बनने का एक छोटा सा इतिहास है। पाइकपाडा के राजभवन मे हडसन नामक एक फोटोग्राफर अँगरेज राजभवन का काम करने के लिए आया था। विद्यासागर सदा वहाँ आते जाते रहते थे। राजवश के लोग गुरु के समान उन्हें मानते और उनका आदर करते थे। यह बात पहले ही लिखी जा चुकी है कि विद्यासागर का स्वरूप उस समय बहुत ही सुन्दर और मनोहर था। उस समय प्रतिभा की प्रभा से पूर्ण उस मुखमण्डल का चित्र लेने के लिए हडसन साहब ने बडी कोशिश की। पहले तो विद्यासागर राजी नहीं हुए। अन्त को साहब के बहुत अनुरोध करने पर लाचार होकर उन्हें राजी होना पडा। पुस्तक के आरम्भ में पाठकों ने उस चित्र के दर्शन

किये होंगे । हडसन साहब ने विद्यासागर का चित्र बना कर उसके पारिश्रमिक में कुछ भी लेना स्वीकार नहीं किया । विद्यासागर बहुत चेष्टा करके भी साहब को रुपया लेने पर राजी नहीं कर सके । राजवंश के लोग विद्यासागर का चित्र देख कर बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने हडसन साहब से पूछा कि "हमने इतना रुपया खर्च किया और पण्डितजी से तुमने कुछ भी नहीं लिया । फिर भी उनका चित्र हमारे चित्र से अच्छा क्यों बनाया ?" साहब ने इसके उत्तर में कहा—"रुपये के काम में और शौक के काम में बड़ा अन्तर होता है" । विद्यासागर ने देखा कि इस तरह रुपया लेने के लिए साहब को राजी करना कठिन काम है । साहब भी अपनी बात से टलने वाले नहीं हैं । तब सोच विचार कर इसके लिए विद्यासागर ने एक और युक्ति निकाली । वह जल्दी से पिता और माता को कलकत्ते ले आये और बहुत सा रुपया खर्च करके हडसन साहब से उनके चित्र बनवाये ।

माता-पिता को कलकत्ते लाकर विद्यासागर ने माता से कहा—माताजी, पाइकपाड़ा के राजभवन में एक बहुत अच्छा चित्र उतारने वाला आया है । मैं उससे तुम्हारा एक चित्र उतरवाना चाहता हूँ ।

माता—दुर, मेरी तसवीर उतार कर क्या होगा, छी-छी ।

पुत्र—तसवीर क्या तुम्हारे लिए उतरवाऊँगा ? वह तो मैं अपने लिए उतरवाना चाहता हूँ । एक तसवीर पास रहने से जब जहाँ रहूँगा, आपके दर्शन कर लिया करूँगा ।

माता—(इसका कुछ जवाब न देख कर बिलकुल इच्छा न रहने पर भी) अच्छा तो तेरी जो इच्छा हो वही कर ।

पुत्र—साहब को यहीं ले आऊँ या आप मेरे साथ वहाँ चलेंगी ?

माता—तसवीर उतारने वाला साहब है । ना भैया, मैं साहब के सामने तसवीर उतरवाने के लिए नहीं बैठ सकती ।

पुत्र—वह बहुत अच्छा आदमी है। उसने मेरी एक तसवीर उतारी है और कुछ भी नहीं लिया। वह मुझे बहुत चाहता है। उसके सामने बैठने मे कोई दोष नहीं है।

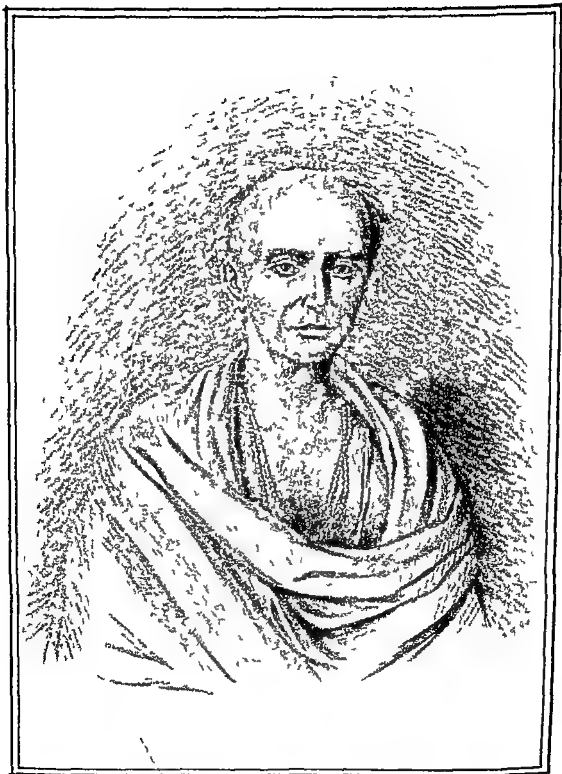
माता—अच्छा भाई तेरी जो इच्छा हो वही कर। लेकिन मैं और कहीं न जाऊँगी। यहीं जो चाहे सो कर।

पुत्र—वहाँ सब सामान ठीक किया रक्खा है। वह सब यहाँ लाने में असुविधा होगी और फोटो भी अच्छा न उतरेगा।

माता—तेरी बात को टालना तो बडा कठिन है। चल, तेरे साथ चलूँगी। निन्दा होगी तो तेरी ही होगी। लोग कहेंगे कि विद्यासागर तसवीर उतरवाने के लिए अपनी मा को पाइकपाडा से राजभवन में ले गये। खैर, तेरे साथ चलूँगी।

कई दिन जाकर विद्यासागर ने पिता और माता की तसवीर तैयार कराई। साहब को जितना देना चाहिए था उससे अधिक ही उन्हें दिया। दोनो चित्र तैयार करा कर विद्यासागर ने अपने कमरे में एक अच्छी जगह पर रख दिये। फरासडाँगा और स्वरमाटाड के मकानो के लिए माता-पिता की और दो दो तसवीर बनवाई थी। माता-पिता की जिन्दगी मे और उनके मरने के बाद भी वह जहाँ रहते थे वहाँ पिता और माता के चित्र को प्रणाम करके फिर जल ग्रहण करते थे। मैंने अपनी आँखो उनके इस नियम को देखा है।

विद्यासागर की माता मूर्त्ति-पूजा पर विशेष श्रद्धा नहीं रखती थीं। विद्यासागर ने खुद मुझसे कहा है कि "मेरी मा कहती थीं, जिस देवता को हम अपने हाथ से गढते हैं वह हमारा उद्धार कैसे कर सकता है? लकडी पत्थर, मिट्टी आदि के देवतो की पूजा करने से वैसा पुण्य नहीं होता जैसा मनुष्यो की सेवा करने से और उनका दुख दूर करने से"। इससे जान पडता है कि उनका धर्म-सम्बन्धी



শ্রীঠাকুরদাসবন্দ্যোপাধ্যায়—

শ্রীঠাকুরদাস বন্দ্যোপাধ্যায়।

पुत्र—वह बहुत अच्छा आदमी है। उसने मेरी एक तसवीर उतारी है और कुछ भी नहीं लिया। वह मुझे बहुत चाहता है। उसके सामने बैठने मे कोई दोष नहीं है।

माता—अच्छा भाई तेरी जो इच्छा हो वही कर। लेकिन मैं और कहीं न जाऊँगी। यहीं जो चाहे सो कर।

पुत्र—वहाँ सब सामान ठीक किया रक्खा है। वह सब यहाँ लाने मे असुविधा होगी और फोटो भी अच्छा न उतरेगा।

माता—तेरी बात को टालना तो बड़ा कठिन है। कल तेरे साथ चलूँगी। निन्दा होगी तो तेरी ही होगी। लोग कहेंगे कि विद्यासागर तसवीर उतरवाने के लिए अपनी मा को [illegible] राजभवन में ले गये। खैर, तेरे साथ चलूँगी।

कई दिन जाकर विद्यासागर ने पिता और माता की तसवीर तैयार कराई। साहब को जितना देना चाहिए था उससे अधिक ही उन्हें दिया। दोनो चित्र तैयार करा कर विद्यासागर ने अपने कमरे मे एक अच्छी जगह पर रख दिये। फरासडाँगा और करमाटाँड के मकानो के लिए माता-पिता की और दो दो तसवीरें बनवाई थीं। माता-पिता की जिन्दगी मे और उनके मरने के बाद भी वह जहाँ रहते थे वहाँ पिता और माता के चित्र को प्रणाम करके फिर अन्न ग्रहण करते थे। मैंने अपनी आँखों उनके इस नियम को देखा है।

विद्यासागर की माता मूर्त्ति-पूजा पर विशेष श्रद्धा नहीं रखती थीं। विद्यासागर ने खुद मुझसे कहा है कि "मेरी मा कहती थीं, जिस देवता को हम अपने हाथ से गढ़ते हैं वह हमारा उद्धार कैसे कर सकता है? लकड़ी, पत्थर, मिट्टी आदि के देवता की पूजा करने से वैसा पुण्य नहीं होता जैसा मनुष्यों का सत्कार करने मे और उनका दुख दूर करने मे"। इससे जान पड़ता है कि

ज्ञान बहुत ही स्वाभाविक, सरल और निर्मल था। इस बात को यहाँ पर लिख देने से विद्यासागर के आत्मीयो मे से किसी किसी ने मुझ पर कोप-कटाक्ष किया है। किन्तु यह बात मैंने खुद उनके मुँह से सुनी है। विद्यासागर के स्नेहपात्र श्रीयुत गोपालचन्द्र मुखोपाध्याय (नारायणचन्द्र के बडे दामाद) ने भी उनके मुख से यह बात सुनी है।

ठाकुरदास अपने छोटे लडके ईशानचन्द्र और बडे पोते नारायण-चन्द्र को बहुत प्यार करते थे। ये बालक उनके दुलारे थे, इस लिए उनके सिवा घर मे और किसी को न दबते थे। इन दोनो बालको को ठाकुरदास ने अपनी सेना बना रक्खा था।

इस तरह सब परिवार मजे में था। इसी समय ठाकुरदास ने स्वदेश, जन्मभूमि और अपना घर छोड कर काशीवास करने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने शम्भुचन्द्र के द्वारा ईश्वरचन्द्र के पास यह समाचार कहला भेजा। उस समय विद्यासागर अपने प्रिय मित्र राजा प्रतापचन्द्रसिंह की बीमारी के कारण मुरशिदाबाद के निकटवर्त्ती कान्दी गाँव मे थे। उनके तीसरे भाई शम्भुचन्द्र ने वहीं पत्र भेज कर पिता का इरादा जाहिर किया। विद्यासागर ने इस खबर से बहुत ही उदास होकर जो पत्र शम्भुचन्द्र को लिखा था उसका कुछ अंश यहाँ पर उद्धृत किया जाता है —

वह परदेश मे अकेले रहे, ऐसी सलाह मैं कभी नहीं दे सकता। वह ख़ुद सब सामान खरीद कर भोजन आदि बनावेंगे, इसमें उनको बडा कष्ट होगा। इससे बढ कर दुःख और खेद की बात और क्या हो सकती है कि जिसके पुत्र, पौत्र आदि इतना परिवार हो वह वृद्धावस्था मे अकेले परदेश में जाकर रहे। अतएव इस अवस्था में उनका अकेले काशीवास करना मैं कभी पसन्द नहीं कर सकता। ऐसा करेंगे तो उनको असीम कष्ट होगा। अगर उनकी सेवा-टहल के

लिए कोई साथ जा सके तो शायद मैं किसी अंश में सहमत भी हो सकूँ । किन्तु उनको अकेले भेज कर हमारा यहाँ सुख से रहना कभी उचित नहीं । और किसी की बात नहीं कह सकता, लेकिन मैं किसी तरह अपने मन को समझा नहीं सकता । अगर उनकी बिलकुल ही जाने की इच्छा हो तो इस तरह जल्दी करने से काम नहीं चल सकता । तुम उनके चरणों में मेरा प्रणाम जता कर कहना कि मैं दुःखित न होऊँ, इस ख्याल से उन्होंने अनेक बार अनेक कष्ट सहे हैं । इस बार भी इसी ख्याल से थोड़ा और कष्ट सहें । मैं शीघ्र घर आने की चेष्टा करूँगा । वहाँ पहुँच कर सलाह करके कर्त्तव्य निश्चित करूँगा । अगर वह अकस्मात् इस तरह गृहस्थी छोड़ जायँगे, ठीक बन्दोबस्त किये बिना काशी चले जायँगे, तो मुझे बड़ा दुःख होगा । जो कुछ हो, जिस तरह हो सके, उन्हें इस काम से अभी रोकना और उनके रुक जाने पर उसकी सूचना शीघ्र कान्दी में मेरे पास भेजना । जब तक उनके रुकने की सूचना नहीं मिलेगी तब तक मेरी चिन्ता नहीं मिटेगी । दो चार दिन अभी मैं यहाँ से जा न सकूँगा, नहीं तो आज ही मैं यहां से चल देता । अस्तु । जिस तरह हो, किसी तरह हो, उन्हें रोकना । अगर वह किसी तरह न रुके तो इस रविवार के पहले ही मुझे खबर देना । संवाद पाकर, जिस तरह होगा, मैं घर आऊँगा । मैं शरीर से अच्छा हूँ । इति ३० अगहन ।

शुभाकांक्षिण —

श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मण: ।

शम्भुचन्द्र विद्यारत्न का कहना है कि पिता ठाकुरदास के इस तरह काशीवास के लिए तैयार होजाने का एक विशेष कारण था । उन्होंने एक दिन स्वप्न देखा कि बहुत शीघ्र ही विद्यासागर पर तरह तरह की विपत्तियाँ आ पड़ेंगी । वीरसिंह का घर उजड़ कर मसान

बन जायगा। भाइयों और बन्धुओं से ईश्वरचन्द्र की अनबन हो जायगी। आत्मीय-स्वजन उनके विरुद्ध हो जायँगे। इन सब बातों के लिए चिन्ता में पड कर ठाकुरदास ने सोचा कि इस अच्छी अवस्था में ही घर छोड कर काशी चलदेना चाहिए। काशी में जाकर सुख से शेष जीवन बिताना श्रेयस्कर होगा। वह शीघ्र ही घर छोड कर काशी जाने के लिए व्याकुल हो उठे। यही कारण था कि विद्यासागर के अनेक यत्न करने, हाथ-पैर जोडने और रोने पर भी उनका इरादा नहीं बदला। विद्यासागर ने "बोधोदय" में लिखा है कि स्वप्न सब सच नहीं होते, वे अमूलक अलीक चिन्ता मात्र हैं। किन्तु उनके पिता का स्वप्न अधिक अंश में सच्चा हुआ। उनके गाँव का मकान आग लगने से उजड़ कर मसान होगया। आत्मीय और बन्धुओं से बिगाड और विछोह भी खूब हुआ।

विद्यासागर का पत्र पाकर शम्भुचन्द्र ने पिता को सुनाया। तो भी घर छोड कर काशीवास की उत्सुकता वैसी ही बनी रही। शम्भुचन्द्र ने यह हाल फिर विद्यासागर को लिखा। विद्यासागर सब काम-काज छोड कर पिता के पास चल दिये। कुछ दूर पालकी पर और कुछ दूर पैदल चल कर विद्यासागर घर पहुँचे। पिता का इरादा बदलने की उन्होंने बहुत कुछ चेष्टा की, बहुत कुछ अनुनय-विनय किया, रोये-धोये भी, लेकिन ठाकुरदास अपने इरादे पर अटल बने रहे। अन्त को निरुपाय होकर विद्यासागर ने नारायणचन्द्र को लगा दिया। ठाकुरदास को पोते पर बडा स्नेह था। पोते के रोने-धोने और रूठ चलने के लिए मचलने पर भी कुछ न हुआ।

जब ठाकुरदास किसी तरह घर में रहने पर राजी न हुए और विद्यासागर के साथ कलकत्ते चलने के लिए तैयार होगये तब विद्यासागर ने लाचार होकर, उनके साथ कलकत्ते की यात्रा कर दी। रास्ते

मे और कलकत्ते में भी बहुत अनुरोध किया, लेकिन ठाकुरदास ने न माना । तब सुखपूर्वक रहन का प्रबन्ध करके विद्यासागर ने उन्हें काशी भेज दिया । ठाकुरदास ने जीवन का शेष समय काशी मे ही विताया और अन्त को वही उनकी मुक्ति हो गई । पिता के चले जाने के बाद विद्यासागर के हृदय मे एक स्थायी विषाद की रेखा सी अंकित होगई । वह प्रायः उदास से बने रहते थे । प्राय बूढे पिता के अकेले उतनी दूर पर रहने का खयाल करके अकेले आसू बहाया करते थे । पिता की खबर लेने के लिए बीच बीच मे कभी कभी वह खुद जाते थे । कभी कभी किसी आदमी को भेज देते थे । एक घडी के लिए भी कभी उन्होंने माता पिता को सुखी रखने मे कसर नहीं रक्खी ।

वीरसिंह मे रहने के समय ठाकुरदास की माता दुर्गादेवी की मृत्यु हुई । मरने के पहले मालिगा-गाँव मे गंगा-तट पर उन्हें ले आये थे । विद्यासागर ने दादी के श्राद्ध के अवसर पर बहुत रुपया खर्च करके पिता को सन्तुष्ट किया था । विद्यासागर विधवाविवाह के हामी थे । इस कारण वह पहले ही से सावधान थे कि दादी के श्राद्ध मे किसी तरह का विघ्न न हो । कुछ लोगो ने शत्रुता की भी थी । परन्तु शम्भुचन्द्र विद्यारत्न लिखते हैं कि "श्राद्ध के दिन अनेक अध्यापक पण्डित आये थे । बरदा-परगना के प्राय सब ब्राह्मण, नातेदार, इष्ट-मित्र सब मिला कर तीन हजार के लगभग ब्राह्मणो ने फलाहार किया था । उसके दूसरे दिन भी दो हजार के लगभग ब्राह्मणो ने अन्नभोजन किया था । इससे पिताजी बहुत प्रसन्न हुए थे । दूसरे साल सपिण्डन के दिन भी दादा ने पिताजी को प्रसन्न करने के लिए काफी रुपया दिया था । अध्यापको को निमन्त्रण देने के लिए पहले जो श्लोक बनाया गया था वह कठिन था । विद्यासागर ने यह श्लोक खुद बना कर निमन्त्रण भेजा था—

पौषस्य पञ्चविंशाहे रवौ मातु सपिण्डनम्।
कृपया साध्यता धीरैर्वीरसिंहसमागतै ॥

सब परिवार के एकत्र रहने मे अप्रीति और अशान्ति के सिवा कुछ लाभ न समझ कर विद्यासागर ने सब भाइयो के लिए अलग अलग घर वनवा दिये थे। विद्यासागर की समझ मे सब भाइयों के एकत्र रह कर लडने झगडने की अपेक्षा उनका अलग अलग रह कर परस्पर सहानुभूति और आत्मीयता वनाये रखना अच्छा था। इसी से उन्होने अशान्ति की जगह शान्ति की स्थापना करने की इच्छा से सब भाइयो को जुदा कर दिया। उन्होने गरीव और असहाय विद्यार्थियो के लिए भी अलग व्यवस्था कर दी थी। किन्तु खेद इसी वात का है कि वहुत सा रुपया खर्च करके भी वह किसी तरह परिवार में शान्ति नहीं स्थापित कर सके।

इस प्रकार जव तरह तरह की पारिवारिक अशान्तियो से उनकी प्रसन्नता नष्ट हो रही थी उसी समय सन् १८६६ ई० के चैत महीने मे आधी रात को आग लग जाने से वीरसिंह का घर जलगया। आग लगने की खवर कलकत्ते मे पहुँचते ही विद्यासागर गाँव में आये। सब के लिए सव तरह की व्यवस्था करके विद्यासागर ने माता को कलकत्ते ले चलना चाहा। लेकिन उन्होंने ग़रीव निराश्रय विद्यार्थी बालको की विपत्ति और क्लेश का उल्लेख करके, परोसियो के दु ख कष्ट की दोहाई देकर और अतिथि-अभ्यागतो की सेवा की जरूरत दिखा कर कलकत्ते जाने के लिए 'नाहीं' कर दी।

घर जलने के वाद जव विद्यासागर गाँव गये थे तव किसी किसी ने उनसे पक्का मकान वनवाने के लिए अनुरोध किया था। उन्होंने स्वाभाविक मद-मुसकान के साथ कहा—"गरीव ब्राह्मण के लडके

का पक्का मकान, लोग सुन कर हँसेंगे। किसी तरह कहीं पड रहने के लिए जगह भर चाहिए।"

वीरसिंह मे माता और अन्यान्य सब लोगों के रहने लायक घर आदि बनवाने मे जो कुछ खर्च पडा वह विद्यासागर ने दिया। किन्तु वह दो मंजिला घर, जिसकी हैरिसन साहब ने प्रशंसा की थी, फिर नहीं बन सका। उस घर की शोभा और सौन्दर्य का चिह्न एक टूटा खँडहर अब भी वहाँ मौजूद है।

विद्यासागर के माता पिता सीधे सादे आदमी थे। वे परिश्रम करके दूसरे के उपकार और सेवा में सब तरह की असुविधायें सह सकते थे। आभूषण वगैरह उन्हें नापसन्द थे। वे गहने आदि को देश में चोरों और शत्रुओं के बढाने का प्रधान उपाय समझते थे। वे इस कारण गहने वगैरह के विरोधी थे कि गहने होने से अहङ्कार बढता है और गरीबों के प्रति उपेक्षा का भाव उत्पन्न होता है। इसी से घर में बहुओं वगैरह के भी अधिक आभूषण नहीं थे। विलासिता बढने के खयाल से घर के सब लोग मोटे कपडे पहनते थे। कलकत्ते मे कभी महीन कपडे आजाते थे तो उनको वे नहीं रुचते थे।

विद्यासागरजी औरों के लिए सब तरह के सुख-भोग का सामान कर देने के वास्ते सदा तैयार रहते थे, लेकिन उन्होंने खुद माता-पिता की रुचि के अनुसार चलना ही पसन्द किया। उन्होंने कभी शौक की चीज खाने-पीने या पहनने की अभिलाषा को अपने हृदय मे स्थान नहीं दिया। औरों के लिए अच्छा कपडा, अच्छी खाने-पीने की चीज, छाँट छाँट कर बाजार से लाते थे, किन्तु आप मारकीन की धोती, मोटी चादर, स्लीपर और साधारण भोजन से ही सदा सन्तुष्ट रहते थे। उन्होंने जिन्दगी भर में जितना रुपया कमाया उससे दूसरा आदमी धनी और वैभवशाली बन सकता था,

लेकिन उन्होंने अपनी कमाई का सारा रुपया गरीबों की सहायता में लगा कर आप, बाप-दादे की तरह, गरीब की तरह, गुजर किया। यही विद्यासागर के व्यक्तिगत जीवन की विशेषता है। उन्होंने एक दिन के लिए भी कभी रईसों की रहन-सहन का अनुकरण नहीं किया। वह गरीब समाज में गरीब भाई की तरह सदा रहे।

एक बार स्कूल का मालोचना करने के लिए हुगली जिले के अन्तर्गत एक गांव में विद्यासागर को जाना पड़ा। इसके पहले ही उस गांव के बालक, जवान, बूढ़े सब विद्यासागर के नाम को अच्छी तरह सुन चुके थे। गांव की लड़की, जवान और बूढ़ी औरतें, सब विद्यासागर के दर्शन पाने के लिए उत्कण्ठित थीं। दस बजे के पहले ही स्कूल के आस पास रहनेवाले गृहस्थों के घरों में औरतों के ठट बँध गये। घरों की खिड़कियों में, दरवाजों के पास, छतों के ऊपर, यहाँ तक कि बूढ़ी औरतें राह तक में खड़ी थीं। विद्यासागर के आने में बहुत देर होगई। छत पर और राह में खड़ी हुई स्त्रियों को घाम से बड़ा क्लेश मिल रहा था। विद्यासागर को देखने की लालसा ने सूर्य के तीक्ष्ण ताप को भी परास्त कर दिया। इसी समय विद्यासागर के आने का शोर मच गया। चारों ओर उत्साह और आनन्द छा गया। स्कूली लड़के अपनी अपनी जगह पर शान्त भाव से बैठने लगे। बाहर स्कूल के सञ्चालक लोग विद्यासागर की अभ्यर्थना के लिए खड़े थे। औरतें जो जहां थीं वह वहीं से घूँघट जरा जरा खोले विद्यासागर को देखने की चेष्टा करने लगीं। विद्यासागर आये, सामने से निकल भी गये, पर औरतों में से किसी ने उनको न देख पाया। उनको विद्यासागर के आने का विश्वास ही न हुआ। स्त्रियों ने क्यों नहीं विद्यासागर को देख पाया और उन्हें विद्यासागर के आने का विश्वास क्यों नहीं हुआ, इस प्रश्न का उत्तर केवल इतना ही है कि विद्यासागर बहुत ही सीधे-

साद ढग मे थे। उनको पहचानने लिए उनमे काई विशेषता नहीं थी। एक वृद्धा स्त्री ने आगे बढ कर, विद्यासागर जिस मण्डली मे थे उसके आगे के आदमी से पूछा—"क्यों जी विद्यासागर कहाँ हैं ? वह क्या नहीं आये ?" उस मण्डली के एक आदमी ने विद्यासागर की ओर इशारा करके कहा—'यही विद्यासागर महाशय हैं।" वृद्धा आँखें फाड कर थोडी देर तक विद्यासागर की तरफ देखती रही। उसके बाद उसने कहा—"यही मोटी धोती मोटी चादर वाले विद्यासागर हैं! इन्हीं को देखने के लिए हम लोग घाम मे तप गई। न गाडी-घोडा है, न घडी-छडी है, न चोगा-चपकन है।" विद्यासागर गरीब-दुखी लोगों के समान ही रहते थे।

चौर-पाई-निवासी मोचीराम बन्द्योपाध्याय नाम के एक आदमी ने मनोमोहिनी नाम की एक विधवा से ब्याह करने की इच्छा से कलकत्ते जाकर विद्यासागर की शरण ली थी। विद्यासागर यह विवाह कराने के लिए अपने घर वीरसिंह-गाव गये। उनके घर पहुँचने पर चौरपाई-गाँव के रहनेवाले हालदार महाशया और अन्यान्य प्रतिष्ठित पुरुषो ने विद्यासागर से मिलकर यह अनुरोध किया कि आप इस काम मे शरीक न हो। विद्यासागर ऐसे आदमी न थे कि एक आदमी से सहायता देने का वादा करके सहज ही उससे विमुख हो जाते। किन्तु जिन लोगो ने पहले विधवा-विवाहो मे अनेक बार सहायता की थी ऐसे बहुत से लोगो ने अनेक कारण दिखा कर विद्यासागर से इस काम मे अलग रहने के लिए बहुत कुछ कहा सुना। तब लाचार होकर विद्यासागर ने यह स्वीकार कर लिया कि मैं इस विवाह से कोई सम्बन्ध नहीं रक्खूँगा। सब लोग प्रसन्न होकर अपने अपने घर चले गये। इस सम्बन्ध मे शम्भुचन्द्र विद्यारत्न लिखते हैं—'वीरसिंह के कई एक प्राचीन पुरुषो— हमारे मँझले भाई दीनबन्धु न्याय-

रत्न, राधा-नगर-निवासी कैलासचन्द्र मिश्र आदि—ने उन्हे (वर और कन्या को) आश्रय देकर (विद्यासागर के) घर के निकट ही दूसरे एक आदमी के घर में उनका व्याह करा दिया।' इस पर हमारा वक्तव्य यह है कि "वीरसिंह के कई एक प्राचीन पुरुष" क्या एक दीनबन्धु न्यायरत्न ही थे ? विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ है कि शम्भुचन्द्रविद्यारत्न ही उस मण्डली के मुखिया थे। विद्यासागर की इच्छा के बिना उनके घर के पास ही मोचीराम वन्द्योपाध्याय का विवाह विद्यारत्न के सिवा और कोई करा ही नहीं सकता था। विद्यासागर की इच्छा के विरुद्ध ऐसा साहस करना और किसी के लिए सम्भव नहीं था। विद्यासागर अपने भाई विद्यारत्न को बहुत चाहते थे, इसीसे वह कुछ नहीं बोले। अगर ऐसा न होता तो यह काम सहज मे वहाँ पर हो ही नहीं सकता था। मैंने वीरसिंह जाकर जाँच करके यह पता लगाया है कि शम्भुचन्द्र ने ही उद्योग करके यह व्याह कराया था। स्वय उद्योगी लोगों के मुखिया होकर उसका दोष मरे हुए भाई के सिर मढना विद्यासागर के भाई के लिए उचित नहीं कहा जा सकता। विद्यारत्न महाशय ने निजरचित विद्यासागर की जीवनी मे लिखा है कि "इस विवाह के होने मे बडे भाई को आन्तरिक कष्ट हुआ था। उन्होंने कहा कि तुम लोगों ने मुझे मिथ्यावादी बनाने के लिए मेरे ही घर के पास व्याह कराया"।

इस घटना से विद्यासागर को ऐसा दारुण दु ख हुआ कि उस रात को उन्होंने कुछ भोजन नहीं किया और वह दूसरे दिन भी विना भोजन किये प्यारी जन्मभूमि और घर को हमेशा के लिए छोड कर कलकत्ते को चल दिये। आते समय अपने भाइयों और गाँव वालो से उन्होंने कह दिया कि "तुमने मुझे देशत्यागी कर दिया !"। गदाधर पाल, गोपीनाथसिंह आदि से शम्भुचन्द्र ने उपस्थित होने के लिए

विशेष अनुरोध किया था, परन्तु वे वहाँ नहीं गये, इससे विद्यासागर को कुछ सन्तोष हुआ था।

शम्भुचन्द्र ने मेरे इस लेख के प्रतिवाद में लिखा था कि "मैं विद्यासागर के बहुत ही अनुगत था + + + बड़े भाई के नाराज होने के भय से मैं इस काम में शरीक नहीं हुआ और न विवाह-मण्डप में ही गया"। इस बारे में मुझे अधिक कुछ लिखना नहीं है। गोपीनाथसिंह अभी तक जीते हैं। उन्होंने खुद मुझसे यह बात कही है कि शम्भुचन्द्र के उद्योग से ही यह विवाह हुआ था। उनके कहने के अलावा एक और सबसे बढ़ कर प्रमाण नीचे दिया जाता है—

श्री नमः सर्वमङ्गलायै।

बँ० सन् १३०२, १३ भाद्र।

सविनयनमस्कारमिदं निवेदनम्।

महाशय ने पूछा है कि "हमारे पूज्यपाद चाचा श्रीयुत शम्भुचन्द्र विद्यारत्न तुम्हारे विवाह में शरीक थे या नहीं?"। इसके उत्तर में धर्म को साक्षी देकर मैं कहता हूँ कि केवल उन्हीं के यत्न और अनुग्रह से यह काम हुआ था। उन्होंने इस काम के लिए जैसा क्लेश उठाया था वह मुझे सदा स्मरण रहेगा। इति—

वशंवद—

श्रीमोचीराम शर्म्मा।

स्वदेशवत्सल और जन्मभूमि के सुपुत्र ईश्वरचन्द्र को घर से निकाल कर, सदा के लिए देशत्यागी बना कर विद्यारत्न आदि ने वीरसिंह गाँव का जो अनिष्ट किया वह कहने लायक नहीं है। जिस दिन उदास होकर रोते रोते जननी जन्मभूमि की गोद सूनी करके उन्होंने घर छोड़ा था उसी दिन वीरसिंह के भाग फूट गये थे। इस बुरे काम के करने वालों ने विद्यासागर के हृदय पर जो चोट पहुँचाई थी वह सदा

वैसी ही बनी रही । उसका कुछ आभास विद्यासागर के कथन ही से पाठकों को मालूम हो जायगा । अन्त समय, कलकत्ते में रहने के समय, जब उन्हें वीरसिंह के ग्राम्य दृश्यों का स्मरण हो आता था तब वह बालकों की तरह रोने लगते थे । उनकी यह दशा मैंने खुद अपनी आँखों से देखी है । इसी समय एक बार "वीरसिंह-जननी का पत्र" नाम की एक छोटी सी पुस्तक विद्यासागर को मिली । मुझे पीछे से मालूम पड़ा है कि वह पुस्तक ईश्वरचन्द्र के पुत्र नारायणचन्द्र की लिखी हुई थी । उस पुस्तक में जो करुण भाषा लिखी हुई थी उसे पढ़ कर विद्यासागर का हृदय भर आया । बहुत देर तक रोकर उन्होंने घर जाने का इरादा जाहिर किया । घर की मरम्मत भी शुरू हो गई । किन्तु धीरे धीरे रोग बढ़ जाने के कारण उनकी प्रतिज्ञा खण्डित नहीं हुई—वह जन्मभूमि के दर्शन नहीं कर सके ।

इस प्रकार अनेक प्रकार के गृहस्थी के झगड़ों से उनका हृदय विषाद के विष से जर्जर हो गया । उनको संसार के सुखों से वैराग्य हो गया । वह प्रायः अकेले एकान्त में ही रहने लगे । इसके प्रमाण में नीचे उनके कुछ सम्पूर्ण पत्र और कुछ पत्रों के अंश यहां पर उद्धृत किये जाते हैं —

श्रीश्रीहरि शरणम् ।

पूज्यपाद श्रीमन्मातृदेवी श्रीचरणारविन्देषु—

प्रणतिपूर्वक निवेदनमिदम् ।

अनेक कारणों से मुझे वैराग्य सा हो गया है । घड़ी भर के लिए भी संसार के किसी काम में शरीक होने की या किसी के साथ कोई सम्बन्ध रखने की इच्छा मुझे नहीं है । खास कर इस समय मेरे मन और शरीर की ऐसी अवस्था हो रही है कि अगर मैं पहले की तरह अनेक कामों में लगा रहूँ तो फिर मैं अधिक

दिन तक जी नहीं सकता। इसलिए मैंने निश्चय कर लिया है कि जहाँ तक हो सकेगा निश्चिन्त होकर, एकान्त में शेष जीवन को बिताऊँगा। इसलिए आपके चरणों में प्रणाम करके सदा के लिए आपसे विदा होता हूँ। माता के आगे पुत्र का पग पग पर अपराधी होना सर्वथा सम्भव है। मैं इस जीवन में न जाने कितने बार कितनी बातों के लिए आपके निकट अपराधी बन चुका हूँ। हाथ जोड़ कर विनीत भाव से प्रार्थना करता हूँ कि कृपा करके इस अधम पुत्र के अपराध को क्षमा करना। आपके खर्च के लिए जो ३०) रुपये हर महीने भेजता हूँ वे मेरी जिन्दगी भर बराबर पहुँचते रहेंगे। किसी कारण से यह सहायता बन्द नहीं हो सकती। इसके सिवा आपके पिता और माता के कृत्य के लिए २००) रु० हर साल भेजता रहूँगा। अगर कभी किसी काम के लिए कुछ कहने की जरूरत हो तो पत्र लिख कर उसकी सूचना दीजिएगा। मैंने अनेक बार आपकी सेवा में निवेदन किया है और आज भी निवेदन कर रहा हूँ कि अगर आप मेरे पास यहाँ रहना स्वीकार करें तो मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा। आपके चरणों की सेवा करके कृतकृत्य हो जाऊँगा। इति १२ अगहन, बँगला सन् १२७६।

भृत्य श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मणः।

श्रीश्रीहरि शरणम्।

गुणालङ्कृता श्रीमती दिनमयी देवी-

कल्याणनिलयासु—

शुभाशीर्वादपूर्वकमावेदनमिदम्।

मेरी संसार का सुख भोगने की इच्छा पूर्ण हो गई। अब मुझको उसकी रत्ती भर की चाह नहीं है। खास कर इस समय

शरीर और मन की हालत जैसी है + + + । इस समय तुमसे जन्म भर के लिए विदा होता हूँ और विनीत भाव से प्रार्थना करता हूँ कि यदि कभी मैंने कोई दोष या असन्तोष का कार्य्य किया हो तो दया करके मुझे क्षमा करना । तुम्हारा पुत्र सयाना हुआ है, अब वह तुम लोगो की देख रेख करेगा । तुम्हारे खर्च के लिए जो व्यवस्था कर दी है उससे, विचारपूर्वक चलने से, तुम लोगो का काम मजे मे चलता रहेगा । अन्त को मेरा विशेष अनुरोध यह है कि सब कामो में धैर्य्य धारण करके चलना, नहीं तो तुम खुद क्लेश पाओगी और तुम्हारे वैसा करने से मुझे भी बहुत कष्ट होगा । इति १२ अगहन बँ० सन् १२७६ ।

शुभाकांक्षिण

ईश्वरचन्द्रशर्म्मण ।

विद्यासागर ने इसी तरह दीनबन्धु न्यायरत्न, शम्भुचन्द्र विद्यारत्न और ईशानचन्द्र, इन तीनो भाइयो को भी एक एक पत्र लिखा था । इन पत्रों के सम्पूर्ण अश का उल्लेख निष्प्रयोजन समझ कर केवल खास खास अशो का उल्लेख यहाँ पर किया जाता है । मँझले भाई दीनबन्धु को लिखा था—

"+ + + अब तुम लोगो से जन्म भर के लिए विदा होता हूँ । यदि कभी कोई दोष या असन्तोष का काम मैंने किया हो तो दया करके मुझे क्षमा करना । यदि कभी कोई बात मुझे जताना आवश्यक जान पडे तो पत्र लिख कर मुझे जताना । गृहस्थी के खर्च के लिए मासिक सहायता लेना पसन्द करो तो मैं हर महीने ७०) रु० तुमको भेज सकता हूँ । इकट्ठा अधिक देना मेरी शक्ति के बाहर है" ।

तीसरे भाई शम्भुचन्द्र को लिखा था —

"+ + + अब तुम लोगो से + + + । तुम्हारी गृहस्थी के खर्च के लिए जो मैं सहायता करता हूँ उसे जब तक मैं दे सकूँगा और तुम लेना चाहोगे तब तक मैं करता रहूँगा। किसी तरह इसमें व्यतिक्रम न होगा। + + + अन्त को मेरा विशेष अनुरोध यह है कि यथासम्भव सबके साथ और खास कर परासियो के साथ मेल रख कर चलना। ऐसा करोगे तो मजे में निर्वाह होता चला जायगा"।

छोटे भाई ईशानचन्द्र को अन्य पत्रों की तरह सब लिख कर लिखा था —

"यदि गृहस्थी के खर्च के लिए सहायता लेना पसन्द करो तो मैं हर महीने ३०) रु० भेज सकता हूँ। तुमने जो रोजगार किया है उसके लिए कुछ सहायता कर चुका हूँ। उससे अधिक सहायता करना असम्भव है। क्योंकि एकमुश्त अधिक रुपया देने में मैं असमर्थ हूँ"।

इसके बाद वीरसिंहनिवासी स्नेहपात्र गदाधर पाल को जो उन्होंने पत्र लिखा था वह यह है —

नानागुणालङ्कृत श्रीयुत गदाधर पाल भाईजी
कल्याणभाजनेषु—
शुभाशीर्वादपूर्वकमावेदनमिदम्।

अनेक कारणों से मैंने यह निश्चय किया है कि अब मैं वीरसिंह में न आऊँगा। तुम गाँव के मुखिया हो, इस कारण तुम्हारे द्वारा मैं गाँव के सब लोगो से जन्म भर के लिए विदा होता हूँ। सब को यथायोग्य नमस्कार और आशीर्वाद करके विनीत भाव से यह प्रार्थना करता हूँ कि यदि मुझसे कभी कोई अपराध बन पड़ा हो तो उसे दया-पूर्वक क्षमा करना। सर्व-साधारण के लिए

गाँव में जो अस्पताल और स्कूल है और गाँव के गरीब लाचार लोगों को जो महीने महीने कुछ सहायता मिलती है उसे भरसक मैं बन्द न होने दूँगा। कुछ दिनों से मेरे मन और शरीर की हालत बहुत खराब होती जाती है। अधिक दिन जीने की अब आशा नहीं की जा सकती। जब तक जियूँगा तक तुम लोगों की कुशलकामना करता रहूँगा। इति १२ अगहन, बँ० सन् १२७६।

शुभाकाङ्क्षिण —

श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मण।

श्रीश्रीहरि शरणम्।

पूज्यपाद श्रीमत् पितृदेव श्रीचरणारविन्देषु—

प्रणतिपूर्वक निवेदनमिदम्—

अनेक कारणों से मुझे वैराग्य सा हो गया है। मुझे अब घडी भर के लिए भी किसी गृहस्थी या ससार के झझट में पडने अथवा किसी के साथ कुछ सम्बन्ध रखने की इच्छा नहीं है। खास कर इस समय मेरे मन और शरीर की जैसी हालत है उसके देखते मुझे जान पडता है कि अगर मैं गृहस्थी के झझटों में पडूँगा तो अधिक दिन तक न जी सकूँगा। इसलिए मैंने निश्चय कर लिया है कि जहाँ तक होगा निश्चिन्त भाव से एकान्त में बचे हुए जीवन के दिन बिताऊँगा। यही सङ्कल्प करके श्रीमती मातृदेवी आदि को जो पत्र लिखे हैं उनकी एक एक कापी सेवा में भेजता हूँ। जी चाहे तो देख लीजिएगा।

गृहस्थी या ससार के मामलों में मुझ सा अभागा मुझको नहीं देख पडता। सबको सन्तुष्ट रखने के लिए मैंने प्राणपण से यत्न किया, किन्तु अन्त को मुझे मालूम हुआ कि उसमें मुझे कुछ भी सफलता नहीं प्राप्त हुई। जो सबको सन्तुष्ट रखना चाहता है वह किसी को

। सन्तुष्ट नहीं रख सकता। यह प्राचीनप्रवाद झूठ नहीं है। हृश्य आदमी जिन लोगो से दया और स्नेह की अभिलाषा करता है उनमें से एक के भी हृदय मे मेरे ऊपर दया और स्नेह का लेश भी नहीं है। इस बारे मे मुझे रत्ती भर सन्देह नहीं है। ऐसी अवस्था मे ससार के झगड़े मोल लेना और उनमें बराबर क्लेश उठाना सरासर मूर्खता का काम है। जिन कारणो से मुझे ऐसी धारणा हुई है उनका उल्लेख करना यहाँ पर अनावश्यक है।

अब आप की सेवा में मेरा वक्तव्य यही है कि पिता के निकट पुत्र का पग पग पर अपराधी होना सर्वथा सम्भव है। इस कारण आपके निकट न-जाने कितनी बार मैं अपराधी हो चुका होऊँगा। उसके लिए हाथ जोड कर कातर वचनो से श्रीचरणो मे प्रार्थना करता हूँ कि कृपा करके इस अधम सन्तान के सब अपराधों को क्षमा कीजिएगा।

इस समय मुझ पर ऋण बहुत हो गया है। ऋण चुकाये बिना बस्ती मे रहना छोड नहीं सकता। इस समय ऋण से छुटकारा पाने के लिए यथोचित यत्न और परिश्रम कर रहा हूँ। ऋण चुक जाने पर किसी एकान्त स्थान मे रहने की इच्छा है। + + + आपके खर्च के लिए जो भेजा जाता है वह बराबर पहुँचता रहेगा। इति २५ अगहन।

भृत्य श्रीईश्वरचन्द्रशर्मण।

विद्यासागर की जवानी का सुन्दर चित्र देखनेवालो में से कई एक ने उनके अधिक अवस्था के चित्र में मुखमण्डल पर गहरे विषाद की छाया देख कर पूछा कि "महाशय, अतुल-प्रतिभाशाली और कमनीयता की कान्ति से पूर्ण यह सौम्य मूर्त्ति ऐसी काली क्यों पड़ गई" ? इसका भी उत्तर ये पत्र दे रहे हैं। जिन्होंने स्वदेश की अनेक प्रकार की



भी सन्तुष्ट नहीं रख सकता। यह प्राचीनप्रवाद झूठ नहीं है। गृहस्थ आदमी जिन लोगों से दया और स्नेह की अभिलाषा करता है उनमें से एक के भी हृदय में मेरे ऊपर दया और स्नेह का लेश भी नहीं है। इस बारे में मुझे रत्ती भर सन्देह नहीं है। ऐसी अवस्था में संसार के झगड़े मोल लेना और उनसे बराबर क्लेश उठाना सरासर मूर्खता का काम है। जिन कारणों से मुझे ऐसी धारणा हुई है उनका उल्लेख करना यहां पर अनावश्यक है।

अब आप की सेवा में मेरा वक्तव्य यही है कि पिता के निकट पुत्र का पग पग पर अपराधी होना सर्वथा सम्भव है। इस कारण आपके निकट न-जाने कितनी बार मैं अपराधी [illegible] होऊँगा। उनके लिए हाथ जोड़ कर कातर वचनों से श्री[illegible] प्रार्थना करता हूँ कि कृपा करके इस अधम सन्तान के सब [illegible] को क्षमा कीजिएगा।

इस समय मुझ पर ऋण बहुत हो गया है। [illegible] बस्ती में रहना छोड़ नहीं सकता। इस समय ऋण [illegible] के लिए यथोचित यत्न और परिश्रम कर रहा हूँ। [illegible] पर किसी एकान्त स्थान में रहने की इच्छा है। [illegible] खर्च के लिए जो भेजा जाता है वह बराबर [illegible]। [illegible] २५ अगहन।

भृत्य [illegible]।

विद्यासागर की जवानी का सुन्दर चित्र [illegible] उनके अधिक अवस्था के चित्र में मुखमण्डल [illegible] ाया देख कर पूछा कि "महाशय, अतुल-प्रति[illegible] ी कान्ति से पूर्ण यह सौम्य मूर्त्ति ऐसी [illegible] ी उत्तर ये पत्र दे रहे हैं। जिन्होंने [illegible]

भलाइयो मे ही अपने जीवन को लगा दिया, परन्तु उसके पलटे मे धोखे और दगाबाजी के सिवा कुछ न पाया, उनको शान्ति कहाँ मिल सकती है ? उनके परिवार के लोग अगर कुछ अनुकूल होते, उनके मन का काम करते, तो भी शायद वह संसार मे कुछ सुख या शान्ति पा सकते। लेकिन ऐसा भी नहीं हुआ। वह कर्त्तव्य के जोश से ससार की मरुभूमि पर स्वार्थपरता की गर्म बालू और कंकडो के ऊपर इधर उधर दौड लगाते रहे। वह दीन-दुखी के पास बैठ कर आँसू बहाते रहे, और जब ससार की दगाबाजी के हाथ से सताये जाकर प्रिय-परिवार की गोद मे शान्ति की आशा से दौडे गये तभी उनको उसमे रुकावट देख पडी। उस समय उनका वही हाल हुआ जो पानी के भ्रम से घाम के पीछे दौडने वाले प्यासे मृग का होता है। तब क्षोभ के मारे उदास शून्य हृदय पकड कर वह जल रहे ससार के मैदान मे बैठ गये। ऐसी ही अवस्था मे उन्होने माता-पिता स्त्री-भाई और इष्ट-मित्रो के पास ऊपर लिखे पत्रो के द्वारा सदा के लिए विदा होने की सूचना दी थी। किन्तु उस समय भी उन्होने अपने स्वाभाविक गुण विनय को नहीं छोडा।

विद्यासागर ने जिस दारुण दुःख की जलन मे ये पत्र लिखे थे उससे उनकी चित्त की ग्लानि का ठीक ठीक अनुमान और अनुभव उनके पिता के सिवा और कोई नहीं कर सकता। पिता के पत्र के प्रत्युत्तर में विद्यासागर ने और एक पत्र लिखा था। उस पत्र का कुछ अंश यहाँ पर उद्धृत किया जाता है।

"आपने लिखा कि तुम चौर पर खफा होकर जमीन पर रोटी खाने बैठे हो, यह सर्वथा अनुचित है। और तुम जो इसी अवस्था मे विरक्त बने जाते हो, यह केवल मुझे पीडा पहुँचाना है। इस बारे में मेरा निवेदन ... ससार का सम्बन्ध छोड

देने से मेरी कुछ भी हानि नहीं देख पड़ती बल्कि लाभ की ही सम्भावना है। इतने दिनों तक तरह तरह से लाञ्छित होकर दिन-रात मानसिक व्याधि से पीड़ित हो रहा था। अब सब कष्टों से छुट्टी मिल गई। मैं अधिक क्या कहूँ, मुझे जान पड़ता है कि नरकभोग छोड़ कर स्वर्ग की सीमा में आ गया हूँ। ऐसी अवस्था में यह कहना कि मैं चोर पर खफा होकर जमीन में रोटी खा रहा हूँ, ठीक नहीं जान पड़ता। खैर, आप इस बार से मेरे लिए कुछ भी चिन्ता न कीजिए। अब मैं निस्सन्देह बहुत कुछ सुख से रह सकूँगा। किन्तु यह जान कर मुझे बेहद दुःख है कि मेरे ऐसा करने से आपको पीड़ा पहुँच रही है। मैं तो बहुत दिनों से संसार से विरक्त सा हो रहा हूँ। तथापि मेरी इच्छा थी कि आपकी और माताजी की जिन्दगी भर संसार से सम्बन्ध बनाये रहूँ। किन्तु उत्तरोत्तर सभी ने मेरे साथ ऐसा निर्दय व्यवहार किया, सब लोगों की ओर से मुझ पर इतने अत्याचार होने लगे कि मुझमें उनके सहने की सामर्थ्य नहीं रही। मैं आपसे निष्कपट होकर यह बात कह रहा हूँ कि इस प्रकार असह्य कष्ट न होता तो मैं आपकी जिन्दगी में कभी संसार को न छोड़ता। किन्तु सब ओर विचार-पूर्वक देखने से मुझे आपके क्षोभ का कोई कारण नहीं देख पड़ता। पुत्र का क्लेश मिट गया, पुत्र सुख-पूर्वक निर्वाह कर रहा है, यह सुन कर निस्सन्देह पिता को आनन्द होना चाहिए। मैं असह्य क्लेश से छुटकारा पा गया हूँ और सुख से हूँ और आगे सुख से रहने का यत्न कर रहा हूँ— यह जान कर आप दुःखित न होकर सुखी ही होंगे"।

सैकड़ों तरह के अप्रिय व्यवहारों से विद्यासागर के हृदय में जो दुःख की आग भड़क उठी थी और जो जीवन के अन्तिम दिन चिता

की आग मे जाकर बुझी वह इस प्रकार माता-पिता, स्त्री, भाई, मित्र आदि को पत्र लिखने से कुछ कम अवश्य हो गई। हर एक भाई ने पत्र में खेद प्रकट करके बडे भाई को बहलाने की चेष्टा की थी। उनमें दीनबन्धु न्यायरत्न और शम्भुचन्द्र विद्यारत्न का पत्र ही विशेष रूप से उल्लेख के योग्य है। दीनबन्धु न्यायरत्न ने लिखा था —

"आपका यह पत्र पाकर बहुत ही दु खित हुआ। हम लोगो का सम्बन्ध ऐसा है कि इस अभागे शरीर के चिता में जले बिना मैं न विदा हो सकता हूँ और न आपको विदा कर सकता हूँ। किन्तु यह जान कर कि निश्चिन्त होकर एकान्त मे रहने से बहुत दिनो तक जीकर आप जगत् की और भी बहुत कुछ उन्नति कर सकेंगे, आपके एकान्तवास का अनुमोदन करता हूँ। + + +"

विद्यासागर महाशय मोचीराम बन्द्योपाध्याय के विवाह की घटना से विरक्त हो जब कलकत्ते चले आये थे तब उन्होंने शम्भुचन्द्र विद्यारत्न को जो पत्र लिखा था उसके उत्तर मे उन्होंने बँ० सन् १२७६ के २० कार्तिक को यह पत्र लिखा था —

" + + + महाशय का पत्र जबसे पढा है तबसे मेरी मुर्दे की ऐसी हालत हो रही है। यह बडे ही खेद की और देश के लोगो के दुर्भाग्य की बात है कि आप अब देश मे न आवेंगे और अपने जीवन से भी विरक्त हो उठे हैं। इसका कारण यही है कि आपके द्वारा देश के लोगों का दु ख दूर होता है और श्रीवृद्धि होती है। महाशय हम लोगो के प्रति खेद का भाव प्रकट कर सकते हैं। आपने अब तक खिला-पिला कर हमको इतना बड़ा किया है, हम अगर आपका कहना न माने तो अवश्य ही आपको दु ख हो सकता है। + + + जिस

दादा ने हमको खिला-पिला कर इतना बड़ा किया, जो दादा हमारी बात पर पूरा विश्वास करते थे, जो दादा हमारे सिवा और किसी को नहीं जानते, जिन दादा ने मेरे लिए स्त्री के साथ वैमनस्य करने में भी सङ्कोच नहीं किया, जिन दादा ने हमारे कष्ट के ख्याल से हम लोगों को अलग घर बनवा दिये, जिन दादा के प्रताप से हम इस देश में प्रभुत्व करते रहे उन्हीं दादा के साथ मैंने बुरा व्यवहार किया + + + ”।

इसके बाद विद्यासागर के १२ अगहन के पत्र में उनके वैराग्य-ग्रहण की सूचना पाकर उसके उत्तर में, सन् १२७६ के २ पौष को, शम्भुचन्द्र लिखते हैं —

“आपके १२ अगहन के लिखे रजिस्ट्री पत्र को पाकर हम लोगों का हृदय काँप उठा। अनेक कारणों से आपको वैराग्य हो गया है और आप घड़ी भर के लिए भी ससारी झगड़ों से या और किसी से सम्बन्ध रखना नहीं चाहते, यह जान कर मैं अत्यन्त दु खित और मुर्दा सा हो रहा हूँ। + + अब मेरी प्रार्थना यही है कि यदि मेरा कुछ अपराध हो तो आप मुझे दण्ड दे सकते हैं। मैं अब तक आपके ही अनुगत और आश्रित रहा हूँ और आपको माता-पिता से अधिक समझता रहा हूँ। कभी कभी माता-पिता मेरे भविष्य के ऊपर ध्यान देकर कुछ उपदेश करते थे तो उसे मैं न सुनता था। इससे बीच बीच में वे मुझ पर नाराज हो जाते थे। मैंने सपने मे भी कभी आपका अनिष्ट नहीं विचारा। आप मेरी बात पर विश्वास करते थे, इसलिए और लोग, भाई, भौजाई आदि सब कभी कभी आपसे नाराज हो जाते थे। + + + इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप जो इस समय ससार को छोड़ते हैं उसका कारण केवल मेरा अभाग्य ही है”।

इन पत्रों के द्वारा स्पष्ट जान पड़ता है कि विद्यासागर को स्त्री, पुत्र और भाइयों में सुख नहीं मिला। केवल इतना ही नहीं, कभी कभी इनसे उनको बड़ा क्लेश मिला और उन्हें बड़ी ही चिन्ता में समय बिताना पड़ा। किन्तु ऐसी अवस्था में भी उनकी दृष्टि सबके सुख की ओर ही थी। ससार के साधारण आदमियों में और विद्यासागर में यही अन्तर है। जिन्होंने उनको सदा क्षोभ और दुःख दिया उन्हीं की सेवा में वह सदा लगे रहे। केवल उनके पुत्र नारायणचन्द्र अवश्य अपने ही दोष से बहुत समय तक पिता के स्नेह और ममता से वञ्चित रहे। पुत्र ने अक्सर पिता को प्रसन्न करने की चेष्टा की, किन्तु किसी चेष्टा से स्थायी फल नहीं हुआ। नारायण बाबू ने पिता की जीवनी से सम्बन्ध रखनेवाले जो कागज़-पत्र कृपा करके मुझे दिये हैं उनमें नारायणचन्द्र के विरुद्ध बे नाम के और नामवाले पत्र आदि मुझे मिले हैं और वे पत्र नारायण बाबू ने जान-बूझ कर मुझे दिये हैं। उन पत्रों के देखने से जान पड़ता है कि पिता को पुत्र से असन्तुष्ट बनाये रखने के लिए अनेक लोगों ने चेष्टा की थी। इन पत्रों में नारायण बाबू के कई पत्र भी मुझे मिले हैं। उनमें सन् १२९५ के ३० ज्येष्ठ को नारायण बाबू ने पिता को जो पत्र लिखा था उसे पढ़ कर पत्थर भी पसीज उठेगा। उसमें विद्यासागर की नाराजी का कारण, उसके लिए पुत्र का गहरा पश्चात्ताप, अनुराग-पूर्ण क्षमा-प्रार्थना का भाव आदि बातें पाठकों को मालूम होंगी। उस पत्र की नकल नीचे दी जाती है* —

* नारायण बाबू ने गौरव के साथ मुझसे कहा था कि मेरी बात लिखते समय 'पिताजी के प्रति कुछ अविचार' न करना। उनके असली महत्त्व को बनाये रखने के लिए मेरी हीनता का परिचय देना आवश्यक समझना तो कुछ संकोच न करना। इसी से यह पत्र यहाँ पर उद्धृत करने का साहस मैंने किया है।

श्रीचरणकमलेषु—

प्रणतिपूर्वक निवेदनमिदम्—

आपके चरणों की कृपा से मुझे सब कुछ हासिल है। चाहे जिस तरह हो दस रुपये भी पैदा करता हूँ, सम्मान की भी कमी नहीं है। बाहर के दरजे में परम सुखी हूँ। लेकिन मेरे हृदय में एक विषम विषैला कीड़ा घुसा हुआ दिन रात मुझे डसा करता है। मैंने अच्छे कपड़े पहनना—वेश-भूषा बनाना—छोड़ दिया है। केवल आपके चरणों की सेवा में ही मन लगा हुआ है, और कुछ इच्छा ही नहीं होती। पहले के किये अपराधों की याद करके बड़ा ही पश्चात्ताप होता है। मन यही कहता है कि हाय, यदि वो अपराध करके पिताजी के निकट अपराधी न होता ! जैसा पाप किया था वैसा फल भी मुझे मिल गया। आज आपके चरणों के निकट होता तो न जाने किस पद को पहुँचता। इस समय समाज मुझे हेय समझता है। यह सब भी मैंने सह लिया। किन्तु इससे बढ़ कर खेद की बात और क्या हो सकती है कि इस अवस्था में बीमारी के समय मैं आपके चरणों की सेवा न कर सका। मैं अपने जीवन के सबसे बड़े कर्त्तव्य का पालन न कर सका। आप एक बार बाबा के चरणों की सेवा के लिए काशी जाने का उद्योग कर रहे थे उस समय एक आत्मीय पुरुष ने कहा कि विद्यासागर, ऐसी गर्मी में काशी की यात्रा करना जानजोखिम का काम है। इस पर आपने वैसे ही उत्साह के साथ कहा कि मैं Duty (कर्त्तव्यपालन) करने जाता हूँ, इसमें प्राण का भय करने से काम नहीं चल सकता। तभी से महापुरुष के मुख से निकले हुए ये वाक्य मेरे हृदय-पटल पर अङ्कित हैं। आज मैं अपने कर्म-दोष के कारण उसी Duty से वञ्चित हो रहा हूँ।

मैं इस समय आपके निकट आने में असमर्थ हूँ। जब आप इस अधम का मुँह देखना नहीं चाहते तब यह अधम किस साहस से आप के सामने जा कर खडा हो सकता है ? मैं आड मे रहूँगा। नौकर की जरूरत होगी, नौकर को बुला दूँगा। कहीं जाना होगा तो नौकर की तरह चला जाऊँगा। नौकर की ही तरह रहूँगा। धीरे धीरे अनुग्रह होने पर अनुमति पा कर पास जाऊँगा। नहीं तो एक किनारे कुत्ते की तरह पडा रहूँगा। मै कैसा भी होऊँ, आप का पुत्र हूँ। मेरी भी आधे के लगभग आयु बीत चुकी है। चाहे जैसा हो, आप के एक पोता है। यदि वह जियेगा तो उसे आपका परिचय देना पडेगा। आप अगर पुत्र को पैरो से ठुकरावेंगे तो वह समाज मे क्या मुँह दिखावेगा ? धिक्कारमय जीवन की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा होता है। मैं तो अब तक प्राण दे देता। किन्तु मधुर-भाषिणी आशा ने मुझे बचा रक्खा है। मा-बाप से क्षमा पाने की आशा कभी नहीं छोडी जा सकती। इस जन्म मे तो मेरी यह दशा हुई है, किन्तु कृपा करके मेरे परलोक का मार्ग भी कण्टकाकीर्ण न बनाइए। यदि आपके चरणों की सेवा करने न पाया तो परलोक मेरा कैसे बनेगा ? आप एक बार रागद्वेपशून्य मन से—अपने ऋषियो के ऐसे माधुर्य और मन की उदारता में मग्न होकर देखिए, अपने अधम पुत्र को इस तरह कहीं का न रखने से महात्मा के जगद्व्यापी यश मे कलङ्क की रेखा लग जायगी या नहीं ? जो व्यक्ति सहनशीलता का आधार है, जिसका शरीर क्षमा से परिपूर्ण है, जिसके हृदय मे ममता भरी पडी है,

करेगा ? इस बात पर तो किसी तरह विश्वास करने को जी नहीं चाहता।

पिताजी, एक दिन भी मेरा जीवन सफल नहीं हुआ। मेरे विवाह के बाद महाशय ने शम्भू चाचा के पत्र के उत्तर में लिखा था कि "नारायण ने अपनी इच्छा से यह विवाह करके मेरा मुँह उजियाला किया है। अधिक क्या लिखूँ, नारायण के यह ब्याह करने से मैं चरितार्थ हो गया हूँ"। पिताजी, इस जन्म में इससे अधिक सुख-सौभाग्य मेरे लिए और क्या हो सकता है ? यही मेरे लिए स्वर्ग का सुख है। आप राजाधिराज जगन्मान्य पिता हैं, और मैं कीटानुकीट लड़का हूँ। मेरे किये काम के कारण अगर घड़ी भर के लिए भी आपको रत्ती भर संतोष हुआ हो तो वही मेरे लिए सौभाग्य की बात है। उसे मैं अपनी भारी तपस्या का फल समझता हूँ। पिताजी, हाय मैं इस पत्र में बार बार पिताजी, पिताजी यह रूखा सम्बोधन करता हूँ, इस से मेरे रोमाञ्च हो आता है। यह अभागा जिन्दगी भर में कभी 'बाबा' (बङ्गाली बाप को बाबा कह कर पुकारते हैं) इस मधुर सम्बोधन से पुकार न सका। प्यारी जब मुझे बाबा कह कर पुकारती है तब मेरा हृदय आनन्द से भर जाता है। किन्तु वैसे ही विषाद से शिथिल हो जाता हूँ। मुझे भी वैसेही बाबा कह कर पुकारने की इच्छा होती है। किन्तु पुकार नहीं सकता, वृथा अभिलाषा है, यह सोच कर वैसे ही मुर्दा सा हो जाता हूँ। मैं सोचता हूँ कि अगर मैं अभागा आप का पुत्र न होता, मन के माफिक पुत्र होता, तो प्यारी की तरह उसके बाबा कह कर पुकारने से आप को भी बड़ा आनन्द होता। किन्तु मुझ अभागे ने जन्म लेकर आपके मन सुखों में बाधा डाल दी। अगर मैं पैदा भी हुआ था तो मर क्यों न गया ?

महाशय अकेले वहाँ व्यग्र होगे। आज अगर गोपाल (विद्यासागर के बडे दामाद) भी होते तो आपको इतनी व्यग्रता न होती। + + इस प्रकार बहुत से परिवार के रहते भी आप अकेले हैं। लडका, दामाद, भाई, एक भी अपने मन का होता तो उस पर सब बोझ डाल कर बीमारी के समय कुछ दिन आप निश्चिन्त भाव से रह सकते। जब जब आपके शीर्ण शरीर, सूखे मुख और क्षीणस्वर से बात करने की मुझे याद आती है और उसके ऊपर आप की सब कामो के लिए व्यग्रता का विचार करता हूँ तब अपने जीते रहने को हजार हजार धिक्कार देने को जी चाहता है। अपने अपराध के लिए गला दबा कर मर जाने की इच्छा होती है।

जिस महापुरुष, जिस धैर्यगुण के आधार, जिस great peerless man (तुलनारहित महापुरुष), जिस Demigod (मानव-देवता) ने हर एक काम में पराये लिए असाधारण सहिष्णुता दिखलाई है उस महात्मा ने अपने लडके को नहीं क्षमा किया। अपराध चाहे जितना भारी हो, क्षमा के निकट वह कुछ भी नहीं है—फिर खास कर माता-पिता के आगे। मुझे चरणो मे आश्रय देने से कोई कुछ न कहेगा। उससे महापुरुष के महत्त्व का ही परिचय प्राप्त होगा। अधिक क्या कहूँ, और एक बार कृपा करके अलौकिक उदारता का परिचय देकर अपने अभागे पुत्र को चरण-सेवा का अधिकार दीजिए। तब आप देख लीजिएगा कि मैं आपके मन के माफिक बन सकता हूँ या नहीं। भला हूँ या बुरा, जिनसे आपका सम्बन्ध है उनमे यह अभागा ही प्रथम और प्रधान है। आपने अनेक लोगो के लिए अनेक काम किये हैं। मेरे लिए एक बार अलौकिक क्षमा का परिचय देकर अभागे को चरणो मे स्थान देकर, अन्तिम

परीक्षा लीजिए। मैं साहस करके कह सकता हूँ कि एक घडी के लिए भी कभी ऐसा काम न करूँगा जिससे आप असन्तुष्ट हो। ससार के सब सुखो को तज दूँगा। मुट्ठी भर अन्न खाकर आपके चरणों की सेवा के लिए जीवन धारण करूँगा। कुत्ता जैसे मुट्ठी भर भात खाकर निरन्तर मालिक के मन के माफिक काम करता है वैसे यह अभागा कुत्ते से भी अधम होकर प्रभु के पैरो के पास पडा रहेगा।

३० ज्येष्ठ, १२९५ | आपका—
| अभागा पुत्र।

इस पत्र में विद्यासागर के पारिवारिक सुख-दुख का पूरा आभास और निराशा तथा अशान्ति के गूढ कारणो का विशेष परिचय प्राप्त होता है। इस पत्र मे विद्यासागर के महत्त्व का छोटा सा, किन्तु समुज्ज्वल, चित्र अङ्कित है। पाठकगण मन लगा कर बार बार पढने से इस पत्र मे अनेक सुन्दर भावो को देख पावेंगे। बिछड हुए बाप-बेटे के सम्बन्ध के विषय मे यह पत्र बँगला के साहित्य मे स्वतन्त्र स्थान पाने के लायक है। इस पत्र को पढ कर विद्यासागर पुत्र पर कुछ प्रसन्न हुए थे और कुछ दिनो तक बेटे और बहू को अपने पास कलकत्ते मे और फरासडागा के घर मे लाकर रक्खा था। उसके बाद अन्तिम बीमारी के समय भी पास रह कर सेवा-सुश्रूषा करने के लिए बुलाया था। घटना-चक्र के फेर से प्राय अपने पुत्र पर नाराज रहने पर भी बहू, पोते और पोतियो पर उनका स्नेह कभी कम नहीं हुआ। इसके प्रमाण मे यहाँ पर कई एक पत्र उद्धृत किये जाते हैं। उनसे पाठको को मालूम हो जायगा कि जो हृदय स्वदेश और विदेश के असख्य दुखियो का दुख दूर करने में सदा लगा रहता था वह हृदय परिवार की ममता से शून्य न था। यह पत्र बहू को लिखा था —

श्रीश्रीहरि

शरणम्।

वत्से भवसुन्दरि,

शारीरिक अस्वस्थता आदि अनेक कारणों से बहुत दिनों से तुमको पत्र नहीं लिख सका। इस लिए शायद तुम बहुत दुखित हो और मुझसे नाराज भी हो गई हो। इसमें सन्देह नहीं कि इतने दिन पत्र न लिख कर मैंने अन्याय किया है।

मैं कलकत्ते मे अत्यन्त अस्वस्थ रहने के कारण दस दिन से खर्माटांड में आ गया हूँ। कलकत्ते मे तबीयत बहुत खराब रही। यहाँ भी अच्छी तरह आराम नहीं है। यहाँ और आठ दस दिन रह कर फिर कलकत्ते जाऊँगा। कलकत्ते में मुझे तुम्हारा पत्र मिलना चाहिए। कुन्द शायद मुझे भूल गई होगी। उसे पास बिठा कर खिलाने की बड़ी इच्छा होती है। उसकी बाते याद आती हैं। इति १ चैत्र, १२९५।

शुभाकाङ्क्षिण
श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मण।

श्रीश्रीहरि

शरणम्—

वत्से भवसुन्दरि,

इस पत्र में तुम्हारे चैत्र के ६०) रु० भेजता हूँ। पहुँच की सूचना देना। मिन्नी, कुन्द, प्यारी और नूदी को आशीर्वाद और प्यार करके कहना कि मेरा मन उनको देखने के लिए

व्याकुल रहता है। न जाने कितने दिनों में फिर उन्हे देखूँगा। उनका कुशल-समाचार लिखना। यहाँ सब कुशल है।

१ चैत्र, १२९२ शुभाकांक्षिण
श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मण ।

(बड़ी पोती मृणालिनी को निम्नलिखित पत्र लिखा था)

वत्से मृणालिनि,

सस्नेहसम्भाषणमिदम्—

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारी माता का पेट का दर्द अच्छा हो गया, तुम सब अच्छी तरह हो, तुम वस्तुविचार पढती हो और कुन्द कथामाला पढती है, ये समाचार पाकर मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ। तुम मन लगा कर पढना-लिखना सीखो। अच्छी तरह पढो-लिखोगी तो मैं तुम्हें बहुत प्यार करूँगा। तुम कभी कभी मुझे पत्र लिखा करो। और अगर कुन्द लिख सकती हो तो उससे भी पत्र लिखने के लिए कहना। तुम्हारा पत्र पाकर मुझे बडी खुशी होती है।

एक महीने के लगभग हुआ, मेरे पेट मे भी पीडा होती है। अभी तक दर्द अच्छा नहीं हुआ। मैं बहुत कमजोर और दुबला हो गया हूँ। आज तीन दिन से कुछ तबीयत अच्छी है। जान पडता है, तीन चार दिन मे बिलकुल अच्छी हो जायगी। तुम लोग घबराना नहीं। तुम्हारी दादी, बुआ, सुरेश, यतीश, हरिमोहन, रामकमल और रानी वगैरह सब अच्छी तरह हैं। अपनी माता, कुन्द, प्यारी, मोती वगैरह से मेरा आशीर्वाद और स्नेहसम्भाषण कहना। कमजोरी के कारण तुम्हारी माता को अलग पत्र नहीं लिख सका। तुम शायद पत्र न लिखन से खफा

हो जाती, इसलिए यह पत्र लिखा है। अब आज और पत्र लिखने की शक्ति नहीं है।

शुभाकांक्षिण
श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मण।

श्री श्रीहरि
शरणम्—

वत्स भवसुन्दरि,

इस पत्र में १५०) रु० के नोट भेजता हूँ। इनके पहुँचने की सूचना के साथ कुशल-समाचार लिखना। यहाँ सब लोग अच्छे हैं। मैं अभी तक अच्छी तरह आराम नहीं हो सका। बेटी मृणालिनी से मेरा प्यार कहकर कहना कि उसका पत्र पाकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। दो तीन दिन में उसे पत्र लिखूँगा। हेमलता कहती है कि ८०) रु० महीने में भेजने से तुम्हें सब तरह सुभीता हो जायगा। इसलिए इस हिसाब के ८० रु० और पुराने हिसाब के ७५) रु०, कुल १५५) रु० हुए। ५) रु० यहाँ हेमलता ने ले लिये हैं। शेष १५० रु० भेजे हैं। इति ३ चैत्र, १२९१

शुभाकांक्षिण
श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मण।

श्री श्रीहरि
शरणम्—

वत्स भवसुन्दरि,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम सबके कुशल-समाचार पाकर प्रसन्नता हुई। मैं अभी तक पूर्णरूप से अच्छा नहीं हुआ। बहुत कमजोरी है। घर में सब अच्छे हैं। मृणालिनी, कुन्द, प्यारी और मोती

को मेरा आशीर्वाद और प्यार पहुँचे। उनकी याद आते ही आँखों में आँसू भर आते हैं। सुना कि मृणालिनी की यहाँ से जाने की इच्छा नहीं थी। अगर पहले मालूम होता तो मैं उसे जाने न देता। बीच बीच में कुशल-समाचार लिखा करो। इति २६ चैत्र, १२९१

शुभाकांक्षिण
श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मणः।

विद्यासागर ने संसार से विरक्त होकर जैसे अनेक आत्मीयों को पत्र लिखे थे वैसे ही बहू को भी निम्नलिखित पत्र लिख कर अपने मन का भाव व्यक्त किया था। इस पत्र को पढ़ने से विदित होता है कि नित्य के खर्च के लिए इनको सबसे अधिक रुपया भेजते थे।

श्रीश्रीहरि
शरणम्—

भवसुन्दरि,

मैं तुम लोगों से जन्म भर के लिए विदा होता हूँ। तुम्हारे नित्य के खर्च के लिए इस समय १५०) रु० मासिक देना मैंने निश्चित किया है। इति।

श्रीईश्वरचन्द्र शर्म्मा।

श्रीश्रीहरि
शरणम्—

वत्से भवसुन्दरि,

इस पत्र में ८०) रु० के नोट भेजता हूँ। पहुँच की सूचना और कुशल-समाचार देना। मैं वैसा ही हूँ। अभी तक अच्छी तरह आराम नहीं हो सका। घर में और सब अच्छे हैं। मृणालिनी, कुन्द, प्यारी और मोती को मेरा आशीर्वाद और प्यार

पहुँचे। कभी कभी रोने लगता हूँ। मैं तीन चार दिन में खर्म्मा-टांड जाऊँगा। वहाँ चार पांच दिन से अधिक नहीं रहूँगा। इति ३० वैशाख, १२९२।

शुभाकाङ्क्षिण
श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मण।

श्रीश्रीहरि
शरणम्।

प्राणाधिक भाई प्यारीमोहन,

तुम पत्र लिख सके, इससे मुझे बड़ी खुशी हुई। तुम मन लगाकर लिखो-पढोगे तो मैं तुम पर बहुत प्रसन्न होऊँगा। तुम हर महीने दो बार मुझे चिट्ठी लिखा करो।

तुम सब अच्छी तरह हो, यह खबर पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं अब यहाँ पहले की अपेक्षा बहुत अच्छा हूँ। घर में और सब अच्छे हैं। मोती, कुन्द, मृणालिनी और अपनी माता से मेरा आशीर्वाद कहना। २७ पौष, १२९२।

शुभाकाङ्क्षिण
श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मण।

श्रीश्रीहरि
शरणम्।

वत्से मृणालिनि,

सस्नेहसम्भाषणमिदम्—

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे कुशल-समाचार पाकर प्रसन्नता हुई। एक बङ्गाल का नक्शा तुमने माँगा है, सो दो तीन दिन में भेज दूँगा। मन लगाकर पढोगी तो तुम पर बहुत प्रसन्न होऊँगा। अपनी माता, कुन्द, प्यारी और मोती से मेरा आशी-

र्वाद और प्यार कहना। यहाँ सब अच्छी तरह हैं। मैं वैसा ही हूँ। ३१ चैत्र, १२९१।

शुभाकांक्षिण

श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मण

पुत्र के पास से पूर्वोक्त पत्र पाकर विद्यासागर के मन का भाव बिलकुल बदल गया था। इसके प्रमाण में नारायणबाबू का पिता के पास भेजा हुआ कृतज्ञतासूचक पत्र यहाँ पर उद्धृत किया जाता है—

श्री।

श्रीचरणारविन्देषु—

प्रणतिपूर्वक निवेदनमिदम्—

पितृदेव, अब की समझा था कि सब दुःख-कहानी सुना दी है। एक बार महाशय के चरणों में गिर कर अपने भाग्य का फैसला कर लूँगा। किन्तु निठुर दैव ने अभागे की फूटी तक़दीर को और भी टुकड़े टुकड़े कर डाला।

स्नेहमयी माता के न रहने पर संसार में एकदम असहाय हो जाता, मातृहीन बच्चे की तरह बिलखता फिरता, किन्तु दया-मय पितृदेव के सदय व्यवहार से मुझे बहुत कुछ शान्ति मिल गई है। जबसे आपके चरण छूटे तबसे माता के चरणों में समय बिता रहा था, सुमधुर 'मा' सम्बोधन से माता को पुकार कर अपने जले कलेजे को ठंडा करता था। जब माता अपने अभागे पुत्र को निराश्रय छोड़ कर स्वर्ग सिधार गई तब पितृदेव ने कृपा-पूर्वक अयोग्य पुत्र को चरणों में स्थान दे दिया। इसी कृपा के बल से यह अभागा असह्य माता के शोक को सह रहा है। मुझे स्वप्न में भी आशा न थी कि अभागे पर आप इतनी कृपा करेंगे। मैं तो जानता था, जन्म भर के लिए मेरी तक़दीर फूट गई। अबकी

बार साहस करके आपके सामने खड़ा हो सका हूँ, दो मजिले पर सोने की अनुमति पाई है, आपसे दो एक बात करने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है। एक दिन शाम को मैं जलखवा माँग रहा था, महाशय नीचे थे। सुनते ही आपने हेमलता से कहा—ओ हेम, तेरा दादा जलखवा माँग रहा है। सुन कर मेरा विषाद-पूर्ण हृदय आनन्द से भर गया। इस प्रकार की कृपा-दृष्टि से यह अभागा कृतार्थ हो गया है। हृदय में एक अनिर्वचनीय आनन्द का आविर्भाव हुआ है। जिसे अँगरेजी मे Intoxicated with joy कहते हैं, मुझे वही हुआ है। बहुत दिन भूखे रहने के बाद सुन्दर भोजन मिलने से हृदय मे एक प्रकार की अनिर्वच-नीय तृप्ति उत्पन्न होती है। १४ वर्ष के बाद आपके श्रीमुख से निकले हुए इन अमृत-मधुर वचनो से मेरे आत्मा को भी वैसी ही तृप्ति हुई है। अनेक बार कृपा का परिचय पाकर असख्य बार मैंने आनन्द के आँसू बहाये हैं। उस समय यह खयाल करके मेरा हृदय फट गया है कि यह कृपा-दृष्टि यदि मेरी दुखिया माता देख पाती तो मेरा जीवन सार्थक हो जाता। मैया! एक बार इधर देखो। तुम्हारे अभागे नारायण को पिता के चरणो मे आश्रय मिल गया। मैया! तुमने अन्त समय भी यही इच्छा प्रकट की थी कि "उनको बुलाओ, मैं १०।१२ वर्ष की मन के दुःख की बात कह कर अपने नारायण को उन्हे सौंप जाऊँ"। इस समय एकबार देखो मैया, दयामय पिताजी ने तुम्हारे अन्तिम अनु-रोध को नहीं टाला। जितना ही माता के स्नेह को सोचता हूँ उतना ही हृदय मे जैसे कोई सेल मारता है।

आपने मुझ पर जितनी कृपा दिखाई है उतनी कृपा ही मेरे लिए यथेष्ट है। मरते समय यह याद करके भी सुख से

मरूँगा कि पिता ने अपराधी पुत्र को क्षमा कर दिया। आपके चरणों में मैं क्षमा की ही भिक्षा माँग रहा था। कितनी ही बार जी चाहा था कि पैरों पर गिर कर खूब रोऊँ। किन्तु आप शोकार्त्त थे, इसलिए ऐसा करने का मुझे साहस नहीं हुआ। अब मैं इन चरणों को छोड कर नहीं रह सकता। मेरे हृदय में जो भाव सूख गया था वह भाव आपकी कृपा-दृष्टि से हरा हो आया है। अब कैसे छोड सकता हूँ। मैं आपको जरा भी नाराज न करूँगा। हुकूमत या धन की मुझे चाह नहीं है। मैं केवल पैरों के पास पड़ा रहना चाहता हूँ। आपको तमाखू भर दूँगा, जूते साफ करूँगा, परदेश में कुली की तरह असबाब लाद कर चलूँगा। आपके और माताजी के परमपवित्र चरणों का स्मरण करके सत्य कहता हूँ कि मुझे और किसी चीज की चाह नहीं है। मातादीन (नौकर) की तरह रह कर भी मैं सुख पाऊँगा। आपके घर में चाहे जो हो, चाहे मुझे कोई भला बुरा कहे, मुझे कुछ भी कष्ट न होगा। आपके चरणों की सेवा के लिए सब तज दूँगा। पहले के किये पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए तन-मन-जीवन आपके चरणों में अर्पण कर दूँगा।

मैं आपसे और एक निवेदन करूँगा। यदि इस समय मुझे बिलकुल अपने पास रखने के लिए आप राजी न हो तो कम से कम मुझे स्कूल में कोई नौकरी दिला दीजिए। मेरे चरित्र, व्यवहार और कामकाज को देख कर अगर आप प्रसन्न हों तो चरणसेवा की अनुमति दीजिएगा। ऐसा होने से मुझे दोनों वक्त श्री चरणों के दर्शन प्राप्त होंगे। मतलब यह कि जिस तरह हो, आपको मुझे अपने चरणों में आश्रय देना ही पड़ेगा। मैं अपने आफिस और लोकल-बोर्ड आफिस के काम को अच्छी तरह चला कर

माया-ममता-शून्य विदेशी हाकिमों को प्रसन्न रख सकता हूँ और अपने दयामय पिता को प्रसन्न न रख सकूँगा? बेकार बैठे रहने को अब जी नहीं चाहता और आपको छोड कर भी नहीं रह सकता। इति २८ भाद्र, १२९५।

हतभाग्य भृत्य
श्रीनारायणशर्म्मणः

इस घटना के कुछ दिन पहले एक बार विद्यासागर बहुत बीमार थे। उस समय मैंने बिना समझे कहा था कि "इतने परिश्रम से आप का शरीर दिन दिन रोगी और शिथिल होता जाता है। आप क्यों शरीर को क्षीण किये डालते हैं? अपने विश्राम स्थान कर्म्माटाड जा कर कुछ दिन न रहिए"। इसके उत्तर में उन्होंने अत्यन्त आर्त्तभाव से आँखों में आसू भर कर कहा कि "मैंने अपने कहीं जाने की राह नहीं रक्खी। केवल इसी एक काम में मैंने अपने को ऐसा फँसा रक्खा है कि मैं कहीं नहीं जा सकता"। इतना कह कर उन्होंने अपने हाथ का एक रजिस्टर मेरे सामने फेंक दिया। उसमें मासिक दान का हिसाब था। उसका अन्तिम पृष्ठ खुल जाने से मैंने देखा कि मासिक दान की रकम ८००) रु० से भी कुछ अधिक थी। ये रुपये गरीब दुखी लोगों को सहायता के रूप में दिये जाते थे। इस के अलावा वे दान अलग थे जो समय समय पर अथवा एकमुश्त दिये जाते थे। विद्यासागर ने वह रजिस्टर मेरे आगे फेक कर क्षोभ के मारे आँखों में आसू भर कर कहा— "गत वर्ष मैं तीन महीने की वृत्ति बाँटने के लिए २५००) रु० एक आत्मीय मित्र को देकर कर्म्माटाड में विश्राम करने चला गया था। जाते समय कह गया था कि हर महीने सब को वृत्ति के रुपये भेजते रहना। किन्तु मैं ऐसा अभागा हूँ कि एक महीना बीतते ही बीतते खबर आने लगी कि "हम भूखों मर रहे हैं, हमारे यहाँ चूल्हा नहीं

जलता, हमारी वृत्ति हमको नहीं मिली"। जिनको रुपया दे गया था उनको लिखा, कुछ उत्तर नहीं मिला। अन्त को लोगों के तगादे से लाचार होकर कलकत्ते दौड़ा आया। उन आत्मीय को बुलाकर पूछा—"लोगों को वृत्ति क्यों नहीं मिली ?" उन्होंने उत्तर दिया—"और और काम इतने थे कि फुरसत ही नहीं मिली"। यह कह कर वह जान बचाते थे, मैंने बिल्कुल निर्लज्ज होकर कहा—"अच्छा नहीं दे सके तो रुपये ला दो, मैं उनकी वृत्ति खुद दे जाऊँगा"। मेरे उन परम आत्मीय ने कहा—"हाँ—सो—रुपया—तो और बाबत खर्च हो गया है !"। विद्यासागर जिस समय ये बातें कर रहे थे उस समय दुःख, क्षोभ और घृणा के समान समावेश से उनके मुख-मण्डल पर एक विचित्र भाव झलक रहा था। उन्होंने विषाद-पूर्ण उत्तेजना के भाव से कहा—"उसी समय २५००) कर्ज लिया। तीन महीने की वृत्ति उनको भेजी, फिर विश्राम करने के लिए गया"।

जन्म भर इस प्रकार तरह तरह के दुःख-कष्ट भोगने पर भी विद्यासागर को दो-एक बातों का सुख था। इधर कलकत्ते में लड़कियों के साथ जब वह बादुड़बागान के घर में रहते थे उस समय उनको नातियों से बड़ा सुख मिलता था। साहित्य-सम्पादक श्रीयुत सुरेशचन्द्र समाजपति और उनके छोटे भाई श्रीयुत यतीशचन्द्र समाजपति उस समय बच्चे थे। इनको और छोटी लड़की के लड़कों को लेकर वह सदा आनन्द-मग्न रहते थे। श्रीमान् सुरेशचन्द्र के मुख से मैंने सुना है कि कभी कभी विद्यासागर के कमरे में सब जने इकट्ठे होते थे। कन्यायें कोनों में खड़ी होती थीं। नातियों में से कोई दाहने, कोई बायें, कोई सामने और कोई पीछे खड़ा होता था। विद्यासागर बैठ कर सब से बातचीत करते थे। उनका प्रसाद—जूठा पान—पाने के लिए सब उम्मेदवारी करते थे। उनके प्रसाद का पान पाना

कन्याओ और नातियो के लिए एक विशेष सम्मान की बात थी। सब मे छोटा नाती (रामकमल) उनको बहुत प्यारा था। इस पारिवारिक सान्ध्य-सम्मिलन मे यही बालक नट का काम करता था। इसे उपहार देने के लिए विद्यासागर सदा अपने पास नई दुअन्नियाँ, चवन्नियां और अठन्नियाँ अपने पास रखते थे। उसके माँगते ही उसे देते थे। उससे विद्यासागर पूछते थे—बेटा, तुम किसे प्यार करते हो? वह कहता था—दादाजी, मैं तुमको खूब प्यार करता हूँ। और तुम से बढ कर इन नई नई दुअन्नियो चवन्नियो को प्यार करता हूँ! विद्यासागर कहते थे—सभी इसे प्यार करते हैं। तुम समझते नही हो, इसीसे कह डालते हो, और और लोग मुँह पर यह बात स्वीकार नही करते।

वैराग्य के भाव से पूर्ण पत्र लिख कर आत्मीय स्वजनो से विदा होने के बाद जिस समय विद्यासागरजी कुछ शान्ति के साथ एकान्तवास कर रहे थे उसी समय उनकी माता अपने पति के पास काशीवास करने के इरादे से गई। किन्तु काशीवास पसन्द न आने के कारण अन्त को तीर्थयात्रा करती हुई वीरसिह लौट आई। आते समय काशी होकर आई। वहाँ पति से भेट होने पर उन्होने उन्हे घर लाने के लिए बहुत कुछ चेष्टा की। किन्तु ठाकुरदास राजी नहीं हुए और अपने साथ स्त्री से भी काशी में रहने के लिए कहने लगे। भगवती देवी ने पति से कहा—तुम्हारे सिधारने मे अभी विलम्ब है। मै चाहे जहाँ रहूँ, इसी काशी मे आकर तुम्हारे आगे मरूँगी। मेरे बाद तुम सिधारोगे। इसीसे कहती हूँ कि अभी देर है, घर चलो। भगवती देवी का यह कहना देववाणी की तरह अक्षर अक्षर सच निकला। ठाकुरदास बीमार हुए। उन्होंने मृत्युकाल निकट समझ कर कलकत्ते मे और वीरसिह में खबर भेजी। सन् १२७७ के २

फाल्गुन को दीनबन्धु और शम्भुचन्द्र माता को लेकर काशी गये। इधर ईश्वरचन्द्र भी सब काम छोड़ कर पिता की सेवा करने के लिए काशी पहुँचे। अच्छी तरह सेवा और दवा होने से ठाकुरदास आराम हो गये। १५ फाल्गुन को ईश्वरचन्द्र माता और भाइयों को पिता की सेवा के लिए वहीं छोड़ कर कलकत्ते लौट आये। ठाकुरदास धीरे धीरे बिल्कुल आराम होगये। किन्तु भगवती देवी फागुन चैत दो महीने वहाँ रह कर एकही दिन में हैजे की बीमारी से चल बसीं। पुत्र, कन्या, पोते, पोती, नाती नातिन और आत्मीय-स्वजनों को देख कर—उन्हें आशीर्वाद देकर—पति के पैरों की धूल मस्तक में लगा कर उन्होंने शरीरत्याग किया। ठाकुरदास ने बुढ़ापे में स्त्री-वियोग से शोकाभिभूत होकर भी स्त्री को आशीर्वाद देते हुए कहा कि "तुम्हें मैं और क्या आशीर्वाद दूँ, तुम पुण्यवती स्त्री हो, अपने पुण्य से आपही आगे चली जाती हो। तुम्हारी ही जीत हुई"।

माता के मरने की खबर पाकर ईश्वरचन्द्र को बड़ा ही दुःख हुआ। वह मातृहीन बालक की तरह सदा रोया करते थे। माता की मृत्यु के समय वह उनके पास न थे और न कुछ उनकी सेवा ही कर सके। यही उनको बड़ा क्षोभ था। काशीपुर में गङ्गा-तट पर माता का श्राद्ध करके वह एक साल तक सब सुखों को छोड़ कर एकान्त में रहे। इतने दिनों तक उन्होंने अपने हाथ से निरामिष भोजन बना कर खाया। वह भी एक ही वक्त खाते थे। जब बिल्कुल तबीयत अच्छी न होती थी तब उनकी स्त्री दिनभरी दवा रसोई बना देती थी। एक साल तक छतरी नहीं लगाई, नंगे पैर रहे और पलँग पर नहीं सोये। इस प्रकार एकान्त में उदास भाव से रह कर बहुत दिनों तक वह माता का शोक मनाते रहे। मातृ-भक्त ईश्वरचन्द्र तद्गत-चित्त होकर माता के गुणों का ध्यान करते करते बालकों की तरह

रोने लगते थे। जननी की मृत्यु के बहुत दिनों बाद भी प्रसगवश एक बार उन्हे परमाराध्या गुणमयी माता के गुणो का उल्लेख करना पडा था। उस समय वह बहुत बीमार थे। उन्हें बालको की तरह अधीर होकर रोते देख कर मैंने कहा—"आपको इतना कष्ट होगा, यह बात पहले से मालूम होती तो मैं कभी इस प्रसग को न उठाता" गुणी पुत्र ने रोते रोते कहा—"तुमने मुझे कष्ट कहाँ दिया? तुमने तो मित्र का ही काम किया। तुम्हारा मतलब होने पर भी मुझे माता की याद आई और मेरी आँखो से चार आँसू गिरे। यह अच्छा हुआ। मैं ऐसा ही नीच हूँ कि सब समय माता-पिता की याद नहीं कर सकता"।

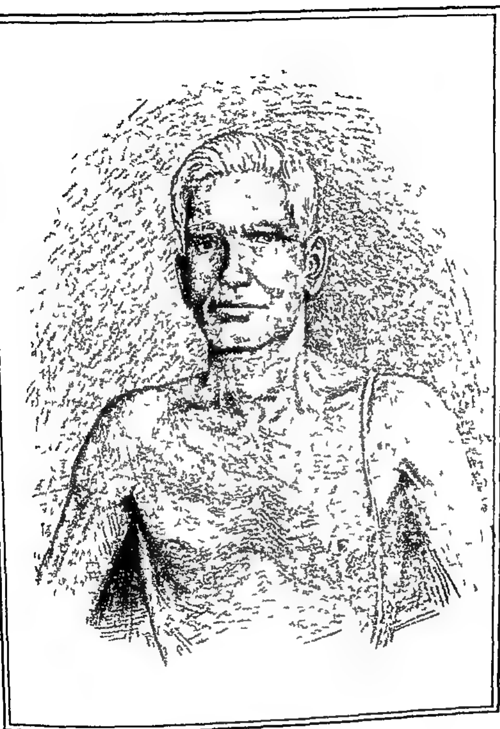
उन्होने अपने प्रिय मित्र कृष्णनगरनिवासी ब्रजनाथ मुखोपाध्याय की माता के मरने पर उनको सान्त्वना देने के लिए जो पत्र लिखा था उसमे भी इस बात का आभास मिलता है कि माता के मरने से ईश्वरचन्द्र के मन मे विषाद स्थायी रूप से बस गया था। सहृदय ब्रजबाबू उस पत्र को ऐसा बहुमूल्य समझते थे कि उस पत्र के लिफाफे पर अपने हाथ से यह लिख रक्खा था—"जन्म भर इस पत्र को यत्न से सुरक्षित रक्खूँगा"। वह पत्र यह है —

श्रीश्रीहरि

शरणम्—

सादरसम्भाषणमावेदनम्।

चण्डी (डिपोजिटरी के भूतपूर्व मैनेजर बाबू चण्डीचरण चट्टोपाध्याय) के मुख से सुना कि गत शुक्रवार को माताजी का स्वर्गवास हो गया। उनका मरना सब तरह से अच्छा ही हुआ। वह यातना से छूट गई। आपको देखते देखते उन्होने चोला छोडा। यह उनके लिए परम सौभाग्य की बात है। किन्तु



৺ব্রজনাথ মুখোপাধ্যায়।

स्वर्गीय व्रजनाथ मुखोपाध्याय ।

आपके लिए दशो दिशायें शून्य हो गई। इसके बाद गृहस्थी विडम्बना के सिवा और कुछ नहीं है। जितने दिन जियेंगे, वह माता का अमृतमधुर सम्भाषण सुनने को नहीं मिलेगा। जो कुछ हो, आपने अन्तसमय उनकी सेवा की, पास रह कर उनसे बात-चीत करने का अवसर पाया, यह आप के लिए कम सौभाग्य की बात नहीं है। मैं आपको जानता हूँ। आप बड़े भागी मातृ-भक्त पुरुष हैं। अतएव आपका मातृ-शोक सहज मे जल्दी कम होने वाला नहीं है।

यह खबर सुनते ही मैं आपके पास आना चाहता था। किन्तु १५।१६ दिन से सिर की पीडा और उन्निद्र रोग प्रबल हो उठा है। एक तो कमजोर हो ही रहा था, उस पर इस व्याधि ने बिलकुल नेकाम बना दिया है। इस अवस्था मे मेरा दूसरी जगह जाना सर्वथा असम्भव हो गया है। बहुत सोच-विचार कर अन्त को जाने का साहस नहीं कर सका। अपराध क्षमा कीजिएगा। इति १६ माघ, १२८४।

त्वदेकात्मन
श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मण।

परिवार में यो ही अशान्ति और दुःख-कष्ट का सामना था, उस पर उनके प्यारे लोग भी एक एक करके ससार से खिसकने लगे। पहले माता के मरने पर बहुत दिनो तक वह एकान्तवास करते रहे। उसके बाद वह शोक कम भी न होने पाया था कि और एक भयानक दुर्घटना ने विद्यासागर को एकदम मृतप्राय कर डाला। १२७९ सन्, २७ माघ, को विद्यासागर के दाहने हाथ सर्वजनप्रिय परमस्नेहास्पद बडे दामाद गोपालचन्द्र समाजपति हैजे की बीमारी से मर गये। उनकी मृत्यु से विद्यासागर बहुत दिनो तक विषाद और शोक से

शिथिल रहे । इस घटना से उनके पारिवारिक जीवन मे जो कुछ परिवर्त्तन हुए थे उनका उल्लेख करना भी यहाँ पर आवश्यक है। बडी लडकी हेमलता देवी को जब जन्म भर के लिए विषाद और यन्त्रणा से परिपूर्ण वैधव्य का सामना करना पडा तब विद्यासागर के सारे परिवार को बडा ही शोक हुआ। विधवा के वेषपरिवर्त्तन और खाने-पीने के सयम से उसके पिता के यहाँ विषम वेदना की सृष्टि हुई। इस ससार की सब तरह की असुविधाओ को सादर स्वीकार करने मे कन्या के कोमल हृदय मे जो क्लेश हुआ उसे सहृदय पिता ने बँटा कर समाज के आगे एक उच्च आदर्श स्थापित कर दिया। कन्या जब निरामिष एकाहार करने लगी तब विद्यासागर ने बहुत ही स्वाभाविक भाव से मछली खाना छोड दिया और रात को भोजन करना भी बन्द कर दिया। जब वह खाने बैठते थे तब विधवा कन्या के कठोर दु ख का स्मरण हो आने से उन्हे भोजन करने की प्रवृत्ति न होती थी। कन्या ने मछली खाना छोड दिया है, इस चिन्ता से वह मछली नहीं खा सकते थे। कन्या एकाहार करती है, इस खयाल से उन्हे दूसरे वक्त भोजन करने की इच्छा ही नहीं होती थी।

समाज-सस्कार के अध्याय मे हमने एक जगह पर लिखा है कि "वृद्ध पिता विधवा कन्या के विषाद की पर्वा न करके तिबारा ब्याही बालिका पत्नी के साथ सुख से रहते है। कन्या और बहनों को ब्रह्मचर्य की शिक्षा देने की व्यवस्था क्या इसी तरह की जाती है ?" विधवाविवाह के पथप्रदर्शक अबला-बान्धव विद्यासागर के पारिवारिक जीवन मे करुणहृदय अभिभावक का आदर्श क्या नहीं देख पडता है ? जहाँ ब्रह्मचर्य की जरूरत है वहाँ कार्य के द्वारा—अपने आचरण के द्वारा—कन्या को उस मार्ग में अग्रसर करने के लिए किस तरह सहानुभूति दिखलानी चाहिए, यह बात भी हमको विद्यासागर

से सीखनी चाहिए। कुछ दिनो वाद विधवा कन्या ने ही अनुरोध करके पिता का निरामिष भोजन और एकाहार छुडाया। कन्या पर ऐसा दु ख पडने से माता-पिता की ऐसी सहानुभूति से उसका शोक बहुत कुछ कम हो जाता है। दु ख यही है कि इस देश के अनेक लोग इस प्रकार सहानुभूति दिखाने के उत्तम ढग को नहीं जानते। और, उसके लिए कुछ चिन्ता भी नहीं करते।

काशी में माता की मृत्यु होने के बाद बहुत दिनो तक ईश्वरचन्द्र काशी नहीं गये। पिता ने बहुत दिनो से पुत्र को नहीं देखा। उन्होंने पुत्र से काशी आने के लिए अनुरोध करते हुए यह पत्र लिखा था —

श्रीश्रीहरि

शरणम—

परमशुभाशीर्वाद विज्ञापनमिदम।

मेरी ८३ वर्ष की अवस्था हुई। खास कर इस बुढापे के समय मे मुझे भ्रान्ति हो जाया करती है। तुम मेरे वश मे श्रेष्ठ हो। इतने दिनो से तुम हम लोगो का भरण-पोषण कर रहे हो। इस समय मेरी इच्छा है कि तुमको देखूँ। अतएव लिखता हूँ कि अगर तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक हो तो तुम एक दिन के लिए आकर मेरी इच्छा पूर्ण करो। इति ५ पौष।

शुभानुध्यायि

श्रीठाकुरदासशर्म्मण।

विद्यासागर यह पत्र पाते ही पिता के दर्शन करने के लिए काशी गये। कई दिन पिता के पास रह कर और उनके लिए सब प्रकार सुख और सुभीते का प्रबन्ध करके फिर कलकत्ते चले आये। उसके बाद १४ चैत्र को ठाकुरदास की बीमारी की खबर पाकर विद्यासागर को फिर काशी जाना पड़ा। परिवार के प्राय सभी लोग एक एक करके

पहुँच गये । सन् १२८३, १ वैशाख, को सन्ध्या से पहले ठाकुरदास ने पुत्रों के हाथों पर शरीरत्याग किया । पिता के मरने पर भी ईश्वरचन्द्र अनाथ बालक की तरह रोये थे । विलम्ब होते देख कर सबने उनको उनके कर्त्तव्य (मृतकसंस्कार) की याद दिलाई । उन्होंने शान्त भाव से घड़ी भर अपेक्षा की और फिर वह किसी तरह का आडम्बर न करके भाइयों और आत्मीयों की सहायता से शव को मणिकर्णिका घाट पर ले गये । सहायता करने के लिए अनेक लोग उपस्थित थे, किन्तु विद्यासागर ने इस काम में किसी की सहायता लेना पसन्द नहीं किया । अन्त्यष्टि क्रिया के बाद स्नान-तर्पण आदि करके घर में आकर माता-पिता के शोक से विद्यासागर बहुत ही शिथिल हो गये । सुपण्डित ज्ञानी और चतुर विद्यासागर ने जन्म भर माता-पिता के सुखी करने को ही अपना कर्त्तव्य समझा । माता-पिता के कहे पर चलने को ही वह अपना परम धर्म समझते रहे । इसी विश्वास के अनुसार माता-पिता को देवता समझ कर उन्होंने सदा उनकी सेवा की । आज भक्त के दोनों इष्टदेव नहीं रहे, उन्हें संसार शून्य जान पड़ने लगा । आज माधुरी की मूर्त्ति माता भी नहीं हैं । दृढप्रतिज्ञ, सत्कर्मशील और न्यायनिष्ठ पिता को भी वह अपने हाथों श्मशानभूमि में राख कर आये । इसी से उस दिन उन्होंने बालकों की तरह रोते रोते रात बिता दी । बालकों की तरह रोना उनके लिए अत्यन्त स्वाभाविक था । ठाकुरदास के समान दृढप्रतिज्ञ, धर्म्मनिष्ठ और कर्म्मकाण्डी आदर्श हिन्दू-गृहस्थ बहुत कम देख पड़ते हैं । वह धर्म समझ कर घर के सब काम करते थे । धर्म ही समझ कर उन्होंने आप सब तरह के कष्ट उठाये, किन्तु ईश्वरचन्द्र को पढ़ाने-लिखाने का अच्छा प्रबन्ध करने में कुछ कसर नहीं उठा रक्खी । उन्होंने पुत्र का ज्ञान बढ़ाने के लिए दिन रात परिश्रम किया । अपनी मामूली आम-

दनी से ही वह यथासम्भव अपने परिवार को अनेक अच्छे कामों मे लगाये रखते थे। इसी से ईश्वरचन्द्र भी ऐसे परोपकारी और लोक-सेवा-परायण निकले। लडकपन मे ही उन्होने अपने घर मे इन शुभकार्यो की शिक्षा पाई थी। बहुत से अनाथ बालक विद्यासागर के वीरसिह के घर में रहते खाते-पीते और पढत लिखते थे। उन्होने कभी इस बात का अनुभव नहीं किया कि हम पराये घर मे पल रहे हैं। इसका कारण यही था कि जो भोजन ठाकुरदास और उनका प्यारा पोता करता था वही भोजन उन बालको को भी मिलता था। उनके साथ वर्ताव भी बहुत अच्छा किया जाता था। ऐसे उदार लोकहितैषी बाप के बेटे विद्यासागर का दयासागर होना स्वाभाविक ही था। सर जेम्स मिल, जान स्टुअर्ट मिल को सुशिक्षा का प्रबन्ध करके जगत् मे अमर हो गये हैं। ठाकुरदास भी अपने अध्यवसाय और साधना से ईश्वरचन्द्र को सुशिक्षित और समाज का सुहृद् बना कर जगत् मे अमर पदवी पा गये हैं। मिल ने पिता के मरने पर अपने को अनाथ बालक के समान असहाय समझा था। ईश्वरचन्द्र भी पिता के मरने पर कटे हुए पेड की तरह जमीन पर गिर पडे थे।

ठाकुरदास अपने गाव के लोगो पर ऐसे अनुकूल थे कि उनके बदी करने पर भी कभी उनसे बदी करने का इरादा नही किया। गांव में कुछ ऐसे आदमी भी थे जो विधवाविवाह के विरोधी थे, और इसी कारण मौका पाते ही ठाकुरदास को सताने के लिए तैयार रहते थे। प्रसङ्गवश विद्यासागर ने एक बार जहानाबाद के तत्कालीन डिपुटी-मजिस्ट्रेट ईश्वरचन्द्र घोषाल से यह बात कही। घोषाल महाशय दौरे के लिए निकले, तब घूमते घामते वीरसिह मे पहुँचे। ठाकुरदास ने उनकी बडा खातिर की। उन्होंने ठाकुरदास से कहा—विद्यासागर से सुना है कि गाव के कुछ लोग आप पर बडा अत्याचार करते हैं।

उनके नाम मुझे बता दीजिए। ठाकुरदास ने हँस कर कहा—वह कलकत्ते मे रहता है, न-जाने किसके मुँह से क्या सुन कर तुमसे क्या कहा है। उसकी बात पर यहाँ किसी को कुछ न कहना। यहाँ के सब लोग सदा मुझ पर प्रसन्न रहते है। घोषाल बाबू से इतना कह कर चुपचाप गाव वालो को खबर दे दी कि "विधवाविवाह-विरोधी दल की दुष्टता का हाल न-जाने कहाँ सुन कर हाकिम यहा आये हैं और मुझसे ऐसे लोगो के नाम पूछते हैं। मैंने किसी का भी नाम नहीं लिया, बल्कि यह कह दिया कि सबसे मेरा खूब मेल है। तुम लोग एक एक करके मेरे साथ चल कर हाकिम के सामने हो जाओ। बस, इतने ही मे सब गोलमाल मिटा जाता है"। ऐसे लोग भी बहुत कम देखने को मिलते हैं।

मानसिक उद्वेग और उत्तेजना के कारण पिता की मृत्यु के दूसरे दिन सवेरे से ही विद्यासागर का शरीर भी शिथिल हो पडा। उनके भी हैजा होने के लक्षण देख पडने लगे। उनकी अवस्था देख कर सब लोग बहुत ही भयभीत और चिन्तित हो पडे। करीब करीब सभी ने उसी दिन काशी छोड कर कलकत्ते जाने की सलाह दी। विद्यासागर की इच्छा थी कि वहीं श्राद्धकृत्य समाप्त कर कलकत्ते जायँ। उन्होने और लोगो को भी यही राय दी थी। किन्तु अशौच की हालत मे दवा खाना मना होने के कारण उसी रात को कलकत्ते आने की ठहरी। कलकत्ते मे आकर धीरे धीरे तबीयत सुधरने लगी। यथासमय श्राद्ध आदि कृत्य समाप्त करके बहुत दिनो तक विद्यासागर एकान्तवास करते रहे। सहज ही कभी किसी काम मे लिप्त न होते थे। खास जरूरत के मारे किसी के बहुत अधिक अनुरोध करने पर उसके यहाँ जाते थे, नहीं तो हमेशा एकान्त मे रहते थे। इस एकान्त-वास के समय ज्ञानचर्चा और होमियोपेथी चिकित्सा-शास्त्र का

अनुशीलन ही उनके जीवन के शेष भाग का प्रधान कर्त्तव्य हो गया था।

शरीर की अवस्था दिन दिन खराब होते देख कर विद्यासागर ने अपनी सम्पत्ति और उसके आय-व्यय के बारे में समय समय पर कई 'विल' लिखे थे। उनके अन्तिम 'विल' का जो अंश सर्वसाधारण के जानने लायक है वह यहाँ पर उद्धृत किया जाता है —

१। मैं अपनी इच्छा से भलेचंगे और सचेत रहने की अवस्था में अपनी सम्पत्ति की अन्तिम व्यवस्था करता हूँ। इस व्यवस्था से मेरी पहले की की हुई सब व्यवस्थायें रद्द हो गईं।

२। चौगाछा-निवासी श्रीयुत कालीचरण घोष, पाथरा-निवासी श्रीयुत क्षीरोदनाथसिंह, मेरे भानजे जनपुर-निवासी श्रीयुत वेणी-माधव मुखोपाध्याय, इन तीन आदमियों को मैं इस अन्तिम व्यवस्था का कार्य्यनिरीक्षक (ट्रस्टी) नियत करता हूँ। ये लोग इस विल के अनुसार सब काम करेंगे।

६। मेरी सम्पत्ति की आमदनी से मेरे पोष्य परिवार के आदमी, कुछ निरुपाय जाति-कुटुम्ब और आत्मीय पलते हैं और अन्यान्य कई कार्य्यों का खर्च चलता है। मेरे महाजन इस प्रकृति के आदमी नहीं हैं कि वे इन सब खर्चों को बिलकुल बन्द करके अपना अपना रुपया वसूल करना चाहें। कार्यनिरी-क्षक लोग उनकी सम्मति लेकर ऐसी व्यवस्था करेंगे कि इस विल में लिखी हुई वृत्तियों आदि का देना बन्द न हो और धीरे धीरे ऋण भी चुका दिया जाय।

[आत्मीय स्वजन और बन्धुबान्धवों के लिए और मरे हुए आत्मीयों और इष्टमित्रों के परिवार के लिए विद्यासागर ने जो मासिक दान विल में लिखा है उसकी कुल रकम ५६१) रु० है

श्रौर उसमे वृत्तियाँ ४५ हैं। इनके सिवा जरूरत होने पर अन्य छः आदमियो के लिए कुल १०५) रु० की वृत्ति लिख दी थी। इन वृत्तियो के देने पर विद्यासागर ने कार्यनिरीक्षको पर इस बात का जोर दिया था कि कुछ खास खास बातो पर वे दृष्टि रक्खे। अगर उनकी मर्जी के विरुद्ध बाते देख पड़ें तो उन वृत्तियो के बन्द कर देने की बात भी लिखी हुई है।]

१४। मेरे न रहने पर मेरी सम्पत्ति की आमदनी से जिस मद्द में जितना खर्च होना चाहिए सो नीचे बतलाया जाता है—

१—जन्मभूमि वीरसिंह गाँव मे मेरे स्थापित स्कूल के लिए	१००)
२— ,, ,, चिकित्सालय के लिए	५०)
३— ,, ,, अनाथ श्रौर निरुपाय लोगो को	३०)
४—विधवाविवाह के लिए	१००)
कुल	२८०) रुपये

[इस सूची के देखने से स्पष्ट जान पड़ता है कि विद्यासागर को किन कामो पर सबसे अधिक अनुराग था। इस देश मे शिक्षा-प्रचार श्रौर विधवाविवाह चलाने के लिए उन्हे जन्म भर अनुराग रहा। उनके इस वसीयतनामे मे भी इस बात का विशेष परिचय प्राप्त होता है।]

१५। यदि श्रीयुत जगन्नाथ चट्टोपाध्याय, श्रीयुत उपेन्द्रनाथ पालित श्रौर श्रीयुत गोविन्दचन्द्र गुह, ये तीनो आदमी मेरे देहान्त के समय तक मेरे पास परिचाररूप से रहें तो कार्य्य-निरीक्षक लोग इनमें से हर एक को एकमुश्त ३००) रु० देगे।

१८। इस समय मेरी सम्पत्ति की जो आमदनी है वह आगे चल कर कम हो जाय तो इस विल मे मैंने जिसे जो देने की व्यवस्था की है उसमें अपनी समझ के माफिक कार्यनिरीक्षक लोग कमी कर सकते हैं।

१६। आवश्यक जान पडने पर कार्य-निरीक्षक लोग मेरी सम्पत्ति का कोई हिस्सा बेच सकते हैं।

२०। मेरी लिखी और मेरे द्वारा प्रचारित पुस्तकें संस्कृत प्रेस के पुस्तकालय में बिकती हैं। मेरी बडी अभिलाषा है कि श्रीयुत ब्रजनाथ मुखोपाध्याय जब तक जीवित और पुस्तकालय के अधिकारी रहें तब तक मेरी पुस्तकें इसी जगह बिकें। किन्तु इस समय जिस सुन्दर ढँग से पुस्तकालय का काम चल रहा है उसमें कुछ व्यतिक्रम हो और इस कारण कार्य में हानि और असुविधा जान पडे तो कार्य्य-निरीक्षक लोग दूसरी जगह या दूसरे ढँग से पुस्तकों के बिकने की व्यवस्था कर सकते हैं।

[अनेक कारणों से विद्यासागर की जिन्दगी में ही यह व्यतिक्रम हो चुका था।]

(ह०) श्रीईश्वरचन्द्र विद्यासागर।

मु० कलकत्ता।

विल के गवाह।

श्री राजकृष्ण मुखोपाध्याय।

श्रीराधिकाप्रसन्न मुखोपाध्याय।

श्रीगिरिशचन्द्र विद्यारत्न।

श्रीश्यामाचरण दे

श्रीनीलमाधव सेन (डाक्टर)।

श्री योगेशचन्द्र दे।

श्रीविहारीलाल भादुडी।

श्रीकालीचरण घोष।

इस विल की तारीख बँगला सन् १२८७, १८ ज्येष्ठ, है। इसके बाद बहुत दिनों तक बन्धु-बान्धवों के आगे उन्होंने इस विल को

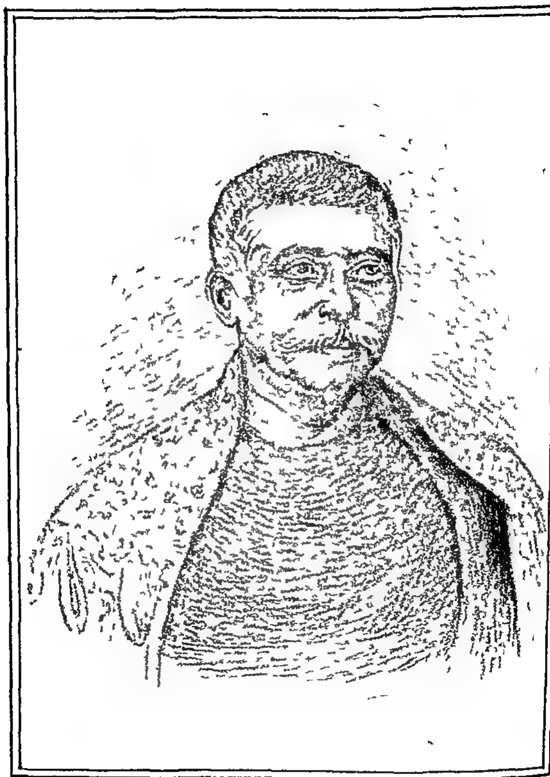
उधर विद्यासागर ने भी ऊपर से नाती की यह बात सुनी । इस बात की भनक कान में पडते ही विद्यासागर ने नाती को अपने पास बुलाया और बडे क्षोभ से बहुत देर तक रोने के बाद उन्होंने कहा—"तू मुझे गैर समझता है । वह (दामाद) जीता होता तो जो तेरे लिए करता उससे कम क्या मैं कर रहा हूँ ?" अन्त को सुरेशचन्द्र ने अपनी नासमझी और अपना दोष स्वीकार करके माफी माँगी ।

विद्यासागर एक, दो, या इससे अधिक, किन्तु थोडे ही बन्धु-बान्धवों को निमन्त्रण देकर किस तरह उन्हें भोजन कराते थे, यह बात पहले ही लिखी जा चुकी है । किन्तु इस सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख यहाँ आवश्यक जान पडता है । एक बार रायबहादुर रामगति मुखोपाध्याय और श्रीकृष्णपुर-निवासी जमींदार श्रीयुत द्वारकानाथ मित्र को विद्यासागर ने न्योता दिया । साथही द्वारका बाबू के एक छोटे लडके को भी न्योता दे आये । आहार के समय विद्यासागर यह बतला रहे थे कि किस तरह कौन तरकारी बनाई है । मित्र महाशय का छोटा लडका भोजन की भारी तैयारी की धारणा न कर सकने के कारण बैठा बैठा मुँह ताक रहा था । विद्यासागर ने पास बैठ कर पहले उसे भोजन करने का तरीका बतलाया । किन्तु उससे भी उस बालक के लिए सुविधा न होते देख कर जूता उतार कर अपने हाथ से माता की तरह कौर बना कर आपही उसे खिलाने लगे । सरलता, उदारता और सेवा का भाव इस घटना में कैसे सुन्दर रूप से व्यक्त हुआ है ! इसके सिवा ऐसे भोज आदि के अवसर पर वह देशी पद्धति के अनुसार ढाई पहर तक बिना भोजन किये रहते थे और ब्राह्मण से लेकर नीच जाति के लोगों तक को भोजन कराये बिना आप कुछ न खाते थे । अनेक मीठी बातों से अभ्यागतों की अभ्यर्थना करके अन्त तक

खडे ही रहते थे। दुर्भाग्यवश आज कल इस देश में ऐसे गृहस्थ बहुत कम देख पड़ते हैं।

सन् १२८३ के शेप भाग में, बादुड बागान के घर मे आने के पहले, विद्यासागर प्राय बाबू राजकृष्ण बन्द्योपाध्याय के घर में रहते थे। इस कारण इस परिवार के बालक, बूढे, सभी पर उनको विशेप स्नेह हो गया था। प्रथम नौकरी की अवस्था से लेकर धीरे धीरे विधवाविवाह आदि सभी कार्यों मे राजकृष्ण बाबू विद्यासागर के सहायक रहे। बहुत दिनो तक एक साथ रहने के कारण इन दोनो मित्रो में विशेष घनिष्ठता हो गई थी। विशेप कर राजकृष्ण बाबू की पोती, जो कुछ ही दिनो तक जीवित रही, विद्यासागर को बहुत प्यारी हो गई थी। बालिका का नाम था प्रभावती। उस बालिका का शोक विद्यासागर के हृदय में चिरस्थायी हो गया था। विद्यासागर ने ४। ५ पृष्ठ की एक छोटी सी "प्रभावतीसभापण" नामक पुस्तक लिख कर अपने चिरस्थायी शोक को प्रकट किया था। इस प्रकार छोटे बडे अनेक कारणो से राजकृष्ण बाबू और विद्यासागर मे सगे भाई की ऐसी घनिष्ठता हो गई थी। शुरू जवानी मे राजकृष्ण बाबू ने संस्कृत सीखने के लिए विद्यासागर से मैत्री की थी। ईश्वरचन्द्र ने मरते दम तक उस मित्रता को निवाहा।

विद्यासागर की मित्रमण्डली के नाम लिख देना भी उचित जान पडता है। मित्रों में से किसी किसी ने उनको क्लेश भी दिया। किन्तु फिर भी उनकी मित्रमण्डली इस देश के लिए गौरव की वस्तु है। कालीकृष्ण मित्र, प्रसन्नकुमार सर्वाधिकारी, व्रजनाथ मुखोपाध्याय, अन्नदाप्रसाद बन्द्योपाध्याय, द्वारकानाथ मित्र, श्यामाचरण दे, अक्षयकुमार दत्त, राजकृष्ण बन्द्योपाध्याय, गिरिशचन्द्र विद्यारत्न, द्वारकानाथ ..., प्यारीचरण सरकार, कालीचरण घोप, रामतनु लाहिडी, ...गोचरण बन्द्योपाध्याय, राजनारायण वसु, आनन्दकृष्ण वसु



Rajkrishna Banerjea

नड़े ही रहते थे। दुर्भाग्यवश आज कल इस देश में ऐसे गृहस्थ बहुत कम देख पड़ते हैं।

सन् १२८३ के शेष भाग में, बादुड़ बागान के घर में आने के पहले, विद्यासागर प्राय बाबू राजकृष्ण बन्द्योपाध्याय के घर में रहते थे। इस कारण इस परिवार के बालक, बूढ़े, सभी पर उनको विशेष स्नेह हो गया था। प्रथम नौकरी की अवस्था से लेकर धीरे धीरे विधवाविवाह आदि सभी कार्यों में राजकृष्ण बाबू विद्यासागर के सहायक रहे। बहुत दिनों तक एक साथ रहने के कारण इन दोनों मित्रों में विशेष घनिष्ठता हो गई थी। विशेष कर राजकृष्ण बाबू की पोती, जो कुछ ही दिनों तक जीवित रही, विद्यासागर को बहुत प्यारी हो गई थी। बालिका का नाम था प्रभावती। उस बालिका का शोक विद्यासागर के हृदय में चिरस्थायी हो गया था। विद्यासागर ने ४। ५ पृष्ठ की एक छोटी सी "प्रभावतीसभाषण" नामक पुस्तक लिख कर अपने चिरस्थायी शोक को प्रकट किया था। इस प्रकार छोटे बड़े अनेक कारणों से राजकृष्ण बाबू और विद्यासागर में सगे भाई की ऐसी घनिष्ठता हो गई थी। शुरू जवानी में राजकृष्ण बाबू ने संस्कृत सीखने के लिए विद्यासागर से मैत्री की थी। ईश्वरचन्द्र ने मरते दम तक उस मित्रता को निबाहा।

विद्यासागर की मित्रमण्डली के नाम लिख देना भी उचित जान पड़ता है। मित्रों में से किसी किसी ने उनको क्लेश भी दिया। किन्तु फिर भी उनकी मित्रमण्डली इस देश के लिए गौरव की वस्तु है। कालीकृष्ण मित्र, प्रसन्नकुमार सर्वाधिकारी, व्रजनाथ मुखोपाध्याय, अन्नदाप्रसाद बन्द्योपाध्याय, द्वारकानाथ मित्र, श्यामाचरण दे, अक्षयकुमार दत्त, राजकृष्ण बन्द्योपाध्याय, गिरिशचन्द्र विद्यारत्न, द्वारकानाथ विद्याभूषण, प्यारीचरण सरकार, कालीचरण घोष, रामतनु लाहिड़ी, डाक्टर दुर्गाचरण बन्द्योपाध्याय, राजनारायण वसु, आनन्दकृष्ण वसु

आदि देश के बड़े आदमी उनके मित्र थे और वे इसको अपने लिए बड़े गौरव की बात समझते थे। ये लोग सुख दुख में विद्यासागर से सलाह लेते थे और परस्पर मिल कर अपना दुखड़ा भी रोते थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसे दुर्लभ मित्रो का मिलना बड़े सौभाग्य की बात है।

विद्यासागर की मित्रता केवल जबानी जमा-खर्च या चिट्ठी-पत्री तक ही सीमाबद्ध न थी। वह मित्रों की सदा खबर रखते थे, मित्रों की विपत्ति अपने सिर पर लेने को और मित्रो के लिए सब कुछ करने को तैयार रहते थे। इस का कुछ आभास पहले दिया जा चुका है। यहाँ पर केवल कई पत्रो और विशेष घटनाओ का उल्लेख किया जाता है।

विद्यासागर ने जब सौभाग्य की पहली सीढ़ी पर पैर रक्खा उस समय बङ्गाल के वर्त्तमान सुप्रसिद्ध वक्ता बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के पिता दुर्गाचरण बाबू के साथ उनकी निष्कपट मैत्री हो गई। उस मित्रता मे तरह तरह के परिवर्तन होने पर भी विद्यासागर मरण-काल तक मृत मित्र के परिवार की खबर लेते रहे और सुरेन्द्र बाबू को सब तरह की सहायता पहुँचाते रहे। इँगलेंड मे जब सुरेन्द्र बाबू सिविलसर्विस की परीक्षा देने गये थे उस समय उनकी अवस्था के बारे मे गड़बड़ी मच गई थी। विद्यासागर ने ही माननीय जज द्वारका-नाथ मित्र आदि से सलाह करके सुरेन्द्र बाबू की अवस्था का यथार्थ विवरण भेज कर उन्हे इस विपत्ति से उबारा था। फिर जब अन्य प्रकार के मामले मे सुरेन्द्र बाबू को प्यारा सिविलियन सुख छोड़ना पड़ा था उस समय भी विद्यासागर ने ही सुरेन्द्र बाबू को सादर अपने मेट्रोपोलिटन कालेज मे मास्टरी दिलाई थी।

उस समय के मित्रों में बाबू प्रसन्नकुमार सर्वाधिकारी से विद्यासागर की बड़ी गहरी मित्रता थी। अन्तकाल के समय जीवन की

एक भारी पारिवारिक घटना के उपलक्ष में सर्वाधिकारी महाशय ने जो खेद और गहरे दुःख से भरा हुआ कातरोक्ति-पूर्ण पत्र लिखा था वैसा घर के भेद से भरा पत्र निष्कपट मित्र के सिवा और किसी को कोई नहीं लिख सकता। अन्त को एक साधारण घटना के उपलक्ष में सर्वाधिकारी महाशय ने उदास होकर अभियोगपूर्ण एक पत्र लिखा था। उसके उत्तर में विद्यासागर ने यह पत्र लिखा था —

श्रीश्रीहरि

शरणम् —

श्रीयुत बाबू प्रसन्नकुमार सर्व्वाधिकारी,

भाई!—मैं लगभग पन्द्रह दिन से अधिक अस्वस्थ और एक नाती की कठिन बीमारी से अत्यन्त चिन्तित हो रहा हूँ। इसीसे नौकरों से कह दिया था कि किसी को मेरे पास आने न देना। कहना कि मेरी तबीयत बहुत खराब है, किसी को आने न देना। बहुत लोगों को इस बात से सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने एक एक स्लिप पर अपना नाम-धाम लिख कर मेरे पास भेजना शुरू किया। नौकर उन स्लिपों को मेरे पास ले आते थे। अगर कोई किसी का पत्र लेकर आता था तो वह पत्र भी मेरे पास पहुँचा दिया जाता था। इस तरह की स्लिपें और पत्र नित्य पचीस तक पहुँच जाते थे। एक गोस्वामी के पुत्र को तुमने जो पत्र दिया था वह भी मुझको मिल गया। तुम्हारे जिस पत्र का उत्तर मैं लिख रहा हूँ वह भी मेरे पास पहुँचा दिया गया था। ऐसी अवस्था में केवल तुम्हारे Gentleman's son (भले आदमी के लड़के) के लाये पत्र ही को मुझ तक पहुँचाने के लिए नौकरों के न राजी होने की बात समझ में नहीं आती। तुम्हारा पत्र पाकर मैंने नौकरों से पूछा तो उन्होंने

कहा कि कोई महाशय पत्र लाये थे और हम वह पत्र आप त
पहुँचाने के लिए राजी नहीं हुए, ऐसी वात अगर किसीने कही
तो उसने अन्याय किया है। हमने किसी से यह वात नहीं कही
हम तुम्हारा पत्र न ले जायँगे। जो कोई जब पत्र लाया है तब हम
वह पत्र आपके पास पहुँचा दिया है। जो कुछ हो, विचार करने
नौकरो को अपराधी वनाने का साहस मुझे नहीं होता और
आपको भी झूठा या अपराधी मानने की प्रवृत्ति नहीं होती
तुम यहाँ का हाल कुछ भी नहीं जानते, तुम्हारे Gentleman
son ने जो कह दिया उसी पर निर्भर करके उचित और आव
श्यक समझ कर तुमने मुझे डाट-फटकार वतलाई है। मे
आत्मीय लोग मेरी ओर से वडे निर्दय हैं। मामूली अपरा
के लिए अथवा उसकी केवल कल्पना करके वे मुझे नरक
ढकेला करते हैं। यह धारणा वहुत दिन पहले से मेरे हृदय
जम गई है। इसीसे तुम्हारा पत्र पढ कर मुझे विशेष क्षोभ य
दु ख नहीं हुआ। इति। १५ माघ, १२८७।

त्वदेकशर्म्मशर्म्मण
श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मण

विद्वद्वर श्रीयुत राजनारायण वसु जव नौकरी के कारण कलकत्त
छोड कर मेदिनीपुर गये थे उसके पहलेही विद्यासागर से उनकी
मित्रता हो गई थी। दोनो मित्र एक दूसरे का विशेप आदर करते थे
इस सम्वन्ध का परिचय देनेवाला एक पत्र नीचे उद्धृत किया जाता है —

सादरसम्भाषणमावेदनमिदम्।

आपके सकुशल पहुँचने की खवर पाकर वडी प्रसन्नता
हुई। किन्तु वहाँ जाने से कुछ तवीयत खराव हो जाने का हाल
पढ कर दु ख हुआ। मेदिनीपुर जगह अच्छी है। निस्सन्देह

वहाँ आप जल्द आराम होजायँगे और वहाँ तबीयत भी अच्छी रहेगी। हाँ, यह बात जरूर है कि वह जगह नई है। यहाँ सदा आत्मीय लोगो के बीच मे रहते थे और सर्वदा उन्हे देखते-भालते थे, वहाँ अभी यह बात दुर्लभ है। इस कारण कुछ दिनों तक वहाँ अच्छा न लगगा। किन्तु वहाँ भी शीघ्र ही इष्टमित्र मिल जायँगे। ससार की यही रीति है। आपने लिखा कि Second master अफसरो का प्रियपात्र है। इस कारण उससे वैमनस्य रहना ठीक नहीं है। जहाँ तक हो, उससे मिल कर रहना। और वह नीच पुरुष नहीं हैं। तुम्हारा करही क्या लेंगे, नाखुश होगे, अपने घर मे दो रोटी अधिक खा लेंगे। तुम अपना काम ईमानदारी से करते रहो। धर्म तुम्हारा सहायक होगा।

लोकल कमेटी (Local committee) में जिस साहब को भला समझना उससे कभी कभी मिल लेना भी बुरा न होगा। शायद वहाँ के मैजिस्ट्रेट साफ साहब हैं। मैंने सुना है कि वह भले आदमी हैं, समझदार हैं और विद्याशिक्षा में उन्हे अनुराग भी है।

सदा सावधान रहना। बीच बीच मे कुशल-समाचार लिख कर चिन्ता दूर करते रहना।

भवदेकशर्म्मशर्म्मण
श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मण

श्रीयुत राजकृष्णबन्द्योपाध्याय, बाबू कालीचरण घोष, बाबू श्यामाचरण दे और उनके भाई विमलाचरण दे, डाक्टर नवीनकृष्ण मित्र, बाबू कालीकृष्ण मित्र और आनन्दकृष्ण वसु आदि लोगो के पास सदा रहते थे, इसलिए इनके साथ पत्रव्यवहार करने का नियो-



৺ শ্যামা চরণ দে।

स्वर्गीय श्यामाचरण दे।

वहाँ आप जल्द आराम होजायँगे और वहाँ तबीयत भी अच्छी रहेगी। हाँ, यह बात जरूर है कि वह जगह नई है। यहाँ सदा आत्मीय लोगों के बीच में रहते थे और सर्वदा उन्हें देखते-भालते थे, वहाँ अभी यह बात दुर्लभ है। इस कारण कुछ दिनों तक वहाँ अच्छा न लगेगा। किन्तु वहाँ भी शीघ्र ही इष्टमित्र मिल जायँगे। संसार की यही रीति है। आपने लिखा कि Second master अफसरों का प्रियपात्र है। इस कारण उससे वैमनस्य रहना ठीक नहीं है। जहाँ तक हो, उससे मिल कर रहना। और वह नीच पुरुष नहीं हैं। तुम्हारा करही क्या लेंगे, नाखुश होंगे, अपने घर में दो रोटी अधिक खा लेंगे। तुम अपना काम ईमानदारी से करते रहो। धर्म तुम्हारा सहायक होगा।

लोकल कमेटी (Local committee) में जिस साहब को भला समझना उससे कभी कभी मिल लेना भी बुरा न होगा। शायद वहाँ के मैजिस्ट्रेट साक साहब हैं। मैंने सुना है कि वह भले आदमी हैं, समझदार हैं और विद्याशिक्षा में उन्हें अनुराग भी है।

सदा सावधान रहना। बीच बीच में कुशल-समाचार लिख कर चिन्ता दूर करते रहना।

भवदेकशर्म्मशर्म्मणः
श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मणः

श्रीयुत राजकृष्णवन्द्योपाध्याय, बाबू कालीचरण घोष, बाबू श्यामाचरण दे और उनके भाई विमलाचरण दे, डाक्टर नवीनकृष्ण मित्र, बाबू कालीकृष्ण मित्र और आनन्दकृष्ण वसु आदि लोगों के पास सदा रहते थे, इसलिए इनके साथ पत्रव्यवहार करने का विद्या-

सागर को अधिक अभ्यास न था। किन्तु इन लोगो मे से किसी पर किसी प्रकार की विपत्ति आ पडने पर विद्यासागरजी अपने सगे से भी बढ कर स्नेहममता दिखलाते और सेवा-सुश्रूषा करते थे।

बाबू श्यामाचरण दे के यहाँ एक पारिवारिक दुर्घटना हो जाने पर विद्यासागर ने ही किसी तरह सबको खिलाया-पिलाया था। श्याम बाबू की जवान कन्या बहुत थोडी अवस्था मे ही विधवा हो गई थी। इस दारुण विपत्ति से घर के सब लोग लोट लोट कर विलाप कर रहे थे। सबको उठा कर शान्त कर विद्यासागर ने खुद शर्बत बनाया और पिलाया। जब तक इस परिवार के सब लोग स्वस्थ नहीं हुए तब तक विद्यासागर नित्य जाकर सबको समझाते बुझाते और सबके बहलान की चेष्टा बराबर करते रहे।

एक समय बारासात-निवासी कालीकृष्ण मित्र बहुत ही बीमार हो गये थे। डाक्टरो की सलाह से उन्हे गङ्गा पर नाव के ऊपर बहुत दिनो तक रहना पडा था। उस समय सच्चे मित्र विद्यासागर उनके साथ रहे थे। विद्यासागर के मित्रों में से एक कायस्थ-परिवार के किसी प्रतिष्ठित पुरुष की एक स्त्री विद्यासागर को पिता कहती थीं। किन्तु वह पागल थी। विद्यासागर के सिवा और कोई उसे भोजन नहीं करा सकता था। विद्यासागर छ महीने तक दस बजे के समय उसे भोजन कराने के लिए बराबर जाते रहे। वर्द्धवान-निवासी डाक्टर गङ्गानारायण मित्र मुझसे कहते थे कि उनके परिवार में किसी तरह का सुख-दुख का काम आ पडने पर विद्यासागर से सलाह लिये बिना कुछ न होता था। विद्यासागर चाहे जहाँ हों, इस परिवार के किसी आदमी के बीमार होने पर उसे कलकत्ते ले जाना और उसकी चिकित्सा कराना विद्यासागर के ऊपर निर्भर था। गङ्गा बाबू कहते थे कि वह ब्राह्मण और हम लोग कायस्थ थे। किन्तु यह भेद हमको

भूल जाता था। हम लोग उन्हें सदा अपना अभिभावक, सगा और बड़ा समझते थे।

वह इस तरह न जाने कितने परिवारों पर स्नेहदृष्टि रखते थे। उन परिवारों का साधारण वर्णन भी इस पुस्तक में असम्भव है। वह मित्रों की सेवा के लिए सदा कान्दी, कृष्णनगर, वर्द्धवान, बरीसाल, कलकत्ता, काशी, ढाका, मेदिनीपुर आदि स्थानों में दौड़ाधूपा करते थे। मित्रों को विपत्ति से छुड़ाने और सुखी बनाने में वह अपना सर्वस्व लगा देने के लिए, अपने को बेच डालने तक के लिए, तैयार थे। इसके लिए कोई भी बात ऐसी न थी जो उनकी शक्ति के बाहर हो।

विद्यासागर को उनके मित्र कैसे आदर की दृष्टि से देखते थे और कैसा अपना हितकारी समझते थे, यह बात दिखलाने के लिए उनके कुछ स्नेहपात्र मित्रों के पत्र यहाँ पर उद्धृत किये जाते हैं।

18th June 1874

MY DEAR SIR

I am not doing well no fever but no improvement And in addition I have got return of the asthma, thanks to the foul weather prevailing since yesterday Have you written to Lokenath Babu (Dr Lokenath Maitra)? I have become impatient I must go before "Ekadasi, or I am sure to have a relapse of the fever, with all attendant troubles If you want to save me do something quick to send me away

Yours affectionately,

MAHENDRA LAL SARCAR

अर्थात्, प्रिय महाशय, मेरा शरीर अच्छा नहीं है। ज्वर नहीं है, किन्तु किसी तरह का फायदा भी नहीं जान पड़ता। उसके ऊपर कल से साँस फूलने लगी है। कल से बदली ने आकर और भी सलूक किया है !! आपने क्या लोकनाथ बाबू

को लिखा था ? मैं बहुत ही चिन्तित हो रहा हूँ। एकादशी के पहले मुझे जाना ही होगा। नहीं तो सब व्याधियो को साथ लेकर ज्वर फिर दिखाई देगा। आप यदि मुझे बचाना चाहे तो शीघ्र ही मुझे यहाँ से अलग करने का उपाय करे।

ढाका,
७ अगहन, १२८०

जगदीश शरणम्।

श्रीचरणकमले असंख्यप्रणामपूर्वक निवेदनमिदम्—

+ + + आपकी पुस्तकें आगामी बुधवार के जहाज से रवाना होगी। मुझे मङ्गलवार को तीसरे पहर आपका पत्र मिला था। समय मिलता तो मैं उसी दिन पुस्तके रवाना कर देता। मैं इन पुस्तको का मूल्य न लूँगा। मैंने अपने लिए, दो तीन साल हुए, कलापव्याकरण की सब पुस्तको का संग्रह किया था। उनमे 'आख्यात' को छोड कर और सभी पुस्तके अच्छे पण्डितो के घर की हैं। मैंने कलकत्ते में रहने के समय ही यह सङ्कल्प कर लिया था कि ये पुस्तके आपको उपहार मे दूँगा। उसी सङ्कल्प के अनुसार आगामी जहाज से पुस्तके रवाना करूँगा। यदि महाशय इन पुस्तको को न स्वीकार करेंगे अथवा मूल्य देना चाहेंगे तो मुझे सचमुच बडा दुःख होगा। आपको मन से पूजा कर सकने वाले किसी आदमी से साबिका नहीं पडा। इसी से आप दया करना जिस तरह जानते हैं उस तरह शायद पूजा और भक्ति करने को नहीं जानते। किन्तु मेरी यह धारणा है कि आपके अलौकिक हृदय की शक्ति का असर जिस पर एक बार पड गया है, आपके अलौकिक स्वभाव-सौन्दर्य को देख कर एक बार जो चित्रकार की तरह मुग्ध हो चुका है, वह

आपके लिए प्रसन्नतापूर्वक प्राण तक दे सकता हूँ। मेरे इस तरह लिखने की बेअदबी को माफ कीजिएगा। किन्तु आपको जैसा समझता हूँ उसका शतांश भी तो लिख नहीं सकता।

आपका आश्रित सेवक
श्रीकालीप्रसन्न घोष।

इस तरह सैकड़ों पत्रों के द्वारा यह दिखलाया जा सकता है कि विद्यासागर के मित्र और स्नेहपात्र लोग श्रद्धा और भक्ति के साथ सदा उनको सिर नवाते थे और अपनी और परिवार की आपत्तियों के समय उनका सहारा लेते थे। डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार मुझ से कहते थे कि वह कठिन रोग से पलँग पर पड़े मौत की घड़ियाँ गिन रहे थे तब विद्यासागर सदा उनके सिरहाने बैठे रहते थे। जब उनको होश होता था तब वह विद्यासागर को अपने पास बैठा पाते थे। क्रमश एक समय रोगी की हालत ऐसी खराब हो गई कि डाक्टर और दवा के बदलने की जरूरत जान पड़ी। होमियोपेथी दवा के बदले किसी एलोपेथी दवा करने वाले अँगरेज डाक्टर को बुलाने की ठहरी। तब विद्यासागर ने अपनी जिम्मेदारी से एलोपेथिक डाक्टर को बुलाना रोक दिया। होमियोपेथी से ही रोग अच्छा हो गया।

मित्रवर माननीय जज द्वारकानाथ मित्र की बीमारी के समय भी खाना-पीना सोना छोड़ कर पास रह कर विद्यासागर ने उनकी सेवा की थी। उनके मरने पर विद्यासागर ने बहुत दिनों तक शोक मनाया था।

आदिब्राह्मसमाज के सभापति श्रद्धास्पद श्रीयुत बाबू राजनारायण वसु ने कन्या के विवाह के समय मित्रवर विद्यासागर से सलाह पूछी थी। उसके उत्तर में विद्यासागर ने यह पत्र लिखा था —

सादरसम्भाषणमावेदनम्।

आपकी कन्या के व्याह के बारे मे मैंने बहुत कुछ सोचा। पर यह निश्चय नहीं कर सका कि आपको क्या सलाह दूँ। साराश यह कि ऐसे मामलो मे सलाह देना किसी तरह सहज काम नहीं है। एक तो आप ब्राह्मधर्मावलम्बी हैं। ब्राह्मधर्म में आपको भारी भक्ति है। देवेन्द्र बाबू ने जिस रीति से अपनी कन्या का व्याह किया है वह यदि आपको ब्राह्मधर्म के अनुकूल जान पडे तो उसी रीति से कन्या का व्याह करना आपके लिए सर्वथा उचित है। दूसरे, यदि आप देवेन्द्र बाबू की स्वीकृत रीति को छोड कर प्राचीन प्रणाली से व्याह करेंगे तो ब्राह्मविवाह के प्रचलित होने मे भारी विघ्न आ पडेगा। यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि ब्राह्म-रीति से व्याह करने पर वह विवाह सिद्ध माना जायगा या नहीं। इन कारणो से इस बारे मे आपको मैं सहसा कुछ सलाह देने मे असमर्थ हूँ। हाँ, यह सलाह मैं अवश्य दूँगा कि आप सहसा किसी पक्ष को ग्रहण न कर लीजिएगा।

इस मामले मे मेरा विशेष वक्तव्य यह है कि ऐसे मामलो मे औरों से पूछना उचित नहीं है। ऐसे मौके पर स्वय सोच कर जैसा जान पडे वैसा करना चाहिए। क्योंकि आप जिससे सलाह लेंगे वह अपने मत और अभिप्राय के अनुसार राय देगा, आपके हिताहित या कर्त्तव्याकर्त्तव्य पर दृष्टि नहीं रक्खेगा।

यह सब सोच कर मैं आपको यही राय देता हूँ कि आप स्वय अपना कर्त्तव्य निश्चित करेंगे तो बहुत अच्छा होगा। + +

भवदीयस्य

श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मणः।

विद्यासागर का पारिवारिक और [illegible]

श्रीयुत बाबू दुर्गा[illegible]

[illegible]

आपकी भेजी हुई ब्रह्ममयी के [illegible] कापियाँ मिलीं। उनमें से एक कापी [illegible] खुद रख ली है। शेष पांच कापियाँ [illegible] को दूँगा। मैंने इस पुस्तक को आदि [illegible] में ब्रह्ममयी के समान उदार और [illegible] कम देख पड़ती हैं। इस जगह यह [illegible] कि यह पुण्यरूपिणी महिला अगर [illegible] स्वभावसिद्ध श्रेष्ठ प्रवृत्तियों का यथार्थ [illegible] सकतीं। ऐसी पत्नी की अकालमृत्यु, [illegible] तक आन्तरिक क्लेश का कारण हो सकती है [illegible] समझ में आजाती है। उस दिन जैसी [illegible] वैसी ही हालत में हूँ। इसी से [illegible]

इति २२ पौष, १२८८

[illegible]

बारासात-निवासी डाक्टर नवीनकृष्ण [illegible] के बाद उसी सूत्र से कासिम-बाजार के [illegible] विद्यासागर का प्रथम परिचय हुआ, और [illegible] मित्रता भी हो गई। राजा कृष्णनाथ के [illegible] मे राजा साहब को बड़ी रुचि थी। उन्होंने [illegible] के बारे में विद्यासागर से सलाह पूछी। [illegible] यदि किसी के साथ विद्यासागर की मित्रता [illegible] गरीबों के पालन आदि अनेक अच्छे कार्य [illegible]

कामो के लिए उन्हे उत्साहित करते थे। राजा कृष्णनाथ के हृदय मे भी विद्यासागर ने इस तरह की परोपकार करने की इच्छा प्रबल कर दी थी। खास कर एक उच्च श्रेणी का कालेज स्थापित करके स्थानीय लोगो के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त करने का सुभीता कर देने की सब तैयारी कर दी गई थी। दैवसयोग से यह सदाशय महात्मा जवानी उतरने के पहले ही स्वर्ग सिधार गये। उनके स्वर्गवास होजाने पर कोमलहृदया दीनवत्सला महारानी स्वर्णमयी सी आई जवानी में ही विधवा हो गई। सब सुख नसीब होने पर भी महारानी को काल-चक्र के फेर से दुखिया बन जाना पडा। कुछ समय बीतने पर, कुछ हृदय का बोझ और चित्त की ग्लानि कम होने पर, स्वर्णमयी देवी ने अपने परलोकवासी स्वामी की इच्छा के अनुसार चल कर अपने देश की सैकडो तरह की भलाई के काम किये। इस कारण विद्यासागर उन पर विशेष श्रद्धा रखते थे। मैंने विद्यासागर के मुख से सैकडो बार महारानी की गुणावली सुनी है। विद्यासागर महाशय प्राय महारानी की लोकवत्सलता के अनेक उदाहरण सुनाया करते थे। खास कर विद्यासागर ख़ुद उनके कृतज्ञ थे। इसके प्रमाण के दो-एक पत्र यहाँ पर उद्धृत किये जाते हैं —

श्रीमती महारानी स्वर्णमयी सी आई महोदयासमीपेषु,

विनयबहुमानशुभाशीर्वादपूर्वक निवेदनमिदम्—

बहुत दिन हुए, एक काम के लिए अत्यन्त आवश्यकता उप-स्थित होने पर, इस समय स्वर्गवासी, अत्यन्त उदार राजीवलोचन-राय दीवानजी ने दयापूर्वक श्रीमती की अनुमति के अनुसार राज-धानीके खजाने से मुझे ७५००) रुपये दिये थे और कहा था कि इन रुपयो का सूद आप को न देना पडेगा, जब सुभीता हो तब अदा कर दीजिएगा।

इस रुपये से मरा जैसा उपकार हुआ है उसे मैं शब्दों के द्वारा जता नहीं सकता। जब तक जियूँगा तब तक यह उपकार मुझे नहीं भूलेगा। लोकोपकार के लिए ही श्रीमती ने जन्म लिया है। देश में अनेक ऐश्वर्यशाली लोग हैं, किन्तु उनमें से कोई भी श्रीमती की तरह सर्व-साधारण से यथार्थ धन्यवाद पाकर उपकृत लोगों के आन्तरिक आशीर्वाद का पात्र नहीं बन सका।

बहुत दिनों तक इस ऋण के चुकाने का सुभीता न होने के कारण मैं बहुत लज्जित था। इस समय वह सुभीता हाथ लगा है। इस पत्र में सात हजार पांच सौ रुपये के नोट भेजता हूँ। अनुग्रहपूर्वक यह रुपया स्वीकार कर के मुझे ऋण से उद्धार कीजिएगा। किमधिकमिति।

नियतगुणानुकीर्त्तनशुभानुचिन्तनकर्मण
श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मण

कासिमबाजार के राजभवन में विद्यासागर के भेजे ७५००) रु० पहुँचने पर महारानी ने प्राप्ति-स्वीकार का जो पत्र लिखा था उसके उत्तर में विद्यासागर ने यह पत्र भेजा था —

श्रीमती महारानी स्वर्णमयी सी आई महोदयासमीपषु,
विनयबहुमानशुभाशीर्वादपूर्वक निवेदनम्—

श्रीमती के अनुग्रहपूर्ण पत्र से राजधानी के कुशलसमाचार प्राप्त कर परम प्रसन्नता हुई। मैं सपरिवार शरीर से अच्छा हूँ। श्रीमती के पत्र में लिखा है कि "मैं यही चाहती हूँ कि मुझ पर श्रद्धा बनी रहे"। इस विषय में मेरा वक्तव्य यही है कि दया और परोपकार आदि गुण ऐसे हैं कि उनकी सभी लोग प्रशंसा करते हैं। ये दोनों गुण संसार में बहुत ही कम मात्रा में देख पड़ते हैं। किन्तु श्रीमती के कामों से इन दोनों गुणों का विशेष परिचय

प्राप्त होता है। ऐसी अवस्था मे श्रीमती के प्रति जिसे श्रद्धा न हो, अथवा जिसकी श्रद्धा डिग जाय, उसे बडा नीच पुरुष समझना चाहिए। किमधिकमिति ८ फाल्गुण, १२८६।

नियतगुणानुकीर्त्तनशुभानुचिन्तनकर्मण
श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मण ।

एक घटना और उल्लेखयोग्य है। विद्यासागर के पुत्र श्रीयुत नारायणचन्द्र विद्यारत्न के व्याह के दूसरे दिन के कार्य सम्पन्न नहीं हुए थे—तैयारी ही हो रही थी—इसी समय कृष्णानगर से डाक-द्वारा यह खबर आई कि बाबू व्रजनाथ मुखोपाध्याय बहुत सख्त बीमार हैं। बचने की आशा बहुत कम है। उन्होने पत्र द्वारा कातर वचनो मे विद्यासागर से अन्तिम विदा माँगी थी। मित्रवत्सल विद्यासागर के सब काम पडे रहे। उन्होने उसी समय डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार को साथ लेकर कृष्णानगर की यात्रा कर दी। पुत्र के व्याह के बाद के कृत्यो की तैयारी करते समय मित्र की बीमारी का हाल सुन कर सब काम काज छोड कर उसी समय इतनी दूर की यात्रा कर देना विद्यासागर ऐसे सहृदय पुरुष का ही काम था। विद्यासागर और उनके स्नेहपात्र डाक्टर सरकार महाशय का यह स्वार्थत्याग और सुहृत्सेवा समाज के लिए आदर्शस्थल है।

विद्यासागर ने अपने एक मित्र को पुत्रवियोग मे सान्त्वना देने के लिए यह पत्र लिखा था —

राय यदुनाथ रायबहादुर,
कृष्णनगर,

सादरसम्भाषणमावेदनमिदम्। आपके यहाँ होनेवाली अत्यन्त उत्कट दुर्घटना का हाल जानकर मुझे आन्तरिक अत्यन्त शोक हुआ। इस भयानक अशुभ घटना के द्वारा आपके हृदय की क्या

दशा होगी, इसका मुझे खूब अनुभव हो रहा है। मैं समझता था कि आप गृहस्थी के मामलों में औरों की अपेक्षा अनेक अंश में सुखी हैं। अभाग्य से आज आप को वैसा समझने का मार्ग बन्द हो गया। संसार एक बड़ा ही विचित्र स्थान है। यह संभव नहीं कि संसार में आकर कोई सब तरह सुखी हो सके।

मुझे आप के लिए उतनी चिन्ता नहीं है। आप अनेक कामों में लगे रहने के कारण प्रायः बहल भी सकते हैं, किन्तु जिसने गर्भधारण की अवस्था से अब तक अनेक कष्ट उठायें हैं उसकी दशा पर विचार करते ही मेरे विषाद की सीमा नहीं रहती। वह जन्म भर के लिए दुखिया हो गई—उनको जन्म भर यह वज्र-पात भूल नहीं सकता। कहने का मतलब यह है कि मा और बाप बनने से बढ़ कर महापातक का भोग और नहीं है। ऐसे पुत्र बहुत कम निकलते हैं जो मा-बाप को सचमुच सुखी बना सकें, ऐसे ही पुत्रों की भरमार है जो बुरे आचरण या अकालमरण के द्वारा मा-बाप को जन्म भर जलाते हैं।

किसी प्रियजन के वियोग में होने वाले हृदयविदारक शोक को सहसा शान्त करने की शक्ति किसी में नहीं है। ऐसी दशा में यह अनुरोध करना या उपदेश देना मेरा उद्देश्य नहीं है कि आप लोग शोक के वेग को रोक कर चित्त को स्थिर करें। मेरी यही प्रार्थना है कि आप लोगों का शोकसन्तप्त हृदय परमेश्वर के अनुग्रह से शीघ्र ही शान्ति को प्राप्त हो।

भवदीयस्य

श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मणः।

रायबहादुर दीनबन्धु मित्र को विद्यासागर अत्यन्त स्नेह की दृष्टि से देखते थे। मित्र महाशय जब कलकत्ते में थे, उस समय दोनों घरों

की स्त्रियो में भी विशेष हेलमेल हो गया था। बीमारी की हालत में मित्र बाबू सुकीयास्ट्रीट मे ही थे। बीमारी के समय चिकित्सा की सुव्यवस्था करने मे उस समय विद्यासागर ने कुछ कसर नहीं रक्खी। मित्र परिवार की भी देखरेख उस समय वही करते थे। दीनबन्धु बाबू की अकालमृत्यु से बँगला के साहित्य मे जो जगह खाली हुई थी उसकी पूर्त्ति आज तक नही हुई। इस क्षति का उल्लेख करके विद्यासागर प्राय विह्वल हो जाया करते थे। उन्होंने मित्र-परिवार की देखरेख भी बहुत दिन तक की थी। कुछ दुधमुहे बच्चों को लिए मित्र बाबू की स्त्री जिस समय चारो ओर अन्धकार देख कर हताश हो रही थीं उस समय विद्यासागर ने ही अपने सगे की तरह सदा उनकी खबर ली, पास जाकर आश्वासन किया और उनके बच्चो को पढाने-लिखाने की सुव्यवस्था तथा आर्थिक सहायता करके मित्र महाशय के प्रति अपने सच्चे स्नेह का परिचय दिया।

डाकृर अन्नदा चरण खास्तगीर को भी अपने भाई के समान स्नेह की दृष्टि से देखते थे। खास्तगीर महाशय ने अनेक विधवाविवाहो मे सहायता की थीं, इसमे दोनो सज्जनो की आत्मीयता और बढ गई थी। डाकृर खास्तगीर महाशय के स्वर्गवास के उपरान्त उनके पुत्र श्रीयुत ज्ञानेन्द्रलाल खास्तगीर ने विद्यासागर को इस परिवारिक शोक की खबर भेजी थी। विद्यासागर बीमारी की हालत मे ही मित्र के घर पहुँचे। ज्ञानेन्द्र बाबू को बुला कर स्नेहपूर्वक गले से लगा कर बालको की तरह रोते रोते कहा—बेटा, तुमने पिता की मृत्यु के पहले मुझे खबर नहीं भेजी। मैं अन्त समय उनसे मुलाकात नहीं कर सका, उनका चेहरा न देख सका, अपने मन के माफिक दवा भी नहीं करा सका। बिल्कुल गैर की तरह तुमने मरने की खबर भेज दी। भैया, तुम्हारे पिता मेरे बडे भारी मित्र और सगे से बढ कर थे।

इस प्रकार की घटनाओं का सिलसिलेवार वर्णन लिखना असम्भव है। ऐसी घटनाओं की सुविस्तृत सूची इतनी बड़ी है—धर्म, जाति या वर्ण का खयाल न करके उन्होंने इतने लोगों का उपकार या सेवा की है कि उसका पूरा विवरण लिखने से ही एक बड़ी पुस्तक बन सकती है। अतएव इस जगह पर इतने उदाहरणों से ही पाठकों को सन्तुष्ट होना पड़ेगा। उदारहृदय विद्यासागर माता-पिता के श्राद्ध आदि सामाजिक कामों में तो आस्थावान् हिन्दू थे, किन्तु अन्यान्य विषयों में वह साधारण मनुष्यों से बहुत ऊँचे थे। दीन दुखी मनुष्य चाहे हिन्दू हो, चाहे मुसलमान, वह उसकी सेवा करने में, उसको आराम पहुँचाने में बड़ा आनन्द पाते थे। वह मनुष्यमात्र को एक समाज के अन्तर्गत समझते थे। जिससे उनसे हृदय के मेल से मैत्री हो जाती थी, वह चाहे जिस जाति का हो, उसको वह अपने भाई के समान समझते थे। पौराणिककाल के भारत-साम्राज्य के अधीश्वर आदर्शपुरुष श्रीरामचन्द्रजी ने निषाद को 'मित्र' कह कर गले से लगाया था। वर्त्तमान वर्णाभिमानी भारत सन्तान को विद्यासागर के जीवन में श्रीरामचन्द्रजी की उच्च नीति का सजीव आदर्श देखने को मिलेगा। वह जन्म भर जाति से गुण को ही श्रेष्ठ मानते रहे। अपने बाबा की तरह वह भी जिसे आचरण और गुणों में बड़ा देखते थे उसे ही आदर देते और अपने समकक्ष समझते थे। ऐसा आदर देने में वह ब्राह्मण या शूद्र का खयाल न करते थे। इस मामले में उन्होंने आर्य ऋषियों को ही अपना पथप्रदर्शक और आदर्श माना है।

विद्यासागर सामाजिक जीवन में बहुत ही सुन्दर स्वभाव के आदमी थे। आमोद-प्रमोद, बातचीत और रङ्गरस में वह अद्वितीय थे। एक जगह, विद्यासागर के किसी आत्मीय के यहाँ, दावत थी। वहाँ जाने पर विद्यासागर को मालूम हुआ कि दैवसयोग से बनी

बनाई भोजन की सामग्री खराब हो गई है। निमन्त्रण करने वाले सज्जन को उसी समय दूसरी सामग्री फिर से बनवा कर सबको खिलाना पडेगा। इसमे देर होने से भेद खुल जाने की सम्भावना थी। विद्यासागर ने अपने आत्मीय से बुला कर कहा—"डर क्या है, तुम जहाँ तक शीघ्र हो सब तैयारी करो, मैं इसका जिम्मा लेता हूँ कि कोई ऊबने न पावेगा"। विद्यासागर के मनोहर वार्त्तालाप मे सब लोग ऐसे बहले रहे कि किसी को भोजन में विलम्ब होना नही खला।

स्वनामधन्य पण्डित द्वारकानाथ विद्याभूषण को भी विद्यासागर सगे भाई के समान समझते थे। इनसे बहुत ही निकट का नाता भी था। पण्डित शिवनाथ शास्त्री के पिता श्रीयुत हरानन्द भट्टाचार्य विद्याभूषण के बहनोई थे। इसी से विद्यासागर भी भट्टाचार्यजी का बहनोई का नाता मानते थे। भट्टाचार्य महाशय बहुत दिनो से काशी-वास करने लगे थे। बीच बीच मे जरूरत पडने पर कलकत्ते भी आते थे। विद्यासागर के स्वर्गवास के कुछ दिन पहले एक बार भट्टाचार्य महाशय विद्यासागरजी से मिलने आये थे। उस समय मैं भी वहाँ उपस्थित था। विद्यासागर ने भट्टाचार्यजी को सादर विठलाया। नौकर से तमाखू भर लाने के लिए कह कर भट्टाचार्यजी से कहा—"तुम मर गये हो न ?" भट्टाचार्य ने कहा—"क्यो, मरूँ क्यों ? मरता तो यहाँ आता कैसे ?" विद्यासागर ने हँस कर कहा—"मैं भी तो वही कहता हूँ कि जब तुम वहाँ मरने के लिए गये, तब वहाँ से बिना मरे कैसे आते ?" भट्टाचार्य तमाखू पीने लगे। विद्यासागर ने कहा—"तुम इधर उधर घूमते फिरते हो, जानते हो न कि काशी के बाहर मरने से क्या होना पडता है ?" भट्टाचार्य ने कहा—"सो तो जानता हूँ, लेकिन जरूरत से लाचार होकर कभी कभी आना ही पडता है"।

विद्यासागर ने कहा—"अच्छा गाजे-बाजे पर दम लगाना सीखा है कि नहीं ?" भट्टाचार्य ने सन्नाटे में आकर कहा—"क्यों गांजा पीकर क्या होगा ?" विद्यासागर ने कहा—"अजी अभ्यास कर लेना चाहिए। न जाने—किस समय काम पड जाय। मान लो कि तुम काशी म मरे तब शिव होगे ही। शिव होने से नन्दी भृ गी आदि गण जब गांजे की चिलम जमा कर सामने हाजिर करेंगे तब तुम्हें उसमें मुँह लगाना ही पडेगा। पहले से अभ्यास न होगा तो तुम्हारा इतनी साध का शिवत्व तुम्हारे लिए विडम्बना हो जायगा"।

एक बार किसी काम के लिए राजकृष्णबाबू के बैठकखाने में बैठे हुए कई आदमियों से विद्यासागर बातचीत कर रहे थे। उस बैठक मे जज द्वारकानाथ मित्र और रायबहादुर कृष्णदास पाल भी उपस्थित थे। गांव का एक आदमी बार बार खिडकी से झांक झांक कर देख रहा था। उसको वारम्वार ऐसा करते देख कर विद्यासागर ने उसे बुलाया और पूछा—"क्यो भाई, ताक झांक क्या कर रहे थे ?" उस आदमी ने डरते डरते जवाब दिया कि "मैंने सुना था, जज द्वारकानाथ मित्तिर आये हैं, सो उन्हीं को झाक रहा था"। विद्यासागर ने कहा—"देखने के लिए इस तरह झांकने की जरूरत क्या है ? इनको पहचानते हो ? यह कृष्णदास पाल हैं। और यहाँ जो इनसे भी बढ कर सुन्दर हैं वही जज द्वारकानाथ मित्तिर हैं। अच्छा बतलाओ कौन हैं ?" (इन दोनो सज्जनो में से कोई सुन्दर न था। इस कारण सब लोग जोर से हँस उठे। उस हँसी से शर्मिन्दा होकर वह आदमी भाग गया। विद्यासागर ने एक तीर से तीन निशाने मारे)।

निहायत बेतकल्लुफ लोगों की मण्डली मे खाने-पीने की एक दिल्लगी रक्खी गई थी। भोजनसमिति (Gastronomy Club) नाम की एक छोटी सी मण्डली बनाई गई थी। इस सभा के केवल ६। १०

मेम्बर थे। सभ्यों की पूरी सख्या और नामो का उल्लेख करना जरा कठिन है। इस सभा के केवल चार मेम्बरो के नाम मुझे मालूम हो सके हैं। यथा—१ पेन्शनयाफ़्ता सब-जज और सर महाराज यतीन्द्र-मोहन के वर्त्तमान मैनेजर श्रीयुत द्वारकानाथ भट्टाचार्य, २ मेट्रोपोलिटन के भूतपूर्व अध्यापक प्रसन्नचन्द्र राय, ३ राजकृष्ण वन्द्योपाध्याय और ४ खुद विद्यासागर महाशय। इस सभा के मेम्बर लोग अपने ही मे मे किसी एक के यहाँ, बीच बीच मे, दल बाँध कर जाते और उससे खाने के लिए माँगते थे। घर का मालिक दिल्लगी के तौर पर पहले भोजन देने से इनकार करता था और यो ही बिदा कर देना चाहता था। पीछे सब लोग एकसाथ भोजन करके अपने अपने घर चले जाते थे। कलकत्ते और उसके आसपास के छोटे नगरो में ही इस तरह की दिल्लगी अधिकतर की जाती थी। भवानीपुर मे पेट्रियट-सम्पादक हरिश्चन्द्र बाबू के घर मे और सुप्रसिद्ध वकील बाबू अन्नदा-प्रसाद वन्द्योपाध्याय के यहाँ प्राय यह मण्डली पधारा करती थी। कलकत्ते मे श्यामाचरण दे महाशय के यहाँ और ऐसे ही आत्मीय लोगो के यहाँ इस तरह का भोजन-विभ्राट् सङ्घटित हुआ करता था। एक बार एक गृहस्थ को इस तरह दिक करके इस मण्डली ने खूब माल छके। किन्तु दूसरे दिन मण्डली के एक आदमी (शायद द्वारकाबाबू) के पेट में दर्द होने लगा। सब लोगो ने सेवा-सुश्रूषा करके रोगी को आराम किया। पीडा के समय सेवा करते करते एक आध आदमी ने कहा—इन (रोगी) को मण्डली का मेम्बर न रखना चाहिए। इसके उत्तर मे विद्यासागर ने कहा—नहीं जी, इनका नाम खारिज करने से अधर्म होगा। जो आदमी Martyr to the cause (इस काम में प्राण देने के लिए तैयार) है उसे निकाल देगे तो फिर किसको रक्खोगे ?"

एक बार विद्यासागर के एक भारी फोडा हुआ। जिस समय इस कठिन पीडा का सूत्रपात हुआ उस समय विद्यासागर कर्माटाड मे थे। व्याधि को बढते देख कर बर्दवान चले आये। वहाँ की चिकित्सा से कुछ फायदा न देख कर वह कलकत्ते चले आये। कई दिन चिकित्सा कराने के बाद फोडा नश्तर देने लायक हो गया। इसी समय पारसीबागान के रहने वाले मल्लिक महाशयों की सम्पत्ति के बटवारे का फैसला विद्यासागर के सिर आ पडा। विद्यासागरजी बैठे हुए दीननाथ मल्लिक के साथ फैसले के बारे मे कुछ बातचीत कर रहे थे, वैसे ही डाक्टर चन्द्रमोहन घोष ने अकेले बैठ कर नश्तर दिया, जख्म से पीप और खून निकाल कर मरहम-पट्टी की। मल्लिक बाबू ने कहा—तो फिर डाक्टर बाबू का काम हो न जाने दीजिए, विलम्ब क्यों करते हैं ? उस समय उपस्थित व्यक्तियो को मालूम हुआ कि फोडा बडा ही भयानक था, और अभी अभी उसमे नश्तर दिया जा चुका है। सम्पत्ति का बटवारा करते करते एक फोडे मे नश्तर दे दिया गया और पास के किसी आदमी ने जान न पाया, मामूली हिलना-डुलना कह-आह कुछ भी नहीं ! एक ओर ऐसी दृढता की बाते करते करते नश्तर दिला लिया, चूँ भी नहीं की, और दूसरी ओर ऐसी कोमलता कि दूसरे को रोग या पीडा से दुखित होते देख कर—दूसरे का आर्त्तनाद सुन कर व्याकुल हो जाते थे। एक ओर ऐसा आत्मशासन और दूसरी ओर पराया दुख देख कर ऐसा कातर क्रन्दन। एक ही पुरुष मे इन दोनो भावों का समावेश क्या विचित्र दृश्य नहीं है ? इस दृढता और कोमलता के मेल ने ही उनकी जीवन-व्यापिनी उच्चता और उदारता के सगठन का कार्य्य किया था। इसी में ही उनके जीवन के सौन्दर्य का पूर्ण विकास पाया जाता है।

किसी का कुछ कपडा देना होता था तो खास कर जाड के कपड खरीदने का काम बाबू ब्रजनाथ दे को सौपा जाता था। एक दिन विद्यासागर ने उनसे कहा—"देखा, जब कपडे या शाल आदि की जरूरत पड़ती है तब मैं तुमको ही शाल वाले की दूकान पर भेजता हूँ। एक आदमी किसी काम के लिए सदा कष्ट पाता रहे, यह ठीक नही। तुम मुझे कल साथ ले चल कर दूकान दिखला दो। तो फिर जब दरकार होगी मैं खुद जाकर ले आऊँगा। कल मुझे ले चलना"।

दूसरे दिन ब्रज बाबू आये। उनके साथ विद्यासागर बडे बाजार मे गये। रास्ते में विद्यासागर बडी फुर्ती के साथ चला करते थे। ब्रज बाबू पीछे पीछे और विद्यासागर उनसे बहुत आगे जा रहे थे। कई जगह विद्यासागर को खडे होकर ब्रज बाबू की अपेक्षा करनी पडी। विद्यासागर न कहा—"मैं चलता ही न जाने किस तरह हूँ कि साथ वाले मेरे बराबर चल नही पाते। एक काम करो, तुम आगे आगे चलो, मैं तुम्हारे पीछे पीछे चलूँगा"। रास्ते में जाते जाते यह सलाह ठहरी कि शाल की दूकान मे अपरचित की तरह चलना होगा।

बडे बाजार मे शाल की दूकान पर फिर बाबू ब्रजनाथ पीछे पड गये। विद्यासागर आगे आगे दूकान पर चढ गये। विद्यासागर को देखते ही शालवाला दौडा आया और बोला—"आइए पण्डितजी, आज हमारे बडे भाग्य हैं जो आप पधारे"। विद्यासागर ने ब्रज बाबू से चुपके से कहा—"अजी इसने तो पहचान लिया"। शालवाले ने कहा—क्या पण्डितजी, आग क्या कभी छिपी रहती है राख से"।

विद्यासागर को जिसने कभी देखा नहीं ऐसा आदमी अगर उनके नित्य के कार्यों को कभी देखता तो अवश्य उन्हे सूम समझता। कहीं जाना होता था तो विशेष जरूरत न होने पर वह कभी किराये की गाडी या पालकी पर न जाते थे। वह सदा अपने सबल पैरो का

सद्व्यवहार किया करते थे। एक बार उनको एक काम के लिए कलकत्ते के सियालदह स्टेशन में जाना पड़ा। वहाँ ट्रेन न मिलने से फिर यों ही लौटना भी पड़ा। गाड़ी पर जाने आने का किराया दस आने के लगभग देना पड़ा। घर आकर किराया देने के समय अफसोस करके विद्यासागर ने कहा—ये दस आने व्यर्थ ही देने पड़े। वहाँ पर नारायण बाबू और अन्य कई आदमी बैठे हुए थे। वे इस बात पर हँस उठे। उनको हँसते देख कर विद्यासागर ने कहा—"हँसते क्या हो?" इसके उत्तर में एक आदमी ने कहा—"आपके ऐसे दस आने न-जाने कितने खर्च हो जाते होंगे"। विद्यासागर ने कहा—"क्या मैं ऐसा फिजूलखर्ची करता हूँ?" उस आदमी ने कहा—"क्यों, न-जाने कितने आदमी कितने रुपये आपसे ठग ले जाते हैं"। विद्यासागर ने वैसे ही सरल भाव से उत्तर दिया—"शायद तुम इसी को अपव्यय कहते हो? उसमें और कुछ नहीं तो यह तो होता है कि जिसके हाथ में रुपया दो उसका उपकार होता है। और यह तो 'न देवाय न धर्माय' वाला मामला है। जिसको दिया उसने उसे अपना मेहनताना समझा और उससे मेरा कुछ लाभ नहीं हुआ"। यह सुन कर किसी किसी ने कहा—"यह हमको नहीं मालूम था कि आपके खर्च की नीति इतनी उच्च है"।

विद्यासागर कहीं से कोई चीज खरीदते या मँगाते थे तो उसके ऊपर का लपेटा हुआ कागज और डोरी खोल कर बड़े यत्न से रखते थे। बड़ी कन्या के दोनों पुत्र सदा विद्यासागर के पास ही रहते थे। ये दोनों उस समय बालक ही थे। विद्यासागर महाशय एक तरफ पानी की तरह पैसा बहाते थे और दूसरी तरफ एक चिट कागज या एक टुकड़ा डोरी भी उठा कर रख छोड़ते थे। यह देख कर बालक हँसते थे। एक दिन रात को विद्यासागर के सो जाने पर छोटे नाती

को डोरी की बडी जरूरत पडी । बालक चुपके से आलमारी के ऊपर से डोरी का टुकडा लेने के लिए आया । कमरे में घुस कर आलमारी छूते ही विद्यासागर ने कहा—"वहां पर कौन है ?" कुछ उत्तर नहीं, बालक डर गया । दुबारा फिर पूछने पर उत्तर मिला—"मैं हूँ यतीश" । विद्यासागर ने कहा—"वहां अँधेरे में क्या कर रहा है ?" उत्तर मिला—"जरा सी डोरी लूँगा" । उतनी रात को डोरी की जरूरत का हाल सुन कर विद्यासागर ने कहा—"अच्छा ठहर, मैं देता हूँ । जब मैं इन कागजों और डोरियो को उठा उठा कर हिफाजत से रखता हूँ तब तुम लोग सोचते हो कि यह बुड्ढा कैसा बेवकूफ है, रद्दी कागज और डोरी बटोर बटोर कर रखता है । इस समय चुपके चुपके वही डोरी खिसकाने आये हो ? अच्छा, यह बुड्ढा अगर इन चीजों को बटोर बटोर कर न रखता तो इतनी रात को तुम्हें डोरी कहा से मिलती ?"

कहीं से चिट्ठी आती थी तो उसके सादे कागज को वह काट लेते थे और वे कागज टेबिल के एक किनारे जमा रहते थे । मैंने खुद विद्यासागर को ऐसा करते देखा है । जरूरत पडने पर वह इन्हीं स्लिपों पर छोटे छोटे पत्र लिखते थे । इन्ही कागजों पर किसी किसी पुस्तक की प्रेस-कापी भी लिखी जाती थी ।

एक दिन एक दासी ने हल्दी बाँट कर सिल धोई और वह पानी फेंक दिया । विद्यासागर ने यह देख कर स्नेह के स्वर में कहा—"यह क्या किया ? हल्दी का पानी फेंक दिया" । दासी अवाक् होकर विद्यासागर का मुँह ताकने लगी । फिर उसने कहा—"आपके न-जाने कितने रुपये यों ही फिक जाते हैं उधर आप कुछ भी खयाल नहीं करते और इस हल्दी के पानी का आपको इतना खयाल है" । विद्यासागर ने कहा—"देखो, हल्दी का पानी तरकारी मे छोड दिया

जाता तो वह काम में लग जाता। और, मैं तो रुपया पानी में नहीं फेंक देता, आदमियों को देता हूँ और वह उनके काम आता है। किन्तु यह पानी किस काम आया"।

इन चारों घटनाओं से यह बात स्पष्ट झलकती है कि वह गृहस्थी के कामों में भी बड़े निपुण थे। मामूली से मामूली चीज को भी यत्न से सुरक्षित रखने का उन्हें अभ्यास था। वह सब ओर देख कर मुनासिब खर्च करते थे। वह ऐसी ऐसी छोटी बातों पर तीक्ष्ण दृष्टि रख कर काम करते थे, इसी से बड़े बड़े कामों को सहज में कर डालते थे। उनके समान ऊँचे विचार वाले आदमी के लिए ऐसा करना ही स्वाभाविक था।

ग्यारहवाँ अध्याय।

विद्यासागर और लोक-सेवा।



पुण्य क्षेत्र भारत में शास्त्रानुसार दान एक महापवित्र कार्य समझा जाता है। शास्त्रों में और पुण्यकार्यों की अपेक्षा दान की महिमा बहुत अधिक गाई गई है। इसका एक कारण भी है। वह यह कि दान में स्वार्थत्याग होता है, दान में अलौकिक पवित्र सुख का अनुभव होता है। उस स्वार्थत्याग और दूसरे को सुखी बनाने से हृदय की भारी उन्नति होती है। लोगों के साधारण उपकार करने में भी कुछ कुछ इस बात का आभास पाया जा सकता है। मनुष्य को जब एक बार इस सत्कार्य का मजा मिल जाता है तब वह फिर उसे छोड़ना नहीं चाहता। भक्तशिरोमणि श्रीगौराङ्गदेव ने दो बातों में धर्म का सारांश बतला दिया है। उनका कथन है कि भगवान् के नाम में रुचि और जीवों पर दया करना ही धर्म्म है। इस जीव-दया से ही मनुष्य के हृदय में विश्वव्यापी प्रेम का प्रवाह बह चलता है। लोक-सेवा-परायण महाप्रेमी ईसामसीह कह गये हैं कि "पराये हित के लिए तुम्हारा दाहना हाथ जो करे उसे तुम्हारा बायाँ हाथ भी न जानने पावे"। हमारे शास्त्र में भी लिखा है—"गुप्तदान महत्पुण्यम्"। दान करना तो अच्छा ही है, किन्तु गुप्त दान करने से अधिक पुण्य

होता है। इसका तात्पर्य यह है कि परोपकार करने से मन मे अपने लिए आदर और उत्तेजना का उदय हो सकता है, लोगो से छिपा कर दान करने से हमारे अपने प्रति आदर की विशुद्धता सुरक्षित रहेगी और अपने कार्य को और लोगो के न जानने के कारण उत्तेजित होने की सभावना भी बहुत कम होगी। इसके अलावा सहायता पानेवाला आदमी लोगो के सामने दान लेने मे लज्जित होता है, अपनी हीनता का स्मरण करके कुण्ठित होता है। किन्तु गुप्त दान करने से यह बात नहीं होती। इसी से अपने और पराये हित के लिए कहा है कि "गुप्तदान महत्पुण्यम्"।

लोक-सेवा दो तरह की जा सकती है। जीवन के प्रारम्भ से ज्ञान होने के साथ साथ—आत्मसुख सभोग की लालसा बढने के साथ साथ—दूसरे के हृदय का तृप्त करने के लिए जब इच्छा उत्पन्न होती है तब लोकसेवारूपी महाव्रत का छोटा सा अकुर मानो उपजाऊ भूमि को प्राप्त होता है। यहाँ पर 'आत्मवत्सर्वभूतेषु' इस महावाक्य की सफलता की सूचना होती है। इस महामन्त्र की साधना करते करते मनुष्य के हृदय से 'अय निज परो वेति' यह ओछे लोगो का क्षुद्रभाव धीरे धीरे जाता रहता है। इसके बाद 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाला महान् तत्त्व पूर्णरूप से विकास को प्राप्त होने लगता है। पराई सेवा करने से मनुष्य देवता हो जाता है और जगत् के आदर्श नर-नारियो की मण्डली में स्थान पाता है। इसके सिवा और एक प्रकार का परोपकार देखा जाता है। वह भी साधारण नहीं है। जिन्दगी भर परिश्रम करके अन्तिम अवस्था मे या मृत्यु के समय कोई कोई आदमी बहुत क्लेश से सञ्चित हजार दो हजार या लाख दो लाख रुपये किसी लोकोपकार के सत्कार्य के लिए दान कर जाते हैं। इसमे कोई सन्देह नहीं कि यह परसेवा भी आदरणीय है, इससे भी जगत् का बहुत

कुछ कल्याण होता है। पाश्चात्य जातियों में ही इस तरह के दान का अधिक प्रचार देखा जाता है। यूरोप की जातियों के संसर्ग से हम लोग भी ऐसे दान के पक्षपाती हो पड़े हैं। किन्तु यह दान सर्वाङ्ग-सुन्दर होने पर भी पूर्वोक्त सहज और स्वाभाविक परोपकार या लोक-सेवा के मुकाबिले इसका स्थान कुछ नीचे माना जायगा। सहज ही सुशिक्षा के कारण बचपन से मा-बाप भाई और परिवार के अन्यान्य लोगों के उत्तम उदाहरणों को देख कर बालक उनका अनुसरण करता है। वह भिक्षुक को भिक्षा देता है, अन्धे अपाहिजों के दारुण दुःख में हृदय की सहानुभूति दिखलाता है, घोर विपत्ति के गहरे अन्धकार मे पड़े हुए मनुष्यों के मुख-मण्डल पर दारुण विषाद की छाया देख कर उसके कोमल हृदय में दया उत्पन्न होती है और वह उससे एक प्रकार के स्वर्गीय सुख का अनुभव करता है। वही बालक स्याना होने पर लोक-सेवा को अपना प्रधान कर्त्तव्य समझता है। इसी प्रकार की लोक-सेवा या परोपकार की प्रवृत्ति को हिन्दू शास्त्र-कारों ने श्रेष्ठ बतलाया है। पराये आराम के लिए खुद कष्ट उठाने का ही उपदेश शास्त्रों में पाया जाता है। इसी से कहना पड़ता है कि भारत की लोक-सेवा—भारत की समदर्शिता एक विचित्र ही वस्तु है। किन्तु कहते लज्जा मालूम पड़ती है कि हमारे समाज से यह भाव धीरे धीरे लुप्त होता जाता है। पहले आर्य लोग जो नित्य पञ्च-यज्ञ करते थे उसका उद्देश्य यही (लोक-सेवा) था। आज दिन पञ्चयज्ञ करने के लिए किसी गृहस्थ को छुट्टी नहीं मिलती। हमने अपने आचार और आचरणों से यह बात साबित करदी है कि हम परमार्थ की अपेक्षा स्वार्थ का ही अधिक आदर करते हैं। स्वार्थ और परमार्थ के संग्राम मे हम स्वार्थ की ही जय-घोषणा का अभ्यास बढ़ाते जाते हैं। यही कारण है कि शास्त्र की बात शास्त्र मे ही धरी रही और हम

मनमानी करत जाते हैं। हम अपने जीवन मे शास्त्र के वाक्य पर ध्यान देने का अवसर ही नहीं पावे।

ऐसी ही अवस्था में जब बगाल में स्वार्थपरता पल्लवित और बहु-विस्तृत हो रही था उस समय एक बार पौराणिक इतिहास का फिर अभिनय देख पडा। अमर पुरुष राजा बलि जैसे नवीन रूप धारण करके हमारे आगे महान् आदर्श उपस्थित करने के लिए आ गये। अथवा यों कहो कि महावीर कर्ण ने कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि छोड कर उच्च कुल का उच्च आदर्श दिखाने के लिए हम लोगों मे आकर जन्म लिया। पाठक गण, मन लगा कर ध्यान देकर देखो। राजा बलि के तीन पग पृथ्वी देने का अभिनय तुमको विद्यासागर के जीवन में देख पडेगा। दाता कर्ण के पुत्रदान और सबको जीतने की शक्ति रखने वाले कवच-कुण्डल देने का दृश्य भी विद्यासागर के जीवन मे देख पाओगे।

मैंने अनेक किस्से सुने हैं, गुरुजनो और उपदेशकों के मुख से अनेक उपदेश की बाते भी सुनी हैं। किन्तु यह बात बहुत कम देखने मे आई है कि कोई बालक पढने की अवस्था में ही अपने घर के चर्खे में कते हुए मोटे और छोटे कपडे को पहन कर स्वय अपना निर्वाह करे और आप जो छात्र-वृत्ति के रुपये पावे उनसे गरीब सह-पाठियो को बढिया महीन कपडे खरीद दे। बालक ईश्वरचन्द्र ने ऐसा ही किया। इस प्रकार आप मोटा कपडा पहन कर और दूसरो को महीन कपडा पहना कर वह बडे सुखी होते थे। इसी एक काम से इस बात का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है कि ईश्वरचन्द्र एक असाधारण और अद्भुत पुरुष थे। कर्त्तव्यपालन के लिए—लोकहित के लिए—विद्यासागर महाशय सहज ही अपना सर्वनाश तक करने को तैयार रहते थे। विद्यासागर के जीवन में इस बात के अनेक उदाहरण मौजूद हैं। यहाँ पर ऐसे कुछ उदाहरणों का उल्लेख किया जाता है।

विद्यासागरजी अपने स्कूल के सहपाठियो की आवश्यकताये पूर्ण करने के लिए, उनके बीमार होने पर उनकी चिकित्सा और पथ्य की व्यवस्था करने के लिए, और आवश्यक होने पर उनकी सेवा-शुश्रूषा करने के लिए सदा तैयार रहते थे। लडकपन से मरते दम तक उन्होंने सैकडो रोगियो के सिरहाने बैठ कर सैकडो राते बिता डाली होगी। बालक ईश्वरचन्द्र इस तरह सहृदय और सेवापरायण युवक बन गये और युवक ईश्वरचन्द्र धीरे धीरे एक विश्वव्यापिनी उदारता का श्रेष्ठ आदर्श हो गये। विद्यासागर हमारे आगे इस बात का बहुत ही अच्छा आदर्श छोड गये हैं कि अपने सुख को छोड कर पराये सुख के लिए किस तरह अपना जीवन अर्पण कर दिया जा सकता है।

सन् १८६३ ई० के शेषभाग और सन् १८६४ के प्रारम्भ में बङ्गाल के अमर कवि माइकेल मधुसूदनदत्त फ्रास के वर्सेलिस नगर मे थे। उस समय उन पर अनेक विपत्तियाँ आ पडी थीं, जिससे उन्हे चारो ओर अन्धकार के सिवा और कुछ न सूझता था। उनके बङ्गाली मित्र उनके आर्थिक कष्ट, उपवास और अन्त को कारावास की सम्भावना का समाचार पाकर भी मजे में आनन्द मना रहे थे। बारम्बार विपत्ति के समाचार आने पर भी उनकी मित्रमण्डली ने कुछ खबर न ली। उनके विलायत जाने के समय जिन्होंने बहुत कुछ भरोसा दिया था वे अन्त को पत्र का उत्तर देने तक के रवादार नहीं रहे। उस समय मधुसूदन को अपनी विपत्ति की भयानकता का अनुभव हुआ। वह बन्धुओ के व्यवहार से बहुत ही दु खित हुए। अन्त को उन्हे एक महापुरुष का ध्यान आया। वह महापुरुष हमारे चरित्रनायक विद्यासागर थे। विद्यासागर का स्मरण आते ही उनके निराश हृदय में आशा का सञ्चार हुआ। मधुसूदन का जीवनचरित्र पढने से यह बात मालूम पडती है कि बङ्गाल के तत्कालीन सभी

प्रतिष्ठित पुरुषो से उनकी जान-पहचान थी । परन्तु विदेश मे विपन्न मधुसूदन की सहायता करने वाले विद्यासागर ही निकले । मधुसूदन ने विद्यासागर को एक चतुर्दशपदी कविता लिख कर भेजी थी, उसका गद्यानुवाद नीचे दिया जाता है —

"तुम भारत मे विद्या के सागर कह कर प्रसिद्ध हो। लेकिन हे दीनबन्धो, इस बात को दीनजन ही जानते हैं कि तुम दया के भी सागर हो। सुमेरु की उज्ज्वल कान्ति को दूर से सभी लोग देखते हैं। किन्तु सौभाग्य से जो कोई उस महापर्वत के चरण-तल में आश्रय पाता है वही इस बात को जानता है कि उस चमक के सिवा उसमें कितने गुण भरे पडे हैं। उसके सुखसदन मे पहुँचने वाले की कैसी सेवा होती है। नदीरूपिणी दासी सुशीतल मधुर जल देती है। वृक्ष-रूपी दास बडे आदर से मधुर फल देते हैं। दसो दिशाओ मे खिले हुए फूल अपने सुगन्ध से मस्त बनाते हैं। दिन को वनदेवी सुशीतल छाया और मन्द पवन से थकन मिटाती हैं और रात को निद्रादेवी अपनी गोद में सुला लेती हैं"।

सन् १८६४ ई० की २ जून को मधुसूदन ने और कोई उपाय न देख कर जिस पत्र के द्वारा विद्यासागर के चरणो में सहायता की प्रार्थना की थी उस पत्र का कोई कोई अश यहाँ पर उद्धृत किया जाता है —

"You will be startled, I am sure, grieved to learn that I am at this moment the wreck of the strong and hearty man who bade you adieu two years ago with a bounding heart, and that this calamity has been brought upon me by the cruel and inexplicable conduct of men, one of whom at least, I felt strongly persuaded was my friend and well-wisher * * *

I am going to a French jail, and my poor wife and children must seek shelter in a charitable institution, though I have fairly Rs 1000 due to me in India

You are the only friend who can rescue me from the painful position to which I have been brought, and in this you must go to work with that grand energy which is the companion of your genius and manliness of heart Not a day is to be lost

Shall I apologise for the trouble I am giving you I do not think so, for I know you enough to believe with all my heart that you would not allow a friend and countryman to perish miserably

Kindly address in France, as above, for there is no earthly chance of my leaving this country before God and you, under God, help me to do so"

अर्थात्—मुझे दृढ विश्वास है, आप यह सुन कर चौक पडेंगे और आपको गहरा दु ख होगा कि दो वर्ष पहले उच्छ्वासपूर्ण हृदय लेकर जो व्यक्ति आपसे विदा होने गया था वह व्यक्ति मैं आज बहुत दुर्बल और अशान्ति मे पडा हुआ हूँ। कई आदमियो की निष्ठुरता और निर्मम व्यवहार के कारण इस समय मैं बडी ही विपत्ति मे पड गया हूँ। खेद की बात तो यह है कि उन लोगो मे मेरे एक हितैषी और मित्र भी हैं।+ + +

मुझे अपने देश में ४०००) रुपये मिलने है, फिर भी मैं धनाभाव से इस देश के जेल मे जा रहा हूँ और मेरी स्त्री और बच्चे किसी अनाथालय में जाने के लिए लाचार होगे।

जिस बुरी हालत मे मैं पडा हुआ हूँ इससे उबारने वाले एक आप ही मुझे देख पडते हैं। इस कार्य को करने के लिए जिस कार्यनिपुणता की आवश्यकता है वह दृढता और प्रतिभा के साथ आप में ही देख पडती है। एक दिन की भी देर होने से काम विगड जायगा।

आपको जो क्लेश दे रहा हूँ उसके लिए क्या क्षमा-प्रार्थना करूँ? मुझे तो यह आवश्यक नहीं जान पडता। क्योंकि आपको मैं खूब

जानता हूँ और मुझे यह दृढ़ विश्वास है कि एक स्वदेशी और मित्र को आप इस तरह दुर्दशाग्रस्त होकर मरने न देंगे।

दया करके फ्रांस मे ऊपर लिखे पते पर पत्र लिखिएगा, क्योंकि दैव के अनुग्रह से और दैव की कृपादृष्टि पाये हुए आप सरीखे महानुभाव की कृपा विना यहाँ से और जगह जाने की कोई सम्भावना नहीं है।

यह पत्र पाकर विद्यासागर की चिन्ता का ठिकाना नहीं रहा। ईसवी सन् १८६४ को विद्यासागर के अर्थकष्ट का मध्यकाल समझना चाहिए। उस समय खुद उन पर बहुत सा ऋण हो गया था। उस समय उनको धन की कमी से बड़ा कष्ट मिल रहा था। थोड़ा सा भी धन मिलता तो उससे वह अपना ही अर्थकष्ट दूर करते। ऐसे कठिन कुअवसर पर प्रवासी मधुसूदन के धनाभाव और उसके कारण उन पर भारी विपत्ति की आशङ्का का समाचार पाकर विद्यासागर बहुत ही व्याकुल हो उठे। खास कर मधुसूदन के मित्रों के आचरण का हाल सुन कर उनको और भी क्षोभ हुआ। वह अपने प्रति अपने देश के लोगों के आचरण देख कर उन पर अविश्वास और अश्रद्धा करने लगे थे। विदेशवासी मधुसूदन के प्रति उनके वैसे ही बर्ताव का हाल सुन कर विद्यासागर का वह भाव और भी पक्का हो गया। विद्यासागर ने मधुसूदन के मित्रों और अन्यान्य स्थानो मे चेष्टा की, किन्तु जितने की जरूरत थी उतना धन एकत्र न हो सका। अन्त को निरुपाय विद्यासागर ने अपने ऊपर और भी ऋण का बोझ बढ़ा कर मधुसूदन का उद्धार करने की चेष्टा करने का इरादा कर लिया। बहुत कष्ट से दूसरी डाक से १५००) रु० मधुसूदन को भेजे और यह सलाह दी कि रुपया मिलते ही इँगलैंड जाकर अपने जरूरी काम में लग जाना। जिस दिन डाक पहुँचनी चाहिए थी उस दिन सबेरे

वर्सेलिस नगर में दत्त-परिवार में जो कातर क्रन्दन की ध्वनि उठी थी उसका आभास मधुसूदन के शब्दों में ही यहाँ पर दिया जाता है —

Versailles, 2nd September, 1864

My dear friend,

On the morning of last Sunday, 28th ultimo, as I was seated in my little study my poor wife came to me with tears in her eyes and said "The children want to go to the Fair and I have only 3 *Francs*, why *do those people in India treat* us this way ?" I said—"The mail will be in to day, and I am sure to receive news, for the man to whom I have appealed has the genius and wisdom of an ancient sage, the energy of an Englishman and the heart of a Bengali mother" I was right, an hour afterwards I received your letter and the Rs 1500 you have sent me How shall I thank you my noble, my illustrious, my great friend, you have saved me * * * * Am I not right in thinking that you have the heart of a Bengali mother ?

अर्थात्, प्रिय मित्र, गत २८ अगस्त रविवार को सबेरे के समय मैं अपने छोटे से पाठभवन मे बैठा हुआ था। इसी समय मेरी दुखिया स्त्री ने मेरे पास आकर आँखो में आँसू भर कर, मुझसे कहा—'लडके मेला देखने जाना चाहते हैं। किन्तु मेरे पास इस समय केवल तीन फ्राक (उस समय डेढ रुपये से कम और इस समय कुछ अधिक) हैं। तुम्हारे देश के लोग हम लोगो के साथ क्यों ऐसा व्यवहार करते हैं ?' मैंने कहा—'आज डाक आने का दिन है। मैं निश्चय कहता हूँ कि कुछ न कुछ खबर जरूर अवेगी। क्योंकि मैंने जिस महापुरुष को अपनी अवस्था जता कर पत्र लिखा है वह आर्यऋषियो के समान प्रतिभाशाली और विज्ञ हैं, अँगरेजों के समान कार्य्यकुशल और बगाली माता के समान कोमल-हृदय हैं'। मैंने ठीक ही कहा था, क्योंकि

घण्टे भर के बाद ही १५००) रु० और आपका पत्र मिला। हे सुजन, हे कीर्तिमान् परम सुहृद! आपको मैं किस तरह अपने हृदय की कृतज्ञता जताऊँ? आप ने मुझे बचा लिया। [इस प्रकार बहुत कुछ दुखड़ा रो कर वह लिखते हैं कि—] क्यों, मैंने ठीक कहा था न, कि आपका हृदय बंगाली माता के समान है?

मधुसूदन के मित्रों से रुपये का कुछ प्रबन्ध न करा सकने के कारण विद्यासागर बड़े असमंजस मे पड़ गये थे। मधुसूदन को और भी बहुत रुपया भेजना पड़ा। फल यह हुआ कि मकड़ी जैसे अपने जाले में अपने को फँसा लेती है वैसे ही विद्यासागर ने भी अपने को ऋण के जाल में जकड़ लिया। उससे छुटकारा पाने का कोई उपाय न रह गया। रेशम का कीड़ा जैसे अपने प्राण देकर औरों की शोभा और सौन्दर्य बढ़ाता है वैसे ही वह भी आत्मविनाश करके मधुसूदन की भलाई करने लगे। मधुसूदन ने विद्यासागर की इस अवस्था का हाल जानकर यह पत्र लिखा था —

Versailles 18th December 1864

My dear friend,

Your kind letter, with a draft for 2400 Francs, reached me in due course and in very good time, for we were without money and eagerly looking out to hear from you I need scarcely tell you how sincerely I thank you But your letter has pained me no little, as one would say in our mother tongue

अर्थात्, प्रिय मित्र, २४६० फ्राँक की चेक के साथ आपका पत्र यथा-समय पहुँच गया। यह रुपया ठीक उस समय मिला है जब मैं बहुत बुरी हालत में था। मेरे पास कुछ न था। हम बहुत ही व्याकुल होकर आपका समाचार पाने की बाट जोह रहे थे। यह कहने की तो कोई आवश्यकता नहीं है कि मैं आपको हृदय से धन्य-वाद देता हूँ। किन्तु आपका पत्र पढ़ कर मुझको घोर दुःख भी

को यह खयाल है कि मैं जो कुछ कहता हूँ वह किसी तरह अन्यथा नहीं हो सकता। इस कारण वे लोग बेखटके मेरी बात पर विश्वास करके काम करते हैं। इसमे कोई सन्देह नहीं कि लोगो का ऐसा विश्वास होना सौभाग्य की बात है। किन्तु मुझे ये लक्षण देख पडते हैं कि लोगो का विश्वास शीघ्र ही मेरे ऊपर से उठ जायगा।

जिस समय मैंने अनुकूल बाबू (जज अनुकूलचन्द्र मुखोपाध्याय) से रुपया लिया था उस समय वादा किया था कि आपके आते ही मैं रुपया अदा कर दूँगा। उसके बाद फिर जब आपको रुपये की जरूरत पडी तब मैंने इस खयाल से कि ठीक समय पर रुपया न पहुँचने से आपका नुकसान या असुविधा होगी, मैंने और कोई उपाय न देख कर श्रीशचन्द्र (विद्यारत्न) के पास कम्पनी-कागज रेहन रख कर रुपया भेजा था। उनका रुपया शीघ्र अदा करने का वादा था। किन्तु दोनों जगह मैं अपने वादे को पूरा नहीं कर सका। श्रीशचन्द्र और अनुकूल बाबू को शीघ्र रुपया न पहुँचेगा तो निस्सन्देह मुझे अपदस्थ और अपमानित होना पडेगा।

इस समय इस चिन्ता से कि किस तरह मेरे मान की रक्षा होगी, हर घडी मेरा अन्त करण आकुल रहता है। यह चिन्ता क्रमश इतनी प्रबल होती जाती है कि रात को नींद नहीं आती। अतएव आपके निकट यह विनीत प्रार्थना है कि विशेप यत्न के साथ मन लगा कर शीघ्र ही मेरी रक्षा कीजिए। रोग को दूर करके स्वास्थ्य-लाभ के लिए पश्चिमोत्तर प्रदेश मे जाना और कम से कम वहाँ छ महीने रहना बहुत जरूरी हो गया है। आश्विन के आरम्भ में जाने का निश्चय कर लिया है।

किन्तु आप उद्धार न करेंगे तो किसी तरह मेरा जाना न होगा। यह सब विचार कर जो उचित समझ पड़े सो कीजिएगा। और अधिक क्या लिखूँ, शरीर की अवस्था देखने से मुझे यह आशा नहीं कि मैं अपनी चेष्टा और परिश्रम से अपना उद्धार आप कर सकूँगा। बहुत कुछ लिखने का इरादा था, परन्तु तबीयत ठीक न होने के कारण नहीं लिख सका। किमधिकमिति—

भवदीयस्य

श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मणः।

इसके उत्तर में माइकेल मधुसूदनदत्त ने विद्यासागर को यह पत्र लिखा था —

1, Spence Hotel

My dear Vidyasagar,

Your letter which reached me a few minutes ago, has given me great pain. You know that there is scarcely anything in this world that I would hesitate to do for you. Of course, you have my full permission to adopt any steps you think proper to relieve yourself of the unpleasant burden. Srish has written to me, offering Rs 21,000. But don't you think Onookool would advance fresh money enough to pay off that man and hold the property by way of mortgage--usufructuary mortgage—I paying him the difference in the interest? If we can in this way save the estate, let us do so; if not, let them go. I wish I could run over and see you. Perhaps I shall do so next Saturday.

With affectionate regard,

Sir

Yours M. S. Dutt

अर्थात्, प्रिय विद्यासागर महाशय, अभी आपका पत्र मिला यह पत्र पढ़ कर मुझे हार्दिक क्लेश हुआ। आप जानते हैं, पृथ्वी पर ऐसा कोई काम नहीं है जिसे मैं आपके लिए न कर सकूँ।

उस अप्रीतिकर ऋण के बोझ से छुटकारा पाने के लिए आप जो आवश्यक समझें वही करें, मेरी उसमे सम्पूर्ण सम्मति है। श्रीश ने २१०००) रु० ऋण देने की सम्मति जता कर एक पत्र लिखा था। आप क्या समझते हैं कि अनुकूल बाबू उस सम्पत्ति को रेहन रख कर कुछ अधिक रुपया ऋण नहीं दे सकते? सूद के बढती रुपये मैं अपने पास से दे सकता हूँ। मैं क्या उनसे यह प्रस्ताव करूँ? इस प्रकार अगर सम्पत्ति बचाई जा सके तो अच्छा ही है, नहीं तो अन्त को उसे मैं छोड दूँगा। मेरी इच्छा होती है कि मैं इसी समय आपके पास दौडा जाऊँ। हो सका तो आगामी शनिवार को आऊँगा।

किन्तु रुपया किसी तरह वसूल नहीं हुआ। मधुसूदन रुपया-पैसा खर्च करने का अच्छा ढङ्ग न जानते थे। रुपया मिलने पर सोच समझ कर उसे खर्च करने का उन्हें अभ्यास न था। हजार दो हजार दस हजार को वह कुछ चीज न समझते थे। उनके किसी पत्र वगैरह में दस पांच या सौ दो सौ का उल्लेख नहीं है। रुपये के लिए जब उन्होने लिखा तो हजार के इधर नहीं। दस बीस हजार रुपये सदा उनकी कलम से निकला करते थे। किन्तु रुपया मिलते ही वह फ़ौरन खर्च हो जाता था। ऐसे आदमी के पल्ले पडने से जो दशा होनी चाहिए वही दशा विद्यासागर की हुई। मधुसूदन का ऋण चुकाने के लिए उन्हें संस्कृत प्रेस के तीन हिस्सों में से दो हिस्से बेच डालने पडे। किन्तु इससे भी विद्यासागर विचलित नहीं हुए। वह मधुसूदन को बचा नहीं सके और मधुसूदन ने उनका कहा नहीं माना, इसीसे उनको बडा क्लेश हुआ। अन्त को अनेक प्रकार के नुकसान पहुँचाने पर भी जब स्वदेश में मधुसूदन बिल्कुल विपन्न और असहाय अवस्था में थे उस समय भी विद्यासागर से उन्हें थोडी थोडी [illegible] मिलती जाती

थी। किन्तु भारी ऋणभार से छुड़ाने के लिए जब फिर मधुसूदन ने उनको पत्र लिखा तब उस पत्र के उत्तर में विद्यासागर ने उनको यह पत्र लिखा था —

My dear Dutt,

I have tried my best, and am sadly convinced that your case is an utterly hopeless one. No exertion of mine, or that of anybody else who is not a moneyed man, however strenuous it may be, can save you. It is too late to mend matters by patchworks. I am very unwell and am therefore unable to write.

30th September, 1872

Yours sincerely,
Iswar Chandra Sharma

अर्थात्, प्रिय दत्त, मैंने भरसक चेष्टा की है और मुझको यह दृढ धारणा हो गई है कि आपकी अवस्था का बदलना बिल्कुल असंभव है। मेरी या धन-कुबेर के सिवा अन्य किसी की प्राण-पणचेष्टा से भी आपकी रक्षा नहीं हो सकती। ताली पिटने की अवस्था निकल गई। मेरी तबीयत अच्छी नहीं है, और इसीसे अधिक लिखने मे असमर्थ हूँ।

इस प्रकार के संकट में पड़ कर मधुसूदन बहुत जल्द बीमार होकर स्वर्ग सिधार गये। मधुसूदन के स्वर्गवास के बहुत दिन बाद सिटी कालेज के प्रिन्सिपल बाबू उमेशचन्द्रदत्त की चेष्टा से सम्मिलित मध्य-बङ्गाल-सम्मिलनी और जैसोर-खुलना-सम्मिलनी ने यह उद्योग किया कि मधुसूदन के अस्थिपञ्जर किसी स्थान पर रख कर उस पर किसी प्रकार का स्मारक-चिह्न स्थापित कर दिया जाय। उक्त सभा के अनुरोध से हम लोग विद्यासागर के पास आर्थिक सहायता के लिए गये थे। उन्होंने बहुत आलाप-विलाप के बाद आंखों में आंसू भर कर कहा था कि "देखो, प्राणपण चेष्टा करके भी मैं जिसकी जान नहीं बचा

सका उसकी हड्डियो को सुरक्षित रखने के लिए मुझे उतनी उत्सुकता नहीं है। तुम लोगो को नया उत्साह और आग्रह है, तुम जाकर करो"। इन वातो को कह कर अन्त मे जो उन्होंने विलाप किया था—अपने गहरे क्षोभ और हार्दिक शोक का परिचय दिया था—उसको सुन कर कोई भी सहृदय पुरुप रोये विना नहीं रह सकता।

अकाल। बँगला सन् १२७२ (ई० सन् १८६७) में पानी न बरसने के कारण इस सन के पिछले हिस्से मे, खास कर सन् १८७३ के वैसाख जेठ और असाढ मे, बङ्गाल मे जो भयानक दृश्य उपस्थित हुआ था उसका वर्णन करना एक प्रकार से असम्भव ही है। वैसाख का प्रचण्ड सूर्य जब बङ्गाल की भूमि को तपा कर उसका हृदय विदीर्ण कर रहा था उस समय देश मे एक और आग लगी हुई थी। सूर्य के ताप से जमीन सूख रही थी और पेट की ज्वाला से आदमियो के मुख मुरझाये हुए थे। लोग चारो ओर भाग रहे थे। कौन किधर भागता था, इसका कुछ ठिकाना न था। स्याना लडका बूढे मा-बाप को छोड कर, जवान मा सुकुमार बच्चे को रास्ते मे छोड कर किसी अज्ञात अपरिचित देश को चल दिये थे। चारो ओर हाहाकार का शब्द सुन पडता था। मुट्ठी भर अन्न के लिए स्त्री-पुरुप वालक-वृद्ध जान देने को तैयार थे। अन्न न मिलने पर कुछ दिनो वृक्ष लता पत्ते आदि खाकर गुजर किया। अन्त को कुछ न मिलने पर भूख से तडप तडप कर मरने लगे। उडीसा और बङ्गाल के दक्षिण भाग के रहने वाले लोगो को वहुत मुसीवत पडी थी और वे भाग कर वहुत दूर दूर के देशो में चले गये थे। इस दुर्दिन मे दानवीर ईश्वरचन्द्र अपना सर्वस्व अर्पण कर दीन-दुखियो की भूख मिटाने के लिए अग्रसर हुए थे। पहले तो उन्होंने इस तरह भूखों मर रही प्रजा की हालत सुना कर राज-कर्मचारियो के द्वारा यह विपत्ति टालने की चेष्टा की।

उनके अनुरोध से सरकार ने जांच की और मेदिनीपुर तथा हुगली के जिलों में अन्नसत्र भी खोल दिये। किन्तु इससे ईश्वरचन्द्र को सन्तोष नहीं हुआ। मेदिनीपुर जिले के अनेक स्थानों में लोग अन्न न मिलने के कारण मर रहे थे और वीरसिंह तथा उसके आसपास के लोग अन्न के अभाव से कातर होकर विद्यासागर के द्वार पर हाहाकार कर रहे थे। यह खबर पाकर वह उसी समय दुर्भिक्ष-पीड़ित लोगों की रक्षा का प्रबन्ध करने के लिए घर दौड़ गये। इस समय यह विवरण प्राप्त करके प्रकट करना बहुत ही कठिन है कि विद्यासागर ने कितने आदमियों के प्राण बचाये थे और उसमें उनका कितना रुपया खर्च हुआ था। किन्तु यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि उन्होंने जो अन्नसत्र खोल कर उसमें ४। ५ महीने तक अन्न बांटा था उससे बहुत से लोग मौत के मुँह में जाने से बच गये। उसमें १२ रसोइये बराबर रसोई बनाते रहते थे। २० आदमी बराबर परोसा करते थे। बीच बीच में थक जाने पर ये लोग बदल दिये जाते थे। इस तरह वैसाख, जेठ असाढ और सावन बीता।

पहले सौ दो सौ आदमी खाते थे। क्रमश जब पूर्ण मात्रा से चारों ओर अन्नाभाव की आग जल उठी तब अन्न चाहने वाले लोगों की संख्या भी अधिक बढने लगी। अन्त को ऐसा हुआ कि दिन रात अन्न बांटने पर भी पूरा न पडता था। विद्यासागर ने यह खबर पा कर अपने भाई शमुचन्द्र को जो इस कार्य के लिए नियुक्त थे, लिख भेजा कि चाहे जितना रुपया खर्च हो, पर्वा नहीं, कोई भूखा न रहने पावे। इस समय विद्यासागर अक्सर घर का चक्कर कर आया करते थे। एक बार घर जाने पर अन्नप्रार्थी लोगों ने उनसे कहा—खिचडी खाते खाते अरुचि हो गई है। कभी कभी दाल भात की भी व्यवस्था होनी चाहिए। विद्यासागर ने तुरन्त यह व्यवस्था कर दी कि सप्ताह

मे एक वार भात और तरकारी दी जाया करे। इस व्यवस्था के अनुसार कार्य होने के पहले ही दिन एक बड़ी ही हृदयविदारक दुर्घटना हो गई। एक व्यक्ति तरकारी की अपेक्षा असह्य होने के कारण सूखा भात ही निगलने लगा। भात गले मे अटक जाने से सांस रुक गई और वह उसी दम मर गया। विद्यासागर वहाँ मौजूद थे। वह उस मृत व्यक्ति को गोद मे लिए बहुत देर तक रोते रहे। उन्हे यह दुःख बहुत समय तक बना रहा कि वेचारा भूखा ही मर गया।

नीचजातीय गरीब लोगो के बारे मे कोई लापर्वाही न करे, इस आशङ्का से वह खुद दीन दुखी लोगो की सेवा करते थे—उनके सिर मे तेल लगा देते थे। भगी चमार आदि नीच जाति के लोगो के सिर मे तेल डालने के लिए कोई नहीं अग्रसर होता था, इससे विद्यासागर खुद अपने हाथ से उनके तेल लगा देते थे। वह स्वय ऐसा करते थे, इस कारण और कोई भी नीच जाति के लोगो से लापर्वाही का व्यवहार न कर सकता था। विद्यासागर के इस व्यवहार की खबर देश भर के गाँव गाँव मे फैल गई। दीनदुखी लोग उन्हे दया का अवतार कहने लगे। इस सत्र मे जो स्त्रियाँ अन्न पाती थीं उनमे कई एक गर्भवती थीं। घर मे रहने पर प्रसव के पहले जो रीतियाँ की जाती हैं वे सब विद्यासागर की आज्ञा से अन्नसत्र मे ही की गई। इसका मतलब यह था कि गरीब आदमी घर मे—परिवार मे—रह कर जिन कामो से सुख पाता उस सुख से वह अन्नसत्र मे ही क्यो वञ्चित रहे? पाठकगण, जरा ध्यान देकर देखिए, मनुष्य में कैसी उच्च उदारता होने से ऐसा विश्वव्यापी हो सकता है? विद्यासागर के जीवन मे इस बात के सैकड़ो उदाहरण मौजूद हैं कि उनका घर सारे ससार का आश्रय-स्थान था, उनके आत्मीय स्वजन

उनकी लोकसेवा के सहायक मात्र थे और उन्होंने संसार में दूसरो का दुख दूर करने के लिए ही जन्म लिया था। उनका आत्मा एक महान् आत्मा था। उन्होंने अन्नसत्र खोल कर यह दिखला दिया कि मनुष्य किस तरह संसार का दुख दूर करने की चेष्टा कर सकता है।

इस देश भर में व्याप्त दुर्भिक्ष का दारुण हाहाकार जिस समय चारो ओर गूँज रहा था उस समय विद्यासागर ने अपना रुपया खर्च करके और राजपुरुषो से अनुरोध करके वगजननी के पुत्रो को बचाने की चेष्टा की थी। उन्होंने असख्य नर-नारियो को अकाल मृत्यु से बचा कर सारे देश-वासियो को कृतज्ञ बना लिया था। दीन दुखी लोग उनको इसी समय से दयासागर कहने लगे। राजपुरुषो ने उनकी सलाह और सहायता पाकर अपनी कृतज्ञता जताई थी। वर्दवान के कमिश्नर साहब ने उनको यह पत्र लिखा था —

To

Pandit Iswar Chandra Vidyasagar, Beer Singha

Sir,—I have been instructed by the Secretary to the Government of Bengal, under order of the 20th instant, to express to you the warm acknowledgment of Government for your generous exertions in relieving the poor during the recent scarcity in the Hooghly District

I have the honour to be,

Sir

Your most obedient servant,

C T Montrisor,

Commissioner, Burdwan Division

अर्थात्, महाशय, बगालगवर्नमेंट के सेक्रेटरी की सन् १८६७ ई० के २० मार्च की आज्ञा के अनुसार आपको जताता हूँ कि गत अकाल के समय हुगली जिले के ग़रीब लोगो की कमियो को पूरा

करने में अनेक प्रकार की सहायता करने के लिए गवर्नमेंट आपके
निकट अपनी गहरी कृतज्ञता जताती है।

सी० टी० मानट्रिसर,
कमिश्नर वर्द्वान विभाग

वर्द्वान। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की रेलवे खुलने के पहले सन्
१८५४ ई० के मध्यभाग में विद्यासागर ने रामगोपाल घोष और राजा
सत्यशरण घोषाल के साथ वर्द्वान की यात्रा की थी। घोष बाबू और
राजा बहादुर वर्द्वान के महाराज महताबचंद बहादुर के यहाँ मेह-
मान हो कर गये थे। उक्त दोनो महाशय ख़ास राजा साहब के यहाँ
ठहरे थे। विद्यासागर अपने स्नेहपात्र, श्यामाचरण दे के बहनोई
प्यारीचद मित्र के यहाँ ठहरे थे। महाराज महतावचद बहादुर को
जब विद्यासागर के आने की खबर मिली तब उन्होंने उन्हें बुलाने के
लिए आदमी भेजा। विद्यासागर उस बार पहले राजा साहब की
इच्छा पूर्ण करने के लिए राजी नहीं हुए। किन्तु राजासाहब ने
बार बार अनुरोध करके प्रतिष्ठित कर्मचारियो को उनकी अभ्यर्थना के
लिए भेजा, इससे अन्त को लाचार हो कर विद्यासागर को जाना ही
पड़ा। महाराज ने सम्मान के लिए एक दुशाला और ५००) रु०
दिये, किन्तु उन्होने नहीं लिये। केवल मुलाकात करके चले आये।
उनके इस सन्तोष को देख कर महाराज की भक्ति उन पर और बढ़
गई। इसके बाद स्कूलइन्स्पेक्टर हो कर फिर कई बार विद्यासागर
स्कूल खोलने और मोग्रायना करने गये। किन्तु वह जब जाते थे तब
राज-सम्मान को छोड कर प्यारी बाबू के घर पर ठहरते थे।

सन् १८६६ ईसवी के शेष भाग मे मेरी कार्पेन्टर के साथ उत्तर-
पाडा-बालिका-विद्यालय देखने जाने के समय रास्ते में विद्यासागर के
जो भारी चोट लगी थी और जिसके कारण उन्हें बहुत दिन तक

पलँग पर पडे रहना पडा वह चोट कुछ आराम होने पर स्वाथ्य ठीक करने के लिए उन्होने वर्द्दवान की यात्रा की थी। इस वार राजा महतावचन्द वहादुर के अनुरोध को टाल न सकने के कारण वह फिर राजभवन मे गये। महाराज ने राजभवन मे रहने के लिए वहुत कुछ जोर दिया, लेकिन विद्यासागर राजी नहीं हुए। आप कहां ठहरे हैं ?, इस प्रश्न पर दिल्लगी के तौर पर विद्यासागर ने कहा—प्यारी वावू के होटल मे। होटल कहने के माने यह थे कि श्यामाचरण विश्वास, प्यारी चरण सरकार, रामगोपाल घोष आदि उस समय के प्रतिष्ठित पुरुष वर्द्दवान मे आव-हवा वदलने के लिए जाते थे तो मित्र वावू के ही यहाँ ठहरते थे। जिस घर मे ये विद्वान् लोग वैठते उठते थे वह अभी तक मौजूद है। उस समय स्वास्थ्योन्नति के लिए वर्द्दवान ही श्रेष्ठ स्थान समझा जाता था। आव-हवा वदलने के लिए वर्द्दवान से से आगे जाने की जरूरत नहीं पडती थी। इस लिए अस्वस्थता के कारण जव कलकत्ता छोडने की जरूरत पडती थी तव विद्यासागर वर्द्दवान में जा कर ठहरते थे।

सन् १८६८ ई० मे विद्यासागर स्वाथ्य सुधारने के लिए वर्द्दवान गये। इस वार वर्द्दवान मे रह कर विद्यासागर ने अनेक स्थानों की सैर की। एक दिन पूर्णिमा की चांदनी रात को कमलसायार और उसके आस पास के उपवन को देख कर वह वहुत प्रसन्न हुए। उपवन से घिरे हुए उक्त तालाव के तट पर महाराज का एक मनोहर उद्यान-भवन वना हुआ था। विद्यासागर ने महाराज से यह पूछ भेजा कि महाराज रहने के लिए उसे किराये पर दे सकते हैं या नहीं। इसके उत्तर में महाराज ने कहला भेजा कि किराये पर वह मकान नहीं दिया जायगा। लेकिन अगर विद्यासागर जी उसमे रहने की कृपा करे तो उन्हे वडी प्रसन्नता होगी। राजमन्त्रियों के अनुरोध और मित्रों

की सलाह से विद्यासागर इस पर राजी हो गये और उस बार चार महीने तक वहीं रहे। यहाँ रहने से उन्हे बर्दवान में रहना पसन्द आ गया। इस उपवन के पास बहुत से गरीब मुसलमान रहते थे। थोड़ ही दिनो मे वे विद्यासागर को जान गये। विद्यासागर आत्मीय स्वजन के समान उनका भरण-पोषण करने लगे। इस महल्ले के छोटे छोटे लडकी-लडके उन्हे बहुत प्यारे हो गये। विद्यासागर नित्य उन्हें खाने को देते थे। अन्त को उनके मा-बापो की भी तरह तरहसे सहायता करने लगे। बहुतो की प्रवृत्ति और इच्छा के माफिक, विद्यासागर ने रोजगार करने के लिए पूँजी देकर सदा के लिए उनके खाने-पीने का सुभीता कर दिया। इन्हीं सब बातो से उस महल्ले के लोग उनको अपना सगा-सा समझने लगे।

बर्दवान बहुत दिनो से स्वास्थ्यकारक स्थान समझा जाता था, किन्तु सन् १८६९ ई० मे जैसोर जिले के महम्मदपुर गाँव में जो सक्रामक ज्वर दिखाई दिया वह परवर्ती ४४ वर्षो तक नदिया, बारासात, २४ परगना आदि जिलो के असख्य गावों में भयानक दृश्य उपस्थित करके—हजारो लोगो की जान लेकर हजारो घर उजाड करके—अन्त को गङ्गापार होकर हुगली और बर्दवान जिलो की ओर आगे बढा। इस भयानक मलेरिया ज्वर के कारण सारा बगाल श्री-हीन हो गया है। इस ज्वर से जब बर्दवान का सुख और स्वास्थ्य सदा के लिए नष्ट होने लगा उस समय दीनवत्सल विद्यासागर गरीबो की सहायता के लिए बर्दवान पहुँचे। अबकी बार प्यारी बाबू के घर में नहीं ठहरे। उनके घर के पास ही एक बाग के भीतर बने हुए घर को किराये पर लेलिया और उसी मे रहने लगे। रोग से क्लेश पा रहे लोगो के कष्ट को दूर करने के लिए उन्होने पहले राजपुरुषो से सहायता माँगी। उनके मुख मे बर्दवान के गरीबो की दुर्दशा का हाल

सुन कर गवर्नमेंट ने मलेरिया रोकने की यह व्यवस्था की कि पहले ही से ध्यान देकर काम न करने वाले वर्द्धवान के सिविलसर्जन की जगह दूसरा डाकृर रक्खा गया और उसकी देखरेख में, शहर और मुफस्सिल में और भी अनेक सुयोग्य डाकृर रख दिये गये। महाराज वर्द्धवान की सहायता से भी अनेक रोगियों की चिकित्सा हुई। किन्तु विद्यासागर ने इन सब व्यवस्थाओं को बहुत ही गरीब लोगों के लिए सुविधाजनक नहीं समझा। इसी से उन्होंने अपना रुपया खर्च करके वर्द्धवान के विपन्न गरीबों के लिए अच्छी चिकित्सा की व्यवस्था की थी। परोपकारी डाकृर गङ्गानारायण मित्र ने विद्यासागर के धर्मार्थ अस्पताल में चिकित्सा करके विद्यासागर की सहायता की थी। उनकी सहायता न होती तो शायद विद्यासागर इस प्रकार को अच्छी तरह कर भी न सकते।

इस बहुत दिनों तक रहने वाले साघातिक सक्रामक ज्वर के कारण जिस समय वर्द्धवान में हजारों आदमी तड़प रहे और मौत के मुँह में जा रहे थे उस समय विद्यासागर महाशय द्वार द्वार पर जाति और वर्ण का कुछ खयाल न करके, सब की चिकित्सा और पथ्य की व्यवस्था करते फिरते थे। बहुतों ने देखा है कि दुर्बल और रोगी मुसलमानों के बच्चों ने उनकी गोद में स्थान पाया है। कोई कोई बालक आपसे उनकी गोद में चला जाता था, लेकिन इससे उनका जनेऊ और जनेऊदार शरीर अशुद्ध नहीं हुआ। ब्राह्मण पण्डित विद्यासागर का यह चित्र कैसा सुन्दर और कैसा उदार है। इस प्रकार के रोगी जब बीमारी से अच्छे हो जाते थे तब उनको रोजगार के बिना कष्ट देख कर यथाशक्ति उनकी जीविका का प्रबन्ध भी विद्यासागर कर देते थे। यह सब हाल मुझको डाकृर गङ्गानारायण मित्र की जबानी मालूम हुआ है।

खर्म्माटाड। बहुत दिन तक काम करके जब विद्यासागर का मन और शरीर और शिथिल हो पडता था तब वह विश्राम करना चाहते थे। ऐसी अवस्था में विश्राम प्राप्त करने के लिए विद्यासागर ने ईस्ट इण्डिया रेलवे के जामताडा और मधुपुर स्टेशनो के मध्यवर्ती खर्म्माटाड स्टेशन के पास पुराने और टूटे फूटे मकान समेत कुछ जमीन खरीद कर वहाँ अपने मन का एक मकान बनवाया। जरूरत होने से कभी कभी विश्राम करने वहाँ जाते अवश्य थे, लेकिन विश्राम करना उनके भाग्य में बदा न था। एकान्तवास मे भी उनको विश्राम नहीं मिलता था। विद्यासागर के स्वभाव की खूबी से खर्म्माटाड का निर्जन निवासस्थान शीघ्र ही एक छोटी सी बस्ती बन गया। इस तरफ के निवासी गरीब सांवताल लोग थे। ये बडे सीधे मिजाज के होते हैं। स्नेह-ममता आदर-यत्न और मीठी बाते करने वाले के हाथ के गुलाम बन जाते हैं। सांवताल जाति के अधिकाश नर-नारी सच्चरित्र होते हैं। विद्यासागर के व्यवहार और मीठी बातो से वहाँ के लोग सांवताल-अधिवासी उन्हें अपना समझने लगे।

खर्म्माटाड मे रहते समय विद्यासागर सदा लिखा पढा करते थे। लिखते-पढते समय यदि वह देखते थे कि कोई आकर खडा हुआ है तो फौरन लिखना-पढना छोड कर उसके पास जाते थे और पूछते थे कि क्या चाहिए? रोग होता था तो दवा देते थे और अगर अन्न-वस्त्र न होता था तो अन्न-वस्त्र देते थे। इसके सिवा थाली, लोटा आदि जो कुछ मांगने वाला मांगता था वह उसे मिल जाता था। हम लोग १० हाथ की धोती पहनते हैं, लेकिन सांवताल लोग १२ हाथ की धोती पहनते हैं। कोई कोई १३।१४ हाथ तक की धोती पहनते हैं।

सांवतालो पर विद्यासागर का इतना अधिक स्नेह था कि वर्दवान मे उनके लिए तरह तरह की मिठाइयां ले जाते थे। विद्यासागर के

स्नेह से कर्म्माटांड के सांवताल वर्द्धमान के मोहनभोग और रसगुल्लों का स्वाद जानने लगे। एक बार उनके लिए विद्यासागर कुछ खजूर ले गये थे। खजूर उन लोगों को ऐसी रुचीं कि उन्होंने और माँगी। इसी से एक बार विद्यासागर कई बोरे खजूर ले गये और सांवतालों को बाँट दी। ये लोग विद्यासागर को ऐसा अपना समझते थे कि उनके हाथ से चीज छीन कर खा जाने में भी वे नहीं हिचकते थे। जब विद्यासागर कोई चीज बाँटने खड़े होते थे तब साँवताल बालिकायें और युवती स्त्रियाँ अपनी चञ्चलता के कारण कभी कभी उनके ऊपर आ पड़ती थीं। वे सुख की खबर देने, विपत्ति में आश्रय और सलाह लेने, आपस का झगड़ा चुकाने, रोग में दवा और जरूरत पड़ने पर अन्न-वस्त्र लेने आते थे। दुर्गापूजा के समय वह इन सब को नये कपड़े देते थे। वे लोग आकर जल्दी करके गड़बड़ी करते थे, इस कारण विद्यासागर हर एक के नाम की अलग अलग गठरी बाँध रखते थे। उनके आते ही हर एक को उसके नाम की गठरी उठा देते थे।

उस तरफ मछली का रोजगार करने वाला कोई न था। क्योंकि उधर मछली खरीदने और खाने वाले लोग बहुत कम हैं। विद्यासागर ने कह दिया कि मछली जो आयेगी उन्हे मैं खरीद लूँगा। जब विद्यासागर कर्म्माटांड में रहते थे तब मछली पकड़ना वहाँ के सांवतालों का एक रोजगार हो जाता था। जितनी मछलियाँ आती थीं उन सब को वह खरीद लेते थे। अपनी जरूरत भर की मछलियाँ अपने पास रख कर बाकी सब स्टेशन के बाबुओं को और पोस्टमास्टर को भेज देते थे। उनके वहाँ रहने के समय वहाँ के बाबुओं को खाने-पीने का बड़ा सुभीता रहता था। कभी कभी दावतें भी हुआ करती थीं।

विद्यासागर जहाँ रहते थे वहाँ औषध का बाक्स सदा उनके साथ रहता था। इस कारण उनके पास रहने को सांवताल लोग बडे भाग्य की बात समझते थे—उन्हे रोग का भय नहीं रहता था, क्योंकि दवा ढूँढने नहीं जाना था। विद्यासागर के सांवताल साथियो को होमियोपैथिक चिकित्सा ही फायदा करती थी। उनको दवा देने के लिए विद्यासागर सदा बहुत सी दवा और शीशियाँ पास रखते थे।

खर्म्माटाड के सांवतालो और अन्यान्य गरीबो की शिक्षा के लिए उन्होने अपने खर्च से एक स्कालरशिप-स्कूल भी खोल दिया था।

जब से यहाँ निर्जनवास का आरम्भ हुआ तब से विद्यासागर ने अभिराम मण्डल नामक एक युवक को घर और बाग के रखवालो का जमादार बना रक्खा था। अपने आचरण के कारण वह आदमी विद्यासागर का प्रियपात्र बन गया। वह इस समय भी जीवित है। उस पर विद्यासागर को इतना विश्वास था कि खर्म्माटाड के गरीबो की मासिक-वृत्ति के रुपये और कपडे उसी के पास रक्खे रहते थे। इस तरह की मासिक-वृत्ति भेजते समय विद्यासागर जो पत्र लिखा करते थे उनमे से उदाहरणस्वरूप एक पत्र नीचे उद्धृत किया जाता है।

श्रीहरि शरणम।

शुभाशिष सन्तु। इस पत्र में ३०) रु० के नोट भेज रहा हूँ। सब को देना। मैं खुद आता, लेकिन बीमारी और काम-काज के झंझट से आना नहीं हो सकता।

शुभाकांक्षिण
श्रीईश्वरचन्द्रशर्म्मण।

इस नौकर के पुत्र रामटहल के ब्याह मे जो कुछ खर्च हुआ वह विद्यासागर ने दिया था और अपने ही खर्च से उस बालक को लिखाया-पढाया भी था।

उत्तरपाडा जाते समय गाडी से गिर पडने के कारण जा स्वास्थ्य-
ग हुआ वह कभी निर्मूल नहीं हुआ। वह सदा थोडा बहुत बीमार
ने ही रहते थे। क्रमश जवानी ढलने पर पेट की पीडा ने ही जोर
कडा। डाकृर की सलाह से वह जरा जरा लडेनम सेवन करने लगे
। खर्म्माटाड में रहते समय एक बार भ्रम से अधिक लडेनम सेवन
रने के कारण गोलमाल हो गया था। लेकिन थोडी ही देर में अपने
भ्रम को समझ कर उन्होने कय करके उसे निकाल डाला। कय करने
से जान तो बच गई, लेकिन क्लेश बहुत मिला। इस समय इस घटना
के सम्बन्ध में देवघर में राजनारायण बाबू को जो पत्र लिखा था
उसका कुछ अंश यहाँ पर उद्धृत किया जाता है —

"बुद्धिदोष से जो शारीरिक उपद्रव उठ खडा हुआ था उससे
छुटकारा तो मिल गया है, किन्तु अभी तक तबीयत ठीक नहीं है।
पेट और सिर में अभी तक विकार मौजूद है"।

खर्म्माटाड मे रहने के समय वह नित्य सबेरे टहलने जाया करते
थे। इस समय वह बहुत लोगों की खबर ले आया करते थे। पहले
ही लिखा जा चुका है कि विद्यासागर की चाल तेज थी। उनके साथ
उस समय जो लोग रहते थे वे उनका साथ न दे सकते थे। विद्या-
सागर सदा सीधी राह जाते थे। जहाँ राह घूम कर बनी होती थी
वहाँ, ऊँची- नीची कँकरीली जमीन होने पर भी, सीधे ही जाते थे।

सांवताल लोगों को वह इतना अधिक चाहते थे कि वहां उनके
आने की खबर पहुँचते ही आनन्द-कोलाहल मच जाता था। हर एक
मर्तबा विद्यासागर के पहुँचने पर वे लोग पहले मिलने के लिए आने
के समय कुछ न कुछ उपहार अवश्य लेते आते थे। तरकारी और
साग-सवजी ही अधिक होती थी। एक बार एक आदमी के और
कुछ न था, वह एक मुर्गी का बच्चा लेकर आया। विद्यासागर ने उसे

जनेऊ दिखा कर कहा—"मैं इसे नहीं ले सकता"। वह व्यक्ति दुखित हो कर रोने लगा। विद्यासागर ने और कोई उपाय न देख कर उस मुर्गी के बच्चे को हाथ मे लेकर फिर वापस कर दिया। वह ऐसा उदार व्यवहार करने के कारण ही सब के प्यारे थे।

यह उपवन शोभित एकान्त-वासभवन अत्यन्त रमणीय है। इसके सँवारने-सिँगारने और सजाने मे अभिराम-मण्डल के साथ विद्यासागर ने खुद बहुत परिश्रम किया था। इस चमन मे अनेक वृक्ष, लता और कुसुम-कुंज विद्यासागर के हाथ के लगाये हुये हैं। मैं जब वहाँ यह सब वृत्तान्त जानने के लिए कर्म्माटाड गया था तब उस चमन के प्रीतिपूर्ण सन्नाटे ने मेरे हृदय मे एक प्रकार के विषाद-पूर्ण गाम्भीर्य को पैदा कर दिया था। मुझे जान पडा कि विद्यासागर महाशय ससार के सैकडो शोको से छुटकारा पा कर सूक्ष्म शरीर से परम आनन्द के साथ इस निर्जन वृक्षवाटिका में ध्यान-मग्न बैठे हुए स्वर्गीय सुख का अनुभव कर रहे हैं। जान पडा, जैसे उस बाग का हर एक वृक्ष और लता तक उनके साकार-सहवास के सुख से वञ्चित हो जाने के कारण दुःख के मारे सिर लटकाये खडी हुई है।

होमिओपेथी। कलकत्ते के डाक्टर राजेन्द्रनाथ दत्त ने बङ्गालियों मे सब से पहले होमिओपेथी-चिकित्सा चलाई थी। विद्यासागर को सबसे पहले इन्हीं से होमिओपेथी की उपयोगिता और उपकारिता मालूम हुई। जब विद्यासागर ने समझा कि बूँद बूँद दवा पीने से भी फायदा होता है। तब वह इस कित्सा के पक्षपाती हो गये। औषध की उत्तमता, कीमत की कमी और सेवन करने में कुछ खटखट न देख कर विद्यासागर इस चिकित्सा के प्रचुर प्रचार में सहायता करने लगे।

डाक्टर श्रीयुत महेन्द्रलाल सरकार मुझसे कहते थे कि एक दिन बहुत वाद-विवाद और तर्क-वितर्क के बाद अन्त को विद्यासागर

ने उनसे यह स्वीकार करा लिया कि होमिओपेथी-चिकित्सा से कुछ लाभ होता है या नहीं, इसकी जाँच करूँगा। अनुसन्धान-प्रिय डाक्टर सरकार महाशय ने विद्यासागर से जाँच करने का वादा कर लिया और शीघ्र ही इस चिकित्सा की विज्ञान-सङ्गत मूलभित्ति की खोज करने लगे। थोड़े ही दिनों में उनको यह विश्वास हो गया कि इस पद्धति से चिकित्सा की जाय तो मनुष्य थोड़े खर्च में अनायास अच्छा हो सकता है। यह विश्वास होते ही वह इस मार्ग में अग्रसर हुए। इस परिवर्त्तन के लिए डाक्टर बाबू विद्यासागर के विशेष कृतज्ञ हुए। डाक्टर विहारीलाल भादुड़ी, डाक्टर अन्नदाचरण खास्तगीर आदि अनेक डाक्टर विद्यासागर के अनुरोध और सलाह से धीरे धीरे होमिओपेथी चिकित्सा करने लगे। होमिओपेथी के प्रचार के वह इतने पक्षपाती थे कि उन्होंने गाँवों में अनेक जगह होमिओपेथी-चिकित्सालय स्थापन करने में भी सहायता की थी। भास्ताड़ा-निवासी जमींदार बाबू यज्ञेश्वर सिंह लिखते हैं कि "खैराती दवा बाँटने के लिए होमिओपेथी अस्पताल खोलने की इच्छा प्रकट करने पर उन्होंने यहाँ आकर उसकी व्यवस्था कर दी थी। होमिओपेथिक चिकित्सा का सुप्रचार होने पर भी अभीतक लोगों का इस पर पूर्ण विश्वास नहीं जमा। किन्तु विद्यासागर को इस चिकित्सा पर सोलहो आने विश्वास था। उन्होंने होमिओपेथी चिकित्सा के सम्बन्ध में बहुत से ग्रन्थ पढ़े थे। वह चाहे जहाँ रहते थे, उनके पास होमिओपेथिक दवाओं का बाक्स और पुस्तकें रहती थीं। चिकित्सा करते करते उस काम में उन्होंने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। पहले कहा जा चुका है कि पढ़ने की अवस्था से ही बीमार सहपाठियों और अन्यान्य लोगों की रोगशय्या के पास बैठ कर उन्होंने अनेक रातें और दिन बिताये होंगे। होमिओपेथी के प्रचार के पहले बीमार गरीबों को

चिकित्सा के लिए वह डाक्टर दुर्गाचरण वन्द्योपाध्याय, डाक्टर सूर्य्य-कुमार सर्वाधिकारी, विहारीलाल भादुडी, नीलमाधव मुखोपाध्याय आदि बहुत से डाक्टरो की सहायता लिया करते थे। डाक्टर सर्वाधिकारी महाशय कहते थे कि विद्यासागर के अनुरोध से मैं अनेको बार, दिन और रात को भी, दीन दुखी लोगो की दवा करने गया हूँ। इनका सिलसिलेवार विवरण लिखने से एक बडा पोथी बन जा सकती है।

होमिओपेथी-चिकित्सा पर विश्वास हो जाने पर एक ओर उनके आग्रह और उद्योग से अनेक योग्य डाक्टरो ने इसी प्रणाली के अनुसार चिकित्सा करना शुरू किया और दूसरी ओर खुद उन्होंने बहुत दिनो तक अनुसधान और अनुशीलन करके एक प्रवीण डाक्टर की ऐसी जानकारी हासिल कर ली। धीरे धीरे ऐसा हो गया कि अन्य चिकित्सक की सहायता के बिना ही वह कठिन रोगियो की चिकित्सा मे सफलता प्राप्त करने लगे। होमिओपेथी ढग से चिकित्सा शुरू करने पर उनको यह सुभीता हो गया कि वह खुद जा कर रोगी को देख आते थे, अन्य डाक्टर को कष्ट देने की जरूरत न पडती थी। वक्त बे वक्त उनको अनेको बीमारो के घर वाले बुला ले जाते थे। ऐसी अनेक घटनाये हमने अपनी आँखो देखी हैं। वह किसी को बीमार देख कर ऐसा कष्ट पाते थे कि उसे दूर करने के लिए कोई कसर उठा न रखते थे। हृदय के दर्द, दमा और खाँसी की दवा बाँटने के लिए बनी रक्खी रहती थी। जो कोई जाता था उसे मुफ्त दवा दी जाती थी।

धनोपार्जन के लिए नहीं, केवल परोपकार के लिए उन्होने चिकित्साशास्त्र का अनुशीलन किया और सदा लोकोपकार के लिए निष्ठा के साथ वह इस कार्य को करते रहे। खर्म्माटाड से श्रीयुत राज-

नारायण वसु को विद्यासागर ने जो पत्र लिखा था उसमें इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। उस पत्र का कुछ अंश यह है—"मैंने इरादा किया था कि कल या परसों आपको देखने जाऊँगा। किन्तु ऐसे दो रोगियों की चिकित्सा कर रहा हूँ कि उनको छोड़ कर जाना किसी तरह उचित नहीं जान पड़ता। इस लिए दो-चार दिन के लिए देवघर की यात्रा मैंने रोक दी है"। सावताल लोगों की वह जिस तरह जी लगा कर मुफ़ चिकित्सा करते थे उस तरह अनेक डाकृर लोग फीस लेकर भी रोगी की चिकित्सा नहीं करते। विद्यासागर ने मधुसूदन ऐसे प्रतिष्ठित पुरुष का विपत्ति से उद्धार, भोजन न मिलने के कारण मृत्यु के मुख में पड़े हुए लोगों की प्राण-रक्षा, मलेरिया से पीड़ित मुसलमानों के घरों में जा कर दवा और पथ्य का देना और सांवतालों के स्नेह आदि सब कार्य अपनी साधुप्रवृत्ति की उत्तेजना से किये थे। विद्यासागर के स्वर्ग-वास से एक ओर अनेक विपन्न प्रतिष्ठित पुरुष जैसे बन्धुहीन हो गये वैसे ही दूसरी ओर अनेक गरीब दुखी लोग निराश्रय हो कर चारों ओर अन्धकार देखने लगे।

हिन्दू पारिवारिक वृत्ति-भाण्डार। जो लोग पराये दुःख का अनुभव करते हैं संसार में वे ही दुखी हैं। जो लोग बड़े कष्ट से १०—५ रुपये पैदा करके कष्ट से जीवन धारण करते हैं, सबेरे शाम अपने भाग्य की निन्दा करते हुए, तंगी के कारण आँसू बहाते हुए, दिन बिताते हैं वे ही दुखी हैं। बंगाल के मध्यवर्ती गरीब भद्र पुरुष ही इस श्रेणी के दुखी पुरुष हैं। प्रायः एक साधारण कमाई करने वाले आदमी के ऊपर परिवार के अनेक आदमियों के भरणपोषण का भार रहता है। दैव-संयोग से अगर उस आदमी का देहान्त हो जाता है तो बहुत से आदमी जीविका-हीन हो जाते हैं। विद्यासागरजी ने अन्य किसी किसी सदाशय पुरुष की सहायता से इस तरह के लोगों की सहायता के लिए एक वृत्ति-भाण्डार

स्थापित किया था। इस अनुष्ठान के पृष्ठ-पोषक सर महाराज यतीन्द्र-मोहन, सर रमेशचन्द्र और उद्योगी केशवचन्द्र सेन के बडे भाई बाबू नवीनचन्द्र सेन, राजेन्द्रनाथ मित्र रायवहादुर आदि अनेक सज्जन विद्यासागर के सहायक बन गये थे। आज इस वृत्ति-भाण्डार की सहायता से असख्य परिवार असमय में कोई उपाय न रहने पर मासिक वृत्ति पाते और अपना गुजर करते हैं। इस वृत्तिभाण्डार की स्थापना के बाद कई साल तक इसका काम अच्छी तरह चलता रहा। इसी समय आफिस के एक कर्म्मचारी के लिए विद्यासागर के साथ नवीनचन्द्र की नहीं पटी। इस घटना से ईश्वरचन्द्र को ऐसी विरक्ति और अप्रसन्नता हुई कि फिर वह किसी तरह मिल कर काम करने के लिए राजी नहीं हुए। अन्त को उन्होने सब सम्बन्ध त्याग करने का पक्का इरादा करके उसके सेक्रेटरी नवीनचन्द्र सेन को अपनी इच्छा जताई। इस समाचर से सब लोग बहुत ही दु खित हुए। सब ने मिल कर विद्यासागर का विचार बदलने के लिए चेष्टा की। किन्तु उससे कुछ भी फल नहीं हुआ। उनके सम्बन्ध छोड देने पर सर महाराज यतीन्द्रमोहन और सर रमेशचन्द्र ने फण्ड के ट्रस्टी का पद छोड दिया। और सब के सिर पर जैसे वज्र पात हो गया। किन्तु विधाता की कृपा से धीरे धीरे सब आशका दूर हो गई। वह वृत्ति-भाण्डार अभी तक चल रहा है और उससे असख्य दुखी और विपत्ति-ग्रस्त पुरुषों का निर्वाह होता है। विद्यासागर ने व्यक्ति-गत झगडे से खीझ कर अपने स्थापित वृत्ति-भाण्डार का सम्बन्ध त्याग कर अच्छा नहीं किया। उनके ऐसे आदमी का अपने बुद्धि-विवेचन के ऊपर निर्भर करके काम करना स्वाभाविक ही था। विद्यासागर महाशय किसी का जरा भी दबाव न सह सकते थे। हमारे देश के लोग यह बात अभी तक नहीं सीखे कि विद्यासागर ऐसे प्रतिभाशाली आदमी की दो एक बाते मान कर उसकी सहायता

से साधारण अनुष्ठानो की उन्नति और श्रीवृद्धि होन दना चाहिए। उधर वे भी दस आदमियो का हठ मान कर उनके साथ मिल कर काम न कर सकते थे। दस आदमियो से मिल कर काम करने पर उनको विश्वास न था, इससे प्राय वह अकेले ही काम करते थे और जिस काम में हाथ डालते थे उसी में प्राय उन्हें सफलता प्राप्त होती थी।

उनके रचे हुए ग्रन्थ, उनका स्थापित संस्कृत-प्रेस और संस्कृत-प्रेस डिपोजीटरी जब उनकी जीविका का प्रधान सहारा था उस समय मधुसूदन के ऋण की जिम्मेदारी से छुटकारा पाने के लिए उन्होने प्रेस का हिस्सा बेच डाला था। डिपोजीटरी का काम वह खुद न देखते थे। अनेक विशृङ्खलाओं के कारण एक समय बहुत ही खीझ कर उन्होने डिपोजीटरी का स्वत्व बेच डालने का इरादा किया था। एक दिन इस प्रकार विद्यासागर के खेद प्रकट करने पर उनके परम आत्मीय कृष्णनगर-निवासी व्रजनाथ मुखोपाध्याय ने कहा—"आप अगर असन्तुष्ट न हो कर उसका स्वत्व दे तो मैं उसे लेकर आपके मन के माफिक चला सकता हूँ"। जिस सम्पत्ति को बेच कर वह उसी दम कई हजार रुपये पा सकते थे, जिस सम्पत्ति को खरीदने के लिए दूसरे दिन अनेक लोगो ने अनेक चेष्टायें कीं वह सम्पत्ति उन्हों ने बात ही बात में मुफ्त व्रजबाबू को दे डाली। कहा—"अच्छा आप ही को देता हूँ"। यह बात होने के दूसरे दिन सबेरे अनेक लोगो ने हजारों रुपये दे कर उसे खरीदना चाहा। लेकिन विद्या-सागर ने अपनी बात नहीं बदली। कहा—"उसके २००००) रुपये भी कोई दे तो मैं नहीं ले सकता। मैं तो दे चुका"।

हमारे देश में उनकी अपेक्षा धनी लोगों की संख्या कम नहीं है। किन्तु डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार ने जिस समय विज्ञान की

चर्चा के लिए भारत-सभा स्थापित की थी उस समय अनेक धनी लोगों की अपेक्षा उन्होने ही अधिक चन्दा दिया था। उन्होंने ज्ञान और शिक्षा के प्रचार के लिए इस शुभ कार्य मे १०००) रु० की सहायता की थी।

एक बार वर्दवान से वीरसिंह जाने के समय एक जगह पालकी रखी जाने पर एक वालक विद्यासागर के पास आकर खडा हो गया। वालको को प्यार करने वाले विद्यासागर की दृष्टि पडते ही उस बालक ने कहा—"बाबू एक पैसा दीजिएगा ?" विद्यासागर ने कहा—"एक पैसा क्या करेगा ?" उत्तर मिला—"खाने को खरीद कर खाऊँगा।" विद्यासागर ने कहा—"और अगर दो पैसे दूँ ?" उत्तर मिला—"तो एक पैसा आज और एक पैसा कल खाऊँगा।" विद्यासागर ने कहा—"और अगर चार पैसे दूँ ?" उत्तर मिला—"तो बाजार से आम खरीद कर वेचूँगा। जो मुनाफा होगा वह खाऊँगा और पूँजी से रोजगार करूँगा"। विद्यासागर ने वालक की बातो से खुश होकर उसे अधिक पैसे दिये और कह गये कि "इस रकम को अगर तू बढा सकेगा तो रुपये देकर मैं तुझको दूकान करा दूँगा"। विद्यासागर ने दुबारा यह देख कर कि उस वालक ने पैसो से रुपया कर लिया है, उसे दूकान करा दी और उसके व्याह का सारा खर्च उठाया।

मट्रोपोलीटन् कालेज मे बिना फीस दिये पढने वाले बालको की सख्या बहुत अधिक थी। जिसने किसी प्रकार के सन्तोष-जनक प्रमाण के साथ अपनी गरीबी जता कर उनसे प्रार्थना की वही कालेज मे मुफ्त शिक्षा पाने लगा। केवल मुफ्त शिक्षा का प्रवन्ध करके ही उन्हे फुर्सत नहीं मिली, किसी किसी वालक को वस्त्र और भोजन भी देना पडता था। इस तरह गरीब विद्यार्थियो की सहायता करने में कभी कभी उन्हें धोका भी दिया जाता था। उनकी माता के स्वर्ग-

वास के बाद केवल मातृहीन बतलाने से अनेक बालको की वह सहायता करने लगे थे। दो तीन बालको ने "हमारे माता नहीं है" यह कह कर सहायता प्राप्त कर ली। किन्तु अब विद्यासागर को कुछ सन्देह हुआ। पता लगाने से मालूम हुआ कि पास ही जिस मोदी की दूकान थी उसने जब देखा कि मातृहीन बतला कर एक बालक सहायता पा रहा है तब उसने और बालको को भी ऐसा कहने के लिए सिखला दिया। उसके यहाँ से विद्यासागर सीधा दिला दिया करते थे।

कलकत्ते के एक प्रतिष्ठित पुरुष के अनुरोध से विद्यासागर ने एक अनाथ बालक को स्कूल में मुफ़ पढने के लिए अनुमति दे दी। कुछ दिनो बाद स्कूल मे जाकर टिफिन के समय देखा कि वह सुन्दर बालक कीमती कपड पहने हुए इधर उधर घूम रहा है। पहले विश्वास नहीं हुआ, पीछे अनुसन्धान करने से मालूम हुआ कि यह वही बालक है। किन्तु उस समय भी विद्यासागर को कुछ बुरा नहीं मालूम हुआ। क्योंकि वह उस बालक को वे माँ-बाप का अनाथ ही समझते थे। उन्होंने यह समझा कि पहले जब अच्छी हालत थी तब के य कपडे हो सकते हैं। किन्तु जब उन्होने उसे दूध पीते और मिठाई खाते देखा तब पता लगा कर जाना कि जिन धनी मित्र ने इस अनाथ बालक के लिए उनके पास सिफारिश की थी और जिनके अनुरोध पर निर्भर करके उन्होने इस बालक की मुफ़ शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया था वह सुपरिचित प्रतिष्ठित पुरुष ही इस बालक के बहनोई हैं। विद्यासागर के मुख से यह घटना और उन प्रतिष्ठित महाशय का नाम सुन कर मैंने भी देश के लोगो की नीचता का स्मरण करके लज्जा और क्षोभ से सिर नीचा कर लिया था। यह तो असम्भव नहीं है कि गरीब आदमी गरीबी की हालत में अपनी जरूरत

के लिए किसी को धोखा दे, किन्तु किसी अमीर का अपने साले को मुफ्त शिक्षा दिलाने के लिए ऐसी दग़ाबाजी करना समझ में नहीं आता। यह महाशय मरते समय लाखो रुपये की सम्पत्ति छोड गये हैं जिन्होने विद्यासागर से यह ठग-विद्या की थी।

विद्यासागर की दीनवत्सलता के साथ अनेक लोगो ने इसी तरह की दग़ाबाजियाँ की हैं। एक बार एक बालक ने स्कूल की किसी एक निम्नश्रेणी का पता देकर उत्तर-पाडा स्कूल से विद्यासागर को एक चिट्ठी लिखी। उस पत्र का भाव यह था कि "मैं बे मा-बाप का गरीब लडका हूँ। ससार में मेरे कोई नहीं है। दूसरे के घर मुट्ठी भर भात खाकर बडे कष्ट से लिखना-पढना सीखता हूँ। मेरे पास इतना पैसा नहीं है कि कलकत्ते आकर श्रीचरणो के दर्शन करूँ। अगर दया करके निम्नलिखित पुस्तके भेज दीजिए तो मैं निश्चिन्त होकर एक साल तक लिख पढ सकता हूँ।" पत्र की लिखावट पर विश्वास करके कुछ पुस्तकें औरो की खरीद कर और कुछ पुस्तकें अपनी रख कर अपने पास से डाकखर्च देकर, विद्यासागर ने उसी पते पर भेज दीं। हर साल वह बालक इसी तरह "मैं ऊँचे दर्जे मे चढ गया हूँ" कह कर उस उस दर्जे की पुस्तकें विद्यासागर से मुफ्त मँगाने लगा। जिस साल उस बालक की स्कूल की पढाई समाप्त होने वाली थी उस साल उत्तरपाडा स्कूल के हेडमास्टर विद्यासागर से मुलाक़ात करने आये। प्रसङ्गवश विद्यासागर ने हेडमास्टर से पूछा—"इस नाम का बालक इस साल तुम्हारे यहाँ प्रथम श्रेणी में पढता है। वह लडका पढने-लिखने में कैसा है?" हेडमास्टर ने कहा—"कहाँ, इस नाम का लडका तो मेरे यहाँ पहली या दूसरी श्रेणी में नहीं पढता"। विद्यासागर ने दिल्लगी के तौर पर कहा—"तुम तो बडे अच्छे हेडमास्टर हो, एक लडका पाँचवे दर्जे से हर साल उन्नति करता हुआ इस समय पहली श्रेणी में पढता है। और

तुम कहते हो कि इस नाम का कोई लड़का ही स्कूल में नहीं है। तुम क्या सब लड़कों को नहीं पहचानते ? वह लड़का हर साल मुझसे कोर्स की पुस्तकें मँगाता है। मैंने उसको स्कूल के पते पर पुस्तकें भेजी हैं और उसने पाई हैं।" मास्टर साहब बहुत ही भले आदमी थे और विद्यासागर पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। उन्होंने अधिक कुछ न कह कर इतना ही कहा—"अच्छा, मैं पता लगा कर कल आपसे कहूँगा। ऐसा हो सकता है कि लड़के के दो नाम हों"। दूसरे दिन हेडमास्टर ने पहले दर्जे से लेकर अन्त तक सब दर्जों में अनुसन्धान किया किन्तु उस नाम का कोई लड़का न मिला। यह मालूम पड़ा कि उस नाम का एक बुक्सेलर स्कूल के पास ही पुस्तक, कागज, क़लम आदि बेचता है। उससे अधिक कहने सुनने पर उसने स्वीकार किया कि इस तरह दगाबाजी करके हर साल विद्यासागर से पुस्तकें मँगा कर मैंने बेच ली हैं। विद्यासागर ने इस घटना के उल्लेख के समय दुःख करके कहा था कि "जिस देश के बालक ऐसे दगाबाज हैं उस देश की उन्नति सहज में नहीं हो सकती।"

लोग माता-पिता के श्राद्ध के लिए, कन्या के विवाह के लिए, अपने किये कर्ज को चुकाने के लिए, खाने-पीने पहनने के लिए बराबर उनसे सहायता पाया करते थे। ऐसी सहायता पानेवाले व्यक्तियों को असीसते और धन्यवाद देते मैंने खुद देखा है। एक प्रतिष्ठित पुरुष सङ्कट की अवस्था में पड़ कर विद्यासागर के शरणागत हुए थे। उन्होंने उनके भारी परिवार का खर्च बहुत दिनों तक चलाया था।

विद्यासागर महाशय परोपकार के लिए अपना सर्वनाश कर डालने में इधर-उधर न करते थे। एक बार एक भद्र पुरुष (नाटेर के पुलीस सब इन्स्पेक्टर) विद्यासागर के एक परिचित मित्र के साथ उनसे मिलने आये। परिचित व्यक्ति ने कहा—"कल तीसरे पहर आपसे मिलने

हम लोग आये थे, मगर आपसे मुलाकात नहीं हुई। यह भद्र पुरुष बडी ही विपत्ति मे पडे हैं। एक मुकद्दमे में निर्दोष होने पर भी इनको छ महीने की सजा हो गई है। इन्होने हाईकोर्ट मे उसकी अपील की है। इनकी ओर से ७००) रु० पर एक पेशी के लिए मनोमोहन घोष बैरिस्टर नियत किये गये हैं। घर से कल रुपये आनेवाले थे किन्तु नहीं आये। आज मुकद्दमे की सुनवाई का पहला दिन है। आप अनुग्रह करके घोष महाशय को एक पत्र लिख दीजिए कि वह आज का काम करदे। इस बीच में रुपया आ जायगा और उनको दे दिया जायगा। एक हफ्ते के भीतर रुपया अवश्य आ जायगा"। विद्यासागर ने सब हाल सुन कर घडी भर चुप रह कर कहा—"यह काम मुझसे न होगा। एक आदमी का एक पैर जेलखाने के भीतर और एक पैर बाहर है। रुपया बाकी रख कर उसका काम करने के लिए अनुरोध करना ठीक नहीं मालूम पडता। और वही क्या कहेगे? जिस समय घोष बाबू विलायत गये थे उसी समय की मेरी उनकी जान पहचान है। उसके बाद उनसे बहुत मेलजोल नहीं रहा। ऐसी अवस्था मे सहसा इस तरह का एक अनुरोध कर भेजना क्या ठीक होगा? तुम्हीं घोष महाशय से इनका हाल क्यों नहीं कहते? सुनता हूँ वह तो परोपकारी और विपन्न पुरुषों के हितैषी हैं। इतने दिनो तक अगर किसी बात के लिए मैंने उनसे अनुरोध किया होता तो आज नि सङ्कोच होकर उनसे यह बात कह सकता"।

विपन्न भद्र पुरुष यह सुन कर आंखो मे आंसू भर कर कहने लगे—"सुना है, जिसको कहीं आश्रय नहीं उसे यहां आश्रय मिलता है। किन्तु मुझे यहां भी आश्रय नहीं मिला।" विद्यासागर के हृदय मे दया का सागर उमड पडा। वह घोष महाशय को पत्र लिखने बैठे।

"My Dear Ghoshe" तक लिख कर कलम रुक गई। एक मिनट, दो मिनट, इसी तरह कई मिनट बीत गये। तब विद्यासागर ने कहा—नहीं, यह काम मुझसे न होगा। विपन्न भद्र पुरुष ने रोते रोते कहा—"क्या मैं फिर जेल ही जाऊँगा?" सङ्कट में पड़े हुए भद्र पुरुष के इन हताश वाक्यों ने फिर विद्यासागर को विचलित कर दिया। पाठक, सुनना चाहते हो कि उन्होने दो आंसू गिरा कर क्या किया? उस दिन विद्यासागर के पास एक कौड़ी भी न थी। उन्होंने बक्स से चेकबुक निकाल कर ७००) रु० का एक चेक लिख कर उन्हें दिया और कहा—"देखो, बैंक में भी मेरा रुपया नहीं जमा है। तुम घोष बाबू को जाकर यह चेक दो और कहो कि कल साढ़े ग्यारह बजे के पहले यह चेक बैंक में मत भेजना। मैं आज दिन भर में, जिस तरह होगा, बैंक में इतना रुपया जमा कर दूँगा।"

पुण्यबल से हो या अपने पक्ष में प्रबल प्रमाण होने के कारण हो, सब इन्स्पेक्टर बाबू हाईकोर्ट से छूट गये और चौथे दिन सात सौ रुपये लेकर विद्यासागर के दर्शन करने आये। उनके साथ विद्यासागर के वही परिचित मित्र थे। प्रणाम के बाद रुपये सामने रख कर हँसते हुए सब इन्स्पेक्टर बाबू ने कहा—"मैं हाईकोर्ट से छूट गया हूँ। आज घर से ये रुपये आ गये हैं। इसीसे यह सुसमाचार सुनाने आया हूँ"। विद्यासागर महाशय इस खबर से सन्तुष्ट होंगे, इस प्रत्याशा से मित्र सहित दारोगा बाबू विद्यासागर के मुख की ओर देखने लगे। विद्यासागर ने कहा—"तुमने भले आदमी के लड़के हो कर मुझसे छल किया, और तुम (अपने मित्र) ने परिचित होकर मुझसे चातुरी की।" दोनो आदमी दंग रह गये। थोड़ी देर बाद विद्यासागर ने फिर कहा—"तुम पुलिस में काम करते हो न?" दारोगा—"जी हाँ"। विद्यासागर—"नहीं, यह बात कभी सच नहीं हो सकती,

हम लोग आये थे, मगर आपसे मुलाकात नहीं हुई। यह भद्र पुरुष ब
ही विपत्ति मे पड़े हैं। एक मुकदमे में निर्दोष होने पर भी इनको छ
महीने की सजा हो गई है। इन्होने हाईकोर्ट मे उसकी अपील की है
इनकी ओर से ७००) रु० पर एक पेशी के लिए मनोमोहन घोष बैरिस्
नियत किये गये हैं। घर से कल रुपये आनेवाले थे किन्तु नहीं आये
आज मुकदमे की सुनवाई का पहला दिन है। आप अनुग्रह कर
घोष महाशय को एक पत्र लिख दीजिए कि वह आज का का
करदे। इस बीच में रुपया आ जायगा और उनको दे दिया जायगा
एक हफ्ते के भीतर रुपया अवश्य आ जायगा"। विद्यासागर ने स
हाल सुन कर घडी भर चुप रह कर कहा—"यह काम मुझसे
होगा। एक आदमी का एक पैर जेलखाने के भीतर और एक पैर बाह
है। रुपया बाकी रख कर उसका काम करने के लिए अनुरोध करन
ठीक नही मालूम पडता। और वही क्या कहेंगे? जिस समय घो
बाबू विलायत गये थे उसी समय की मेरी उनकी जान पहचान है
उसके बाद उनसे बहुत मेलजोल नहीं रहा। ऐसी अवस्था में सहस
इस तरह का एक अनुरोध कर भेजना क्या ठीक होगा? तुम्ही घो
महाशय से इनका हाल क्यो नहीं कहते? सुनता हूँ वह तो परोपकार
और विपन्न पुरुषो के हितैषी हैं। इतने दिनो तक अगर किसी बात के
लिए मैंने उनसे अनुरोध किया होता तो आज नि सङ्कोच होकर उनसे
यह बात कह सकता"।

विपन्न भद्र पुरुष यह सुन कर आँखो मे आँसू भर कर कहने लगे—
"सुना है, जिसको कहीं आश्रय नहीं उसे यहाँ आश्रय मिलता है
किन्तु मुझे यहाँ भी आश्रय नहीं मिला!" विद्यासागर के हृदय
मे दया का सागर उमड पडा। वह घोष महाशय को पत्र
लिखने बैठे।

"My Dear Ghoshe" तक लिख कर कलम रुक गई। एक मिनट, दो मिनट, इसी तरह कई मिनट बीत गये। तब विद्यासागर ने कहा—नहीं, यह काम मुझसे न होगा। विपन्न भद्र पुरुष ने रोते रोते कहा—"क्या मैं फिर जेल ही जाऊँगा?" सङ्कट में पड़ हुए भद्र पुरुष के इन हताश वाक्यों ने फिर विद्यासागर को विचलित कर दिया। पाठक, सुनना चाहते हो कि उन्होंने दो आँसू गिरा कर क्या किया? उस दिन विद्यासागर के पास एक कौड़ी भी न थी। उन्होंने बक्स से चेकबुक निकाल कर ७००) रु० का एक चेक लिख कर उन्हें दिया और कहा—"देखो, बैंक में भी मेरा रुपया नहीं जमा है। तुम घोष बाबू को जाकर यह चेक दो और कहो कि कल साढ़े ग्यारह बजे के पहले यह चेक बैंक में मत भेजना। मैं आज दिन भर में, जिस तरह होगा, बैंक में इतना रुपया जमा कर दूँगा।"

पुण्यबल से हो या अपने पक्ष में प्रबल प्रमाण होने के कारण हो, सब इन्सपेक्टर बाबू हाईकोर्ट से छूट गये और चौथे दिन सात सौ रुपये लेकर विद्यासागर के दर्शन करने आये। उनके साथ विद्यासागर के वही परिचित मित्र थे। प्रणाम के बाद रुपये सामने रख कर हँसते हुए सब इन्सपेक्टर बाबू ने कहा—"मैं हाईकोर्ट से छूट गया हूँ। आज घर से ये रुपये आ गये हैं। इसीसे यह सुसमाचार सुनाने आया हूँ"। विद्यासागर महाशय इस खबर से सन्तुष्ट होंगे इस प्रत्याशा से मित्र सहित दारोगा बाबू विद्यासागर के मुख की ओर देखने लगे। विद्यासागर ने कहा—"तुमने भले आदमी के लड़के हो कर मुझसे छल किया, और तुम (अपने मित्र) ने परिचित होकर मुझसे चातुरी की।" दोनों आदमी दंग रह गये। थोड़ी देर बाद विद्यासागर ने फिर कहा—"तुम पुलिस में काम करते हो न?" दारोगा—"जी हाँ"। विद्यासागर—"नहीं, यह बात कभी सच नहीं हो सकती,

ले जाकर अच्छे डाकृर को दिखलाते तो अच्छा होता"। इस अयाचित विज्ञजनोचित उपदेश को सुन कर वालक का पिता मोटी चादर ओढ़े विद्यासागर को मन ही मन पागल ठहरा रहा था। इसी समय वालक के पैर की फिर परीक्षा करके विद्यासागर ने कहा—"मुझे जान पड़ता है कि मेडिकल कालेज के अस्पताल मे दिखलाने से कुछ न कुछ फायदा अवश्य होगा"।

तब वालक के पिता ने कहा—"कलकत्ते ले जाकर वहाँ के डाकृरखाने मे दिखलाना मेरी शक्ति के वाहर है"। फिर भी विद्यासागर ने परम आत्मीय की तरह कहा—"अच्छा, अगर कोई कलकत्ते मे जाने-आने का, वहाँ रहने का, और डाकृर तथा दवा का खर्च दे तो कलकत्ते जा सकते हो कि नहीं ?" वालक का पिता विद्यासागर की वाहर की अवस्था देख कर और उनके प्रस्ताव का खयाल कर यह सोचने लगा कि क्या उत्तर दूँ। इतने मे उसके द्वार पर धीरे धीरे आदमियो की भीड होने लगी। विद्यासागर यह देख कर खवर देने के लिए उस ब्राह्मण को अपना पता वता कर शीघ्र वहाँ से चल दिये। उनके चले जाने के थोडी ही देर वाद भीड और भीड का कोलाहल और भी वढने लगा। उस भीड़ का कोई भी आदमी विद्यासागर को नहीं पहचानता था। लेकिन विद्यासागर उस ब्राह्मण को जो अपना पता वता गये थे उसीसे सव वात खुल गई। उस गाँव के एक प्रतिष्ठित भद्र पुरुष ने ब्राह्मण के मुख से सव वाते सुन कर और विद्यासागर के वतलाये पते को जान कर कहा—"तुम मे से कोई पहचान नहीं सका, वह विद्यासागर महाशय थे। उनके सिवा ऐसी वात और कौन कह सकता है ? तीसरे पहर जाकर उनसे मुलाकात करना। वह जिस तरह कहे वैसा करने से अवश्य यह वालक अच्छा होजायगा"। उस समय चारो ओर 'विद्यासागर' 'विद्यासागर' का शोर पड़ गया।

थोड़े ही समय में विद्यासागर का नाम और उस लड़के का लँगड़ापन गाँव में चारों ओर प्रसिद्ध हो पड़ा।

बालक का पिता बालक की माता से सलाह करके शाम को विद्यासागर के बतलाये घर में उनसे मुलाकात करने गया। किन्तु वह बहुत देर तक कोई बात न कह सका। यह देख कर विद्यासागर ने समझ लिया कि वह जो कुछ छिपाना चाहते थे वह प्रकट होगया। ये लोग समझ गये हैं कि यही विद्यासागर हैं। तब विद्यासागर ने पूछा—"तुमने क्या निश्चय किया?" बालक के पिता ने हाथ जोड़ कर क्षमा-प्रार्थना की और कहा कि "आप आज हमारे द्वार पर गये, हमने इस सौभाग्य को न जानने के कारण आपके प्रति जो अनादर का भाव प्रकट किया उसके लिए पहले क्षमा कीजिए। उसके बाद फिर और बात होगी"। विद्यासागर ने स्वाभाविक सहृदयता के वशवर्ती होकर कहा—"तुमने तो मेरा कुछ अनादर नहीं किया, इसीसे तुम अपराधी भी नहीं हो। अब बताओ, तुमने क्या निश्चय किया?" बालक के बाप ने कहा—"मेरे किये तो कुछ हो नहीं सकता। अगर आप कोई व्यवस्था कर देंगे तो उसे मैं शिरोधार्य समझूँगा"। तब प्रसन्न होकर विद्यासागर ने कहा—"तब तुम यहाँ का सब बन्दोबस्त करके कलकत्ते में जाने की और वहाँ कुछ दिन रहने की तैयारी करो। मैं तुम्हारे लिए सब व्यवस्था कर आऊँगा"। तब बालक के पिता ने फिर कहा—"जी, कलकत्ते में रहना होगा? तब तो बहुत रुपये खर्च होंगे, इतने रुपये—"दया के सागर विद्यासागर ने कहा—"यह चिन्ता तुम क्यों करते हो?"

मैंने इस बारे में उनसे एक बार पूछा था कि "उस बालक का पैर बिल्कुल अच्छा होगया या नहीं?" इसके उत्तर में उन्होंने कहा—"नहीं, बिल्कुल नहीं अच्छा हुआ। लाभ इतना ही हुआ कि वह लैंगा

था वैसा ही रहेगा। और अधिक न सूखेगा।" मनुष्य के सुख और सुभीते पर उनकी ऐसी दृष्टि थी कि उनके द्वारा जो कुछ हो सकता था उसे करने के लिए वह प्राणपण से चेष्टा करते थे। मुझे मालूम है कि इस बालक की दवा, डाकृरो की फीस, मकान के किराये और भोजन आदि में चार पाँच सौ रुपये खर्च हुए थे। कोई भी मनुष्य सुख से रहे, इसके लिए कुछ भी ऐसा न था जो वह न दे सकते हो।

कलकत्ते के और बङ्गाल के अनेक स्थानो के असख्य दीन दुखी लोगों को बहुत दिन तक उनसे ।।) १) २) ३) ४) ५) महीने की सहायता मिलती रही है। समय समय पर ऐसे विपन्न लोगो का दु ख दूर करने के लिए मैंने भी उनसे सिफारिश की है, और उन्होंने मेरे अनुरोध से ऐसे लोगो की बहुत दिनो तक सहायता की है। जिन पर विद्यासागर की करुणा-दृष्टि होती थी उनको केवल मासिक वृत्ति ही नहीं मिलती थी, विपत्ति पडने पर सामयिक सहायता और दुर्गा-पूजा के अवसर पर नये कपडे आदि भी वे पाते थे।

अमीर या गरीब, उच्च या नीच, कोई भी भोजन के समय अथवा उस समय से कुछ पहले या पीछे उनके पास आता था तो पहले वह यही प्रश्न करते थे कि भोजन किया है या नहीं? एक बार एक दूर का रहनेवाला आदमी कलकत्ता आदि अनेक स्थानो में खोजने के बाद कर्म्माटाड में गया और वहाँ उसे विद्यासागर के दर्शन मिले। दोपहर के समय वह व्यक्ति विद्यासागर के घर के पास खडा हुआ उसे देख रहा था। इसी समय विद्यासागर की दृष्टि उस पर पडी। विद्यासागर ने उसे बुलवाया। पूछने से मालूम हुआ कि वह उन्हीं से मुलाक़ात करने आया है। विद्यासागर ने सब से पहले उससे पूछा—"तुमने अभी तक भोजन किया है या नहीं?" वह आदमी अनेक

स्थानो में घूम कर बहुत कष्ट सह कर उनसे मुलाक़ात करने आया था। विद्यासागर के स्नेहपूर्ण सम्भाषण से उसकी आँखो में आँसू भर आये। विद्यासागर ने कहा—"रोते क्यों हो ?" उसने कहा—"इतना क्लेश उठा कर इतने आदमियो के पास गया, पर किसी ने भी तो यह नहीं पूछा कि तुम भोजन कर चुके हो या नहीं"। विद्यासागर ने सबसे पहले उसके भोजन का प्रबन्ध कर दिया और उसके बाद उसकी प्रार्थना पूर्ण की।

एक बार बरीसाल के एक आदमी बड़ी आशा करके कलकत्ते के दो बड़े आदमियो से मिलने आये। एक महाशय के यहाँ कई दिन तक दरबार करने पर भी मुलाक़ात नहीं हुई। तीसरे या चौथे दिन दोपहर के समय बारबार माँगने पर भी पीने के लिए पानी न मिलने से उस व्यक्ति को बड़ा क्रोध आया। वह क्रोध से काँपते और लाल लाल आँखे किये विद्यासागर के घर पर पहुँचे। विद्यासागर भोजन के बाद यो ही नगे हाथ में नारियल का हुक्का लिये नीचे द्वार पर खड़े हुए थे। उस आदमी ने आकर विरक्ति के भाव से रूखे स्वर में पूछा—"विद्यासागर से मुलाक़ात होगी ?" विद्यासागर ने किसी दुर्घटना की कल्पना करके कहा—"हाँ होगी क्यो नहीं, आप बैठिए"। उस आदमी ने कहा—"होगी क्या नहीं का काम नहीं है। एक आदमी को देख लिया, अब इनको भी देख कर चल दूँ। हो सके तो मुलाक़ात हो जाय"। विद्यासागर समझ गये कि यह आदमी तपा हुआ है। उन्होने तमाखू पीने का अभ्यास है या नहीं, यह पूछ कर उनको हुक्का दिया। हुक्का पीकर मिजाज जरा नर्म होने पर विद्यासागर ने पूछा—"भोजन हुआ है या नहीं" ? उस आदमी ने कहा—"भोजन की कुछ जरूरत नहीं है। तुम जरा विद्यासागर को बुला दो, उनसे भेंट करके चल दूँगा"। विद्यासागर ने कहा—

"भोजन न किया हो तो अभी उसका सब प्रबन्ध हो सकता है"। विद्यासागर के इशारे से इसी बीच में जल-पान का प्रबन्ध हो गया था। बहुत कुछ कह सुन कर विद्यासागर ने उसे कुछ जलपान कराया। जलपान के बाद तमाखू पीते पीते उस आदमी ने फिर कहा—"एक बार बुला दो तो इनको भी देख लूँ। अब भूल कर भी ऐसी भूल न करूँगा"। बहुत पूछने पर विद्यासागर को सब हाल मालूम हुआ। विद्यासागर को यह भी मालूम हो गया कि वह अपरिचित आदमी उनसे क्यों ऐसी रूखी बात-चीत कर रहा था। बार बार मुलाकात के लिए जोर देने पर विद्यासागर ने उसे अपना परिचय दिया। परिचय देते ही उस आदमी का भाव बिलकुल बदल गया। उसने बहुत लज्जित होकर विद्यासागर के मुँह की ओर ताक कर कहा—"मैं—मैं—आप—को—आपको—" विद्यासागर ने कहा—"आपका कोई दोष नहीं है। ऐसी अवस्था में मनुष्य के मन का यही हाल हो जाता है। इसमें आपको लज्जित न होना चाहिए"। विद्यासागर के ऐसे बर्ताव से अत्यन्त सन्तुष्ट होकर वह आदमी अपने घर गया।

कोई आकर दरवान के द्वारा अपमानित न हो, इस आशङ्का से विद्यासागरजी अपने द्वार पर दरवान नहीं रखते थे। उनसे मुलाकात करनेवाला बे-रोकटोक उनके पास चला जाता था। एक बार केवल थोड़ी देर के लिए एक नौकर को दरवान बना कर उन्होंने द्वार पर बिठलाया था। उसका कारण था। एक बार एक प्रतिष्ठित पुरुष के यहाँ विद्यासागर निमन्त्रित होकर गये। दरवाजे पर दरवान ने भीतर न जाने दिया। इस प्रकार वहाँ से अपमानित होकर विद्यासागर अपने घर लौट आये। निमन्त्रण करनेवालों को शिक्षा देने के लिए, घर पर आते ही विद्यासागर ने एक नौकर को द्वार पर बिठला दिया और

कहा कि किसी को मेरे हुक्म के विना इस समय भीतर न आने देना। दम भर के बाद वे लोग आये, जिनके दरवाजे पर से विद्यासागर लौट आये थे। भीतर घुसते समय नौकर ने रोका। मुलाकात नहीं हुई और उन्हें लौट जाना पडा।

बन्धु-बान्धव और परिचित लोगों में से किसी के कुछ बीमार होने पर विद्यासागर उसकी खबर लेते थे। सबसे पहले यही पूछते थे कि खर्च किस तरह चलता है? अगर तगी होती थी तो किसी न किसी उपाय से उसकी सहायता करते थे। एक बार बहुत बीमार हो जाने के कारण मुझे बहुत दिन के लिए नौकरी से छुट्टी लेनी पडी। विद्यासागर ने लोगों के मुँह से यह खबर पा कर बड नाती के द्वारा मुझको बुला भेजा। श्रीयुत सुरेशचन्द्र समाजपति ने आकर मुझसे कहा—"दादाजी ने कहा है कि अगर आप मे उठने की शक्ति हो तो जरा चलिए। वह बीमार हैं, नही तो खुद यहाँ आते"। विद्यासागर के इस स्नेह-पूर्ण बुलावे से अपने को अनुगृहीत समझ कर मैं उनकी सेवा में उपस्थित हुआ। मेरे आने की खबर पा कर उन्होंने मुझे अपने पलँग के पास बुला भेजा। मैंने झुक कर चरणो मे प्रणाम किया। उन्होने पास की कुरसी पर बैठने के लिए कहा। उनका स्वर इतना क्षीण मुझे मालूम पडा कि मुझे उससे बडा भय और क्लेश हुआ। इसके बाद मेरे साथ उनकी यह बात-चीत हुई।

वि०सा०—तुम्हारी तबीयत क्या बहुत खराब है?

मैं—जी हां।

वि०सा०—छुट्टी ली है, तनख्वाह मिलती है न?

मैं—आधी तनख्वाह मिलती है।

वि०सा०—खर्च कैसे चलता है?

मैं—कर्ज लेकर।

वि०सा०—हर महीने कितना कर्ज लेना पडता है ?

मैं—३०। ४० रुपये।

वि०सा०—इन रुपयो का सूद देना पडता है ?

मैं०—हाँ, देना पडता है।

वि०सा०—तुम आज कल के लडके हो, कोई बात कहते डर मालूम होता है। शायद किसी बात मे इन्सल्ट (insult=अपमान) न हो जाय।

मैंने बहुत अप्रतिभ होकर कहा—आपको जो पूछना हो, पूछिए। आप ऐसा समझेंगे तो सचमुच मुझे बडा क्लेश होगा। क्योकि आप की किसी बात को मैं उपेक्षा के योग्य नहीं समझता।

तब उन्होने कहा—सूद देकर और जगह रुपया कर्ज लेने की अपेक्षा मुझसे बिना सूद का रुपया ले लेते तो क्या हर्ज था। जब सुभीता होता तब दो दो चार चार रुपये करके दे देते।

मैंने कहा—आप ऐसे महाजन से इस तरह के वादे पर रुपया लेने से फिर उसे अदा करना असम्भव ही हो जाता।

उन्होने कहा—अगर अदा न करते तो क्या होता ?

मैंने कहा—आपके रुपये से मेरी अपेक्षा अधिक गरीब लोगों का प्रतिपालन होता है। उनका पेट काटना क्या मेरे लिए उचित होता ?

उन्होने उसी तरह सरस स्वर मे कहा—मुझे नहीं मालूम था कि तुम इतने बड आदमी हो।

मैंने बहुत शर्मा कर कहा—नहीं, मेरे कहने का यह मतलब नहीं था।

विद्यासागर ने कहा—खैर, मान लो कि तुमने भी कुछ मेरा खा लिया, तो क्या यह उचित नहीं है ?

मैंने कहा—बहुत तगी होगी तो मैं फिर आपसे कहूँगा।

विद्यासागर ने कहा—वाह, तगी और कैसी होती है ?

मैंने कहा—जितने दिन इस तरह चलता है, चलने दीजिए।

विद्यासागर ने कहा—ऋण से हाथ-पैर जकड जायँगे तो फिर हिलने डुलने लायक न रहोगे।

मैंने कहा—ऐसी अवस्था होगी तो मैं खुद आपसे कहूँगा।

इस पर हँसते हँसते उन्होंने कहा—हां, ऐसी हालत में मुझसे रुपया लेना जिसमें देने का नाम न लेना पडे। सो भैया, यह न होगा। अभी लो तो मैं दे सकता हूँ। जब हाथ-पैर न चलेंगे तब कुछ उधार देना और पानी में रुपये फेंक देना एक ही बात है। घर जा कर हिसाब करके मुझे बतलाओ कि हर महीने कितना रुपया कम पडता है। मैं हर महीने रुपये भेज दिया करूँगा।

मैं प्रणाम करके घर चला आया और उसके बाद बहुत दिनों तक अपनी सूरत नहीं दिखाई। इस सन्तोष के कारण मुझ पर विद्यासागर और भी अधिक स्नेह करने लगे थे। जब जो कुछ मैं कहता था उसे वह मान लेते थे।

किन्तु बहुत दिनों तक लोगों के छल-कपट, ठगाही और झूठ बोलने आदि को देख कर मनुष्यों के आचरण पर उनको एक तरह की घृणा सी हो गई थी। एक ओर महात्मा विद्यासागर विश्वप्रेमी थे और दूसरी ओर उन्हें अपने सगों पर भी विश्वास नहीं रहा था। ऐसी अवस्था में मनुष्य को कैसा कष्ट होता है, मनुष्यों के निर्मम व्यवहार और निष्ठुर आचरणों से हृदय की सरसता कहाँ तक नष्ट होती है, इस बात को वही समझ सकता है जिसने मनुष्य-जाति को प्रेम की दृष्टि से देखा हो, जिसका हृदय आकाश-सदृश अनन्त सहानुभूति के सरोवर में मरानोर हो चुका हो।

जीवन के अन्तिम भाग में विद्यासागर महाशय अत्यन्त आर्त

भाव से अपने जीवन की जानकारी का उल्लेख करके कहते थे कि "इस देश का उद्धार होने मे बहुत विलम्ब है। वर्त्तमान प्रकृति और प्रवृत्ति के मनुष्य यहां से एक दम उठा दिये जायँ और नये स्वभाव के आदमी यहां बसाये जायँ तब कहीं यहाँ की भलाई की आशा की जा सकती है"। उनके हृदय में ऐसे मनुष्य-द्रोह की जड जमाने के अपराधी हम लोग ही हैं। हम अगर अपने आचरणों पर निरपेक्ष होकर विचार करे तो हमे अच्छी तरह यह मालूम हो जायगा कि हमारी ऐसी ही अवस्था हो रही है कि विद्यासागर सरीखे सहृदय पुरुष की भी हमारे बारे में ऐसी धारणा हो जाय।

विद्यासागर से अगर कोई यह कहता था कि अमुक आदमी आपकी निन्दा करता था तो वह कहते थे—"अच्छा ठहरो, सोच लूँ, वह आदमी मेरी क्यो निन्दा करता है। मैंने तो कभी उसका कुछ उपकार नहीं किया"। अन्त को उनकी यही धारणा हो गई थी कि उपकृत व्यक्तियो मे से अधिकाश लोग कृतघ्न होते हैं। बहुत लोगो के आचरण देख कर उनकी यह धारणा हो गई थी।

अनेक प्रकार के अच्छे कामो मे आशानुरूप सुफल होते न देख कर एक दिन दु ख-पूर्वक उन्होने निम्नलिखित श्लोक पढा था —

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीना हता पञ्चभिरेव पञ्च।
एकप्रमादी स कथ न हन्यते य सेवते पञ्चभिरेव पञ्च॥

यह श्लोक पढ कर उन्होने कहा—एक एक इन्द्रिय के अधीन होने से मृग, हाथी, पतङ्ग, भ्रमर और मछली—ये जीव मारे जाते हैं। तब जो आदमी पाँचो इन्द्रियो से पाँचो विषयो का भोग करता हुआ उनमें आसक्त रहता है उसका विनाश तो बहुत ही सहज है। कितनी सावधानी से काम करने पर मनुष्य इस सर्वनाश से बच सकता है, इस पर किसी की भी दृष्टि नहीं है। मनुष्य दिन रात

पाँचो इन्द्रियो के दास होकर अपने को इतर जीवजन्तुओ से भी अधम बना रहे हैं। मनुष्य जिनको इतर जीव कहता है वे इतर जीव हैं या वह खुद है? मनुष्य इन इन्द्रियों के सुख के लिए कौन सा कुकर्म नहीं कर सकता? फिर वह इतर जीवजन्तुओं से भी अधम क्यो न समझा जाय?

दुःख यही है कि उनके समान महानुभाव आदमी ने लोक-सेवा और पराई भलाई करने के बदले मे पग पग पर ठोकरें खाईं। लोगों ने बुरे बर्ताव और ठगाही करके उनके शान्त हृदय में अशान्ति की ऐसी आग सुलगा दी जो जन्म भर सुलगती ही रही। उन्होंने जन्म भर क्लेश सहे, लेकिन दूसरो का दुःख दूर करने से कभी मुख नहीं मोडा। किसी का दुःख सुनते ही उनके सरल उदार हृदय मे दया का सागर उमड पडता था। दया करने के समय वह अमीर-गरीब, उच्च-नीच, पुरुष-स्त्री, सती-कुलटा आदि का खयाल न करते थे। मनुष्य मात्र के लिए उनको दया का द्वार खुला हुआ था। मनुष्य क्या, पशु-पक्षी भी उनके सरल स्नेह को मानते थे। पक्षियो मे कौआ बडा धूर्त कहलाता है। यह बात प्रत्यक्ष देखी भी जाती है। किन्तु वे ही कौए उनके स्नेह के अधीन हो पडे थे। विद्यासागर पास खडे होकर उनको जो कुछ देते थे उसे वे बे-खटके विद्यासागर के हाथ से ले जाते थे। एक बार खुदीराम वसु को विद्यासागर ने कई एक नारंगियो की फांके खाने को दीं। खुदीराम बाबू चूस चूस कर उन्हें फेंकने लगे। विद्यासागर ने कहा—"देखो इनको न फेंकना। इनको खाने वाले यहां मौजूद हैं"। खुदीराम बाबू ने सन्नाटे मे आकर कहा "इनको कौन खायगा?" विद्यासागर ने कहा—"खिडकी के बाहर इस जगह रख दो। देखोगे, खाने वाले आकर उठा ले जायँगे"। खुदीराम बाबू ने उन्हें वहीं रख दिया। घडी भर में

वहीं खड़े रहे, पर कोई न आया। तब खुदीराम ने कहा—"कोई भी तो नहीं आया"। विद्यासागर ने कहा—"तुम्हारे चोगा-चपकन की तडक भडक से डर कर वे लोग नहीं आते। तुम हट जाओ, देखो मैं उनको अभी बुलाता हूँ"। इतना कह कर वह खिडकी के पास गये। उनके खड़े होते ही कौओं ने चिर-परिचित की तरह आकर उनके हाथ से उनको ले कर खा लिया।

जिसके प्रेम से पशु-पत्ती वश मे हो जाते थे उसके वश मे मनुष्य नहीं हुए। मनुष्यो ने उस प्रेम की मर्य्यादा नहीं समझी!! वह सरल स्वाभाविक प्रेम मनुष्यो के निष्ठुर आचरण से मलिन हो गया। इसी से विद्यासागर कभी कभी कहा करते थे कि "तुम्हारे ऐसे भद्रवेषधारी आर्यसन्तानों की अपेक्षा मेरे असभ्य सांवताल अच्छे आदमी हैं"।

बारहवाँ अध्याय।

विविध विषय और विद्यासागर।



स न १८६६ ई० में या इसके कुछ पहले बङ्गाल के जमींदारों और राजो के नाबालिग लडको की देखरेख के लिए वार्ड-इन्स्टीट्यूशन नाम का एक निवास-भवन स्थापित हुआ था। बगाल के राजकुमार और जमींदारों के लडके यहीं रह कर लिखना-पढना सीखते थे। विद्यासागर महाशय इसके सञ्चालको और निरीक्षकों में एक प्रधान पुरुष थे। बहुत दिनो से वह इसकी कार्यवाही के निरीक्षक का काम करते थे। एक बार वार्ड के लडको के खाने पीने आदि कई विषयो पर डाकूर राजेन्द्रलाल मित्र के साथ विद्यासागर का मतभेद हो गया। अन्त को वैमनस्य की नौबत आ गई। विद्यासागर और मित्र महाशय, दोनो ही स्वाधीन प्रकृति के पुरुष थे। इस कारण दोनो की स्वाधीनता के सङ्घर्ष से अग्नि प्रकट हो गई। ऐसी अप्रिय घटना उपस्थित होने पर विद्यासागर महाशय अक्सर अशान्ति को शान्त करने के लिए दूसरो को हटाने की चेष्टा न करके आपही हट जाते थे। यहाँ भी उन्होने वही किया। इन्स्टीट्यूशन के काम से अलग होने की इच्छा करके उन्होंने इस्तीफा दाखिल कर दिया। सञ्चालको ने उनसे इस्तीफा वापस लेने के लिए वारवार अनुरोध किया, लेकिन इसके

लिए विद्यासागर राजी नहीं हुए। उनको अपनी प्रतिज्ञा पर इस तरह अटल देख कर अन्त को इस्तीफा मजूर कर लिया गया।

सन् १८६६ ई० के शेष भाग मे पाइकपाडा के राजा प्रतापचन्द्र-सिंह बहादुर बीमार होकर रोग से छुटकारा पाने और स्वास्थ्य बढाने के लिए कान्दी के राजभवन मे रहते थे। अनेक गुणालङ्कृत राजा प्रतापचन्द्र की मित्रता के कारण विद्यासागर अक्सर कान्दी के राजभवन में रहा करते थे। इस बार भी राजा साहब की कडी बीमारी का हाल सुन कर बहुत रुपया खर्च करके डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार को साथ लिये विद्यासागर कान्दी मे पहुँचे। अच्छी चिकित्सा के द्वारा राजा साहब को आरोग्य करने की बहुत कुछ चेष्टा की, पर फल कुछ नही हुआ। अन्त को राजा साहब कलकत्ते चले आये। राजा प्रतापचन्द्र ने मरने के कुछ दिन पहले विद्यासागर को अपनी सम्पत्ति का ट्रस्टी और नाबालिग पुत्रों का अभिभावक बनाने का विचार प्रकट किया था। विद्यासागर ने राजा के इस सङ्कल्प के विरुद्ध दृढता के साथ अपनी सम्मति प्रकट की। बहुत चेष्टा करके भी राजा साहब उनको इस कार्य्य का भार नहीं सौंप सके। इसी बीच मे अन्य कोई सुव्यवस्था करने के पहले ही काशीपुर में गङ्गा के किनारे राजा साहब स्वर्ग सिधार गये। राजाबहादुर मरते समय विद्यासागर से सब की देख-रेख रखने के लिए विशेष अनुरोध कर गये। विद्यासागर राजा के परलोकवास के बाद शोकाकुल आत्मीय की तरह उनके कारोबार की देख-रेख करते रहे। इसके लिए उन्होंने भरपूर यत्न किया कि राज-सम्पत्ति सुरक्षित रहे, उसका जमाखर्च ठीक तौर पर हो और राज-कुमार लोग ऐसी शिक्षा पावें कि अपने पिता के समान सज्जन-समाज के मुखिया बन सके। अँगरेज़ी-राज्य की व्यवस्था से राज-सम्पत्ति की श्रीवृद्धि होने लगी। नाबालिग राजकुमार वार्ड मे न रखे जाकर घर

मे माता और दादी के पास रहे, इस लिए विद्यासागर को छोटे लाट ग्रांडन साहब से मुलाक़ात करनी पड़ी। उन्हीं के अनुरोध से कई सुयोग्य प्रतिष्ठित बङ्गाली और अँगरेज राजकुमारो के अभिभावक बनाये गये। विद्यासागर महाशय राजा साहब के परम मित्र थे, इससे गवर्नमेंट ने उन्हीं को प्रधान अभिभावक बनाया।

संस्कृत कालेज के अध्यापक प्रेमचन्द्र तर्कवागीश के पेन्शन ले लेने पर उनके भाई राममय भट्टाचार्य्य ने उस पद के लिए अर्जी दी। उधर स्वर्गीय महेशचन्द्र न्यायरत्न ने भी उस पद के लिए अर्जी भेजी। दोनो ही योग्य पुरुष थे। सब लोगो की धारणा यह थी कि भट्टाचार्य्य को ही वह जगह मिलेगी। न्यायरत्न महाशय संस्कृत कालेज के विद्यार्थी न होने पर भी काव्य और अलङ्कार में विशेष व्युत्पन्न थे। छ दर्शनो के भी वह जानकार समझे जाते थे। एक खाली जगह के लिए दो पण्डितो ने अर्जी दी। अध्यक्ष कावेल साहब कुछ निश्चय न कर सके कि किसको वह पद दे। अन्त को उन्होंने विद्यासागर की राय पूछी। विद्यासागर ने कहा—"अलङ्कार-श्रेणी मे 'काव्यप्रकाश' पढाया जाता है। उसको पढाने के लिए न्यायशास्त्र की अच्छी जानकारी होनी चाहिए। महेशचन्द्र न्यायरत्न ने विधिपूर्वक न्यायशास्त्र पढा है। उन्हें इस शास्त्र में विशेष व्युत्पत्ति है। अतएव मेरी राय यह है कि न्यायरत्न को ही यह जगह मिलनी चाहिए"। विद्यासागर की सिफारिश से न्यायरत्न ही उस जगह पर रक्खे गये।

बम्बई के एक प्रतिष्ठित पुरुष कलकत्ता देखने के लिए आये थे। उनके अनुरोध से विद्यासागर उन्हे साथ लेकर कलकत्ते का अजायबघर दिखलाने गये। वह एशियाटिक सोसाइटी के मेम्बर की हैसियत से बहुत मर्तबा इस घर मे गये थे, किन्तु कभी किसी ने उनसे स्लीपर उतार कर जाने के लिए नहीं कहा। अबकी न-जाने किस कारण

से वहां के दरवान ने उनसे स्लीपर उतार कर भीतर जाने के लिए कहा। पता लगाने से ईश्वरचन्द्र को मालूम हुआ कि स्लीपर पहन कर अजायवघर के भीतर जाने का नियम नहीं है। लाचार विद्यासागर उन विदेशी भद्रपुरुष को लेकर लौट आये। उन्होंने उन भद्रपुरुष से कहा कि आपको अन्य किसी मित्र के साथ भेज दूँगा। मैं इसके भीतर न जाऊँगा।

यह कह कर जब वह चले आये तब वहां के क्यूरेटर साहब को यह हाल मालूम हुआ। उन्होने घटनास्थल पर आकर विद्यासागर को लौटाने की बडी चेष्टा की, लेकिन विद्यासागर नहीं लौटे। वह यह कह कर चले आये कि अब मैं इस घर में नहीं प्रवेश करूँगा। बडे अफसरो के पास इस घटना का हाल लिख भेजने पर उन्होंने क्षमा-प्रार्थना करते हुए इस घटना पर दु ख प्रकट करके पत्र लिखा। उन्होने विद्यासागर को सूचित किया कि सब समय चाहे जिस पोशाक से अजायबघर और सोसाइटी के आफिस में आप जा सकते हैं। किन्तु विद्यासागर ने इससे सन्तुष्ट न होकर लिख भेजा कि "मेरे लिए खास नियम बनाने की जरूरत नहीं है। सर्वसाधारण के लिए एक नियम हो और मेरे लिए दूसरा नियम हो, यह मैं नहीं चाहता। यदि सर्वसाधारण के लिए ऐसा नियम बनना सम्भव हो तो मैं उस नियम के अनुसार जाने-आने के लिए तैयार हूँ। अन्यथा विशेष नियम का सुयोग प्राप्त करके मैं अपने को सर्वसाधारण से अलग करना नहीं चाहता"। इस मामले मे अजायबघर और एशियाटिक सोसाइटी के अफसरों से, उसके बाद बङ्गाल-गवर्नमेंट से, अन्त को इंडिया-गवर्नमेंट तक से लिखा-पढी हुई। लेकिन सर्वसाधारण के लिए यह नियम न बन सका। विद्यासागर महाशय को सर्वसाधारण का पक्ष समर्थन करने में जब सफलता नहीं प्राप्त हुई तब उन्होने

यह प्रतिज्ञा कर ली कि अब कभी अजायबघर के फाटक पर न जाऊँगा।

सन् १८८३—८४ ई० के जाड़ों में, महामति लार्ड रिपन के शासन-काल में, जब कलकत्ते में आन्तर्जातिक प्रदर्शिनी हुई थी उस समय लाखों विचित्र चीजें इस स्थान पर जमा हुई थीं। राय कृष्णदास पाल आदि अनेक प्रतिष्ठित पुरुषों ने नुमाइश का हाल कह कर अनुरोध किया कि आप भी देख आइए। विद्यासागर ने कहा—"लोगों के मुँह से सुन कर और तुम्हारे अनुरोध से उत्साहित होकर मैं भी उसे एक बार देखना चाहता था। किन्तु सुना है कि प्रदर्शिनी में उसी अजायबघर के फाटक से हो कर जाना पड़ता है। मैं तो इस जीवन में उस फाटक के भीतर पैर न रक्खूँगा"। ऐसी लोकवत्सलता और प्रतिज्ञा की दृढ़ता विरले ही लोगों में पाई जाती है।

विद्यासागर के मित्र हरिश्चन्द्र मुखोपाध्याय के मरने से बङ्गालियों द्वारा सम्पादित सञ्चालित अँगरेजी अखबारों की जान निकल गई थी। उस अभाव की पूर्ति के लिए महानुभाव कालीप्रसन्नसिंह अग्रसर हुए। उन्होंने पहले अँगरेज सम्पादक रख कर उसके द्वारा काम चलाने की व्यवस्था की। किन्तु अन्त को विद्यासागर को उसका ट्रस्टी बना कर उन्होंने उसके अच्छी तरह चलने का प्रबन्ध करने के लिए अनुरोध किया। विद्यासागर ने सबसे पहले शम्भुचन्द्र मुखोपाध्याय को और पीछे से रायबहादुर कृष्णदास पाल को उस पत्र का सम्पादक बनाया। विद्यासागर की ही सहायता से हिन्दू पेट्रियट के सम्पादक होकर स्वदेश और विदेश में कृष्णदास पाल की इतनी प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा हुई। इस परिवर्त्तन के लिए डाक्टर मुखोपाध्याय महाशय सदा विद्यासागर के विरोधी बने रहे।

महानुभाव कालीप्रसन्नसिंह के साथ अनेक कारणों से विद्यासागर

का अधिक मेल-जोल हो गया। सिंह महाशय की अक्षय कीर्त्ति महाभारत का अनुवाद विद्यासागर की पृष्ठ-पोषकता से ही हुआ। इसी कारण सिंह महाशय को इस काम में सम्पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

संस्कृत-कालेज के दूसरे खण्ड में संस्कृत-कालेज की लाइब्रेरी थी। प्रेसीडेन्सी कालेज के अध्यक्ष ने प्रयोजनवश उस घर को माँग लिया और नीचे के अन्ध-कूप सदृश खण्ड में उन बहुत दिनों के संगृहीत दुर्लभ संस्कृत-ग्रन्थों को रखने की आज्ञा दी। संस्कृत कालेज के तत्कालीन अध्यक्ष प्रसन्नकुमार सर्वाधिकारी ने साहब के इस अनुचित आग्रह पर आपत्ति उपस्थित की। वह भी विद्यासागर के ही ऐसे स्वभाव के आदमी थे। इस बात को वह सह न सके कि संस्कृत के दुर्लभ ग्रन्थ नीचे के खण्ड में अरक्षित भाव से पड़े रह कर सड़ें। उन्होंने कह भेजा कि लाइब्रेरी का कमरा खाली करना असंभव है। ऐसा करने से सब बहुमूल्य ग्रन्थ शीघ्र ही नष्ट हो जायँगे। इस मामले में साहब की जीत हुई। वह जब संस्कृत की पोथियाँ नीचे उतरवाने लगे तब सर्वाधिकारी महाशय ने इस्तीफा देने की मन में ठान कर विद्यासागर से सलाह पूछी। विद्यासागर ने अफसरों से यह अनुरोध किया कि दोनों आदमियों को राजी रखने के लिए कोई उपाय करना चाहिए। किन्तु इसका कुछ फल न हुआ। सर्वाधिकारी ने इस्तीफा दिया। इस इस्तीफे के लिए सञ्चालक लोग बड़े गोलमाल में पड़ गये। यह झगड़ा पराधीन बङ्गाली और श्वेतकाय राज-पुरुष का था। न्याय की दृष्टि से विचार किया जाता तो सर्वाधिकारी की ही जीत होती। उनसे यह अन्याय न देखा गया। वह इस्तीफा देकर अलग हो गये। संस्कृत-कालेज में प्राच्य साहित्य की रक्षा के लिए एक काले आदमी का कहना मानना बड़ी भारी हीनता का काम समझ कर अफसर लोग उसके लिए राजी नहीं

हुए। किन्तु दूसरी ओर न-जाने किस कारण से विद्यासागर के नाम से यह समाचार फैलने लगा कि सर्वाधिकारी महाशय ने विद्यासागर की सलाह से यह काम किया है। छोटे लाट बीडन साहब ने जबानी और गुप्त-पत्रों आदि के द्वारा आपस में झगड़ा मिटा लेने के लिए विद्यासागर से अनुरोध किया। वे पत्र और विद्यासागर ने उन पत्रों के उत्तर में जो पत्र लिखे थे उनके कुछ जरूरी अंशों की नकल नीचे दी जाती है —

My dear Sir,

When I had the pleasure of waiting upon you last, you were pleased to allude to the resignation of the Offg Principal, Sanskrit College But as I was not aware of all the circumstances connected with the affair, I could not tell you anything regarding the matter I have since made myself acquainted with the facts of the case and am inclined to think that the treatment of the Principal by—has been unnecessarily and unbecomingly harsh, as will, I believe, appear to you also on perusal of the papers enclosed ° ° °

I have therefore tried my best to persuade him to withdraw his letter of resignation But he says ° ° °

ISVAR CHANDRA SHARMA

My dear Pundit,

I am sorry you have not been able to induce P C Sarbadhikari to withdraw his resignation, because I feel sure it is a step which he will hereafter regret, and I am always sorry to lose the services of good officers, specially if it be for an inadequate cause ° ° °

As to the fitness of the room for the reception of the Sanskrit Mss I will make enquiry

Believe me, yours sincerely,

CECIL BEADON

My dear Sir,

As I am inclined to suspect that he may have also represented the matter to you in the same light, I beg to assure

you that I had no hand whatever in inducing Babu P C Sarbadhikari in forming his resolution On the contrary, as I was under the impression that the severance of his connection with the Sanskrit College would be injurious to that institution, I tried my best to make him withdraw his resignation

ISVAR CHANDRA SHARMA

My dear Sir,

You may be quite sure that if I had had the least suspicion that Babu P C Sarbadhikari had acted under your advice in resigning his appointment in Sanskrit College, I should not have asked you to try and induce him to reconsider what I thought a hasty and unasked for step

Yours sincerely,

CECIL BEADON

विद्यासागर के कहने से ही सर्वाधिकारी ने इस्तीफा दिया है, इस निन्दावाद का सन्देह करके छोटे लाट बीडन साहब को विद्यासागर ने जो पत्र लिखा था उसका भी कुछ अंश ऊपर उद्धृत कर दिया गया है ।

कलकत्ते के एक प्रतिष्ठित घराने के दो भाई पैतृक-सम्पत्ति के हिस्से-बांट के लिए मुकद्दमेबाजी करने पर आमादा हो गये । हाईकोर्ट के वकील बैरिस्टर धनराशि को हथियाने लगे । विद्यासागर महाशय किसी कारण से उन लोगो पर पहले ही से नाराज थे । तथापि उस समय स्वतः प्रवृत्त हो कर विद्यासागर उनका झगडा मिटाने के लिए अग्रसर हुए । विद्यासागर की मंशा यही थी कि इन लोगो का रुपया व्यर्थ न लुटे । दोनो भाइयो ने यह स्वीकार किया कि हम विद्यासागर के फैसले को शिरोधार्य समझेंगे । तब विद्यासागर हिस्सा-बांट करने लगे । विद्यासागर के फैसले पर बडा भाई राजी होगया । किन्तु छोटे भाई पर अनुग्रह करके उसे कुछ अधिक हिस्सा देने पर भी वह राजी नहीं हुआ । वह

और भी कुछ चीजों में अधिक हिस्सा माँगने लगा। विद्यासागर ने कहा—"तुमको छोटा समझ कर तुम पर विशेष अनुग्रह दिखलाया गया है। इससे अधिक कुछ देने से तुम्हारे दादा के साथ अन्याय और अविचार होगा। इससे अधिक मैं दे नहीं सकता"। छोटे भाई की अनुचित जिद के कारण थोड़े से जवाहरात के लिए हिस्से-बाँट का काम होकर भी अधूरा ही रह गया। अन्त को राज्य के किसी उच्चपदस्थ कर्म्मचारी ने विद्यासागर की व्यवस्था में जरा हेर-फेर करके फैसला कर दिया।

बर्दवान जिले के अन्तर्गत चकदीघी निवासी प्रसिद्ध जमींदार-परिवार के साथ विद्यासागर की विशेष आत्मीयता थी। उक्त जमीं-दार-परिवार के प्रधान सारदाप्रसाद राय के साथ विद्यासागर की आत्मीयता का चिह्नस्वरूप चकदीघी का अँगरेजी स्कूल अभी तक मौजूद है। यहाँ के पुण्यार्थ औषधालय के सचालन का भार जिनके ऊपर था उनमे विद्यासागर एक प्रधान पुरुष थे। विद्यासागर ने इस जमींदार-परिवार की सम्पत्ति की रक्षा और उन्नति करने में समय समय पर यथेष्ट सहायता पहुँचाई है।

सियारसोल की रानी हरसुन्दरी देवी के पिता के साथ विद्या-सागर का बड़ा हेलमेल था। इस कारण वह रानी की सम्पत्ति की रक्षा और कुशलकामना किया करते थे। जरूरत पड़ने पर अच्छी सलाह देकर कर्त्तव्य का मार्ग दिखला देते थे। इधर तो वह प्रतिष्ठित धनी लोगों की सम्पत्ति और सम्मान की रक्षा करने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करते थे और उधर हमेशा दीन-दुखियों से सहानुभूति दिखा कर उनके दु ख दूर करना उनका नित्य का काम था। यह भी विद्यासागर की एक विशेषता थी।

एक बार मेडिकल कालेज के बँगला-विभाग (वर्त्तमान कैम्बेल-

स्कूल) के तत्कालीन अध्यक्ष ने छात्रों को मेकाले-वर्णित कुछ एक सुमिष्ट विशेषणों से याद किया। भक्ति-भाजन स्वर्गीय विजयकृष्ण गोस्वामी इस समय मेडिकल-कालेज के बँगला-विभाग में पढ़ते थे। उन्होंने और अन्य कई छात्रों ने अध्यक्ष के ऐसे बुरे वर्ताव से दुःखित हो, दल बाँध कर, छोटे लाट के पास अध्यक्ष के ऐसे बुरे व्यवहार के कारण अपना स्कूल छोड़ देने का इरादा जाहिर करके एक अर्जी भेजी। बालकों ने दलबद्ध होकर गोलदीघी के मैदान में सभा करके यह प्रतिज्ञा की कि जब तक साहब अपने अपराध को स्वीकार करके क्षमाप्रार्थना न करें तब तक हम लोग स्कूल नहीं जायँगे। अधिकांश बालक ऐसे थे जो इस स्कूल से मिलने वाली छात्रवृत्ति से गुजारा करके पढ़ना-लिखना सीखते थे। वृत्ति मिलना बन्द होजाने से उनको कष्ट मिलने लगा। तब अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा के बारे में सहायता माँगने के लिए सब बालक विद्यासागर के पास पहुँचे। विद्यासागर पहले ही सब हाल सुन चुके थे। उन्होंने पहले समझा बुझा कर बालकों को स्कूल भेजने की चेष्टा की। विजयकृष्ण गोस्वामी सब बालकों के मुखिया थे। उन्होंने विद्यासागर को यह समझा दिया कि सब बालक सुभीते की अपेक्षा इज्जत को ही आदर की दृष्टि से देखते हैं। विद्यासागर ने छोटे लाट के पास जाकर उनकी प्रार्थना जताई। अनुसन्धान होने के बाद अध्यक्ष के द्वारा बालकों को बुलवा कर विद्यासागर ने सब झगड़ा तय करा दिया। दो तीन महीने तक छात्रवृत्ति बन्द रहने से बहुत से बालकों पर मुसीबत आपड़ी थी। विद्यासागर ने बहुत सा रुपया खर्च करके उन लोगों की सहायता की। इसी समय से विद्यासागरजी विजयकृष्ण गोस्वामी महाशय को विशेष स्नेह और सम्मान की दृष्टि से देखने लगे।

विद्यासागर के एक प्रतिष्ठित जमींदार मित्र के घर के पास एक

मोदी रहता था। उससे विद्यासागर की पहले की जानपहचान थी। एक दफा विद्यासागर उधर से जा रहे थे। उस मोदी ने उनको आदर करके बुलाया। उसकी मीठी बातो से प्रसन्न विद्यासागर दूकान के नीचे एक चटाई के टुकडे पर बैठे हुए उससे बातें कर रहे थे। इसी समय विद्यासागर के मित्र जमींदार बाबू फिटन गाडी पर बैठे शाम को हवा खाने के लिए जा रहे थे। जिस सडक के किनारे, दूकान के आगे, विद्यासागर बैठे थे उसी सडक पर उनकी फिटन भी जा रही थी। विद्यासागर को देख कर वह बाबू बडे असमजस मे पडे। एक तरफ विद्यासागर की उपेक्षा करके उनसे साहबसलामत किये बिना चले जाना जैसे असम्भव था, वैसे ही दूसरी तरफ उस मामूली मोदी की दूकान पर बैठे हुए विद्यासागर को प्रणाम और प्रतिष्ठा करना भी वह अपने समान प्रतिष्ठित जमींदार के लिए अपमान की बात समझते थे। लकिन अन्त को उन्हें वही अपमान का काम करना पडा। इसके उपरान्त फिर एक बार मुलाकात होने पर विद्यासागर न जमींदार बाबू से कहा—"उस दिन तो तुम बडे असमजस में पड गय थे"। इसके उत्तर में जमींदार बाबू ने कहा—"आप रास्ते-गली म जहाँ तहाँ इस तरह बैठ जाते हैं, इससे बडी लज्जा मालूम पडती है"। वीर विद्यासागर चट बोल उठे—"लज्जा मालूम पडती है? मेरे साथ जान पहचान न रखने से ही सब झगडा मिट जायगा, तुमको रास्ते-गली में अपदस्थ या अपमानित भी न होना पडेगा। वह आदमी गरीब होन से क्या तुम्हारी अपेक्षा कम आदर का पात्र हो सकता है?"

एक बार सस्कृत-शास्त्र-सम्बन्धी एक तर्क-वितर्क उपस्थित होन पर छोटे लाट को विद्यासागर की जरूरत पडी। खबर आने पर विद्यासागर ने कहला भेजा कि "मैं कुछ दिन तक पिता की मृत्यु के कारण अत्यन्त दीन भाव से रहने का प्रण कर चुका हूँ। मेरे मन की अवस्था

और पहनावा इस समय कहीं जाने के लायक नहीं है। यदि इसमे अपना अपमान न समझें तो मैं नगे बदन बेलवेडियर-भवन में आपसे मुलाकात कर सकता हूँ"। गरज बडी बुरी होती है। छोटे लाट ने आने के लिए अनुरोध करके कहला भेजा कि "आप जिस तरह चाहें आ सकते हैं। मुझको उसमे कुछ आपत्ति नहीं है"। नगे पैर और नगे बदन विद्यासागर वीर की तरह निर्भीक भाव से छोटे लाट के भवन मे उपस्थित हुए और जो कुछ समझाना था वह समझा कर चले आये। हैट, कोट, पतलून, चोगा, चपकन धारण करनेवाले क्या इससे अधिक जातीय भाव को—हिन्दू आदर्श को—निबाह सकते हैं? इतने पर भी विद्यासागर समाजसस्कार के पक्षपाती थे। पाठक-गण, अब आप ही विचारिए कि उनका समाजसस्कार का भाव कैसे उच्च आदर्श का था।

ब्राह्म-समाज मे जातीय भाव की रक्षा नहीं होती, इससे वह भीतर ही भीतर बडा क्लेश पाते थे। क्लेश का कारण यह था कि वह अन्य दस आदमियो की तरह ब्राह्म-समाज को अप्रिय दृष्टि से, निन्दा की नजर से या शत्रुभाव से नहीं देखते थे। उन्हें ब्राह्म-समाज से ही जातीय-जीवन के पुनरुत्थान की आशा थी। श्रद्धास्पद राज-नारायण बाबू के साथ बातचीत करने के समय एक बार उन्होंने कहा था कि "आप लोग (आदि ब्राह्म-समाज) एक गली के भीतर पडे हुए हैं। उस गली के एक ओर हिन्दू लोग और दूसरी ओर अत्यन्त आगे जानेवाले ब्राह्मलोग दबाये हुए हैं"। वह ब्राह्मसमाज पर हार्दिक प्रेम रखते थे। प्रेम रखते थे, इसी लिए जब जरूरत पडी है तब उन्होंने ब्राह्म-समाज का पक्ष लिया है। जिस समय ब्राह्म-विवाह-विधि के लिए देश में एक भारी हलचल मची हुई थी, जिस समय चारो ओर की आपत्ति के कारण वर्त्तमान ब्राह्मविवाह आईन ने किम्भूत-किमाकार

प धारण किया था, उस घोरतर आपत्ति और आन्दोलन के
मय विद्यासागर ने आईन के अनुकूल अपनी सम्मति दी थी।
१८७२ ई० के ३ आईन बनने के पक्ष मे उन्होने अपनी अनु-
ल सम्मति दी थी। काशी की अध्यापकमण्डली से आईन के लिए
र्थना करनेवाले ब्राह्म लोगो के अनुकूल व्यवस्था लाने के लिए लोगो
अनुरोध करने पर उन्होंने डाकृर लोकनाथ मैत्र को जो पत्र लिखा
उसका कुछ अश यह है—"मेरी समझ में इस तरह का आईन
स होना उचित और आवश्यक है। ब्राह्म मत के अनुसार बीच
च में विवाह होते हैं + + + नवीन ब्राह्मो ने मुझ से और
न्य कई पण्डितो से व्यवस्था मांगी है। हम सब ने व्यवस्था लिख
है"।

एक समय भारतवर्षीय ब्राह्मसमाज में धन की कमी से उसके
चिक समाचारपत्र धर्मतत्त्व का प्रचार कठिन हो गया था। विद्या-
गर ने खुद उसकी कई सख्याये छापने का भार ग्रहण किया था।
उपलक्ष मे कृतज्ञता प्रकट करते हुए १७९१ शकाब्द के पहले
पाद की सख्या मे प्रकाशित हुआ था कि "देशहितैषी श्रीयुत
ण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने, बहुत दिन हुए, धर्मतत्त्व पत्रिका
दो सख्यायें अपने प्रेस मे छाप दी थीं"।

ब्राह्मसमाज के गण्य मान्य पुरुषो में से अनेक के साथ उनका
शेष हेलमेल था। पूज्यपाद रामतनु लाहिडी को वह अपना परम
त्मीय समझते थे। लाहिडी महाशय जब जिस बात के लिए अनु-
ध करते थे वह बात विद्यासागर पूरी करते थे। विद्यासागर उन्हें
डी श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। विद्यासागर से कोई
म कराने के लिए जब सब लोग चेष्टा करके हार जाते थे तब भी
हिडी महाशय का अनुरोध खाली नहीं जाता था। श्रद्धास्पद श्रीयुत

राजनारायण वसु, पूज्यपाद श्रीयुत देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि उस समय के प्राचीन लोगों पर जैसे उनको प्रेम और श्रद्धा थी वैसे ही नव्य दल के अगुआ लोगों पर भी वह स्नेह और प्रीति रखते थे। सब बातों में मत न मिलने पर भी स्वर्गीय केशवचन्द्र सेन का वह बड़ा आदर करते थे। हर साल माघोत्सव के समय भारतवर्षीय ब्राह्मसमाज के उत्सव का निमन्त्रणपत्र और प्रोग्राम उनके पास आता था। पण्डित विजयकृष्ण गोस्वामी को भी वह बड़े स्नेह की दृष्टि से देखते थे। पण्डित शिवनाथ शास्त्री को वह पुत्र के समान मानते थे। बाबू दुर्गामोहन दास भी उनको बहुत प्यारे थे। जिस समय बाबू दुर्गामोहन दास के शेष विवाह की सब और तीव्र समालोचना हो रही थी उस समय उनके परम मित्र विद्यासागर ने विवाह के समाचार से सन्तुष्ट होकर उनको यह पत्र लिखा था—

श्रीश्रीहरि

शरणम्।

प्रिय भाई, तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ, इस समाचार से मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ। मेरी आन्तरिक कामना और प्रार्थना यह है कि तुम जब तक जियो, नव वधू के साथ सुख से रहो। अपनी नववधू को मेरा आशीर्वाद और स्नेहसम्भाषण जताना। इति ७ज्येष्ठ, सन् १२९८।

विद्यासागर ऐसे उदार, उच्च हृदय और गहरी सहृदयता को लेकर उत्पन्न हुए थे कि सदा वह सबको सुखी बनाने और सबको सुखी देखने ही में सन्तुष्ट रहते थे। इसी से वह सदा मनुष्य के स्वाधीन हृदय के—आजादी के—पक्षपाती थे। समाज और सम्प्रदाय, शास्त्र और विधि जहाँ मनुष्य के अनुकूल होते थे वहाँ वह भी उनका पक्ष लेते थे। और जहाँ समाज-सम्प्रदाय और शास्त्र-विधि मनुष्य के न्यायत प्राप्य सुख के विरोधी होते थे वहाँ वह भी उनके घोर शत्रु थे।

विद्यासागर स्वयं कर्त्तव्यपरायण आदमी थे। इसीसे किसी को अपने कर्त्तव्य के प्रति उदासीन देख कर—न्यायमार्ग से भ्रष्ट होते देख कर, जिसके प्रति जैसा व्यवहार होना चाहिए उसके विपरीत व्यवहार को देख कर, वह क्षोभ और क्रोध से जल उठते थे। यहाँ तक कि ऐसी किसी किसी घटना के अवसर पर उनका धैर्य जाता रहता था। यह बात उनकी महिमामयी प्रतिष्ठा के लिए 'चन्द्रमा में कलंक' कही जा सकती है।

मदनमोहन तर्कालङ्कार के साथ बचपन से विद्यासागर का भाईचारा था। नौकरी चाकरी के बाद संस्कृत प्रेस के लिए दोनो में वैमनस्य हो गया। यह वैमनस्य यहाँ तक बढ गया कि विद्यासागर ने उनके साथ सब तरह का सम्बन्ध त्याग देने का अभिप्राय जता कर पत्र लिखा। इसके अनुसार संस्कृत प्रेस और उसमें छपी हुई पुस्तकों के बटवारे का काम समाप्त हो जाने पर तर्कालङ्कार की लिखी हुई 'शिशु-शिक्षा' पुस्तक के तीनों भाग विद्यासागर के हिस्से में आ गये। विद्यासागर महाशय तर्कालङ्कार की माता, स्त्री और विधवा कन्याओं में से हर एक को १०) रु० महीने की सहायता करते थे। तर्कालङ्कार के परिवार को धन की कमी के कारण समय समय पर अत्यन्त क्लेश मिलता था। तर्कालङ्कार महाशय के दामाद योगेन्द्रचन्द्र विद्याभूषण ने, इस विश्वास से कि शिशु-शिक्षा के तीनो भागो का स्वत्व मिल जाने से तर्कालङ्कार के परिवार का आर्थिक कष्ट दूर हो सकता है, विद्यासागर से कहा कि आप तर्कालङ्कार की मँझली लडकी विधवा कुन्दमाला को शिशुशिक्षा का स्वत्व देदीजिए। विद्यासागर ने सच्चे दानवीर की तरह कह दिया—तथास्तु।

अब यहाँ पर विचारणीय यह है कि इस तथास्तु के विरुद्ध कार्य क्यों हुआ? विद्यासागर महाशय स्वयं कहते थे कि "मैंने योगेन्द्र

बाबू से कहा, कुन्दमाला से कहना, मैंने उसकी प्रार्थना के अनुसार उसे शिशुशिक्षा के तीनो भाग दे दिये"। दोनो का कहना एक है। फिर क्यो इस दान मे व्यतिक्रम हुआ ? विद्यासागर की 'निष्कृतिलाभ-प्रयास', और योगेन्द्र बाबू की 'निष्कृतिलाभ-प्रयास विफल', नामक दोनो पुस्तके पढने से मुझे यह विश्वास हुआ है कि योगेन्द्र बाबू के बहुत जल्दी मचाने से ही चिढ कर विद्यासागर ने अपना इरादा बदल दिया। जो कुछ हो, योगेन्द्र बाबू की जल्दी और खीझ पैदा करनेवाले व्यवहार से विद्यासागर की प्रतिज्ञा का टल जाना सचमुच बड ही खेद की बात है। उन्होने मुँह से जो बात निकाल डाली थी उसे, सैकडो तरह के कुव्यवहार होने पर भी, पूरा करना ही उनके लिए शोभा की बात थी। कारण चाहे जो हो, विद्यासागर का दान देकर अथवा दान देने की इच्छा प्रकट करके उसके अनुकूल काम न करना खटकता है। इस अप्रीतिकर मामले के बारे मे सन्तोष की बात इतनीही है कि उन्होने साधारण कारण से अपनी बात को नहीं टाला। भारी मर्मवेदना से लाचार हो कर ही उन्हें अपना इरादा बदलना पडा था।

विद्यासागर महाशय अपने सासारिक मामलो को ऐसी निष्ठा के साथ सम्पन्न करते थे कि उनमें लेशभर भी स्वार्थपरता नहीं छू जाती थी। उन्होने बहुत दिनो के बाद, बिना माँगे ही, सूद समेत ४९११।) ५ गवर्नमेंट का रुपया अदा किया था। गवर्नमेंट को यह भी नहीं मालूम था कि यह रकम विद्यासागर पर बाकी है या नहीं। और, गवर्नमेंट के हिसाब मे भी कहीं इन रुपया का उल्लेख नहीं था। विद्यासागर आपसे इन रुपयो को चुका कर अपनी मनुष्यता, न्यायनिष्ठा और लोभहीनता का अत्यन्त श्रेष्ठ उदाहरण छोड गये हैं। जिन्होंने जन्म भर पराये धन को विष की तरह समझा उनके चरित्र पर अगर कोई झूठा कलक लगाने की चेष्टा करता है तो सचमुच

बड़ा ही क्लेश और क्रोध होता है। किन्तु देश-काल-पात्र को देख कर सब सह लेना पड़ता है।

अत्यन्त प्राचीन समय से ग्रीस, रोम, मिस्र और भारतवर्ष में मनुष्यशरीर से उत्पन्न शीतलारोग के बीज से टीका लगा कर शीतला रोग का भय दूर करने की रीति प्रचलित थी। किसी किसी को ऐसा विश्वास है कि अत्यन्त प्राचीन समय में भारतवर्ष में गोबीज से टीका देकर शीतला रोग का फैलना रोकने की रीति भी प्रचलित थी। पीछे अनेक कारणों से यह रीति यहाँ से उठ गई। अन्त को सन् १८६५ ई० को अँगरेज-गवर्नमेंट ने यह नियम कर दिया कि मनुष्यदेह से उत्पन्न शीतलारोग के बीज से टीका न लगा कर गोबीज से टीका लगाना ही श्रेयस्कर है। किन्तु लोगों के कुसंस्कार के कारण बहुत दिनों तक इस देश में यह पद्धति प्रचलित नहीं हो सकी। विद्यासागर ने ही बहुत परिश्रम करके कृष्णनगर जाकर हिन्दू समाज के मुखिया नदिया के महाराज श्रीशचन्द्र की सहायता से देश में अँगरेजी टीका जारी होने में सहायता पहुँचाई।

बंगाल के नीची जाति के लोग चैत की संक्रान्ति को देह के अनेक अंगों को छेद कर व्रत को समाप्त करते थे। कोई कोई सब शरीर को क्षत-विक्षत कर डालते थे। मैंने बचपन में गाँवों में अपनी आँखों से यह तमाशा देखा है। ऐसे घायल हो कर नाच रहे लोगों के खून से तर शरीर को देख कर हम लोग बहुत डरते थे। सन् १८६५—६६ ई० को गवर्नमेंट की आज्ञा से यह कुरीति बन्द हो गई। विद्यासागर ने इस कुरीति को उठाने में विशेषरूप से गवर्नमेंट के पक्ष का समर्थन किया था।

सन् १८६४ ई० को १ जनवरी को जर्मनी के अन्तर्गत लिपजिक नगर में एकत्रित विद्वानों की मण्डली ने विद्यासागर को सम्मान-

चिह्न देकर सम्मानित किया था । वह बहु-सम्मान का परिचय देने वाला पत्र जर्मन भाषा में लिखा हुआ है ।

विद्यासागर जन्म भर कितने प्रकार से कितने लोगो का उपकार करते रहे, यह बताने के लिए उस कार्यावली की विस्तृत सूची देना यहां पर सर्वथा असम्भव है । उनके किये उपकारों को स्मरण करके जिन सहृदय बङ्गालियो ने भक्ति-पूर्ण हृदय से उनकी पूजा की है उनके, तथा अन्य किसी किसी भक्त बङ्गाली के कुछ शब्दों को हम यहां पर उद्धृत करते हैं ।

विद्यासागर अध्यापक की हैसियत से कहीं पर बिदाई नही लेते थे । किन्तु मातृभक्त माननीय श्रीयुत गुरुदास वन्द्योपाध्याय महाशय ने अपनी माता के श्राद्ध के अवसर पर एक चांदी के गिलास पर निम्नलिखित श्लोक खुदवा कर उनको उपहार में दिया था । मातृभक्त विद्यासागर महाशय मातृभक्त सन्तान के इस प्रेमोपहार को अस्वीकार न कर सके । उन्होंने उसे प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार कर लिया । इस पर यह श्लोक खुदा था—

पानपात्रमिद दत्त विद्यासागरशर्म्मणे ।
स्वर्गकामनया मातुर्गुरुदासेन श्रद्धया ॥

विद्यासागर के स्नेहपात्र स्वर्गीय कैलासचन्द्र वसु महाशय ने विद्यासागर के एक सर्वाङ्गसुन्दर चित्र के नीचे निम्नलिखित श्लोक को लिख कर अपने घर मे रक्खा था —

श्रीमानीश्वरचन्द्रोऽय विद्यासागर-सञ्ज्ञक ।
भूदेवकुलसम्भूतो मूर्त्तिमद्दैवत भुवि ॥

विद्यासागर ने इस श्लोक की रचना-चातुरी को देख कर पहले बहुत कुछ व्यग्य करके पीछे प्रसन्नता प्रकट की थी । इस सम्बन्ध मे मुझे यह पत्र प्राप्त हुआ है ।—

महाशय, विद्यासागर का चित्र जो बाजार में बिकता है उसी के नीचे लिखने के लिए यह संस्कृत-श्लोक बनाया गया था। चित्र के नीचे श्लोक लिख कर जब वह चौकठे मे जड़वा लिया गया तब उसे दिखाने के लिए मैं विद्यासागर के पास ले गया। उन्होंने उसे देख कर अपनी स्वाभाविक रसिकता के साथ कहा—"श्रीमानीश्वरचन्द्रोऽयं" इससे बढ कर सत्य बात और नहीं है। श्रीमान् हुए बिना कहीं ऐसी कहार की जैसी सूरत हो सकती है? "मूर्त्तिमद्दैवतं भुवि" इस बात का तो प्रतिवाद ही नहीं किया जा सकता। साक्षात देवता हुए बिना ऐसा कर्मभोग कहीं नसीब हो सकता है? इस तरह मेरे श्लोक की टीका करके अन्त को अपनी स्वाभाविक उदारता के साथ उन्होंने कहा—तुम लोग मुझे स्नेह की दृष्टि से देखते हो, यही मेरे लिए यथेष्ट है। मैं अवतार होना नहीं चाहता।

विद्यासागर के आत्मीय लोगों मे मैं भी था, इस बात को मैं साहस के साथ कह सकता हूँ। मैंने मन लगा कर उनके जीवन की नित्य की अनेक घटनाओं को देखा है। उससे मैंने यह निश्चय किया है कि वह मनुष्य देहधारी देवता थे। बाबू चण्डीचरणजी, आप अपने लिये जीवनचरित्र मे विद्यासागर के उस देव-भाव की रक्षा कर सके हैं। इससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ और आपको हृदय से साधुवाद देता हूँ।

खुलना, नैहाटी,
कैलास-कुटीर। — श्रीकैलासचन्द्र वसु।

कवि मधुसूदन ने 'वीराङ्गनाकाव्य' की रचना करके उसके मङ्गलाचरण मे लिखा है —

मङ्गलाचरण—वङ्गकुलचूडा— श्रीयुत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाशय के चिरस्मरणीय नाम को इस अभिनव काव्य के ऊपर शिरोमणि

की तरह स्थापित करके काव्यकार ने इस काव्य को उक्त महानुभाव के चरणों मे यथोचित सम्मान के साथ समर्पण किया । इति सन् १८६८, १६ फाल्गुन ।

इसके बाद बङ्गाल के सुप्रसिद्ध नाटककार और कवि रायबहादुर दीनबन्धु मित्र महाशय ने अपनी 'द्वादश कविता' नामक पुस्तक के आरम्भ मे निम्न-लिखित समर्पण पत्र को स्थान दिया है —

स्वदेशानुरागी दीनपालक विद्याविशारद
श्रीयुत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाशय
परमाराध्यवरेषु ।

महाशय,

कल्पनाकानन मे प्रवेश करके यत्न के साथ कुछ कविताकुसुम चुन कर 'द्वादशकविता' नाम की एक माला मैंने गूथी है । आप वर्त्तमान वग-भाषा के पिता हैं, वग-भाषा आपकी कन्या है । भक्ति के साथ यह माला मैं आपके हाथ मे अर्पण करता हूँ । यदि उचित समझिए तो इसे अपनी कन्या के हाथ मे देकर मुझे कृतार्थ कीजिए । इति ।

स्नेहाभिलाषी
श्रीदीनबन्धु मित्र ।

'पलाशीर युद्ध' नामक काव्य के आरम्भ मे कविवर नवीनचन्द्र सेन ने लिखा है —

"दया के सागर पूज्यतम पण्डितवर श्रीयुत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ।

देव ! जिस युवक ने दु ख के समय एक दिन आँसुओ से आपके चरणो को नहलाया था, आज वही युवक आपके श्रीचरणो में उपस्थित हुआ है । किन्तु आपके आशीर्वाद से, और उससे भी अधिक आपके अनुग्रह से, आज उसका मुखमण्डल प्रसन्न है और

हृदय आनन्द से भरा हुआ है। आपकी दया के सागर के एक बूँद से जिस मानस-कानन की दरिद्र-दावानल से रक्षा हुई थी, आज उसी कानन में उपजा हुआ एक छोटा सा पुष्प आपके श्रीचरणों में चढ़ाया जाता है। इसी कारण उस युवक को आज इतना आनन्द है। बङ्गाल के श्रेष्ठ कवि-गण अपने हृदयकानन के जिन अम्लान चिरसुगन्धित पुष्पों के द्वारा जिस तरह आपके भारतपूजित पवित्र नाम की पूजा करते आये हैं उस तरह के परिमल-पवित्र पुष्प मैं कहाँ पाऊँ? मेरा हृदय जङ्गल है—मेरा उपहार जङ्गली फूल है। किन्तु महर्षि-गण कल्पवृक्षकुसुमों से जिन देवतों के चरणों की पूजा करते हैं उन चरणों में गरीब भक्त के अपराजिता (विष्णुकान्ता) के पुष्प भी सादर स्थान पाते हैं। मेरा यही भरोसा और यही साहस है।

१ माघ, सन् १२८२। आपका चिरानुगत,
श्रीनवीनचन्द्र सेन।"

श्रीयुत गिरीशचन्द्र घोष ने अपने बनाये 'सीतार बनवास' नामक काव्य-ग्रन्थ के समर्पण-पत्र में लिखा है—

"उत्सर्गपत्र—पूजनीय श्रीयुत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाशय श्रीचरणेषु। गुरुदेव, दीननाथ, महाशय की वेतालपचीसी पढ़ कर मैंने यह जाना कि 'मातृभाषा नहीं जानता' यह कहना अच्छा नहीं, बुरा है। आचार्य! मेरी परीक्षा लीजिए। मैं सदा से मन ही मन महाशय को प्रणाम करता हूँ।

कलकत्ता, बाग बाजार, माघ १२८८। सेवक
श्रीगिरिशचन्द्र घोष"।

इसके बाद और एक ग्रन्थकार ने एक निजरचित ग्रन्थ के आरम्भ में लिखा है—

"समर्पण—लोक-सेवा-व्रतपरायण और अगण्य-गुण-सम्पन्न पण्डित-

पुङ्गव श्रीयुत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाशय के पवित्र करकमलो में भक्ति, प्रीति और हार्दिक सद्भाव के चिह्न-स्वरूप यह ग्रन्थ अर्पण किया जाता है"।

विपन्न रोगपीडित और अनाहार से क्लेश पा रहे दुखी नर-नारियो ने उनको दयासागर की उपाधि दी थी।

गवर्नमेंट भी उनको सस्कारप्रिय हिन्दू-सम्प्रदाय का नेता और मुखपात्र समझती थी। सन् १८७७ की पहली जनवरी को सम्मान के चिह्न-स्वरूप जो प्रशसा-पत्र दिया था उसमें अत्यन्त स्पष्ट भाषा में उसने इस बात का उल्लेख किया है कि —

To Pandit Isvar Chandra Vidyasagar in recognition of his earnestness as leader of the widow-marriage movement, and position as leader of the more advanced portion of the Indian community —*Richard Temple*

"भारत-साम्राज्य की अधीश्वरी महारानी विक्टोरिया की ओर से, राजप्रतिनिधि और गवर्नर-जनरल बहादुर की आज्ञा से, पण्डित ईश्वर-चन्द्र विद्यासागर महाशय को, विधवाविवाह के हामी दल का अगुआ और समाजसस्कारक हिन्दुओ का सञ्चालक मान कर, यह प्रशसापत्र दिया जाता है"।

इसके बाद सन् १८८० ईसवी की पहली जनवरी को गवर्नमेंट ने सी० आई० ई० उपाधि के द्वारा विद्यासागर को राजसम्मान मे अधिकतर सम्मानित किया।

इसके बाद स्वर्गीय न्यायरत्न महाशय की सलाह और कहने से गवर्नमेंट ने देशी अध्यापको में से योग्यतम आदमियो को चुन कर उन्हें महामहोपाध्याय की भडकीली उपाधि देने की व्यवस्था की।

---

* Grant of the dignity of a Companion of the Order of the Indian Empire to Pandit Isvar Chandra Vidyasagar

न्यायरत्न महाशय ने सबसे पहले विद्यासागर को यह उपाधि देने के लिए अफसरों को सलाह दी। इसके अनुसार विद्यासागर के निकट यह प्रस्ताव उठाया जाने पर उन्होंने शारीरिक अस्वस्थता की दोहाई देकर, अपने को महामहोपाध्याय की महिमा को प्राप्त करने में असमर्थ बतला कर इस उपाधि से छुटकारा चाहा। जिस उपाधि के लिए लोग सैकड़ो सिफारिशें करते हैं उसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया। यह काम विद्यासागर के ऐसा आदमी ही कर सकता है।

तेरहवाँ अध्याय ।

विद्यासागर का धर्म्म-मत ।



हुत लोगों की धारणा यह है कि विद्यासागर को किसी धर्म्म या मत पर विश्वास न था। किन्तु मैंने उनके साथ इस मामले में बातचीत करके जहाँ तक समझा है, और उनके आचार आचरण से जहाँ तक जाना जाता है उससे यह ज्ञात होता है कि वह ईश्वर पर विश्वास रखने वाले आदमी थे। किन्तु उनका धर्म्म-विश्वास साधारण लोगों की किसी एक पद्धति के अधीन न था। अत्यन्त सूक्ष्म रूप से जाँच करके देखने से जान पडता है कि उनके नित्य के जीवन के आचार-व्यवहार क्रिया-कलाप-सम्पन्न आस्थावान् हिन्दू के अनुरूप न थे और दूसरी ओर निष्ठावान ब्राह्मसमाजी पुरुष के लक्षण भी कभी उनमें देखे नहीं गये।

एक अनादि अनन्त पुरुष सृष्टिकर्त्ता-रूप से विश्व-ब्रह्माण्ड में सर्वत्र पूर्णरूप में व्याप्त और प्रकाशित हैं। सब जीव उन्हीं से उत्पन्न होकर उन्हीं में अवस्थित हैं। समय पूर्ण होने पर उन्हीं में लय हो जायँगे। महाभारतकार महर्षि व्यास के बतलाये इस सूक्ष्मतम धर्म-सूत्र पर वह विश्वास करते थे। उनको इस धर्म-सूत्र पर विश्वास था, इसीसे पूज्यपाद देवेन्द्रनाथ ठाकुर के नवीन उद्यम से उद्भासित धर्म

के आन्दोलन से जब ब्राह्म-समाज सगठित और पुष्ट हो रहा था, उस समय उन्होंने ब्राह्मसमाज की सेवा में अपने जीवन के प्रथम उद्यम और आग्रह को लगाया था। उन्होने खुद मुझसे कहा था कि "अनेक प्रकार के मतभेद के कारण जब अप्रिय मनोमालिन्य की नोबत आने लगी तब उस गोलमाल मे पड कर अशान्ति बढाने के लिए मेरी प्रवृत्ति नही हुई। व्यक्तिगत मतभेद की अत्यन्त अधिक प्रबलता देखकर मैं धीरे धीरे अलग हो गया। यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इस ससार का एक प्रभु है। किन्तु मैं यह नही समझता और न किसी को समझाने की चेष्टा करता हूँ कि इस मार्ग म न चल कर इस मार्ग मे चलने से अवश्य वह ससार का स्वामी हम पर प्रसन्न होगा—स्वर्गराज्य के हम अधिकारी होगे। लोगो का यह समझा कर मैं खुद फसना नहीं चाहता। एक तो स्वय सैकडा अन्याय के काम करके अपने पाप का बोझ भारी कर लिया है, उस पर दूसरो को मार्ग दिखलाने जाकर उन्हें कुमार्ग पर चलाऊँगा तो अन्त को दूसरो के लिए बेत खाने की नौबत आयेगी। अपने लिए चाहे जो हो, परन्तु दूसरो के लिए, भैया, मुझसे बेत न खाये जायँगे। यह काम मुझसे न होगा। मेरी समझ मे जो आता है उसी मार्ग पर मैं चलने की चेष्टा करता हूँ। लोग अगर ज्यादः जोर डालते हैं तो मैं कह देता हूँ कि इससे अधिक मेरी समझ में नहीं आता"।

पहले ही इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि ब्राह्मसमाज के अनेक आदमियो को वह हार्दिक श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। पण्डित विजयकृष्ण गोस्वामी को वह बहुत प्यार करते थे। उन्होने एक बार विद्यासागर से भेंट करके 'बोधोदय' के सम्बन्ध म कहा—"महाशय, बहुत लोग मुझसे कहते हैं कि विद्यासागर ने लडको के लिए ऐसी सुन्दर एक पुस्तक लिखी, उसमे बालको के जानने की मन

बाद उसे आठ आने पैसे देकर विदा किया और कहा कि कभी कभी आया करो । मैंने बहुत खोज करके उस फकीर को ढूँढ निकाला और उसे कुछ अधिक पैसे देकर वह गीत लिख लिया । उस फकीर ने कहा कि विद्यासागर बाबू मुझे बहुत प्यार करते थे और यह गीत सुन कर बहुत प्रसन्न होते थे । उनसे मुझे बहुत पैसे मिलते थे ।

वह बँगला गीत यह है । पाठक-गण, इस सहज बँगला का बहुत सा अंश अनायास समझ लेंगे ।

१—कोथाय भूले रयेछे ओ निरञ्जन निल्लय कर्बे रे के,
तूमि कोन खाने खाउ कोथाय थाक रे मन अटल हये,
कोथाय भूले रये छे—

२—तुमि आपनि नौका आपनि नदी आपनि दाँडि आपनि माझी,
आपनि हये चडनदार जी, आपनि हये नायेर काझी,
आपनि हये हाइल बैठा ।

३—तुमि आपनि माता आपनि पिता,
आपनार नामटी राखबो कोथा, से नाम हृदये गाँथा,
आमार गोसाई चांद बाउल बोले से नाम भूलबे नारे प्राण गेले ।

४—तुमि आपनि असार आपनि हउ सार,
आपनि हये नदीर दुधार, आपनि नदीर किनार,
आमि अगाध जले डूब दिते याई, से नाम भूलबे नारे प्राण गेले ।

५—आपनि तारा आपनि सारा, आपनि जरा आपनि मरा,
आपनि हये नदीर पाडा आवार आपनि हये श्मशान कर्त्ता गो,
आपनि हये जलेर मीन, ओ निरञ्जन तोर कोथाय गो साकिन,
आमि भेवे चिन्ते होलेम चीण ।

चौदहवाँ अध्याय ।

स्वर्गारोहण ।



न्य भारत के गौरवस्थल, वङ्ग-जननी के वीर पुत्र ईश्वर-चन्द्र की जीवनलीला समाप्त हो आई। विधाता के वरपुत्र ईश्वरचन्द्र संसार-संग्राम में जीवन के महाव्रत को परिपूर्ण कर, उसी मे सारा जीवन अर्पण करके इस समय महाशयन के निकट उपस्थित हुए। उनके स्वर्गवास के ठीक दो वर्ष पहले उनकी प्यारी स्त्री दिनमयी देवी दुरारोग्य शूली बवा-सीर के जोर से पलँग पर पड गई। बँगला सन् १२९५ के १ भाद्र को सन्ध्या के बाद, पति, पुत्र, कन्या, पोते, पोती, नाती नतिनी आदि बहुत से आत्मीय-स्वजनो की सेवा और आदर से सुख पाकर, वह सबसे सदा के लिए बिदा हो गई। उनका सासारिक जीवन में समय समय पर साधारण घटनाओ से तरह तरह की अशान्ति भोगनी पड़ी। इन सब बातो को स्मरण करके प्रेमिकप्रवर विद्यासागर के हृदय मे स्त्री-वियोग की आग सौगुनी प्रज्वल हो उठी। वह पत्नी के वियोग से बहुत ही व्याकुल हो पड़े। इस घटना से उनके हृदय में ऐसा भारी धक्का लगा कि वह शारीरिक या मानसिक किसी भी शक्ति को फिर पूरी तौर से प्राप्त न कर सके। उनका दु समय जीवन धीरे धीरे निस्तेज हो पड़ा। इसी समय मेरे सामने उन्होंने बहुत सी दुखी



পত্নী -দিনময়ী দেবী।

पत्नी दिनमयी देवी।

चौदहवाँ अध्याय।

स्वर्गारोहण।



[illegible] भारत के गौरवचन्द्र [illegible] के [illegible] [illegible] चन्द्र की जीवनलीला [illegible] [illegible] के [illegible] ईश्वरचन्द्र [illegible] के [illegible] की [illegible] [illegible] इस समय महाप्रयाण के निकट उपस्थित हुए। उनके स्वर्गारोहण के [illegible] दो वर्ष पहले उनकी प्यारी स्त्री दिनमयी देवी [illegible] पार के लोक में पलँग पर पड़ गईं। [illegible] आयु की सन्ध्या के बाद, पति, पुत्र, कन्या, बेटे, पोते, नाती, [illegible] आदि बहुत से आत्मीय-स्वजनों की सेवा और आदर से तृप्त होकर वह सबसे सदा के लिए विदा हो गईं। उनके सांसारिक जीवन में समय समय पर भयानक घटनाओं से तरह तरह की [illegible] मानी पड़ीं। इन सब बातों को स्मरण करके ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के हृदय में स्त्री-वियोग की आग सौगुनी प्रबल हो उठी। वह पत्नी के वियोग से बहुत ही व्याकुल हो पड़े। इस घटना से उनके हृदय में ऐसा भारी धक्का लगा कि वह शारीरिक या मानसिक किसी भी शक्ति को फिर पूरी तौर से प्राप्त न कर सके। उनका दुःखमय जीवन धीरे धीरे निस्तेज हो पड़ा। इसी समय मेरे सामने उन्होंने बहुत ही दुःखी

होकर कहा था—"अब क्या है? अभी प्राण निकल जायँ तो बहुत अच्छा"।

इस तरह की शोकाकुल अवस्था मे और भी दो वर्ष विद्यासागर ने थोडा बहुत रोग भोग करते करते बिता दिये। अक्सर वह पलँग पर ही पडे रहते थे। कभी निराहार रह जाते थे और कभी खाते थे। इस प्रकार की अस्वस्थ अवस्था में भी जब वह जरा अच्छे रहते थे तब उठ कर कुर्सी पर बैठते थे और यथासम्भव काम-काज भी करते थे। बेकार बैठना या पडे रहना उनके स्वभाव के विरुद्ध था।

वह ऐसे कामकाजी थे कि इस प्रकार की जीर्ण शीर्ण और अस्वस्थ अवस्था मे भी जब शरीर मे कुछ भी शक्ति जान पडती थी तब अपनी परम प्रिय शेष कीर्त्ति मेट्रोपोलिटन कालेज की ओर धीरे धीरे जाते थे। इस प्रकार उन्हे जाते आते मैंने खुद अपनी आँखो देखा है। इसके बाद सन् १२९७ के शेष भाग मे उनका रोग दिन दिन बढने लगा। स्वास्थ्य सुधारने के इरादे से जाडे के दिनों में वह फरासडाँगा के विश्राम-भवन में रहने के लिए गये। किन्तु फाल्गुन के अन्त मे उन्होंने समझ लिया कि आरोग्य होने की कोई सम्भावना नहीं है। इधर उधर करते करते चैत और वैशाख बीत गया। जेठ के महीने मे कल-कत्ते आकर वह यथाविधि चिकित्सा कराने लगे। डाकुरो की सलाह से अफीम खाना छोड देना बहुत जरूरी जान पडने पर वह हकीमी इलाज से स्वास्थ्य सुधारने और अफीम छोड देने की चेष्टा करने लगे। १०।५ दिन कुछ फायदा मालूम हुआ, पर फिर तबीयत खराब हो गई। धीरे धीरे जितने दिन बीतने लगे उतना ही शरीर दुर्बल हो चला, रोग भी बढने लगा। आषाढ के अन्त मे डाकुर हीरालाल घोष और बाबू अमूल्यचरण वसु ने मिल कर रोग की जाँच की। पीछे डाकुर

मैकनेल साहब को बुला कर रोग की जाँच कराई गई। उन्होंने यथेष्ट आशङ्का का कारण बतलाया। अन्त को हीरालाल बाबू, अमूल्य बाबू, मैकनेल साहब और वार्च साहब ने मिल कर सलाह की। किन्तु उस सलाह से सब की यह धारणा हुई कि रोग असाध्य हो गया है। ऐसी अवस्था मे चिकित्सा का चलना असम्भव जान पडने से दोनो साहबो ने जवाब दे दिया। बीच मे कई दिन तक अमूल्य बाबू की चिकित्सा ही होती रही। अन्त को सलाह करके डाकृर सालजर को बुला कर होमिओपेथिक चिकित्सा कराई जाने लगी। सालजर साहब ने भी रोग की जाँच करके अपनी राय यह जाहिर की कि रोग भारी है और आराम होने की सभावना बहुत कम है। उन्होने यह भी कहा कि पीडा चाहे जितनी प्रबल होती, कुछ डर न था। किन्तु शरीर का जीर्ण शीर्ण होना, दुर्बलता और बुढापा ही आशङ्का का कारण है। इसके बाद डाकृर सालजर ने चिकित्सा शुरू की और कुछ दिन तक कुछ फायदा भी मालूम पडा। अनेक व्याधियो मे से हिचकी का बहुत आना ही प्रधान था। इसीसे उनको अत्यन्त क्लेश था और यही आशङ्का का प्रधान कारण था। दवा के जोर से कभी हिचकियो का आना कम हो जाता था, कभी बढ जाता था, किन्तु हिचकियो का आना एकदम बन्द नहीं हुआ। इसके ऊपर थोडा थोडा ज्वर भी आता था। धीरे धीरे ज्वर भी जोर पकडने लगा। ज्वर और पीडा की ज्वाला से शरीर एकदम शिथिल हो पडा। सरल उज्ज्वल नेत्र धीरे धीरे क्षीण-ज्योति वाले होकर गढे मे चले गये और दीनता का परिचय देने लगे। जिस मुख मे मधुर हँसी देख कर सैकडो लोग तृप्त और मुग्ध होते थे वह उनका मुखमण्डल आज मलिन हो आया। निरा जान पडता था, कोई अलक्षित हाथ चुपके चुपके उस मुख का शोभा और सौन्दर्य को हर रहा है। आषाढ बीत गया। सावन का पहला

सप्ताह भी समाप्त हो चला। डाक्टर सालजर रोगी की अवस्था देख कर निराश हो गये। अन्य किसी चिकित्सा से कुछ लाभ होने की सभावना न देख कर विद्यासागर पहले जो अपनी व्यवस्था के अनुसार दवा खाते थे वही दवा फिर करने लगे। उससे भी कुछ फायदा हुआ। पर स्थायी आरोग्य-लाभ न हुआ। धीरे धीरे मृत्युकाल के निकट आने के लक्षण दिखाई देने लगे। क्रमश ज्वर तो बढने लगा, पर यन्त्रणा कम हो चली। इस प्रकार जीवन और मृत्यु के बहुत लम्बे चौडे सग्राम मे भी मरते दम तक उनका ज्ञान वैसा ही बना रहा। जो लोग बहुत दिनो के बाद भी मुलाकात करने आये उनको उन्होने पहचाना और बैठने के लिए कहा। किसी किसी से बडे कष्ट से दो एक बाते भी कीं।

डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार महाशय देखने के लिए आये। विद्यासागर ने उनसे पास बैठने के लिए इशारा किया। बहुत दिनो की उनकी मित्रता और बीच में मनमुटाव के कारण को स्मरण करके विद्यासागर बहुत व्याकुल हुए। बडे कष्ट से उन्होने उनसे दो-एक बातें भी कीं। प्रसिद्ध वक्ता सुरेन्द्रनाथ को वह बचपन से प्यार करते थे। पहले ही कहा जा चुका है कि सुरेन्द्र बाबू जब विलायत मे सिविलसर्विस की परीक्षा देने गये और उनकी अवस्था के बारे मे गडबड मची तब विद्यासागर ने ही यहाँ से उनकी सहायता की थी। विद्यासागर ने ही कलकत्ता-पुलीसकोर्ट मे सुरेन्द्र बाबू की अवस्था के बारे में अपनी साक्षी दी था और उसे विलायत के अफसरों ने स्वीकार कर लिया था। सिविलसर्विस को असमय मे ही छोडने के लिए बाध्य होकर जब सुरन्द्र बाबू चारो ओर शून्य देखने लगे थे तब उस कुसमय में विद्यासागर ने ही सुरन्द्र बाबू को आश्रय दिया था। वही सुरेन्द्र बाबू जब अपनी बुद्धि के कौशल, चेष्टा, यत्न और प्राणपण अध्य-

वसाय के बल से रिपन-कालेज के स्वत्वाधिकारी हो गये थे उस समय विद्यासागर के जीवन का दीपक अस्तप्राय हो रहा था। उस समय उनके मुँह से बात नहीं निकलती थी। सुरेन्द्र बाबू देखने के लिए आये। विद्यासागर ने बडे स्नेह से पास बैठने के लिए इशारा करके अपनी स्वाभाविक रसिकता के अनुसार अपनी सफेद मूछों पर हाथ फेर कर इशारे से कहा—"तुम्हारे भी इतनी जल्दी बाल सफेद हो गये?" इसी तरह सैकडों आदमी देखने आये थे। मरते दम तक विद्यासागर ने सबसे स्नेह और आदर का बर्ताव करके सबको सन्तुष्ट किया।

बँगला सन् १२९८ के १३ श्रावण को तीसरे पहर और शाम के बाद भी उनके बडे जोर का बुखार था। १३ श्रावण की रात को दो बजे के अट्ठारह मिनट पर बङ्ग-जननी की गोद को सूना करके—विषादराशि से रात्रि के अन्धकार को बढा कर—बङ्गालियों के घर में हाहाकार की ध्वनि उठवा कर ईश्वरचन्द्र अमर-धाम के मार्ग में अग्रसर हुए। घर में उनके पुत्र और कन्यायें अपने बच्चों सहित जमीन पर लोट लोट कर रोने लगे। आत्मीय स्वजन-शोक से मुर्दे की तरह बने हुए मृत्युशय्या को घेरे खडे थे। असहाय दुखिया लोग निराश्रय होकर कटे हुए पेड की तरह जमीन पर लोट रहे थे।

किन्तु स्वर्ग के मार्ग में बिजली का प्रकाश हो उठा। देव-गण इस अमर आत्मा के सत्कार के लिए अग्रसर हुए। देवतों के कण्ठ से निकली हुई जय-ध्वनि, मङ्गल-ध्वनि और आनन्द कोलाहल से आकाश गूँज उठा। इस लोक में विषाद का घना अन्धकार छा गया, और परलोक के मार्ग में आनन्दकोलाहल मच गया। एक ओर अमावास्या का अन्धकार और दूसरी ओर पूनो की चांदनी का चमत्कार देख पडा। एक ओर महाशून्यता सर्वत्र छा गई और दूसरी ओर देवतो

की भीड का पवित्र मधुर कलनाद पवित्र प्रकाश के साथ व्याप्त हो उठा। उसी की एक रेखा दैव-संयोग से मनुष्यलोक में, बंगाल में, ईश्वरचन्द्र के सोने के कमरे में प्रतिफलित हुई। वह रेखा यह है —

इधर सहसा स्वर्ग से उतर आया पुष्पक रथ।
कल्प-वृक्ष फूलों की कर वर्षा छिपा दिया किसी ने जैसे गगन-पथ॥
बिजली चमके रथ के पहिये में, चोटी पर स्वर्गीय ध्वजा डोले।
आस पास सोहैं मणि और मुक्ता विमल स्वर्गीय विभा खोले॥
चारो ओर उसके, चार बालिका श्वेत-वस्त्र पहने सोई।
कोई लाई है गङ्गाजल, कोई चँवर चन्दन कोई॥
दूसरी बाला के कोमल कर में स्वर्णपद में लिखी न जानें कौन बात।
धीरे धीरे उतर आई वे रथ से खडी हुई जहाँ तापस विख्यात॥
चरण-कमल में सिर झुका स्वर्गीय वीणा में मिला कर तान।
न-जानें कहा क्या सबने समस्वर में स्वर्गीय भाषा में गा कर गान॥

\+ + + +

हे तापसवर! साधना तुम्हारी, चलो तुम अब।
लेने को इष्टवर चलो देवपुर खडे हैं देवता द्वार पर सब॥
स्वयं कीर्त्तिदेवी गूँथ के फूल-माला करे प्रतीक्षा हे द्विजवर।
बैठायेंगी तुम्हें यत्न करके बैठा नहीं कोई जिस सिंहासन पर॥

\+ + + +

चलो चलो देव जल्दी चलो करो ना करो ना विलम्ब रार।
गंगाजल मे धोओ देह उतारो मही का दुःखभार॥
यह दिव्य चन्दन आओ लगा दें चरण-कमल में हम सब आज।
उठो उठो देव! बैठो शीघ्र रथ पर वृथा इस विलम्ब से क्या है काज॥

ममता भूल कर—दुखियो के दुख का खयाल न करके कहाँ चले जाते हो ? यदि हमारा रोना—हमारे हृदय का प्रेम तुमको नही रोक रख सकता तो —

जाओ देव, स्वर्गपुर में करो जाकर विश्राम ।
पाकर प्रभु की दया, भूलो न सब की माया,
याद करना याद करना देव भारत का नाम ।
अभागिनी बंगभाषा, इसकी करना मङ्गल आशा,
बालविधवाओ पर होना नहीं वाम ॥
दरिद्र बङ्गाली गण, जगाओ इन्हे मन ही मन,
मरण मे होवे नहीं चिर-परिणाम ॥*

पवित्र जल वाली भागीरथी ! आज तुम्हारे लिए सुप्रभात है । इसी से तुम प्रातःकाल की हवा से बाते करती आनन्द से नाच रही हो । आज तुम्हारे पवित्र जल में पवित्र शरीर ईश्वरचन्द्र की महामूल्य भस्म बहाई जायगी, तुम्हारी हर एक लहर उसमे मिल कर नाचेगी । तुम गर्व के साथ उस भस्म को लेकर समुद्र से मिलने जाओगी—इसी से आनन्दमग्न हो रही हो । किन्तु देखो, इस महामूल्य भस्म-राशि का अनादर न होने पावे ! तुम नहीं जानतीं कि कितने हृदयों का आशा-भरोसा, कितने लोगों की सुख-सम्पत्ति कितने लोगों का आनन्द और आराम हरे लिये जाती हो । आज तुम्हारे असीम सौभाग्य के समागम को देख कर हम शून्य हृदय लिये तुम्हारी ओर ताक रहे हैं—असमर्थ और असहाय लोगों की अण्डली लँगडे की तरह तुम्हारी ओर सतृष्ण दृष्टि से देख रही है, देखो, कोई निराश न होने पावे । इनके आदर की—परम यत्न की सामग्री यह ईश्वरचन्द्र

---

* यह भी इसी तरह बँगला छन्द और कविता का शब्दानुवाद है ।

हो पडता है—भीतर न-जानें कैसे एक उदास अप्रिय-भाव का सञ्चार होता है। इसी से उस लेटी हुई लाश का चित्र देने का साहस नहीं किया गया। इसके बाद कुछ प्रकाश के फैल जाने पर स्नान करा कर चिताशय्या पर शयन कराने के पहले जो फोटो लिया गया था वही चित्र यहाँ पर दिया गया है। रोग से जीर्ण-शीर्ण और मृत्यु के कराल हाथो से विकृत मुख मे वही शान्ति और कमनीयता, देह मे वही दृढता, दाहने हाथ मे वही लोक-सेवा का भाव दिखलाई पडता है।

हे वीरवर, हम आज किस हृदय से क्या कह कर विदा करे। तुम तो अभागिनी वङ्गजननी के प्रिय पुत्र हो। हे देव। तुम्हारे चले जाने से पिता और माता के भक्तों का सजीव आदर्श उठ जायगा। तुम्हार चले जाने से आदर्श छात्रजीवन के दृष्टान्त को वङ्गाली वालक कहाँ पावेंगे? तुम्हारे चले जाने से दीन दुखी लोगो को मीठी वातो से कौन सन्तुष्ट करेगा? इसी से कहते हैं, तुम न जाओ, तुम हम लोगो को न छोडो। तुम्हारे चले जाने से तुम्हारे साथ वङ्गाल का आशा-भरोसा और सुख-सौभाग्य भी चला जायगा। इसी से कहते हैं तुम चले जाओगे तो हम कहाँ जायँगे? हमको भी फिर वही ले चलो। हम उस सुख के राज्य मे तुम्हारे स्नेह-ममता और मधुर हँसी के प्रकाश मे वस कर परम शान्ति पावेंगे। तुम तो परम विज्ञ हो। तुम क्या नहीं जानते कि तुम्हारे न रहने से हमारा सर्वनाश हो जायगा। सैकडो गरीव अन्न के अभाव से चिल्ला रहे हैं। तुमने जीवन काल में एक वार ऐसे लोगो की मासिक वृत्ति का रजिस्टर मेरे आगे फेक कर कहा था—"मैंने क्या कहीं जाने का रास्ता रक्खा है? इसी एक काम में मैंने अपने को ऐसा फसा रक्खा है कि कहीं जा नहीं सकता"। हे देव, फिर आज सव काम छोड कर—सव

ममता भूल कर—दुखियो के दुख का खयाल न करके कहाँ चले जाते हो ? यदि हमारा रोना—हमारे हृदय का प्रेम तुमको नहीं रोक रख सकता तो —

जाओ देव, स्वर्गपुर में करो जाकर विश्राम ।
पाकर प्रभु की दया, भूलो न सब की माया,
याद करना याद करना देव भारत का नाम ।
अभागिनी वंगभाषा, इसकी करना मङ्गल आशा,
बालविधवाओं पर होना नहीं वाम ॥
दरिद्र बङ्गाली गण, जगाओ इन्हें मन ही मन,
मरण में होवे नहीं चिर-परिणाम ॥

पवित्र जल वाली भागीरथी ! आज तुम्हारे लिए सुप्रभात है । इसी से तुम प्रातःकाल की हवा से बाते करती आनन्द से नाच रही हो । आज तुम्हारे पवित्र जल में पवित्र शरीर ईश्वरचन्द्र की महामूल्य भस्म बहाई जायगी, तुम्हारी हर एक लहर उससे मिल कर नाचेगी । तुम गर्व के साथ उस भस्म को लेकर समुद्र से मिलने जाओगी—इसी से आनन्दमग्न हो रही हो । किन्तु देखो, इस महामूल्य भस्म-राशि का अनादर न होने पावे ! तुम नहीं जानती कि कितने हृदयों का आशा-भरोसा, कितने लोगों की सुख-सम्पत्ति, कितने लोगों का आनन्द और आराम हरे लिये जाती हो । आज तुम्हारे असीम सौभाग्य के समागम को देख कर हम शून्य हृदय लिये तुम्हारी ओर ताक रहे हैं—असमर्थ और असहाय लोगों की मण्डली लँगड़े की तरह तुम्हारी ओर सतृष्ण दृष्टि से देख रही है, देखो, कोई निराश न होने पावे ! इनके आदर की—परम यत्न की सामग्री यह ईश्वरचन्द्र

---

* यह भी इसी तरह बँगला छन्द और कविता का शब्दानुवाद है ।

की भस्म इधर उधर न बहा देना, परम प्रेम से इसे अपने भीतर रखना।

जो लोग शव लेकर गये थे, जो लोग साथ गये थे, जो लोग गंगातट पर मसान में लेटे हुए विद्यासागर को देखने दौड़े गये थे, सब लोग उस महापुरुष को गँवा कर शून्य-हृदय, मलिन-मुख होकर आँखों में आँसू भरे अपने अपने घर को लौट गये। विद्यासागर महाशय चुपचाप काम करना पसन्द करने वाले आदमी थे। आश्चर्य है कि मरने पर भी उनकी अन्त्येष्टिक्रिया के समय और कोई शव श्मशान में नहीं आया। अनेक कष्टों और मानसिक चिन्ताओं में उन्हें अपनी जिन्दगी बितानी पड़ी थी। यह भी कुछ सुख की बात है कि अन्त को मसान में अकेले वह भस्म हो सके। यहाँ भी उनके जीवन की स्वतन्त्रता इस तरह सुरक्षित हुई।

१४ श्रावण को सवेरे चिता जली और उसके बाद चिता बुझने पर अस्थिसञ्चयन हुआ। इसके बाद चारों ओर बङ्गाल के हर जिले हर गाँव और हर घर में हाहाकार मच गया। धनी-दरिद्र, उच्च-नीच, बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सबको विद्यासागर का शोक हुआ। एक प्रकार से सारे भारत में शोक छा गया। इस तरह देश भर के सब लोग कभी किसी की मृत्यु से शोकाकुल नहीं हुए। विद्यासागर के स्कूल के लड़कों ने अपने को पितृहीन समझ कर जूते पहनना छोड़ दिया। सब अखबार शोकचिह्न धारण करके अश्रुपात करते करते लोगों के यहाँ उपस्थित हुए। चारों ओर भयानक हाहाकार और रोना धोना मच गया। विद्यासागर के मरने के अवसर पर इस बात का प्रमाण मिल गया कि बंगाल के समाज शरीर में अभी तक जान बाकी है, बंगाली लोग किसी हितैषी के शोक में मिल कर हृदय से विलाप कर सकते हैं और बंगाली लोग वीर-पूजा करने में किसी से कम नहीं हैं।

भगवान् कृपा कर , इस हितैषी के शोक से—वीरपूजा से जातीय जीवन की शुभ सूचना का सूत्रपात हो । बंगाल के जातीय जीवन-चरित के हर एक पृष्ठ में वीरचरित लिखा जाय । विद्यासागर के स्वर्गारोहण के अवसर पर भारत में जो जातीय शोक, क्षोभ और मानसिक सन्ताप का अभिनय देखा गया था वह अगर किसी उपाय से स्थायी बनाया जा सकता तो वह निस्सन्देह हमारे जातीय जीवन को संगठित और उन्नत बनाने के काम में यथेष्ट सहायता करता ।

बंगालियों की शक्ति के सम्मिलित उद्योग से जातीय अभिनय देख पड़ने में अभी बहुत विलम्ब है । इसी से विद्यासागर के वियोग के अवसर पर भारत के अनेक स्थानों में अलग अलग सभा-समितियां हुई और स्मारक चिह्न स्थापित करने की अलग अलग चेष्टा की गई । कलकत्ते में घर घर और स्कूलों में विद्यासागर के चित्र की स्थापना हुई है । बंगाल के अनेक स्थानों में अनेक प्रकार से उनका स्मारक बनाने की चेष्टा की गई है । ढाके का अनुष्ठान ही विशेष भाव से उल्लेख के योग्य है । ढाके के धनी-दरिद्र, छोटे-बड़े सब नगरनिवासियों के उत्साह और आग्रह से एक बड़ी भारी सभा हुई थी । बान्धव-सम्पादक श्रीयुत बाबू कालीप्रसन्न घोष ने सभापति की हैसियत से विद्यासागर के विविध गुणों का वर्णन किया था । साहित्यानुरागी श्रीयुत राजा राजेन्द्रनारायण रायबहादुर ने ढाका-कालेज में विद्यासागर-स्कालरशिप नाम से दस रुपये मासिक की एक छात्रवृत्ति जारी करने के लिए ३०००) रुपये दिये थे । बर्दवान में भी सर्वसाधारण के उद्योग से और विद्यासागर के भक्त श्रीयुत गङ्गानारायण मित्र के आग्रह से विद्यासागर का एक चित्र स्थापित किया गया था । किन्तु विद्यासागर ऐसे हितैषी के लिए क्या इतना करना ही यथेष्ट है ? दुःख यही है कि कलकत्ते की विराट् सभा में केवल आठ दस हजार

रुपये का चन्दा आया। जिन्होंने गरीबो की सेवा और अच्छे कामो में दस-बारह लाख रुपये खर्च कर डाले, जिन्होंने समाजसस्कार, साहित्यचर्चा और लोकसेवा मे अपना जीवन अर्पण कर दिया उनकी पूजा के लिए केवल दस हजार रुपये जमा हुए।

फ्रान्स देश के सच्चे हितैषी नेपोलियन ने जब स्वजनो और अपनी जातिवालो से त्यागे जाने पर सेन्टहेलेना के एकान्त वास मे शरीर त्याग किया था, जब बिना आडम्बर के चुपचाप बोनापार्ट का शरीर कब्र मे रक्खा गया था, तब फ्रेंच जाति जातीय ऋण के भार को समझ नहीं सकी—कर्त्तव्य-बुद्धि के तीव्र तिरस्कार का अनुभव नही कर सकी। किन्तु उनके परलोकवास के दस वर्ष बाद जब उनकी लाश को, समुद्रवेष्टित सेन्टहेलेना के निर्जन जेलखाने से, देव-देह की तरह पवित्र वस्तु समझ कर, फ्रेंच लोग फ्रास में ले आये थे, उस समय फ्रास देश के एक छोर से दूसरे छोर तक सारे देश में एक ही लहर लहरा रही थी, एक ही शब्द गूँज रहा था, एक ही भाव मे सब लोग उन्मत्त हो रहे थे, एक शरीर की तरह सब लोग उठ कर पिता के शोक से व्याकुल पुत्र की तरह हाहाकार मचाकर विलाप करने लग थे। महल मे, झोपडी में, अदालत में, होटल में या गिर्जे मे, जो जहाँ था वह वहीं से पागल की तरह दौड कर उस भीड मे शामिल हो गया था। उस समय फ्रास के गाँव और नगर, जङ्गल और बस्ती एक हो गये थे। उस एकीभूत अपूर्व उन्मादमय भीड की उन्मत्त बना देनेवाली शोभा को देख कर सारे यूरोप ने विस्मय और भय के साथ सिर झुकाया था। पराधीन भारत मे भी विद्यासागर के वियोग से जातीय शोकोच्छ्वास की हर एक लहर मे वीरपूजा के पुष्प नृत्य कर रहे थे। यह देख कर हमारे मन में भी बडी आशा हुई है। मैं जैसे प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि इतने दिनो के बाद जातीय जीवन का काम शुरू हुआ

है। + + + जिनके लिए आज सब रोते हैं, वह महापुरुष थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। उन्होंने इतने लोगों के चित्त को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। इससे इसमें सन्देह नहीं कि उनका हृदय प्रशस्त था। सागर के विना और कौन सब नदियों को अपनी ओर घसीट सकता है? किन्तु दुःख यही है कि ये सब नदियाँ सागर की ओर चल कर रास्ते में सामाजिक जटिलता की मरुभूमि में सूख गई। हम लोग जीते ही मुर्दे के तुल्य हो रहे! दारुण आलस्य के विष से हमारे सब अंग ऐसे शिथिल हो गये हैं कि हम सहज में खड़े नहीं हो सकते। खड़े भी होते हैं तो अपने लक्ष्य की ओर आगे नहीं बढ़ सकते। इसीसे यह देख कर भी कि कितने ही देशों के लोग उठ कर खड़े हो गये हैं, हमको चेत नहीं होता। हम लोग आलस्य की शय्या पर शिथिल भाव से पड़े हुए, विकार-ग्रस्त रोगी की तरह, सैकड़ों प्रकार के सुख के सपने देखते हैं और विश्वव्यापिनी उदारता की डींग हाँकते हैं।

विधाता से यही प्रार्थना है कि उनके आशीर्वाद से इस घोर अमावास्या के घने अन्धकार में विद्यासागर की जीवनी पढ़ कर बङ्गाली और सारे भारत के पाठकों के हृदय में जातीय जीवन की लालसा, निष्ठा के साथ कर्त्तव्य पालन में अध्यवसाय और वीरोचित गुणावली के अनुकरण में प्रवृत्ति हो। ऐसा होने से यह जाति धन्य होगी। जातीय जीवन के इतिहास के पृष्ठ में हम नये सिरे से नवीन अध्याय की सूचना करने में समर्थ होंगे।

उपसंहार।

पृथ्वी का इतिहास भिन्न भिन्न जातियों के उत्थान-पतन की न्यायी प्रतिध्वनि मात्र है। इस जातीय उत्थान-पतन में जो लोग इसकी उन्नति अथवा अधःपात में सहायता करते हैं वे लोकसमाज में अनन्त काल तक अपने किये कर्म के लिए पुरस्कार या तिरस्कार पाते हैं। किन्तु जो लोग देह का रुधिर गिरा कर—आकांक्षा और आग्रह के साथ जीवन का महामूल्य समय लगा कर—जातीय जीवन का सगठन और समुन्नति करते हैं, वे, भिन्न रुचि, भिन्न भाव और भिन्न प्रवृत्ति के लोगों से परिपूर्ण पृथ्वी में सदा परम पूजनीय देवचरित्र के पुरुष कहलाते और आदर्श-मनुष्य कहलाये जाकर आदर पाते हैं। वे ही समाज की उन्नति के सहायक समझे जा कर पुजते हैं। ऐसे पूजनीय मनुष्यों के आविर्भाव से पृथ्वी की सभी जातियाँ थोड़ा बहुत गौरव पाती हैं। किन्तु वर्तमान समय की प्रबल और सौभाग्य के घमण्ड से फूल रही जातियों की दृष्टि में उपेक्षा के पात्र भारतसन्तान ही इस बारे में सब से अधिक भाग्यवान् हैं। सच है कि वाशिंग्टन के नाम से अमेरिका-वासियों के हृदय में एक स्वर्गीय प्रकाश की रेखा प्रतिफलित होती है, कमनीयता की कोमल गोद में विकसित भावों के आधार एमर्सन के नाम से प्रकृति-चर्चा-प्रिय मनुष्यमात्र मुग्ध हो जाते हैं, थियोडोर पार्कर के विश्वविजयी पौरुष को स्मरण करके मनुष्यमात्र सिर झुकाते हैं, सामयिक त्रुटि और कमजोरी को भूल कर फ्रांसवासी लोग नव्य

यूराप के जन्मदाता नेपोलियन के नाम पर उन्मत्त हो उठते हैं, वर्त्तमान प्रत्यत्तवादियो के पथ-प्रदर्शक महात्मा कोम्ट और वेन्थम के शिष्य महामति मिल मनुष्य-समाज के चिर-सुहृद् समझे जाते हैं, धर्म-सस्कारक महात्मा लूथर कूड़ा-कर्कट मे ईसाई-धर्म को निकाल कर नवजीवन के मार्ग मे अग्रसर करके पाश्चात्य समाज का बड़ा उपकार कर गये हैं। यह सब सच है, किन्तु तब भी यह कहना पड़ता है कि इस बारे में भारत-सन्तानो के सौभाग्य की सीमा नहीं है। विदेशी महात्माओ की अपेक्षा हमारे यहाँ के महात्माओं की सख्या कहीं अधिक है। अत्यन्त प्राचीन काल मे जिन्होने जन्म लेकर हमारी प्यारी निवास भूमि भारतवर्ष को गौरव-शाली बनाया है उनका धारावाहिक रूप से सक्षिप्त उल्लेख करना भी यहाँ, स्थानाभाव से, असम्भव है। तथापि यह कहना बहुत जरूरी है कि जिस जाति के जातीयजीवन के मार्ग मे पूर्ण घटनाओं की ओर नजर डालते ही त्रेता के आदर्शपुरुष श्रीरामचन्द्र के चरित्र की महिमा आपही आप अलक्षित भाव से हृदय मे झलक जाती है और रामायण में वर्णित चरित्रों की कहानी चुपचाप, रात को ओस गिरने के समान, जातीय जीवन को सगठित करती है, उस जाति के सौभाग्य की सीमा नहीं है। द्वापर के धर्म-क्षेत्र कुरुक्षेत्र के युद्ध के मैदान मे शर-शय्या पर पड़े हुए महानुभव भीष्मपितामह के वीर-व्रत की समाप्ति और उनके मुख से उस समय निकले हुए सदुपदेशो ने जिस जाति के चरित्र-गठन में सहायता की है—जिस जाति की राजनीति, समाजनीति और धर्मनीति के विकास मे श्रीकृष्ण ऐसे महापुरुष आदर्शरूप से विराजमान हैं—वह जाति सचमुच सौभाग्यशालिनी है। किन्तु आज उसी जाति के नर-नारियो के सिखने-सिखाने और सुनने-सुनाने के अनेक अमूल्य चरित्र-रत्न उनकी झोपड़ियो के कूड़े-करकट में छिपे पड़े हैं। इसीसे

आज वह जाति कहीं उपेक्षित, कहीं परित्यक्त और कहीं अनादृत हो रही है। अनेक अँगरेजी पढ़े-लिखे लोग कहते हैं कि राजा राममोहन राय और विद्यासागर ऐसे प्रतिभाशाली लोग इँगलेंड और अमेरिका मे न पैदा होकर भारत मे क्यो पैदा हुए ? इसका सहज और स्वाभाविक समाधान यह है कि जो देश शाक्यसिंह की जन्मभूमि है, जहाँ शङ्कराचार्य्य ऐसे प्रतिभाशाली पराक्रमी महात्मा उत्पन्न हुए हैं, जहाँ चैतन्यदेव ऐसे धार्मिक भक्त पुरुष ने जन्म लिया उस देश के सिवा और किसी देश मे राजा राममोहनराय और ईश्वरचन्द्र का जन्म नहीं हो सकता। भारतवर्ष की विशेषता कहो और चाहे बगाल का सौभाग्य कहो, जो राममोहन, ईश्वरचन्द्र देवेन्द्रनाथ और केशवचन्द्र ऐसे महापुरुषो ने यहाँ जन्म लिया। कई शताब्दियो के साधु-सज्जनो और ऋषि तपस्वियो की तपस्या के फल से हमारी जन्मभूमि इन सुपुत्रों को पाकर अपने अस्तित्व को सफल बना सकी है।

प्राचीन मनस्वी आर्य ऋषियों के चलाये काल-विभाग के अनुसार सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग, इन चार युगो का उल्लेख पाया जाता है। बहुसम्मानास्पद श्रीयुत माननीय रमेशचन्द्रदत्त सी०एस० सी० आई० ई० महोदय ने इन चार युगो के साथ साथ एक नवीन ऐतिहासिक समय-विभाग किया है। यथा १—वैदिक युग, २—महाकाव्य युग, ३—दार्शनिक युग, ४—बौद्ध युग, ५—पौराणिक युग, ६—राममोहन राय युग। इनमें से हर एक युग की सुन्दर विवेचना की गई है। राममोहन राय युग की व्याख्या मे उनकी विवेचना का और भी अच्छा परिचय प्राप्त होता है। राममोहन राय इस युग के जन्मदाता हैं। जो लोग विचारपूर्वक सब विषयो के सार-सग्रह मे लगे हुए हैं वे देख पावेंगे कि जितने प्रकार के विचारों से आज बङ्गाली-समाज भरा हुआ है उनका सूक्ष्म सूत्र राममोहन राय की

प्रखर प्रतिभा से ही सम्बन्ध रखता है। शास्त्र-चर्चा और धर्म्म की आलोचना से लेकर जातीय शक्ति की रक्षा और अन्नहीन किसानों तथा मजदूरों की अवस्था की उन्नति करना आदि हर एक विषय के साथ उक्त महात्मा का एक सा सम्बन्ध है। वह सभी बातों में युगान्तर उपस्थित कर देने वाले पुरुष थे।

महात्मा राममोहन राय जिस युग के प्रवर्त्तक थे उसी युग के द्वितीय महापुरुष ईश्वरचन्द्र विद्यासागर हैं। माननीय जज श्रीयुत सर गुरुदास बनर्जी ने विद्यासागर के मरने के बाद मेट्रोपोलिटन-कालेज की सभा में सभापति की हैसियत से कहा था—"He was second to none except one—Great Rammohan Roy" अर्थात्, वर्त्तमान समय की सब अवस्थाओं की आलोचना करने से देख पडता है कि मृत महात्मा (विद्यासागर), राममोहन राय को छोड कर तुलना में और किसी से हीन न थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य-भाग में सारी पृथ्वी के लोगों की जातीय उन्नति और ऐश्वर्य के इतिहास में एक नवीन अध्याय की सूचना हुई। पौराणिक कथा में सुन पडता है कि भगीरथ ने बहुत तपस्या करके गङ्गा को लाकर पितरों की गति बनाई थी, वैसे ही मनुष्यों की सद्गति के लिए वर्त्तमान शताब्दी के प्रारम्भ में जो महापुरुष तपस्या कर रहे थे उनकी साधना के बल से मनुष्य-सन्तानों के सुख-सौभाग्य के अन्धकार-पूर्ण पूर्वाकाश में सम्पत्ति सूर्य के भावी अभ्युदय का आभास पाकर उस समय के ज्ञानी लोग पुलकित हुए थे। जिस समय अमेरिका में महात्मा फ्रैंकलिन और पुरुषसिंह वाशिंगटन के पौरुष के बल से पराधीनता की दृढ बेडियाँ कट गई थीं और जातीय जीवन का स्रोत प्रबल वेग से प्रवाहित होना शुरू हुआ था जिस समय पार्कर और गैरिसन अभागे निग्रो जाति के गुलामों

का दुःख दूर करने के इरादे से स्वार्थपर लोगो की मण्डली के विरुद्ध समर-घोषणा का सूत्रपात कर रहे थे, जिस समय इँगलेंड मे वर्क, फाक्स आदि राजनीति-विशारद लोग प्रबलो के किये विविध अत्याचारो को रोकने के लिए जान लडा रहे थे, जिस समय विलबारफोर्स आदि सहृदयो ने दुर्बलो के पक्ष का समर्थन करने में अपने को लगा दिया था, जिस समय महापुरुष नेपोलियन ने यूरोप के भाग्यचक्र को अपने इशारे पर चलाने के इरादे से दाहने हाथ की तर्जनी उठा कर पृथ्वीमण्डल को चुप रखना चाहा था, जिस समय अनेको सहृदय महात्मा लोग पृथ्वी के अनेक स्थानो मे असहाय मनुष्यो का दुःख दूर करके उन्हे सुखी बनाने मे लगे हुए थे, उसी समय अज्ञता और कुसस्कार के घोर अन्धकार से आवृत भारत के भीतर आडम्बर के कोलाहल, तामसी रगरस, धर्म के नाम से की जानेवाली अनेक प्रकार की अनीतियो की पूर्ण प्रतिष्ठा के बीच मे नवीन युग के आने का सगीत सुनाई पडा था। विधाता की इच्छा से राजर्षि राममोहन राय अपने को समय के सम्पूर्ण उपयुक्त बना कर भारत के पूर्वप्रान्त में प्रकट हुए थे। उन्होने जान लडा कर जिन अच्छे कार्यो का सूत्रपात किया था—वे उनकी अकालमृत्यु से असम्पूर्ण पडे हुए थे। कई एक वीर बङ्गालियो ने उन कार्यो को पूर्ण करने का भार अपने ऊपर लिया।

जिस समय मेजिनी और गेरीवाल्डी स्वदेश के उद्धार के लिए कमर कस चुके थे, जिस समय सैफट्सबरी, ब्राइट, काब्डेन आदि महात्मा इँगलेंड में लोकहित के व्रत मे लगे हुए थे, जिस समय कुमारी कार्पेन्टर इँगलेंड के परित्यक्त युवक-युवतियो और बालक-बालिकाओ की दुर्दशा देख कर व्याकुल होकर लोकसेवा में लगी हुई थीं और कठिन रुकावट के रहते भी सफलता प्राप्त करके Reformatory School Act पास करा रही थीं, जिस समय कुमारी

काव् और कुमारी नाइटेंगिल स्त्रियों के हित के वास्ते जन्म भर कुमारी रहने के लिए तैयार हो रही थीं, जिस समय रूस के सम्राट् अलेकजंडर ने सिंहासनारोहण की खुशी में दो करोड तीस लाख मनुष्यों को गुलामी से छुटकारा दे दिया था, जिस समय मनुष्य-देवता लिंकन ने अपने जीवन के बदले दासों की स्वाधीनता की सनद पर हस्ताक्षर किये थे, उसी समय सैकडों प्रकार के सामाजिक उत्पीडन सहते हुए बगवीर ईश्वरचन्द्र भारत की नारियों को सुखी बनाने का मार्ग साफ करने में लगे हुए थे।

अब हम उनके उसी गुण, वीरता, साहस और पौरुष की संक्षिप्त समालोचना करेंगे जिसके कारण वह वर्त्तमान युग के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति माने जाते हैं।

वह बडे आदमियों की तरह अनेक सुख भोग कर नहीं पले। जंगली फूल जैसे बिना किसी यत्न के आप ही उत्पन्न होता है और खिलता है वैसे ही विद्यासागर वीरसिंह गाँव के घर में गरीब घराने में जन्म लेकर आप ही अपनी चेष्टा से विकसित हुए। गरीब पिता ठाकुरदास ने किस तरह क्लेश उठा कर उनको पाला पोसा और पढाया-लिखाया, यह पहले ही लिखा जा चुका है। उस हाल को सुन कर कोई भी सहृदय पुरुष उनको धन्य कहे बिना नहीं रह सकता। प्राय ऐसा देखा जाता है कि अपरिचित गरीब बालक जवानी की अवस्था में सुख-सम्भोग और प्रतिष्ठा पाकर ससार को तुच्छ समझते हैं, किन्तु विद्यासागर ने अतुल सम्मान और सम्पत्ति पाकर भी कभी ऐसा नहीं किया। उन्होंने बहुत विद्यायें पढीं, बहुत सा ज्ञान, धन, सम्पत्ति और सम्मान प्राप्त किया, तब भी एक दिन या एक घडी के लिए अपने को नहीं भूले। वह सदा यह समझते रहे कि मैं वीरसिंहनिवासी गरीब ठाकुरदास बन्द्योपाध्याय का

लडका हूँ। झोपडी मे बचपन विताया था, इस वात को वह सदा गौरव के साथ स्मरण करते थे। एक वक्त खाकर और कभी कुछ न खाकर उन्होंने अपना छात्र-जीवन विताया था, इसका उल्लेख करने में वह कभी सङ्कुचित न होते थे। तथापि उस समय उनसे बढ कर प्रतिष्ठित पुरुष बङ्गाल में बहुत कम थे।

आज जो बँगला भाषा पढी जाती है, उसके सगठन के लिए बङ्गाली-मात्र उनके विशेष ऋणी और कृतज्ञ हैं। उन्होंने और अक्षयकुमार दत्त ने वर्त्तमान बँगला की सृष्टि की है। दोनो ने बँगला-साहित्य की बडी सेवा की है। ये लोग अगर बँगला-साहित्य के सेवक न होते तो उसकी इतनी जल्दी ऐसी उन्नति कभी न होती। साहित्य-सेवामे भी विद्यासागर की मौलिकता और काम करने की अद्भुत शक्ति स्पष्ट देख पडती है। एक दिन केवल कई घटे परिश्रम करके उन्होंने उपक्रमणिका बना डाली। उपक्रमणिका मे उनकी विशेषता का विशेष परिचय प्राप्त होता है। वेताल-पचीसी, शकुन्तला और सीता-वनवास आदि पुस्तको ने जिस लेखनी का गौरव बढाया उस लेखनी की विशेषता यह है कि बच्चों के पढने के लायक ग्रन्थ भी उसीसे लिखे गये। उसी लेखनी से 'वर्णमाला' और 'वर्णपरिचय' भी लिखा गया। ये पुस्तके भी स्कूल का मोआयना करने के लिए जाते समय रास्ते मे पालकी पर उन्होंने लिखी थीं। कोमलता और कठिनता का समावेश विद्यासागर के साहित्य-सम्बन्धी कार्य में भी देखा जाता है।

लडकपन से ही दूसरो की सेवा करते रह कर जवानी के आरम्भ में जब वह सम्मान-प्रतिष्ठा के उच्च शिखर पर पहुँचे तभी से उन्होंने गुणी के गुण का आदर करने में, दुखियो का दुःख दूर करके उन्हें सुखी बनाने में अपने जीवन को अर्पण कर दिया। उन्होने उस समय के अपने सर्व-श्रेष्ठ अधिकार को मनुष्य-सेवा मे लगा दिया। गवर्नर

जनरल लार्ड हार्डिंग के साथ परिचय होने के साथ ही उन्होंने हार्डिंग-विद्यालय खुलवा दिये। इस तरह प्रेम-पूर्ण सेवा का भाव लेकर उन्होंने अपने जीवन के महाव्रत को पूर्ण करने का सूत्रपात किया। जिस भुवनविजयी कार्य के आगे सब भारतवासियों ने सिर झुकाया, जिस समाज-संस्कार के काम में उन्होंने सत्साहस, सत्यनिष्ठा और मनुष्यत्व का पूर्ण परिचय देकर अमर कीर्ति प्राप्त की उसका भी छोटा सा अङ्कुर छात्रजीवन में ही उनके हृदय में उग आया था। बालक ईश्वरचन्द्र बालिका आत्मीया विधवाओं की दुर्दशा देख कर स्त्रियों के पक्षपाती बन गये थे। वैसाख-जेठ की कड़ी धूप में जब पृथ्वी और आकाश जलता है उस समय पानी के लिए, एकादशी के दिन, बालिका विधवाओं को * छटपटाते देख कर विद्यासागर ने प्रतिज्ञा की थी कि "यदि कभी सुयोग प्राप्त होगा तो इन सुकोमल रमणियों की यह दुःख-दुर्दशा मिटाने का उद्योग अवश्य करूँगा"।

अपने गुरु वृद्ध वाचस्पति महाशय की बालिका स्त्री को देख कर बड़े दुःख के साथ वह रोने लगे थे। वह एकमात्र बालिका के भावी परिणाम को ही विचार कर ऐसे व्याकुल नहीं हुए थे। क्रमशः इस तरह की अनेक बालिकाओं पर ऐसा सामाजिक अत्याचार होते देख कर उनसे नहीं रहा गया। वह स्त्रियों का पक्ष लेकर अकेले ही सारे समाज को परास्त करने के लिए उठ खड़े हुए। उन ऐसे सहृदय वीर पुरुष के लिए यही स्वाभाविक था।

गरीब के घर अनेक प्रकार के अभावों में जन्म लेकर समाज के शिरोभाग पर स्थान प्राप्त करने में समर्थ होना और हमेशा दीन

---

* बङ्गाल में विधवायें एकादशी का निर्जल व्रत करती हैं। यह उनके लिए बहुत ज़रूरी समझा जाता है और चाहे प्राण निकल जायँ, पर उन्हें पानी नहीं दिया जाता।

दुखियों के हित और सहायता के लिए आप कष्ट सहना सबका काम नहीं है। ऐसे काम इस तरह के महान् पुरुष ही कर सकते हैं। वह स्कूल मे आदर्श विद्यार्थी, कामकाज के मैदान मे निष्ठावान् और कर्त्तव्यपरायण आदर्श कर्मचारी और साहित्य-सेवा के मार्ग मे सरल, परिमार्जित और श्रुतिमधुर गद्यरचना के पथप्रदर्शक रूप से हमारे सामने मौजूद हैं। मित्रों की सेवा करने मे उनकी कोई बराबरी नहीं कर सकता। राजा प्रतापसिंह सदा उनके सहायक मित्र रहे। विधवा-विवाह के आन्दोलन मे उन्होंने धन से और कार्य से भी विद्यासागर की सहायता की थी। उस मित्रता के ऋण को विद्यासागर सदा कृतज्ञता के साथ स्मरण करते थे। राजा साहब के मरने पर उन्होंने उनके नाबालिग पुत्रों की भलाई करने में कोई कसर उठा नहीं रक्खी। समाज-संस्कार के मैदान मे आज उनकी जगह पर काम करनेवाला कोई नहीं देख पडता। उन्होंने वीरवेश से खडे होकर जातीयजीवन का कूडा-करकट निकाल कर फेंक देने के लिए कमर कसी थी। उनके इस कार्य का उचित आदर हम लोग नहीं करते। हम लोग समय और अवस्था की बेडियो मे जकडे हुए हैं। हम उनकी मुक्त शक्ति, मुक्तभाव और उदारतापूर्ण स्वाभिमान का सच्चा सम्मान किस तरह कर सकते हैं? अपनी उपमा वह आपही हैं। उनकी सरबर करने वाला और कोई नहीं देख पडता।

उन्होंने समाज-संस्कार-सम्बन्धी आन्दोलन के अवसर पर सर्वसाधारण के निकट अपना यथार्थ परिचय दिया था। उनकी अपरिमेय शारीरिक और मानसिक शक्ति, विद्या-बुद्धि और जटिल सामाजिक प्रश्नों के बारे में जानकारी और उनका किसी काम में भिडना सचमुच ही विचित्र और विलक्षण था। आगे की पीढियो के बङ्गाली सदा उनको अपना गौरव समझेंगे और जितना समय बीतता जायगा

उतना ही उनका चरित उज्ज्वल माधुर्य के साथ लोगो के मन को मुग्ध बनावेगा ।

उन्होंने मनुष्यप्रेम का पूर्ण अनुभव प्राप्त किया था । वह मनुष्य-मात्र को सच्चे स्नेह की दृष्टि से देखते थे । वैसे स्नेह की दृष्टि से लोग अपने सगों को भी नहीं देख सकते । विद्यासागर लडकपन से ही परोपकारी और दयालु थे । बारह वर्ष के बालक विद्यासागर आप अनेक कष्ट सह कर भी छात्रवृत्ति के रुपये से गरीब सहपाठियो की सेवा और सहायता करने लगे थे । इतनी थोडी अवस्था में जो बालक पराये दु ख को देख कर व्याकुल हो उठता था, दूसरो को सुखी बनाने के लिए आप सब तरह के कष्ट सह सकता था, वह दृढप्रतिज्ञ बालक अगर आगे चल कर परसेवापरायण महापुरुष के रूप मे ससार के आगे उपस्थित हो तो उसमे आश्चर्य ही क्या है ?

परोपकार करते समय विद्यासागर महाशय अपने-गैर, स्वजातीय-विजातीय, स्वदेशी-विदेशी, स्त्री-पुरुष आदि का विचार नहीं करते थे । मनुष्यमात्र पर उनका एक सा अनुराग था । पता लगाने से मुझे मालूम हुआ है कि सकट मे पडे हुए परिवार सहित मदरासी ने उनकी सहायता पाकर अपने प्राण बचाये हैं, गरीब फिरगी ने उनकी सहायता से अपने परिवार को मृत्यु के मुख में जाने से बचाया है और सब आदमियो द्वारा त्यागी गई मर रही कुलटा ने भी उनकी सेवा से जीवन पाया है ! जिस महापुरुष ने यह देख कर कि दूध दुह लेने से गऊ के बछडे को कष्ट होता है और वह भूखा रहता है, बहुत दिनो तक दूध पीना छोड दिया था उस महात्मा के हृदय की कोमलता का अनुभव भी शायद हम लोग नहीं कर सकते। इसीसे कहना पडता है कि लोकहितैषिता और जीव-दया मे वह अद्वितीय थे ।

वह रहा गङ्गा का जल जैसे समयानुसार पर्वत को नांघ कर

दाहने और बायें सुख-सम्पत्ति पुण्य और पवित्रता फैलाता हुआ सागर की ओर जाकर उसमें लीन हो जाता है उसी तरह विद्यासागर की दया का स्रोत भी कठिन कष्टों को नांघता हुआ आस-पास के और सारे देश के लोगो को सुखी बनाता हुआ उनके प्राणो के साथ अन्त को अनन्त दयामय के श्रीचरणो मे जाकर लीन होगया।

हमको भी विद्यासागर के जीवनचरित्र से दया, परोपकार, दृढ प्रतिज्ञा, स्वाभिमान, स्वावलम्ब आदि सद्गुणो की शिक्षा प्राप्त कर के अपने चरित्र को ऐसा बनाना चाहिए कि उससे अपना, समाज का, देश का और ससार का उपकार और कल्याण हो। अगर हम इसके लिए चेष्टा करेंगे, सैकडो बाधा-विघ्नो की पर्वा न करके कर्त्तव्यपालन पर दृढ रहेंगे तो अवश्य परमेश्वर हमारा सहायक होगा, जैसा कि एक फारसी का कवि कह गया है—"हिम्मते मर्दा मददे खुदा"। तथास्तु।

इति।